...सिल ऑफ साइंटिफिक
इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली
आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

जनवरी 1997
मूल्य रु० 3.50
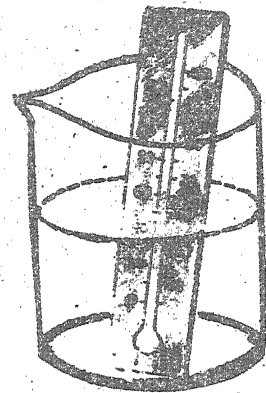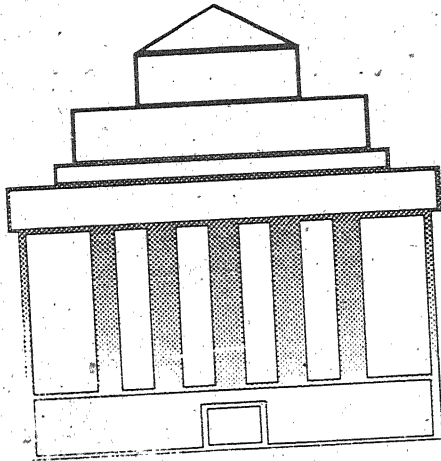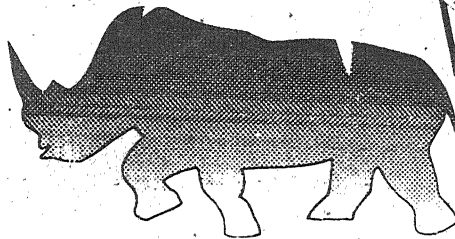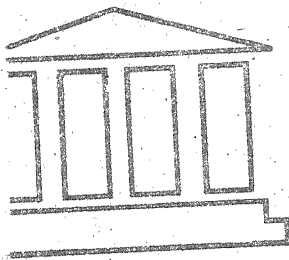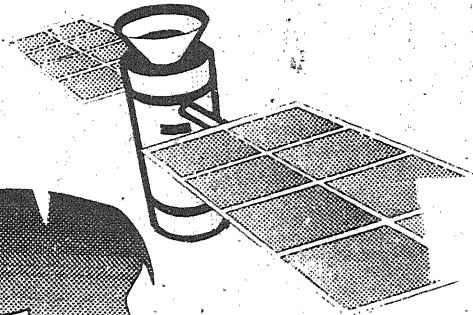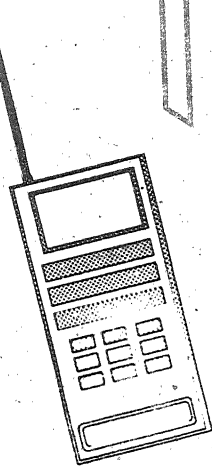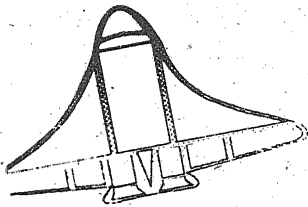
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
जनवरी 1997 : वर्ष 82 अंक 10
मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत,
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु० एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	कम्प्यूटर कम्पोजर	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

भारतीय विज्ञान की स्थिति

प्रिय पाठकगण

नया वर्ष आप सभी के लिए शुभ हो, मंगलमय हो, नयी खुशियाँ लाये। आप पूरे वर्ष स्वस्थ रहें, सानन्द रहें, प्रफुलित रहें। ऐसा मैं मात्र औपचारिकतावश नहीं वरन् हृदय से चाहता हूँ। किन्तु नये वर्ष 1997 के जनवरी के प्रथम सप्ताह में प्रारंभ होने वाले 'भारतीय विज्ञान कॉंग्रेस' भारत का सबसे बड़ा "विज्ञान मेला" कहीं मेला-तमाशा होकर ही न रह जाये

वर्तमान् में भारतीय विज्ञान की जो स्थिति है, अत्यंत निराशाजनक है। आँकड़े चौकाने वाले तो हैं ही, शर्मनाक भी हैं।

आज हम बड़े ही गौरव के साथ कहते हैं कि हम जिस युग में रह रहे हैं, वह विज्ञान का युग है, किन्तु हम भारतीय क्या भारत में विज्ञान की स्थिति पर गौरवान्वित महसूस कर सकते हैं?

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पत्रिका 'नेचर' (Nature) के 17 अक्टूबर 1996 अंक में प्रकाशित एक लेख में जिसके लेखक द्वय एन० रघुराम और वाई माधवी हैं, भारतीय विज्ञान की तस्वीर को बड़े ही सच्चे रूप में प्रस्तुत करते हैं।

अब तक हम एक भुलावे में जी रहे थे कि वैज्ञानिक मानव शक्ति के रूप में विश्व में हमारा तीसरा स्थान था, किन्तु साइन्स साइटेशन इण्डेक्स (Science Citation Index) के अनुसार 1981-1995 के दौरान भारतीय विज्ञान में 32 प्रतिशत की गिरावट आई है। यह बात चौंकाने वाली नहीं बल्कि, शर्मनाक है।

यूनेस्को (Unesco) द्वारा 1982-1993 के बीच विश्व विज्ञान रिपोर्ट (World Science Report) के अनुसार विज्ञान साहित्य के प्रकाशन में हम आठवें से तेरहवें स्थान पर आ गिरे हैं।

एक अनुमान के अनुसार प्रकाशन की संख्या में 15 प्रतिशत की गिरावट 1981 से देखी जा रही है। लगभग 11,000 शोधपत्र प्रकाशित हो रहे हैं, जबकि विश्व में वैज्ञानिक प्रकाशनों में 22 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है।

इस प्रकार भारतीय विज्ञान में जो गिरावट आई है उसमें प्रकाशनों की संख्या में कमी, आलेखों की गुणवत्ता में गिरावट और विज्ञान में रुचि लेने वालों की संख्या में भी कमी देखने में आती है। कारण अनेक हो सकते हैं।

जैसा कि हम अपनी अनेक समस्याओं की जड़ में विदेशी ताकतों का हाथ कहकर संतोष कर लेते हैं, तो हम यह बात आसानी से कह सकते हैं कि भारतीय विज्ञान की गिरावट का कारण यह है कि विदेशी ताकतें यह नहीं चाहती कि हम विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में प्रगति करें। कुछ हद तक यह बात सच भी हो सकती है, किन्तु वर्ष 1997 का 'भारतीय विज्ञान कॉंग्रेस' का अवसर ऐसा होना चाहिए जब हम मिल-बैठकर भारतीय विज्ञान में आई गिरावट के कारणों पर भली-भाँति विचार करें और विज्ञान की प्रगति के विषय में चिंतन-मनन करें। हमें ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी कि वैज्ञानिक अपने ही देश में कार्य करें। शोधपत्रों की संख्या नहीं, गुणवत्ता पर ध्यान दें। यह काम कठिन अवश्य है, पर असंभव नहीं । अभि भी समय है । यदि नये वर्ष नहीं, तो कम से कम नयी शती में तो हमारा प्रवेश सुखद हो। इसी आशा, इसी विश्वास के साथ।

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

शिकंजा

❑ राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

रीडर, ए० पी० एन० डिग्री कॉलेज
बस्ती-272001 (उ०प्र०)

बाहर तेज़ तूफ़ान चल रहा था--अरविन्द भटनागर-अस्सी वर्षीय डॉ० अरविन्द भटनागर ने प्रसन्नता मिश्रित आश्चर्य से उस काग़ज़ की ओर देखा। उनके सामने रखे पौधे की एक शाखा ने काग़ज़ दबा रखा था और दूसरी शाखा के सिरे पर जकड़ा बालपेन काग़ज पर अपेक्षाकृत बड़े अक्षरों में लिखता जा रहा था "कमल ..... कमल...."

डॉ० अरविन्द भटनागर ने अपने को आराम कुर्सी पर ढीला छोड़ दिया। उनके सामने उनका जीवन किसी फिल्म की तरह नाच उठा।

हाँ चालीस वर्षों का लम्बा समय अरविन्द भटनागर ने नगर से दूर इस किलेनुमा कोठी में व्यतीत किया था। बाहर से उनका संबंध केवल पोस्ट ऑफिस और बैंक के द्वारा जुड़ा था। पोस्ट ऑफिस उनके अस्तित्व के सेबंध में इस लिए जानता था कि लगभग प्रतिदिन विदेशों और स्वदेश से आने वाली अनुसंधान पत्रिकाओं और पुस्तकों के पैकटों पर एक ही पता लिखा होता था--डॉ० अरविन्द भटनागर, श्री विला, साकेत नगर। और वे पैकेट उस निर्जन पर बनी कोठी में पहुँचाने की जिम्मेदारी पोस्ट ऑफिस की होती थी। और बैंक भी, डॉ० भटनागर को एक लम्बे अंतराल के पश्चात् ही जाना पड़ता था--जब वे चेक बुक लाने जाते थे। अन्यथा उन्हें बाहरी दुनिया से जोड़ने का काम एक ही व्यक्ति करता था-रवीन्द्र।

चालीस वर्ष पहले जब डॉ० अरविन्द भटनागर विदेशों से उच्च शिक्षा और अनुसंधान की उपाधियाँ प्राप्त करके स्वदेश लौटे थे, तो वह इस स्थान की निर्जन सुषमा से अभिभूत हो गए थे। कहीं नौकरी करने के स्थान पर स्वतंत्र अनुसांधान करने की प्रेरणा से उन्होंने अपने व्यवसायी पिता से इस कोठी में रहने की इच्छा व्यक्त की तो परिवार में भूचाल-सा आ गया था। अरविन्द के दृढ़ निश्चय को देखकर उनके पिता ने उनका अनुरोध तो स्वीकार किया, परन्तु एक सम्पन्न परिवार की एक सुशिक्षित युवती से उनका विवाह करने के बाद ही।

पिता ने क्या सोचा होगा यह तो वहीं जानते होंगे, लेकिन विवाह और पत्नी की उपस्थिति ने अरविन्द पर कोई प्रभाव नहीं डाला। वे अपने अनुसंधान में इतने खोए थे कि जब वह युवती उन्हें वैधानिक रूप से त्याग कर चली गई, उन्हें कम से कम इसकी कोई पीड़ादायक अनुभूति नहीं हुई। धीरे-धीरे भीमाकार यंत्रों और पौधों से उनका घर भर गया। पत्रिकाओं को व्यवस्थित रखने की समस्या भी समाप्त हो गई क्योंकि उनकी जगह अब बरामदे में बना दी गयी थी। और यह सब संभव हो रहा था, रवीन्द्र की अनवरत उपस्थिति के कारण।

रवीन्द्र भी विज्ञान का स्नातक था और अरविन्द भटनागर के सहायक के रूप में कार्य करने के लिए सुदूर मणीपुर से यहाँ आया था। परन्तु डॉ० भटनागर के पत्नी के संबंध विच्छेद और शनैःशनैः नौकरों द्वारा कार्य छोड़कर चले जाने पर रवीन्द्र ने डॉ० भटनागर के सहायक की भूमिका के साथ उनके अभिभावक का दायित्व भी ग्रहण कर लिया था।

डॉ० भटनागर ने अपना संपूर्ण अनुसंधान बीजों के कोषीय परिवर्तनों पर केंद्रित कर रखा था। उस समय संपूर्ण विश्व में इस प्रकार के अनुसंधानों एक एक क्रम चल रहा था। लंबे अनथक प्रयोगों के पश्चात् डॉ० भटनागर ऐसे पौधे उत्पन्न करने में सफल हो गए थे जिनमें अनेक पौधों के गुणों का समावेश होता था। परंतु तभी उन्हें ऐसा लगा कि यदि वे पौधों की ऐसी प्रजातियाँ विकसित कर सकें जो पशुओं के समान गतिशीलता और संदेश ग्रहण करने की योग्यता रखते हों, तो यह एक युगांतरकारी आविष्कार होगा। वैसे लाजवंती (**मिमोसा प्यूडिका**) में गति तो होती हैं परंतु उसे नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

वर्षों के अनुसंधान व्यर्थ जाते हुए प्रतीत हो रहे थे रवीन्द्र ने डॉ० भटनागर से एक विशेष तकनीक से विकसित प्रजाति के एक पौधे की स्वतः स्फूर्तिगति की चर्चा की तो उन्होंने इसे रवीन्द्र की अत्यधिक संवेदनशीलता का प्रभाव समझा था। परंतु एक दिन जब वे उन विशेकर पौधों के कक्ष में उपस्थित थे तो उन्हें लगा कि अपेक्षाकृत शांत वायु की स्थिति में कुछ पौधे अधिक गति कर रहे थे। ऐसा लगता था कि उन पौधों को कोई हिला रहा था। डॉ० भटनागर ने उस कक्ष की सारी खिड़कियां बंद कर दीं तो भी पौधों की गति बंद नहीं हुई। उनकी शाखाएं ऊपर-नीचे, इधर-उधर गति करती रहीं। अचानक डॉ० भटनागर जोर से चिल्ला उठे ''रवीन्द्र''।

यह तेज पुकार जैसे ही बाहर आई, पौधे एकदम शांत हो गए। लगा कि कुछ हुआ ही नहीं था। डॉ० भटनागर ने सोचा कि क्या वे किसी मानसिक विभ्रम का शिकार तो नहीं हो रहे। वे कमरे के कोन में पड़े एक स्टूल पर बैठ गए।

थोड़ी देर ही बीती होगी कि डॉ० भटनागर को लगा कि खिड़की के पास रखे गमले के पौधे की एक शाखा नीचे से ऊपर जा रही है। फिर दूसरी शाखाएँ भी हिलने लगीं। थोड़ी देर बाद ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया कि जैसे सभी पौधों की शाखाओं को कोई बरबस हिला रहा हो।

तब तक रवीन्द्र कक्ष में आ गया था। डॉ० भटनागर ने उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि डाली, कहा, ''यह क्या हो रहा है रवीन्द्र'' रवीन्द्र ने पौधों से दृष्टि हटाए बिना उत्तर दिया? ''ऐसी गति तो छोटी शाखाएँ निकलने के साथ ही प्रारम्भ हो गई थी।.....मैंने आपको बताया भी थी, परंतु आपने ध्यान नहीं दिया।'' पौधे इस वार्तालाप के समय फिर शांत हो गए थे। रवीन्द्र का वाक्य समाप्त हुआ तो कुछ पौधों में फिर गति प्रारम्भ हो गई। किसी बच्चे की तरह डॉ० भटनागर चिल्लाए- ''तो रवीन्द्र, हमने गति करने वालों पौधे विकसित कर लिए, हैं न?'' पौधे फिर शांत हुए, कहीं कोई गति नहीं, कोई स्पंदन नहीं। थोड़ी देर ऐसा ही रहा फिर जैसे लगा कि कमरे में आँधी आ गई हो। सारे पौधों ने पागलों की तरह अपनी शाखाएँ इधर-उधर घुमानी प्रारंभ कर दीं।

स्टूल से उठते हुए डॉ० भटनागर ने कहा, ''उस कोने वाले पौधे को उठा कर शाक मशीन वाले कमरे में ले आओ, रवीन्द्र।'' इस बार प्रयोगों का एक नया सिलसिला शुरू हुआ। डॉ० भटनागर अब इन पौधों को विशेष आदेशों के अनुरूप प्रतिक्रिया करना सिखाना चाहते थे। उन्होंने कुछ छोटे आदेश चुने ''हिलो!'' और ''शांत!'' जब वे पौधे को हिलने का आदेश देते और वह आदेश पालन नहीं करता तो वे विद्युत् की धारा के साथ रसायनों की मात्रा पौधे को देते जो उसको आघात पहुँचाती। जब पौधे उनके आदेश का पालन कर लेते तो वे पौधों को पोषक पदार्थ का एक मिश्रण देते। धीरे-धीरे इस विशेष विकसित प्रजाति के सभी पौधे उक्त आदेशों के अनुरूप व्यवहार करना सीख गए।

डॉ० भटनागर अब तकनीक को सुनिश्चित करना चाहते थे जिससे किसी पौधे को जटिल आदेशों का पालन करना सिखाया जा सके। एक दिन डॉ० भटनागर प्रयोगशाला में बैठे कोई शोध-पत्रिका पढ़ रहे थे। उनके द्वारा विकसित एक विशेष पौधा उनके पास ही रखा हुआ था। कभी-कभी उसकी शाशाएँ इधर-उधर गति भी भी करतीं, परंतु अब यह साधारण घटना हो गयी थी। रवीन्द्र डॉ० भटनागर के लिए काफी बना कर रखा गया था, परन्तु डॉ० भटनागर का उस ओर ध्यान नहीं गया।

अचानक उन्होंने देखा कि पौधे की कुछ शाखाएँ गति करते हुए कप के पास आईं। एक छोटी टहनी ने कप को छुआ और अपने स्थान पर वापस लौट गई। थोड़ी देर बाद

ही उसी शाखा ने कप को छुआ, दूसरी शाखाएँ भी कप के पास आ कर उसे छूने लगीं। फिर डॉ० भटनागर की दृष्टि आश्चर्य में डूब गयी, जब उन्होंने पाया कि कप को छू रही शाखाओं ने काफी का कप उठा लिया है और ऊपर ले जा रही हैं।

इस प्रक्रिया में कप उलट गया, काफी मेज़ पर फैल गयी। डॉ० भटनागर ने खाली कप को पौधे के और निकट कर दिया। इस बार फिर शाखाएँ कप से पास आईं, उन्होंने उसे छुआ, एक शाखा हैंडिल के बीच में भी घुस गई। शाखाओं ने कप ऊपर उठा लिया, थोड़ी देर तक उसे संभाले रहीं और फिर वापस प्लेट में रख दिया।

इस घटना के बाद डॉ० भटनागर ने उन पौधों को कुछ जटिल क्रियाएँ भी सिखाईं, जैसे किसी चीज को पकड़ना, उठाना, या उसे ऊर्ध्वाकार दिशा में ले जाकर उसे ऊपर-नीचे घुमाना यह प्रशिक्षण बहुत धैर्य की अपेक्षा करता था लेकिन डॉ० भटनागर इसमें भी सफल हो गए।

अब डॉ० भटनागर की रुचि पौधों को लिखना सिखाने की ओर बढ़ गयी। पहले उन्होंने एक पौधे को काग़ज़ दबाना सिखाया। फिर पौधे की शाखाओं को डाट पेन पकड़ने का प्रशिक्षण दिया-- यह तो कम समय में ही संभव हो गया था। फिर डाट पेन के प्रयोग द्वारा काग़ज़ पर सीधी, खड़ी, आड़ी, तिरछी रेखाएँ और वृत्ताकार खींचना सिखाने में उन्होंने सफलता प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् उन्होंने पौधे को हिन्दी वर्णमाला के सभी अक्षर बनाना सिखा दिये।

अब डॉ० भटनागर ने उसे शब्द लिखना सिखाया। वह एक तूफ़ानी दिन था जब पौधे ने पहला शब्द मात्र ध्वनियां सुन कर लिखा। अक्षर बड़े-बड़े थे परंतु अक्षरों का संयोजन बिलकुल शुद्ध हुआ था।

इस प्रशिक्षण की अवधि में दूसरे पौधों का प्रशिक्षण बिलकुल रुक गया था। डॉ० भटनागर तीन पौधों का प्रशिक्षण करने के पश्चात् ही यह चमत्कारी खोज विश्व के सामने रखना चाहते थे। अतः उन्होंने दो और अपेक्षाकृत स्वस्थ पौधों को चुना और उन्हें अपने प्रशिक्षण कक्ष में ले आए।

पहले उन्हें पौधों को काग़ज़ दबाने और डाटपेन पकड़ने का प्रशिक्षण देना था। लेकिन अभ्यास के अभाव के कारण यह पौधा पहले सीखी गई कुछ क्रियाएँ भूल चुका था।

सोये हुए बच्चे को स्कूल के लिए तैयार करने में कुछ कठोरता बरतनी पड़ती है। डॉ० भटनागर ने पहले कुछ वैद्युतिक रासायनिक आघात उस पौधे को दिये, इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। तीव्र अधात की प्रक्रिया प्रारंभ करते हुए डॉ० भटनागर ने डाटपेन उस पौधे की शाखाओं के सामने रखा। कहा—"पकड़ों," "पकड़ो"।

आघात के पौधा थरथरा उठा। उसकी सारी शाखाएँ तेज़ी से इधर-उधर चक्कर काटने लगीं। एक-एक पत्ती जैसे नाच रही थी। एक शाखा ने डाटपेन को पकड़ने का प्रयास किया तो वह डॉ० भटनागर के हाथ से छूट कर उछल गया। डॉ० भटनागर ने देखा डाटपेन प्रशिक्षित पौधे की शाखाओं ने पकड़ लिया है।

ध्यान बँटना घातक सिद्ध हुआ। प्रशिक्षु पौधे की शाखाओं ने डॉ० भटनागर का हाथ जकड़ कर अपनी ओर खींचा। वृद्ध डॉ० भटनागर इस आघात के लिये तैयार नहीं थे, वे पौधे पर ही लुढ़क गए। पौधे की शाखाओं ने उन्हें पूरी तरह से बाँध लिया था उनका गला पूरी तरह शाखाओं की शक्तिशाली गिरफ्त में आ गया था। कुछ छोटी शाखाएं उनकी नाक की छेदों में घुस गयी थीं। कुछ कानों में घुस रही थीं।

थोड़ी देर बाद जब रवीन्द्र कमरे में घुसा तो उसने देखा पौधा डॉ० भटनागर को पूरी तरह जकड़े हुए है। उनकी नाक व कान से खून निकल कर इधर-उधर फैल गया था। पौधे ने उनका गला इतनी जोर से पकड़ रखा था कि उनकी निस्तेज़ आँखों बाहर निकल आई थीं। संभवतया वे थोड़ी देर पहले ही मर चुके थे।

रवीन्द्र ने फटी-फटी आंखों से किनारे रखे पौधे की ओर देखा। वह डाटपेन पकड़े हुए मेज पर कुछ लिखता जा रहा था। और ध्यान से देखने पर अक्षर स्पष्ट हो आए। पौधा बार-बार लिख रहा था-"पकड़ो-पकड़ो-पकड़ो...।" ■ ■

भस्मासुर की दूसरी हार

❑ डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

प्रोफेसर, रसायन विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक-124001 (हरियाणा)

एक हिन्दू पौराणिक चरित्र, भस्मासुर से संबंधित आख्यान अत्यंत रोचक है। भस्मासुर, जिले महादेव ने कुछ भी भस्म कर देने की आसुरी शक्ति प्रदान की थी, विष्णु की सूझ-बूझ के आगे हार गया और स्वयं को ही भस्म कर बैठा। इधर जो वैज्ञानिक तथ्य प्रकाश में आये हैं--उनसे प्रतीत होता है कि भस्मासुर अपनी दूसरी हार की ओर अग्रसर है।

आधुनिक नगरों का सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ता आकार कचरे की समस्या को नित्य भीषण से भीषणतर बना रहा है।

केवल दिल्ली में ही 2000 टन से अधिक कचरा प्रतिदिन उत्पादित होता है। कलकत्ता में तो यह मात्रा दुगनी से भी अधिक है। अभी अप्रैल 1996 में इलाहाबाद में 'पृथ्वी दिवस' के अवसर पर विज्ञान परिषद् में इस विषय पर आयोजित गोष्ठी में इस समस्या की विशद विवेचना की गई। इस कचरे में घरों से निकला कूड़ा तो होता ही है, विभिन्न औद्योगिक इकाइयों तथा अस्पतालों द्वारा जनित अत्यंत विषाक्त रासायनिक प्रकृति का मलबा भी होता है। क्या किया जाय इस कचरे के पहाड़ का? कैसे छुटकारा पाया जाय इससे कि यह उन्हीं नगरों, जहां यह उत्पादित हुआ है, के निवासियों के स्वास्थ्य के लिये खतरा न बन जाय? एक इलाज तो बहुत आसान सा दिखाता है कि भस्मकों (Incinerators) की गोद में डाल कर उच्च ताप दहन द्वारा इससे पीछा छुड़ा लिया जाय।

प्रारंभ में वैज्ञानिकों ने भी इसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं समझा और इसीलिये बहुराष्ट्रीय कंपानियाँ लग गईं भस्मीकरण तकनीकी का उत्ततरोत्तर विकास करने और नये से नये भस्मकों का व्यापार करने। लेकिन अब भस्मकों के भविष्य पर प्रश्न-चिन्ह लगने लग गया है।

विश्व प्रसिद्ध पर्यावरणवादी संगठन "ग्रीनपीस" अब हाथ धो कर इस तकनीकी के पीछे पड़ गया है। अभी अप्रैल 1996 में ही कलकत्ता में इसके दो प्रतिनिधियों, ऐनी लियोनार्ड तथा डॉ०पॉल कॉनेट ने भस्मीकरण तकनीकी की प्रगति पर तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा एशियाई देशों पर इसे थोपने के प्रयत्नों पर गहरी चिंता प्रकट की। उन्होंने कहा कि समस्या का निदान भस्मकों द्वारा किये जाने पर अन्य प्रकार की गंभीर पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। आखिर में भस्मक करते ही क्या हैं? वे कचरे में कैद हानिकारक पदार्थों की प्रकृति ही तो परिवर्तित करते हैं--उनकी विषाक्तता तो नष्ट नहीं करते। भस्मीकरण के दौरान यह विषाक्तता केवल मात्र वायु में मिल कर सम्पूर्ण पर्यावरण में, पहले वायुमंडल में और उसके बाद जल और पृथ्वी में भी, फैल जाती है। ऊपर से जो राख बचती है, वह फिर मिट्टी की गुणवत्ता कम करती है।

भस्मीकरण के तीन मुख्य उत्पाद हैं--राख, कार्बन डाइऑक्साइड गैस तथा गैसीय डाइऑक्सिन यौगिक। राख से तो जैसा कि लिखा जा चुका है, पर्यावरण की गुणवत्ता गिरती ही है, कार्बन डाइऑक्साइड भी मंद विष की भांति कार्य करती है। वायुमंडल में इस गैस की बढ़ती मात्रा के

फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले 'ग्रीन हाउस प्रभाव' के बारे में इतना कुछ लिखा जा चुका है कि विस्तार से उसकी चर्चा अनावश्यक हो गई है। अब तो सामान्य व्यक्ति भी यह जानने लगा है कि यह गैस सूर्य से धरती तक गर्मी आने तो देती है परंतु आसानी से वापस लौटने नहीं देती जिसके कारण भूमंडल गर्म होता जा रहा है और इसके व्यापक परिणाम भयंकर पर्यावरणीय असंतुलन के रूप में प्रकट हो सकते हैं। ध्रुवों की बर्फ पिघल सकती है, तटीय क्षेत्रों को समुद्र लील सकते हैं और विश्व में वर्षा का 'पैटर्न' बदल सकता है। इंगलैड के मौसम विज्ञानियों के अनुसार वर्ष 1995 इस दशक के पिछले सार्वाधिक गर्म वर्ष 1990 की अपेक्षा 0.05^0सेल्सियस अधिक गर्म था। यही नहीं यह वर्ष 1961 से 1990 तक के औसत ताप से 0.4^0से० अधिक गर्म रहा।

1995 में ही 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के मौसमी परिवर्तन पर नज़र रखने वाले वैज्ञानिकों की एक समिति ने घोषणा की कि हमारी पृथ्वी का ताप वास्तव में बढ़ रहा है। इस दशक में अभी छः वर्ष ही हुये हैं, परन्तु उनमें से चार औसत रूप से अभी तक के अधिकतम गर्म वर्ष रहे हैं। वस्तुतः जब से भूमंडल के ताप (औसत) का लेखा-जोखा रखा जा रहा है, तब से दस में से नौ अधिकतम गर्म वर्ष 1980 के बाद के ही रहे हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस दशक के छः वर्षों में दो तो इसलिये ठंडे (कम गर्म) रहे कि 1991 में पिनाट्यूबो नामक ज्वालामुखी फटने से इतनी धूल-धक्कड़ उड़ी कि उसने काफी सीमा तक सूर्य रश्मियों को पृथ्वी तक पहुँचने ही नहीं दिया। जब ये धूल कण धीरे-धीरे पृथ्वी पर वापस लौटे तभी गर्मी फिर पूरी तेजी से उभरी। निश्चित रूप से हमारी कारगुजारियाँ अब भूमंडल का ताप बढ़ा रही हैं और समिति के अनुसार हम शीघ्र ही आधिकाधिक बाढ़ या सूखे (भिन्न क्षेत्रों में) तथा कई प्रकार के संक्रमणों से प्रभावित होने लग सकते हैं।

भस्मीकरण का तीसरा उत्पाद, डाइऑक्सिन गैसें भी कम शरारती नहीं हैं। वास्तव में ये गैसें क्लोरीन वाले कार्बनिक यौगिकों का एक समूह हैं। ऐसे 75 यौगिकों का ज्ञान रसायनज्ञों को हो चुका है। ये गैसें भस्मकों की उत्पादन तो हैं ही, कागज मिलों में भी उत्पन्न होती रहती हैं। सिगरेट और सिगार के धुयें में भी ये उपस्थित पाई गई हैं और स्वाचलित वाहनों के धुयें में भी। लियोफिलिक होने के कारण ये खाद्य-श्रृंखला में भी शीघ्रता से प्रवेश कर जाती हैं। डाइऑक्सिन गैसे स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकारक हैं। स्नायुतंत्र तथा यकृत को तो ये हानि पहुँचाती हैं, गर्भस्थ शिशु में भी कई प्रकार की विकृतियाँ पैदा कर सकतीं हैं। भस्मकों में इनका उत्पादन कचरे में उपस्थित क्लोरीन वाले कार्बनिक यौगिकों, जैसे पॉलीविनाइल क्लोराइड (पीवीसीए-एक अत्यंत उपयोगी तथा सामान्य बहुलक) तथा कई प्रकार की औषधियों (अस्पताली कचरे में बहुतायत से उपलब्ध) के माध्यम से होता है। स्वीडेन आदि कई देशों ने इसी कारण पी वी सी का उपयोग पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया है। फिर करें क्या? ध्यान दीजिये डॉ० शिवगोपाल मिश्र के शब्दों पर जो उन्होंने ऊपर बताई गई गोष्ठी में कहे--"कचरे का उपयोग ऊर्जा-उत्पादन और कम्पोस्टिंग में करके कचरे से कंचन की भावना को चरितार्थ करें।" हल कुछ ऐसा ही निकालना होगा। कचरे की छंटाई करनी होगी और प्रत्येक ढेर की प्रकृति के अनुसार, बायोमॉस के रूप में उपयोग कर ऊर्जा का उत्पादन या कम्पोस्टिंग, द्वारा खाद प्राप्त करनी होगी। कुछ अन्य ढेरियों को वाष्प--निर्जर्मीकरण, रासायनिक विधियों अथवा माइक्रोवेव तकनीकी द्वारा हानिरहित करना होगा। P.V. C. (पी०वी०सी०) का उपयोग प्रतिबंधित किया जा सके तो और भी अच्छा होगा।

भस्मासुर दूसरी बार भी निश्चित रूप से हार रहा है। यद्यपि एक अमरीकी रपट के अनुसार भस्मीकरण तकनीकी का सक्षम विकल्प अभी तक सामने आ नहीं सका है।

■ ■ ■

बच्चों की आँखों की नियमित जाँच का महत्व

डॉ० कामिनी कुमार

नेत्र विशेषज्ञ
8 ए, हाशिमपुर रोड,
इलाहाबाद

स्कूली बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण अभियान सरकार की ओर से चलाया ही जा रहा है, लेकिन छोटे बच्चे अक्सर अपनी परेशानी स्पष्ट रूप से बताने में असमर्थ होते हैं। इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि माता-पिता उनके असमान्य व्यवहार को नज़र अन्दाज़ न करें। जेसे कि-

- बार-बार मना करने पर भी टी०वी० पास से देखना।
- पढ़ते या टी०वी० देखते समय आँखों से पानी आना।
- आँखों का लाल होना व खुजली होना।
- समय-समय पर बिलनी निकल आना।
- पलकों पर रूसी के समान सफेदी होना।
- एक आँख तिरछी होना या कभी-कभी तिरछा होना। सिर एक तरफ तिरछा रखना।
- आँखों का अपने आप असमान्य रूप से हिलते रहना। जिसे निस्टेगमस कहते हैं।
- आँखों की बहुत कम रोशनी के कारण मानसिक विकास का अवरुद्ध होना।
- रात में दिखाई न पड़ना (नाइट ब्लाइन्डनेस)।
- स्कूल जाने वाले बच्चे अक्सर बोर्ड से अक्षर गलत उतारते हैं और बार-बार डाँट खाने के कारण स्कूल जाने से कतराने लगते हैं।

इनमें से कोई भी लक्षण आपको अपने बच्चे में दिखे तो आप बच्चे को नेत्र चिकित्सक को अवश्य दिखाएं।

माता-पिता के लिए यह जानना व समझना बहुत जरूरी है कि बच्चे में ऊपर बतायी हुई असमान्यताओं का कारण क्या हो सकता है।

आँखों का लाल होना

आँखों के किसी भी भाग में सूजन आने पर आखें लाल हो जाती हैं। लेकिन यह लाली अलग-अलग प्रकार की होती है व उसके कारण भी अलग-अलग हैं। अक्सर लोग इसे आँख का उठ आना या ठंढ लग जाना मान कर ध्यान नहीं देते और नुकसान बहुत ज्यादा हो जाता है। आँख में कुछ पड़ जाने, घाव हो जाने, रोहा या एलर्जी, समलबायी-सभी के कारण आँखें लाल हो सकती हैं लेकिन इलाज में बहुत अन्तर है।

आँखों की रोशनी कम होना

ऐसे बच्चे किताब बहुत पास से पढ़ते हैं, टी० वी० भी पास से देखते हैं। आँखों से पानी निकलता है व खुजली हमेशा बनी रहती है। सिर में दर्द हो सकता है। ऐसे बच्चे सामान्य बच्चों की तरह बाहर दौड़ने वाले खेल नहीं खेलते।

स्कूल में ब्लैक बोर्ड पर साफ न देख पाने के कारण उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। बार-बार बिलनी निकलना व पलकों पर घाव या रूसी जैसी सफेदी होना भी अक्सर नजर कमजोर होने के कारण ही होता है। सही चश्मा ही इन सबपरेशानियों को दूर करने का उपाय है। चश्मा केवल साफ देखने के लिए ही नहीं है बल्कि कई बार चश्में की जरूरत आँख की रोशनी को बढ़ाने व आँख को तिरछा होने से बचाने के लिए भी होता है। कुछ लोगों में आई स्ट्रेन को कम करने के लिए चश्मे की जरूरत होती है ऐसे लोगों में आँख की रोशनी एकदम ठीक 16/16 होती है।

सिर तिरछा रखना

कुछ बच्चों में ऐसे देखने पर आँखों में कोई विकृति नहीं दिखायी देती लेकिन वे अपना सिर हमेशा एक ओर झुका कर रखते हैं। अगर उनका सिर सीधा कर दिया जाये तो आँख का तिरछापन साफ नज़र आ जाता है। दोनों आखों की देखने की दिशा एक न होने के कारण हर वस्तु दो दिखायी पड़ती है। ऐसे में बच्चा सिर को उसी तरफ झुका कर रखता है जिस तरफ की आँख की मांसपेशी (पेरालिसित, चोट के कारण या पैदाइशी) कमजोर है और इस प्रकार से दोनों आँखें एक दिशा में काम करने लगती हैं।

कभी-कभी एक आँख की चश्मे की पावर अत्यधिक होने के कारण आँख की रोशनी चश्मा न लगा होने पर धीरे-धीरे कम हो जाती है और काम न करने के कारण तिरछी हो जाती है। इन दोनों ही स्थितियों में सही पावर का चश्मा ही इलाज है जो कि इन विकृतियों को धीरे-धीरे ठीक करता है व नजर तेज करता है। कम से कम उम्र में ही इलाज कराने से पूरा लाभ मिलता है।

लगभग 7.35% अन्धापन भारत में दृष्टि दोष के कारण होता है। अन्य चिकित्सकों के प्रायः इस दोष के नुकसान दायक प्रभावों से अनभिज्ञ होने के कारण वे मरीजों को जल्दी नेत्र विशेषज्ञ को दिखाने की सलाह नहीं देते और जब मरीज आता है तब तक काफी नुकसान हो चुका होता है। चश्मा न लग पाने की स्थिति में कॉन्टेक्ट लैंस या रेडियल किरेटोटमी (मायोपिया सर्जरी) द्वारा इलाज संभव है।

नाइट ब्लाइन्डनैस या रात्रि अन्धता

हमारे देश में बच्चों में पाया जाने वाला रोग है, जो शरीर में विटामिन-ए की कमी से होता है। खान-पान की कमी। या अधिकतर बार-बार होने वाली पेट की बिमारियाँ विटामिन-ए की कमी का प्रमुख कारण है। कभी-कभी नाइट ब्लाइन्डनैस पर्दे(रेटीना) की पैदाइशी खराबी के कारण होती है। विटामिन-ए की कमी से होने वाली अन्धता को विटामिन-ए के इन्जक्शन, गोलियों व सन्तुलित आहार से ठीक किया जा सकता है। साथ में पेट का इलाज जरूरी है। खाने, पानी व घर की सफाई के महत्व को भी माता-पिता को समझाना जरूरी है। इन सब बातों का अगर हम ध्यान रखेंगे तभी हम भारत के स्वस्थ भावी नागरिकों का निर्माण कर सकते हैं।

■ ■ ■

[पृष्ठ 10 का शेषांश]

'द डोहा ब्रेकथ्रू' के लेखक जीवरसायनज्ञ स्टीफेन ए चेरनिस्के का कहना हे कि वे पिछले 9 वर्षों से 'डेहा' का सेवन कर रहे हैं, जब वे चालीस वर्ष के हो चुके थे। यहँ रीगेलसन महोदय की चेतावनी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है जब वे कहते हैं कि युवाओं को 'डेहा' का इस्तेमाल भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

साहेलिअन के अनुसार जैसे अन्य औषधियों की निश्चत खुराक होती है वैसे ही यदि 'डेहा' का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाये तो शारीरिक गड़बड़ियों के उत्पन्न होने की पूरी आशंका रहती है। आमतौर से प्रतिदिन 25-30 मिलीग्राम 'डेहा' का सेवन शरीर पर कुप्रभाव नहीं छोड़ता। वैसे चिकित्सक की सलाह लिए बिना 'डेहा' का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बूढ़ों को मेरी निजी राय है कि इस मामले में जल्दबाजी से काम न लें और 'डेहा' का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भली-भाँति परीक्षण हो जाने दें।

■ ■ ■

वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ० नन्दलाल सिंह

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमन्त्री, विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

26 नवम्बर 1996 को भौतिकी विज्ञान एवं हिन्दी के वरिष्ठ विज्ञान लेखक डॉ० नन्दलाल सिंह का लखनऊ में देहान्त हो गया। वे 81 वर्ष के थे।

डॉ० नन्दलाल सिंह की कर्मभूमि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय रही जहाँ उन्होंने 55 वर्ष बिताये। 1969 में अवकाश प्राप्त करने के बाद वे पुरानी लंका स्थित अपने नन्द निवास में ही वैज्ञानिक गतिविधियों के केन्द्र बने रहे। मुझे भी आपसे कई बार मिलने का अवसर मिला। मैं उनकी सरलता एवं अपनत्वभाव से अत्यधिक अभिभूत रहा हूँ। वे बहुत ही मृदु वाणी में मुस्कराते हुए कोई बात विनम्र होकर कहते थे। उनकी देशी लिबास, उनके हाथ में छड़ी, सिर पर टोपी-पुराने लोगों का स्मरण कराती। उनके अवसान से न केवल बनारस की अपितु सम्पूर्ण हिन्दी जगत की अपूर्णीय क्षति हुई है।

आपका जन्म जौनपुर जनपद के खजुरहवाँ ग्राम में हुआ। इण्टर से आगे की शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। 1931 ई० में भौतिकी में एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण करने के तुरन्त बाद वहीं आपकी नियुक्ति हो गई। साथ ही शोध कार्य करते रहे और अवकशप्राप्त करने के बाद आप भौतिकी कक्ष के निदेशक बने और हिन्दी में भौतिकी की पाठ्य पुस्तकों के लेखन कराने का अद्वितीय कार्य किया। आप 1978तक निदेशक पद पर रहे। उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना हो जाने के बाद आप उसमें महत्वपूर्ण योगदान देते रहे।

आपकी हिन्दी सेवा 1930 से शुरू हुई जब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में तकनीकी शब्दों के निर्माण हेतु हिन्दी समिति की स्थापना हुई थी। डॉ० निहाल करण सेठी आपके गुरु थे और रसायन विभाग के प्रेफेसर फूलदेव सहाय वर्मा ने भी आपको पढ़ाया था। इन दोनों गुरुजनों के साथ मिलकर आपने छात्रों के लिए 1951 में भौतिक विज्ञान प्रेवशिका नामक पाठ्य पुस्तक लिखी। आपने हाई स्कूल के लिये भी पाठ्य पुस्तकें लिखीं। आपके शिष्यों में डॉ० श्रवण कुमार तिवारी ने आपके कार्य को आगे बढ़ाया। आपने भौतिकी कक्ष के निदेशक के रूप में 15 वर्षों की अवधि में 50 पुस्तकों का सम्पादन किया। आप प्रज्ञा तथा भौतिकी पत्रिकाओं के भी सम्पादक रहे। आपके अनेक लेख प्रज्ञा में (1963-1969 ई०) प्रकाशित हुए।

हिन्दी में अपनी रुचि का श्रेय अपने गुरुवर डॉ० सेठी तथा प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा को देते हुए आपने लिखा-"शुरू में मैंने सेठी जी की प्रारम्भिक भौतिकी और वर्मा जी की प्रारम्भिक रसायन नामक पुस्तकें पढ़ी। उन्हीं से मुझे हिन्दी में लिखने की उत्कण्ठा हुई।"

विज्ञान परिषद् प्रयाग से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। परिषद् ने आपको आपकी विज्ञान सेवाओं के लिए सम्मानित भी किया। बाद में हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश ने भी आपकी हिन्दी सेवाओं के लिए सम्मानित किया। वे विज्ञान के सर्वोपरि कर्मयोगी थे। परिषद् परिवार की ओर से उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

बुढ़ापे पर विजय : संभावना का नया द्वार

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

सम्पादक "विज्ञान"

मानव सदैव से खोजी प्रकृति का रहा है। धरती पर जीवन का उद्भव, मानव का उद्भव, मृत्यु पर विजय जवानी का रहस्य जैसे विषय उसे सदा से आकर्षित करते आये हैं।

हम सदा जवान बने रहें, यह लालसा हम सभी के मन में रहती है। एक पौराणिक आख्यान के अनुसार एक राजा ने अपने पुत्र की जवानी लेकर लम्बे समय तक शीरीरिक सुख का उपभोग किया। पौराणिक आख्यान सत्य है अथवा असत्य यह विवाद का विषय हो सकता है, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है, कि बुढ़ापे में जवान रहने का रहस्य अब वैज्ञानिकों ने ढूढ़ं निकाला है। अब 'डेहा' (DEHA डीहाइड्रोइपीऐण्ड्रोस्टेरोन) नामक 'कैप्स्यूल' के आविष्कार से मानव ने बुढ़ापे पर विजय की ओर अपना पहला कदम रख दिया है।

सच्चाई तो यह है कि 'डेहा' नामक रसायन एडरीनल ग्रंथि द्वारा स्रावित होता है और शरीर के भीतर ही 'टेस्टोस्टटोरोन' और 'ऑस्टट्रोजेन' में परिवर्तित हो जाता है। 25 वर्ष की आयु में इस रसायन का स्राव अपनी चरम सीमा पर होता है और उसके बाद ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, इस रसायन का स्राव कम होता जाता है। 85 वर्ष की वय तक पहुँचते-पहुँचते स्राव में लगफग 95 प्रतिशत की कमी आ जाती है।

मानव शरीर पर वैज्ञानिक परीक्षाणों के पश्चात् जो परिणाम सामने आये हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इसके नियमित सेवन से शरीर की चर्बी घटती है, रोगों के प्रति प्रतिरोध की क्षमता बढ़ती है, शरीर को ऊर्जा मिलती है, मन प्रफुल्लित रहता है, हृदय रोगों से बचाव होता है, कामेच्छा और कामक्षमता में वृद्धि होती है, आदमी अपने को युवा महसूस करता है। एक महीने तक 'डेहा' सेवन का खर्च लगभग 15 डॉलर है।

'डेहा, ए प्रैक्टिकल गाइड, के लेखक ,डॉ० रे साहेलिअन का कहना है, 'डेहा' के विषय में हमारा ज्ञान अभी अधूरा है और हमें लगभग एक दशक तक इन्तजार करना चाहिए, तब तक जब तक कि इस बात का भली-भाँति परीक्षण न हो जाये कि शरीर पर इसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु जो लोग पहले ही बूढ़े हो चुके हैं, उनमें इतना धैर्य है क्या?

बहुत से लोगों ने तो इसका सेवन प्रारंभ भी कर दिया है और अपने शरीर पर परिणामों से संतुष्ट भी हैं। हावर्ड के 68 वर्षीय अवकाश प्राप्त व्यापारी वासरमान अपने को 30 वर्ष का युवा महसूस करते हैं। 71 वर्षीय डॉ० विलियम रीगेलसन पिछले 11 वर्षों से डेहा का सेवन कर रहे हैं। कैरोल कोलमैन के साथ उन्होने अत्यधिक बिकने वाली एक पुस्तक लिखी है— 'द मेलाटोनिन मिरैकिल'। मेलाटोनिन हॉरमोन नींद न आने की बीमारी में उपयोगी औषधि का काम करती है। सिमोन और शयूस्टर की पुस्तक-- 'द सुपर हॉरमोन प्रामिसः नेचर्स एण्टीडोट टू एजिंग' भी शीघ्र ही बाज़ार में आ जायेगी। इस पुस्तक में कुछ हॉरमोनों के विषय में बताया गया है, जिसमें 'डेहा' भी शामिल है।

[शेष पृष्ठ 8 पर]

टेलीफोन के आविष्कारक : अलेक्जैण्डर ग्राहम बेल

❑ डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, रसायन विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय
प्लाट ए-4, 8 रेजिडेन्सी रोड,
जोधपुर- 342003 (राजस्थान)

अलेक्जैण्डर ग्राहम बेल का जन्म स्काटलैण्ड के एडिनबर्ग नगर में 1847 के मार्च माह में हुआ था। उसका विश्व विख्यात पिता बधिरों को बोलना सिखाने में दक्ष था। उसने 'विजिबिल स्पीड' (Visible speed) का आविष्कार किया था, जिसके द्वारा बधिरों को उन शब्दों का उच्चारण सिखाया जा सकता था। और कमाल की बात तो यह थी कि इसे वे सुन न सकते थे। ग्राहम उस तकनीक में और सुधार लाया, परन्तु उन्नीस वर्षीय बेल का मन कहीं और था। 1866 में वह तार द्वारा 'टोन्स' (Tones) को संचारित करने के प्रयत्न कर रहा था। उसके मानस में 'हारमोनिक टेलीग्राफ' (Harmonic telegraph) का विचार आया जिससे विद्युत् द्वारा संगीत के 'टोन्स' (Tones) एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जा सकें। इन प्रयोगों के बीच में ही उसने 1876 में टेलीफोन का क्रान्तिकारी आविष्कार किया जिसके माध्यम से लम्बी दूरी तक बातचीत करना संभव हो सका।

ग्राहम बेल एक कमजोर स्वास्थ्य का बालक था। उसके दो भाई बचपन में ही क्षय रोग के कारण चल बसे थे। लंदन के एक प्रसिद्ध चिकित्सक के अनुसार ग्राहम का वहां एक वर्ष से अधिक जीना कठिन था। इसी कारण माता-पिता उसे विश्राम दिलाने कनाडा ले आए। स्थान परिवर्तन से उसकी दशा में सुधार आया और उसने बधिरों के शिक्षक बनने की ठानी। उस काल में अमेरिका के बोस्टन नगर में बधिरों की शिक्षा के लिये एक विख्यात पाठशाला थी। ग्राहम ने बोस्टन पहुँच कर पाठशाला के प्राचार्य के द्वार पर लगी घण्टी का बटन दबाया। प्राचार्य सराह फुलर ने द्वार खोलकर उसका स्वागत किया। और बातचीत में ग्राहम की निर्मित टीचिंग बाई विजिबिल स्पीच (Teaching by visible speech) तकनीक के विषय में जानना चाहा। ग्राहम ने पाठशाला में शिक्षण कार्य शुरू कर दिया। वह कक्षा के बच्चों को उन शब्दों के उच्चारण करने के प्रयासों को प्रोत्साहित करता था, जिन्हें वे स्वयं सुन न सकते थे। इस प्रकार दिन भर वह शैक्षणिक काम-काज में व्यस्त रहता था। कुछ छात्र सायंकाल में भी उसके पास पढ़ने आते थे। इतना व्यस्त रहने पर भी ग्राहम अपने मन पसंद प्रयोगों के लिये समय निकाल लेता था। शयन कक्ष में अपने पास कुछ समस्वरक स्वरित्र या ट्यूनिंग फोर्क्स (Tuning Foaks) रखता था। उसके मानस में तार द्वारा 'टोन्स' या अक्षरों को भेजने की तीव्र इच्छा थी। उसका विश्वास था कि वाणी केवल वायु की दोलन क्रिया ही है। इसी कारण उसका यह ध्येय था कि वह समस्वरक स्वरित्र (Tuning Fork) द्वारा शब्दों का निर्माण कर विद्युत् द्वारा तार के माध्यम से भेजे। उन्हीं दिनों विश्व विख्यात जर्मन भौतिक शास्त्री हरमन् फ्रॉन हेल्महोल्ट्ज द्वारा लिखित पुस्तक 'सेन्सेशन ऑव टोन्स' (Sensation of Tones) उसके हाथों में आई। पुस्तक जर्मन भाषा में थी, परन्तु ग्राहम बेल ने उसे परिश्रम से पढ़ा। पुस्तक मे ऐसे अनेक प्रयोग लिखे थे जिनमें विद्युत-धारा द्वारा चालित समस्वरक स्वरित्र स्वर ध्वनियां निर्मित कर सकते थे। यह

ध्यान देना आवश्यक है कि ग्राहम बेल ने विज्ञान की औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। उसे विद्युत् का पर्याप्त ज्ञान भी न था। उसे पुस्तक के प्रयोगों को समझने तथा दोहराने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, परन्तु उसने इसके लिये कठोर परिश्रम किया। बहुत थकने पर वह प्राचार्य कक्ष के कोने में रखे पियानों को बजा कर विश्राम कर लेता था क्योंकि बचपन से ही उसे संगीत का शौक था।

बेल का वाटसन नाम का एक अन्य सहयोगी भी था। चाहे जाड़ा या गरमी दोनों वैज्ञानिकों के प्रयोग निरंतर चलते रहते थे अंततः एक दिन तेज़ गरमी के कारण ग्राह्म बेल कमरे में बेहोश हो कर गिर गया। वाटसन ने उसे उठाया और चिकित्सीय चांज कराई। डॉक्टर ने ग्राहम बेल को पूर्ण विश्राम करने के निर्देश दिये। वाटसन ने उसे प्रयोग करने से दृढ़तापूर्वक रोका और तय हुआ कि ग्राहम बेल कुछ माह अपने कनाडा निवास में बितायेगें।

ग्राह्म बेल कुछ समय कनाडा में इस प्रकार बिता कर अपनी प्रयोगशाला में लौटा। उस समय वह उन्नीस वर्ष का हो गया था और टेलीफोन के निर्माण में पूरी तरह जुट गया। उसका निर्मित टेलीफोन रुक-रुक कर कार्य कर रहा था, परन्तु ग्राहम बेल तन्मयता से उसमें सुधार लाता गया। उसने तथा सहयोगी वाटसन ने एक नया संचारी (Transmitter) का आविष्कार किया जिसमें बोलने पर ध्वनि तरंगों द्वारा वायु दोलित होती थी। 1876 की दस मार्च को वाटसन नये संचारी को प्रयोग शाला में ले आया और उसे तार द्वारा एक चोंगे (Receiver) से जोड़ा। संचारी को बेल अपने शयन कक्ष में ले गया तथा चोंगे को वाटसन ने अपने कान में लगाया। अचानक उसे ग्राहम बेल के ये स्पष्ट शब्द सुनाई दिये--

"श्री वाटसन यहां आइये, मुझे आपकी आवश्यकता हैं।" (Mr Watson! come here, I want you.)

बेल के कक्ष का द्वार धम से खुला और वाटसन खुशी से चिल्लाता घुसा--"श्रीमन बेल, मैने आपके सारे शब्द सुने हैं। एक बार फिर से दोहराइये।" वाटसन अपने चोंगे पर फिर लौट गया। उसने सुना "एक, दो, तीन" और उत्तर में कहा —"चार, पाँच, छह"।

बेल ने जारी रखा--"सात, आठ, नौ,।" प्रत्येक स्वर वाटसन को साफा-साफ सुनाई दिये। और इस प्रकार ग्राहम बेल द्वारा टेलीफोन का आविष्कार सम्पन्न हुआ।

धटनाचक्र तेज़ी से चला और कुछ ही समय में उसके आविष्कृत टेलीफोन विश्व भर में फैल गये। ग्राह्म बेल ने अपने आने के मूल ध्येय के अनुसार अपनी कमाई को मुख्यतया बधिरों की सहायता में लगाया।

सरकार ने भी उसके इस आविष्कार के लिये उसे बड़ी राशि प्रदान कर पुरस्कृत किया। इस राशि से बधिरों के लिए अनेक उपयोगी प्रयोगशालाएँ बनीं।

अमेरिका के एक कोने से दूसरे कोने को जोड़ने वाली प्रथम टेलीफोन लाइन 1915 में बिछाई गई। वृद्ध ग्राहम बेल न्यूयार्क में अपने टेलीफोन के पास बैठे थे और उनके प्रतिष्ठित सहयोगी वाटसन तीन सहस्त्र मील से भी अधिक दूरी पर सन फ्रेंसिसकों में विराजमान थे। लोगों को उत्कंठा थी इस ऐतिहासिक अवसर के लिये ग्राहम बेल ने कौन सा भाषण तैयार किया होगा। परन्तु बेल ने पहले से कुछ भी न बताया। अनेक श्रोताओं के सामने ग्राहम बेल अपने पुरातन संचारी के समाने बोले--"श्री वाटसन, यहाँ आइए, मुझे आपकी आवश्यकता है। (Mr. Watson! come here, I want you.)

श्रोताओं को कौतूहल हुआ। वाटसन ने उत्तर में कहा--

"मुझे आकार प्रसन्नता होगी, किन्तु मुझे पहुँचने में एक सप्ताह लग जायेगा।" ("I would be glad to come, but it would take a week.") इसके बाद तो ग्राहम बेल के नाम के डंके सारे संसार में बजने लगे। अपने आविष्कार में ग्राह्म बेल आज भी जीवित हैं।

■ ■ ■

विज्ञान परिवार के समस्त सभ्यों को नववर्ष की मंगल कामनाएं।

1. परिषद् भवन में परिषद् के उपसभापति डॉ० रामगोपाल का भाषण

22 नवम्बर को 12.30 बजे दिन में डॉ० रामगोपाल जी का भाषण "ध्यान और स्वास्थ्य" पर हुआ। आपने अनेक चित्रों द्वारा ध्यान की मुद्राओं एवं उससे स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन किया। इस अवसर पर परिषद् के सभापति डॉ० डी० डी० पंत के अतिरिक्त परिषद् के अन्तरंगी उपस्थित थे। संयोगवश बाल विज्ञान कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये आये अनेक अतिथियों ने भी इस व्याख्यान का रसास्वादन किया।

2. परिषद् भवन में बाल विज्ञान कांग्रेस का प्रादेशिक सम्मेलन

23 से 25 नवम्बर तक बाल विज्ञान कांग्रेस में भाग लेने आये 30 जिलों से 850 छात्र-छात्राओं ने परिषद् भवन में तीन दिनों विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लिया। यह पहला अवसर था इतने बड़े समूह का इलाहाबाद में एकत्र होने का। वैज्ञानिक गतिविधियों के लिए विज्ञान परिषद उत्कृष्ट स्थल पाया गया।

3. नये वर्ष में देहरादून तथा लखनऊ में विज्ञान परिषद् की शाखाएं

देहरादून से डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा तथा लखनऊ से डॉ० सी० एम० नौटियाल ने विज्ञान परिषद् की शाखाएँ खोले जाने के लिए अनुमति चाही है। आशा है ये नवीन शाखाएं शीघ्र ही कार्य करने लगेंगी।

4. डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार के लिए दान

स्वर्गीय डॉ० गोरख प्रसाद के पुत्र डॉ० चन्द्रिका प्रसाद ने गोरख प्रसाद पुरस्कार की राशि बढ़ायें जाने के लिए पुरस्कार फण्ड हेतु 7500.00 रू० का दान दिया है। परिषद् उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

5. विज्ञानजंलि की प्रतियाँ विक्रय हेतु उपलब्ध

परिषद् द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक कविताओं का संग्रह विज्ञानाजंलि विक्रय हेतु उपलब्ध है। इसका मूल्य 25.00 रुपये रखा गया है। इच्छुक व्यक्ति मनीआर्डर द्वारा यह राशि भेज कर प्रति प्राप्त कर सकते हैं।

6. हमारे नये आजीवन सभ्य

गत वर्ष डॉ० लालजी मिश्र (मेडिसन, अमेरिका) तथा डॉ० कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव (नीदरलैंड) परिषद् के आजीवन सभ्य बने। ज्ञात हो कि डॉ० यतेन्द्र पाल वार्ष्णेय (कनाडा) तथा आशुतोष मिश्र (डल्लास, अमेरीका) पहले से हमारे आजीवन सभ्य हैं।

7. सभ्यों से निवेदन

जिन सभ्यों का विज्ञान का चन्दा समाप्त हो चुका है वे मनीआर्डर द्वारा 25.00 रुपये (वार्षिक) अपना चन्दा परिषद् के नाम भेजने की कृपा करें।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

■ ■ ■

गुलाब के पौधों के विषाणु रोग

☐रवीन्द्र कुमार सिंह, अनुपमा शर्मा, डेजी चौहान,
राजाराम, संदीप मनूजा एवं ए. ए. जैदी

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् परिसर
पालमपुर (हि. प्र.)

हमारी पृथ्वी पर फूल सुन्दरतम् वस्तुओं में से है और उनमें से गुलाब को फूलों की रानी की संज्ञा दी गयी है। संस्कृत साहित्य में गुलाब का वर्णन तरुनी पुष्पा, अतिमंजुला और सिमान्तिका इत्यादि नामों से किया गया है। आयुर्वेद में गुलाब का वर्णन चरक द्वारा 100 ई० संवत् में किया गया है। यह सत्य है कि गुलाब का पौधा इस पृथ्वी पर पहले जन्मा, जबकि मनुष्य का जन्म बाद में हुआ। ऑरीगन व कोलॉरिडो (संयुक्त राज्य अमेरिका) में गुलाब के 300 लाख वर्ष पुराने जीवाश्म पाए गये हैं। गुलाब और मनुष्य का आपसी संबंध लगभग 5000 वर्षों से चला आ रहा है।

प्राचीन समय से ही गुलाब फ्रान्स, साइप्रस, ग्रीस, भारत, ईरान, इटली, मोरक्को, संयुक्त राज्य अमेरिका और बल्गारिया में इत्र के लिए पैदा किया जा रहा है। आधुनिक उद्यानों के गुलाब वन्य जातियों से फ्रान्स में विकासित हुए। बाद में इंग्लैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, लक्समवर्ग और हालैण्ड गुलाब के प्रमुख उत्पादक देश बन गये। गुलाब की लगभग 120 जातियाँ, न्यूमैक्सिको, उत्तरी अमेरिका, अविसीनिया, उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका, भारत के हिमालय क्षेत्र और जापान तथा चीन के पर्वतों पर शीतोष्ण एवं उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में उगती हुई पायी जाती हैं।

गुलाब बहुत ही खुबसूरत एवं सुगंधित पौधा है। इसकी सुन्दरता एवं सुगंध के कारण ही इसके व्यवसायिक मूल्यों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। भारत में गुलाब पूजा, गजरे, फूलदान और गुलदस्तों के रूप में ज्यादा प्रयोग किए जाते हैं। इसके पुष्पों के बिना यहाँ पर कोई भी त्योहार अपूर्ण सा लगता है। अधिकतर गुलाब की किस्में हिमालय क्षेत्र में पायी जाती हैं। प्रारम्भ में यह जंगली फूल होने के कारण इसके रंगों की संख्या सीमित थी। किन्तु बहुत वर्षों बाद लोगों ने गुलाब की खेती करनी प्रारम्भ की। गुलाब की उत्तम खेती शायद मुगलों के समय में अपनायी गयी। बाद में भारत के कई राज्यों के अलावा अलीगढ़, कन्नौज, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, हल्दीघाटी और चण्डीगढ़ की 6000 हेक्टेयर भूमि में गुलाब की खेती की गयी। भारत में पिछले तीन दशकों के दौरान गुलाब की खेती व्यापारिक दृष्टि से की जा रही है। अब कई अन्य निजी संगठन जैसे ओरियन्टल फ्लोरीटेक इत्यादि इस दिशा में प्रशंसनीय प्रयास कर रहे हैं।

गुलाबों का प्रवर्धन बीज, कलम, मुकुलन, दाब लगाकर और कलम बाँधकर किया जाता है। कई वर्षों की खेती के बाद गुलाब की आज तक 10,000 से भी ज्यादा कृषि योग्य जातियाँ संकरण, उत्परिवर्तन और वरण द्वारा तैयार की गयी हैं। इन भिन्नताओं के बावजूद भी इसका आनुवंशिक आधार सीमित है, और बहुत सी कृषि जोपजातियाँ लगातार अन्तः प्रजनन द्वारा उत्पन्न होती हैं। इसके पौधे को कई प्रकार के रोगजनक कवक, जीवाणु और विषाणु हानि पहुँचाते हैं। अधिकतर गुलाब का प्रवर्धन वानस्पतिक विधि से होने के कारण विषाणुओं का संचरण पौधों में एक पीढ़ी से दूसरी

पीढ़ी में होता रहता है।

गुलाब को संक्रमित करने वाले पाँच किस्म के विषाणुओं का अब तक वर्णन किया जा चुका है। इन विषाणुओं के नाम हैं- **एपल मोजेक वाइरस, प्रूनस नेक्रोटिक रिंग स्पॉट वाइरस, अरेबिज मोजेक वाइरस, टोबैको रिंग स्पॉट वाइरस** और **स्ट्राबेरी लेटेन्ट रिंग स्पाट वाइरसेज।**

एपल मोज़ेक विषाणु

यह विषाणु बहुतलीय, गोल और 26 नैनोमीटर व्यास की कणिकीय संरचना है। इस विषाणु के आक्रमण से सेब में मोजेक और आलू बुखारा में रेखा प्रतिरूपी लक्षण प्रकट होते हैं, जबकि गुलाब में ये विषाणु मोजेक लक्षण उत्पन्न करते हैं। एक रिर्पोट के अनुसार इस विषाणु का संचरण बड़ी कठिनाई से होता है। ये विषाणु पूरे विश्व में विस्तृत रूप से फैले हुए हैं। इसका परपोषी क्षेत्र काफी विस्तृत है। यह पादपों के 19 कुलों के 65 जातियों को संक्रमित करते हैं। **कुकुमिस सटाइवस, टॉरेनियॉ फोरनिरी, विंका रोजिया, विग्ना साइनेन्सिन** और **मैलस सिलवेसट्रस** इस विषाणु के सूचक परपोषी पौधे हैं। इन पौधों पर कई तरह के लक्षण आते हैं जैसे पत्तियों का पीला पड़ना, हरिमाहीन और धब्बे पड़ना इत्यादि।

यह विषाणु मध्यम प्रतिरक्षाजनी है। सेबों में विषाणु के मंद विभेद, उग्र विभेद के विरुद्ध रक्षा करते हैं। यह विषाणु अस्थिर होने के कारण अपनी संक्रामकता अतनुकृत रस में सेकेण्डों में खो देते हैं, लेकिन इसमें तनुकृत संक्रामता खोने के लिए इसे घंटों लग जाते हैं। जब तुनकृत पदार्थ होता है तब संक्रामकता कई घंटों के लिए मरकैप्टोइथेनाल मिश्रित बफर में स्थिर हो सकती है। इस विषाणु का निर्मलीकरण डॉ० फल्टनद्वारा सन् 1967 में किया गया, यह एक प्रभावी विधि है। सेब और गुलाब के तरुण पौधों की कलम को 36^0 सेन्टीग्रेड पर 3-10 सप्ताह तक रखने से इस विषाणु की सक्रियता समाप्त हो जाती है।

प्रूनस नेक्रोटिक रिंग स्पाट विषाणु

प्रूनस की कई जातियों में यह विषाणु ऊत्तकक्षयी वलयं लक्षण प्रगट करता है। यह स्पॉट चेरी, बादाम में भी इसी प्रकार के लक्षण उत्पन्न करता है। यह होपूस को भी हानि पहुँचाता है। यह बहुतलीय आर. एन. ए. विषाणु है, जिसके कणों का व्यास 23 नैनोमीटर होता है। इस विषाणु का संचरण निवेशन द्वारा तरुण पत्तियों को बफर में निष्कर्षण करने से होता है। इस विषाणु का परपोषी क्षेत्र काफी विस्तृत है। यह 21 द्विबजीपत्री परिवारों को संक्रमित करता है। इस विषाणु के परपोषी पौधे खीरा, मेमोर्डिका बालसेमिना, ग्वार, सेब प्रजातियाँ, सूरजमुखी और लुपिनस एल्बस हैं। इन पौधों पर ये विषाणु उत्तकक्षयी, हरिमाहीन और गाढ़े रंग के धब्बे जैसे लक्षण उत्पन्न करते हैं। चेरी के परागकण में भी ये विषाणु विद्यमान होते हैं। उनकी उपस्थिति से चेरी के पूरे पौधे संक्रमित हो जाते हैं। इस प्रकार चेरी में यह विषाणु पराग द्वारा वितरित होते हैं। इन विषाणुओं का संचरण बीज द्वारा होता है। यह विषाणु मध्यम प्रतिरक्षाजनी है जो अपनी संक्रामकता अतनुकृत पदार्थ में मिनटों में खोता है। लेकिन तनुकृत पदार्थ में इनकी जीवन-क्षमता घण्टों तक रहती है। इस विषाणु का निर्मलीकरण फल्टन (1968) द्वारा दी गयी विधि से किया जाता है। यह इलार वाइरस समूह का विषाणु है।

अरेबिज मोज़ेक विषाणु

यह नीपो समूह का विषाणु है। यह बहुतलीय 30 नैनीमीटर व्यास वाला कण है, जिसके जीनोम में एक सूत्री राइबोन्युक्लिक एसिड होता है। सामान्यतः यह विषाणु यूरोप में पाए जाते हैं। ये विभिन्न प्रकार के लक्षण भिन्न-भिन्न पौधों पर उत्पन्न करते हैं, जैसे रेस्पबेरी में पीलापन व बौनापन, स्ट्राबेरी में मोज़ेक व पीली रेखा, खीरे में कुंठ कर्बुरता, सलाद में कुंठ हरिमाहीन, सिलेरी में बौनापन व उत्तकक्षमता और सहबार्ब में मोज़ेक।

ये वन्य और कृष्ण दोनों प्रकार के गुलाबों को संक्रमित करता है। इसकी निदान सूचक जातियाँ बथुआ, तम्बाकू, खीरा, लोबिया तथा पिटूनिया है, जिन पर यह विषाणु हरिमाहीन, स्थानीय विक्षता, शिरा पट्टन तथा धुँधलापन जैसे लक्षण प्रकट करते हैं। कुछ विभेदों का संचारण मिट्टी

में स्वतन्त्र रूप से रहने वाले आवासित सूत्रकृमियों जैसे -ज़ीफीनिमा डाइसिकडेटम और जीफीनिया कोकसाई द्वारा होता है। सूत्रकृमि लगभग 31 दिनों तक विषाणुओं को पलिहर मिट्टी में धारण किए रहता है। यह लगभग 12 कुलों की 15 जातियों में बीज द्वारा उत्पन्न होता है। अमरबेल भी इस विषाणु को संचरित करती है।

टोबैको रिंग स्पाट विषाणु

इस प्रकार के विषाणु खीरा, तम्बाकू, कुमुदनी, हाइड्रेंजिया, आइरिस और पेलारगोनियम पर गोल धब्बे की तरह रोग फैलाते हैं। ब्लूबेरी में उत्तकक्षयी वलय, सोयाबीन में कली शीर्णता, एकवर्षीय व बहुवर्षीय पौधों में ऊतकक्षय व हरिमाहीनता आदि कई प्रकार के लक्षण यह विषाणु प्रकट करते हैं। सामान्यतः यो विषाणु संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में पाए जाते हैं। वही से यह एक देश से दूसरे जैसे इंग्लैण्ड, जर्मनी व आस्ट्रेलिया के सजावटी पौधों में फैल गया, जिसके कारण उत्पादन पर बुरा असर पड़ रहा है। यह विषाणु सूत्रकृमि (**जीफीनिमा अमेरिकैनम्**) की वयस्क और तीन डिम्भ अवस्थाओं द्वारा संचरित होता है। परागकण द्वारा संचरित होने की अभी तक कोई रिर्पोट उपलब्ध नहीं है। यह विषाणु मध्यम प्रति रक्षाजनी है। इसकी निदानिक विधियाँ जैसे सीरमीय अभिक्रियाएँ, रिंग प्रेसिपिटिन, ट्यूब प्रेसिपिटिन और जेल परीक्षण है। इन सभी निदान सूचक विधियों का प्रयोग करके विषाणुओं का पता लगा सकते हैं। यह विषाणु बहुतलीय आकार के लगभग 29 नैनोमीटर व्यास के होते हैं जिसकी 42 उपइकाइयाँ होती हैं। इसका जब फास्फोटंगस्टेट या यूरेनाइल ऐसीटेट में इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के लिए आरोपण (Mount) किया जाता है। तब ये स्थाई होते हैं। यह नीपों समूह का सदस्य है।

स्ट्राबेरी लेटेन्ट रिंग स्पाट विषाणु

यह विषाणु स्ट्राबेरी और रैस्पबेरी को संक्रमित करते हैं। उन पर कई प्रकार के कर्बुरण और मरण (Declime) जैसे लक्षण कृषिजोपजातियों के अनुसार आते हैं। इस विषाणु के द्वारा गुलाब में हरिमाहीन गोलधब्बे तथा बौनापन साथ-साथ प्रकट होते हैं। इनका संक्रमण एस्पैरेगस, ब्लैकबेरी, चेरी, एल्टरबेरी, अंगूर, आलू बुखारा, आडू, गुलाब और नार्सिसस पर भी देखा गया। यह विषाणु पश्चिमी यूरोप में पाये जाते हैं। ये प्राकृतिक रूप से वन्य एवं कृष्ण पौधों की कई जातियों में पाये जाते हैं, और यह ज्यादातर शाकीय पौधों को संक्रमित करते हैं। बथुआ, खीरा, तम्बाकू और पिटुनिया हाइब्रिडा इस विषाणु के सूचक पौधे हैं।

यह विषाणु **ज़ीफीनिया डाइवसीकडेटम** और **ज़ीफीनिमा कोक्साई** सूत्रकृमियों द्वारा संचरित होता है। वयस्क और डिम्भ दोनों ही इस विषाणु का संचरण करते हैं। ये विषाणु पोदीना, **स्टेलिरया मिडिया** और **बथुआ** के बीजों द्वारा संचरित होते हैं। बीज द्वारा संचरण दर 70% से ज्यादा होती है। इसका कण बहुतलीय 30 नैनोमीटर व्यास का होता है। इसमें राइबोन्युक्लिक अम्ल पाया जाता है। यह नीपो वाइरस समूह का सदस्य है।

विषाणु आभापन

विषाणुओं के अभिज्ञान के लिए लाभदायक जो केवल एकमात्र गुण है, वह इन्हीं का प्रतिजनत्व निरूपित करते हैं। विषाणु संक्रमण की सीरमीय निदान का लाभ इसकी विशिष्टता, विश्वसनीयता और दृढ़ता है। इसलिए सिरमीय कार्यविधि विषाणुओं के अभिज्ञान पहचान के लिए विस्तृत रूप से स्वीकृत की गयी है। विषाणु संक्रमण से फूलों के गुणों में कमी आ जाती है। ग्रीनहाउस गुलाब और रोपण गुलाब की देखभाल के लिए इलाइजा-परीक्षण व्यक्तिगत रूप से अभिस्तावित है। गुलाबवत परपोषी में प्रूनस नेक्रोटिक रिंग स्पाट विषाणु प्रतिजन के उद्गम के लिए गुलाब के वाह्यदल विषाणु का अच्छा स्रोत है। अभिज्ञान की दक्षता में जो मौसमी बदलाव रिपोर्ट किया गया है, उसमें यह देखा गया कि प्रसुप्त कलियाँ विषाणु की अच्छी स्रोत हैं। लेकिन फल, बीज और छाल में काफी विविधता थी।

थामस (1984) ने प्रूनस नेक्रोटिक रिंग स्पाट और एपल मोज़ेक वाइरस को अलग करने के लिए इम्यूनों स्पेसिफिक इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी का प्रयोग किया। हिक्स व फ्रोस्ट (1985) ने आरोही लता की फूल की पंखुडी से टोबैको मोज़ेक वाइरस को अलग किया। इसमें फूलों पर वर्ण

विभंग लक्षण थे। स्टोन तथा उनके सहयोगियों (1987) ने प्रूनस नेक्रोटिक रिंग स्पाट वाइरस को इलाइजा द्वारा अलग करने की क्रिया पद्धति का विकास किया। राणा तथा उनके सहयोगियों ने (1987) अगर में (इम्यूजन और इम्यूनोसार्वेन्ट इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी का प्रयोग करके गुलाब से इलार वाइरस की पहचान की। वाहयदल और तरुण पत्तियों का इलाइजा पाठ्यांक अधिक था, जब पुष्प पूरी तरह खिल चुके थे।

विषाणु रोगों का नियन्त्रण

सामान्यतः गुलाब में वानस्पतिक प्रवर्धन होता है, जिसके फलस्वरूप विषाणुओं का संचरण एक पौधे से दूसरे पौधे में बड़ी आसानी से हो जाता है। इसलिए विषाणुमुक्त पौधों के उत्पादन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रवर्धन में प्रयोग होने वाले मातृ पौधे विषाणुमुक्त हों।

गुलाब में मोजेक संक्रमण होने पर संक्रमित पौधे को जड़ सहित नष्ट कर देना चाहिए और प्रवर्धन के लिए केवल स्वस्थ कलम का ही प्रयोग करना चाहिए। काफी समय पहले डॉ० एफ० ओ० होल्मत ने संयुक्त राज्य अमेरिका में गुलाब के मोज़ेक रोग पर अध्ययन द्वारा यह पता चला कि इसे ऊष्मा उपचार द्वारा विसंक्रिमित किया जा सकता है।

गुलाब को संक्रमित करने वाले अधिकतर विषाणु जैसे अरेबिज मोजेक, टोबैको रिंग स्पॉट एवं स्ट्राबेरी लैटेन्ट रिंग स्पाट विषाणु का संरचरण सूत्रकृमियों द्वारा होता है। इस प्रकार के विषाणुओं के संक्रमण के उपरान्त पत्तियों में पीलापन, उत्पादकता समाप्त होना, शीखाग्र बृद्धि में कमी तथा कुपोषण जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार ऐसे संक्रमण के नियन्त्रण के लिए सूत्रकृमि नाशक जैसे नीमेगान के 60% घोल का प्रयोग सिंचाई वाले पानी में किया जाता है, जिससे सूत्रकृमि नाशक पौधों की जड़ों तक आसानी से पहुँच जाए। यह एक विषयुक्त पदार्थ है जिसका प्रयोग एक दक्ष व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। इसके आलावा गुलाब को संक्रमित करने वाले कुछ विषाणुओं का संचरण सम्भवतः कीटों द्वारा हो सकता है। इन सब की रोकथाम के लिए मैलाथियान, फेनिट्रोथियान के 1% घल दो छिड़काव एक-एक सप्ताह के अन्तराल पर करते हैं। पाइरेर्थिन्स पाउडर (2%) तथा केल्थेन 1% के घोल का छिड़काव भी करते हैं।

रोगों की सम्पूर्ण रोकथाम के लिए पौध-पदार्थों (जननद्रव्य) संगरोध प्रबन्ध राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाना चाहिए, जिससे विषाणु को एक जगह से दूसरी जगह पर फैलने से नियन्त्रित किया जा सके।

कृतज्ञता ज्ञापन

लेखक द्वय प्रोफेसर अक्षय कुमार गुप्ता, निदेशक एवं डॉ० डी० मुखर्जी पुष्प विज्ञान विभागाध्यक्ष, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् परिसर, पालमपुर के आभारी है, जिनके सहयोग तथा उत्साह वर्धन के फलस्वरूप यह प्रपत्र तैयार हो सका और आवश्यक सुविधायें हमें प्राप्त हो सकीं इनके प्रति हम सब आभार व्यक्त करते हैं।

सन्दर्भ

1. बी० पी० पाल, द रोज इन इंडिया, 1991, पृष्ठ 389

2. एलन ब्रन्ट, करेन क्रैब्ट्री एण्ड एडरियन गिब्स, वाइरसेज ऑफ ट्रॉपिकल प्लान्ट्स, 1990, पृष्ठ 708

■ ■ ■

भारतीय प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के प्रमुख शिल्पी : डॉ० कलाम

❑ डॉ० सुशीला राय

वैज्ञानिक बी
(रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन)
रक्षा प्रयोगशाला-जोधपुर - 342011

जी हां! डॉ० अबुल फकीर जैनुलाविदीन अब्दुल कलाम साहब अपने प्रशंसकों और मित्रों के बीच डॉ० कलाम के नाम से जाने जाते हैं। डॉ० कलाम का जन्म 15 अक्टूबर सन् 1931 में तमिलनाडु स्थित पवित्र नगरी रामेश्वरम् में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा एवं विज्ञान में डिग्री त्रिची स्थित सेंट जोसेफ विश्वविद्यालय से प्राप्त की तथा उसके बाद टेक्नोलॉजी संस्थान मद्रास से विज्ञान इंजीनियर की डिग्री हासिल की।

भगवान श्री कृष्ण ने कुरूक्षेत्र में सारथी की भूमिका निभाते हुए गांडीव-धारी अर्जुन को उपदेश दिया था कि शांति कायम रखने के लिए शक्ति सम्पन्न बनना जरूरी है और यह तभी संभव होगा जब हम नित अविरल गति से कार्य करते जायेंगे, फल की कामना नहीं करेंगे साथ ही कठिनाइयों से भी विचलित न होंगे, यही मूलमंत्र हमारे डॉ० कलाम साहब ने भी अपने जीवन में आत्मसात किया हुआ है तथा देश की शांति रक्षा को कायम रखने के लिए मिसाइल कार्यक्रम में जान फूंक दी है। डॉ० कलाम हमारे भारतीय मिसाइल कार्यक्रम के जनक ही नहीं वरन् रक्षा मंत्रालय के तीन महत्वपूर्ण पदों पर सुशोभित हो देश को अमूल्य सेवाएं प्रदान कर रहे हैं।

डॉ कलाम रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार के साथ महानिदेशक रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन और रक्षा अनुसंधान विकास विभाग के सचिव भी हैं।

सादा जीवन और उच्च विचार के धनी डॉ० कलाम अत्यन्त सादगी से जीवन व्यतीत करना पसंद करते हैं। उनकी सादगी की बानगी उनके माथे पर परिपक्वता का आभास देते हुए झूलती हुई खिचड़ी नुमा बालों की लटों से तथा पहने हुए साधारण कोट से आँकी जा सकती है। उनकी आँखों की विशिष्ट चमक व होठों पर निश्चल मुस्कान व्यक्ति विशेष पर अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहती। वे जहाँ भी होते हैं, वहाँ सभी उपस्थित जन इस महान संत वैज्ञानिक के इर्द-गिर्द ही जमा होना चाहते हैं पर आप इन सभी चाटुकारिताओं से हमेशा दूर ही रहना पसंद करते हैं तथा अनुमति लें वहाँ से शीघ्र ही हट जाते हैं। 82 वें राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस सन् 1995 के कलकत्ता अधिवेशन के सत्र-संचालन के दौरान संयोजक डॉ० आर० सी० मशेलकर ने डॉ० कलाम के पत्र वाचन के पूर्व यह रहस्योद्घाटन किया था, कि पिछले वर्ष की रायशुमारी में देश के 5 चहेतों में डॉ० कलाम को ही सर्वोत्तम मत मिले हैं। इतने चहेते हैं डॉ० कलाम हम भारतीयों के।

डॉ० कलाम वैज्ञानिक अभियंता कभी न बन पाते यदि रामेश्वरम् स्थित रेलवे स्टेशन पर रुकने वाली ट्रेन का रुकना

बंद न कर दिया होता। घटना उस समय की है, जब डॉ० कलाम बाल्यावस्था में थे और इनके चाचा रामेश्वरम में एक अखबार विक्रेता थे। वे प्रतिदिन लगभग 50 अखबारों का बंडल इकट्ठा करके शिक्षित वर्ग के कुछ लोगों में बांटा करते थे। एक दिन चाचा जी ने बालक अबुल से कहा— "मैं 10 दिन के लिए किसी कार्यवश बाहर जा रहा हूँ अतः तुम रेलवे स्टेशन से पेपर इकट्ठा कर बाँट दिया करना।" संयोगवश उसी समय रेलवे अधिकारियों ने अखबार ले जाने वाली इस तीव्र रफ्तार (एक्सप्रेस) की गाड़ी को रामेश्वरम् स्टेशन पर रोकना बंद कर दिया तथा अखबारों का यह बंडल चलती ट्रेन से बाहर एक मिसाइल की तरह प्रतिदिन प्रातः काल फेंक दिया जाता, जिसे बालक अबुल इकट्ठा कर गंतव्य तक पुहँचा दिया करते। एक दिन असावधानी वश फेंका हुआ बंडल बिखर गया और फैले हुए अखबारों को इकट्ठा करते समय अबुल की आँखें द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटेन द्वारा प्रयुक्त एक युद्धक विमान पर लिखे लेख पर पड़ी। बस उन्होंने इस लेख को पढ़ा और बार-बार पढ़ा। कौन जानता था कि इस दिन की सुबह ने एक वैज्ञानिक को जन्म दे दिया है? और उसी क्षण बालक अबुल ने यह दृढ़ संकल्प किया कि वह एक अभियन्ता बनेगें। इस साधारण सी घटना ने इस व्यक्ति की जीवन धारा को ही मोड़ दिया और देश को एक मिसाइल पितामह दे दिया। आज डॉ० कलाम वैज्ञानिकी प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ ही नहीं परन्तु विश्व की सर्वसत्ता शक्ति सम्पन्न अमेरिका के समक्ष भारतीय सुरक्षा पंक्ति के एक सुदृढ़ प्रतीक हैं।

पूत के पाँव पालने में वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए डॉ० कलाम ने अपनी युवावस्था में ही पहला होवर क्राफ्ट सन् 1958-1963 के मध्य विकसित कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का उदाहरण देश के सम्मुख रख दिया था, जो कि रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन के लिए बहुत बड़ी सफलता थी। इसी सफलता के सोपान पर चढ़ते हुए डॉ० कलाम लगभग दो दशक सन् 1963 से 1982 तक इसरो (ISRO) से जुड़े रहे तथा एस० एल० वी०-3 (SLV-3) परियोजना के निदेशक पद पर आसीन रहकर पुनः अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और भारत को स्पेस क्लब जैसे विशिष्ट समूह में जगह दिलवाई तथा उपग्रह प्रक्षेपण-यान एस० एल० वी० -3 के द्वारा रोहिणी को स्पेस में छोड़ा गया। तत्पश्चात् सन् 1982 से डॉ० कलाम डी० आर० डी० एल० हैदराबाद में निदेशक के पद पर कार्यरत रहते हुए धीरे-धीरे मिसाइल प्रौद्योगिकी प्रोग्राम को तजबीज देते हुए 22 मई सन 1989 में मध्यम दूरी की मारक क्षमता लिए अग्नि का सफल परीक्षण कर विश्व स्तर पर भारत की धाक जमा दी। इस सफलता के बाद डॉ० कलाम की विज्ञान प्रगति ने और रफ्तार पकड़ ली जिसके फलस्वरूप पांच मिसाइलों -पृथ्वी, त्रिशूल, नाग, अग्नि और आकाश का प्रभाव शक्तिशाली राष्ट्रों पर भी स्पष्ट झलकने लगा है।

खुदी को कर इतना बुलंद कि खुदा बंदे से यह पूछे बता तेरी रजा क्या है, और इसी से प्रभावित हैं हमारे डॉ० कलाम साहब। उनका कहना है- शक्ति हमेशा शक्ति का आदर करती है, तथा उन्हीं को अहमियत देती है जो खुद शक्ति का आदर करते है। विश्व के वर्तमान रक्षा परिप्रेक्ष्य को देखते हुए हमें अपनी शक्ति शुद्ध हासिल करनी है और जब हम-आप उस तकनीकी उत्कृष्टता को हासिल कर लेंगे तो किसी का मुँह नहीं ताकना पड़ेगा, किसी के रहमोक़रम पर ज़िन्दा नहीं रहना पड़ेगा। हमारा महत्व बढ़ जायेगा और दुनिया में हमारी एक अलग पहचान बन जायेगी।

डॉ० कलाम साहब ने अपनी असीम उपलब्धियों को प्राप्त करने में संसाधनों एवं बजट की तंगी से जूझते हुए भी भारतीय रक्षा वैज्ञानिकों की टीम में जान फूंक दी है तथा आज लगभग 800 करोड़ रुपये खर्च कर भारत को मिसाइल की मारक-शक्ति का योद्धा बना चुके हैं।

डॉ० कलाम के अनुसार भारत विनाश की ओर बढ़ रहा है बल्कि वे इस पर अपने विचारों से आपको सहमत होने पर बाध्य करते हैं और इसके लिए वे पुनः माहाभारत का उद्धरण पेश करते हैं और कहते हैं, कुरुक्षेत्र का वह युद्ध भी शांति के लिए था, तभी तो श्रीकृष्ण ने उसे अपरिहार्य कहा था। अतः शक्ति सम्पन्न होना विनाश की ओर बढ़ना हरगिज नहीं है। शक्ति सम्पन्न होकर ही शांति को बरकरार रखा जा सकता है और शक्ति सम्पन्न होने के लिए हमें पूरी मेहनत व ईमानदारी से तब तक काम करते रहना होगा जब तक कि देश तकनीकी तौर पर दुनियाँ के सबसे शक्तिशाली राष्ट्रों की

श्रेणी में जगह नहीं बना लेता। यही तकनीकी क्षमता हासिल करने के लिए आज भी डॉ० कलाम अपनी वैज्ञानिक टीम के साथ तत्परता से जुड़े हुए हैं।

डॉ० कलाम को प्रचारक तंत्र (मीडिया) ने एक कर्मयोगी के रूप में आंका है। डॉ० कलाम सतत् कार्यरत एक ऐसे वैज्ञानिक हैं जो अतिथिगृह के आवास में मात्र विश्राम करने के लिए आते हैं अन्यथा बाकी समय वैज्ञानिक विचार-विमर्श, परियोजना, कार्यक्षेत्रों के भ्रमण, टीम सदस्यों के मध्य उनके कार्यों के आकलन हेतु और स्वाध्याय में आकंठ डूबे रहते हैं।

डॉ० कलाम को युवा लोगों के साथ काम करना अच्छा लगता है। युवा वैज्ञानिक उनसे मिलकर इतने अधिक प्रभावित (Motivated) हो जाते हैं कि नवस्फूर्ति ले पुनः दुगने उत्साह के साथ अपने कार्यों में जुट-जाते हैं तथा कई प्रतिभाशाली युवा वैज्ञानिकों ने यहाँ तक कि अमेरिका और अन्य सम्पन्न देशों के बेहरतीन प्रस्ताव को अस्वीकार कर अपने देश की प्रतिभा को विकसित करने में समर्पित ही नहीं बल्कि उनके नेतृत्व में कार्य करने में अपना गौरव समझा है।

डॉ० कलाम अपने कार्य कलाप की विशिष्ट पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक टीम के लिए छोटे-छोटे लक्ष्य (Target) निर्धारित करते हैं और प्रत्येक सदस्य के कार्य का पूर्ण मूल्यांकन कर उनसे हार्दिक संबंध स्थापित कर लेते हैं तथा उनकी प्रतिभा की प्रशंसा करते नहीं थकते। प्रायः हम वैज्ञानिकों को फेन्टास्टिक गार्ड से संबोधित करने वाले डॉ० कलाम स्वयं एक कमाल का व्यक्तित्व लिए महान प्रेरणा के स्रोत सिद्ध हुए हैं।

वस्तुतः 63 वर्षीय इस वैज्ञानिक की शिक्षा-दीक्षा इस छोटी सी आमदनी से हुई थी जो उनके पिता रामेश्वरम् के मछुआरों को अपनी नाव किराये पर देकर अर्जित करते थे। तब से लेकर आज तक इनकी जीवन यात्रा अत्यन्त संघर्ष पूर्ण रही है। परन्तु जिस प्रकार सोना आग में तपकर कुंदन हो जाता है और कलात्मक सृजन में प्रयोग होता है उसी प्रकार यह महान कर्मयोगी भी निस्वार्थभाव से रक्षा विज्ञान की तपस्या करते हुए नित प्रति खरा होता जा रहा है और अग्नि वाण, त्रिशूल वाण, नाग वाण, आकाश वाण तथा पृथ्वी वाण आदि के सृजन में समर्पित हैं। ऐसे अग्निपुंज को हम भारतीयों का शत्-शत् प्रणाम।

इन्स्टीट्यूट फार डिफेंस स्टडीज एनालिसिस के निदेशक एवर कमांडोर जसजीत सिंह कहते हैं कि डॉ० कलाम अपनी एकनिष्ठता, चुपचाप काम करने के तरीके और टीम भावना के कारण अपने आप में विलक्षण हैं। डॉ० कलाम की विहंगम दृष्टि सूझबूझ और प्रबंध क्षमता के कारण डॉ० कलाम की सफलता पर कुछ आओचक उन्हें मिसाइली दिमाग वाले व्यक्ति कहना पसंद करते हैं। अमेरिका जैसे बड़े देश पिछली फरवरी में भारत की आई० आर० बी० एम० (अग्नि)के तीसरे परीक्षण प्रेक्षेपण की अद्‌भुत सफलता से घबरा उठे थे। इस परीक्षण से यह सिद्ध हो गया कि भारत के पास अब परमाणु प्रेक्षेपण के लिए आदर्श वाहन तैयार हो गया है और वह चाहे तो 1500 कि० मी० से 2500 कि० मी० की दूरी में दक्षिण पूर्व एशिया के कई देशोंको अपने निशाने में ले सकता है। पाकिस्तान और अमेरिका ज़मीन से ज़मीन पर 150 से 250 किलोमीटर तक मार करने वाली मिसाइल पृथ्वी का सफल परीक्षण और उसके सेवा में शामिल करने के कार्यक्रम को देखकर और अधिक चिंतित हो उठे हैं। परन्तु डॉ० कलाम आलोचनाओं और इन चिंताओं के संदर्भ में दुनिया को दिखा देना चाहते हैं कि भारत किसी से कम नहीं है और कहते हैं मिसाइल ढाल के समान है। युद्ध टाल कर मैं शांति और अपने देश की सुरक्षा दोनों की गारंटी पक्की करता हूं। मुझे इसमें कहीं भी द्वंद नहीं दिखता।

अद्‌भुत संगठन क्षमता और सूझ-बूझ के धनी डॉ० कलाम ने मृतप्राय प्रतिरक्षा प्रतिठान में जान डाल दी है। प्रतिरक्षा मामलों के जानकार के सुब्रहमण्यम का कहना है कि एक वैज्ञानिक की हैसियत से मैं उन्हें होमी भाभा और डॉ० राजा रमन्ना जैसी महान हस्तियों के समकक्ष रखता हूं। आइन्सटीन, भाभा और अन्य सफल एवं महान वैज्ञानिकों की तरह, जो विज्ञान एवं प्रकृति का पूर्ण साक्षात्कार कर लेते हैं, उनके मन में मानव सेवा के प्रति एक तड़प जाग उठती है। डॉ० कलाम भी पिछले वर्षों से एक गहरी अंतः दृष्टि (Vision) से सोसाइटल मिशन के पुण्य कार्यों में समर्पित हैं। चाहे

विकलांगों के लिए जयपुर फुट (Foot) का आधुनिकीकरण कर उसे 3 किलोग्राम से 300 ग्राम वजन तक जाना हो, या स्वास्थ्य और ग्रामीण स्तर पर स्वच्छ पेय जल प्रदान करने की समस्या हो, सभी सामाजिक कार्यों में रक्षा विज्ञान की सफल तकनीकों को आम जनता के उपयोग के लिए रक्षा वैज्ञानिकों को प्रेरित कर रहे हैं।

आप एक दानी पुरुष हैं और अपने सेवक से लेकर अनेक धार्मिक संस्थाओं को मुक्त हस्त से प्रतिमाह अपने वेतन का एक अंश दान देते रहते हैं। इसके अलावा डॉ० कलाम का व्यक्तिगत जीवन वैवाहिक झमेले से दूर बड़ा ही सीधा-सादा है। पत्रकारों की चिर युवा रहने और युवा पीढ़ी से समरसता स्थापित करने के विषय में जिज्ञासा शांत करने के उत्तर में अपने विवाहित न होने के विषय में दोनों हाथ आसमान की ओर उठाकर खुदा की मर्जी कहते हुए वे एक ठहाका लगा देते हैं।

आपका तमिल साहित्य से बड़ा लगाव है तथा कवि हृदय होने के कारण आपने तमिल में प्रकृति एवं पर्यावरण से प्रभावित हो कविताओं का सृजन भी किया है।

डॉ० कलाम को निम्न अलंकरणों से समय-समय पर सम्मानित भी किया गया है।

नेशनल डिजाइन पुरस्कार इन्स्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स द्वारा सन् 1980 में

पद्मभूषण से सन् 1981 में

डॉ० ओम प्रकाश भसीन पुरस्कार द्वारा सन् 1986 में पद्मविभूषण द्वारा सन् 1990 एवं

नेहरू पुरस्कार मध्य प्रदेश द्वारा प्रदत्त सन् 1990 में

इस पुरस्कार में 1 लाख 1 हजार रुपये की नगद राशि, चाँदी की शील्ड तथा प्रशस्ति पदक प्रदान किया जाता है।

स्वर्गीय राय बहादुर गूजरमल मोदी विज्ञान पुरस्कार सन् 1996 में।

इन पुरस्कारों से सम्मानित डॉ० कलाम साहब को अक्टूबर 1991 में अवकाश ग्रहण करना था, परन्तु अग्निपुंज डॉ० कलाम के ज्ञान एवं अनुभव के अजस्त्र भंडार से देश को लाभन्वित करने के लिए अक्टूबर 1994 तक की बढ़ी हुई अवकाश अवधि को भारत सरकार ने अनिश्चित काल के लिए पुनः बढ़ा दिया है।

रक्षा अनुसंधान विकास संगठन के सर्वेसर्वा के रूप में रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकारों की स्वस्थ परंपरा का निर्वाह किया है और संगठन को बुलंदी पर ले जाने में जी जान लगा दी है तथा रक्षा विकास अनुसंधान संगठन के लक्ष्य एवं भावी कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है कि संगठन का यह विजन (Vision) है कि संगठन विश्व स्तर पर अग्रणी निगम के रूप में उभरकर इस लक्ष्य के साथ खड़ा हो कि देश चरम क्षेत्रों में विदेशी तकनीकी से पूर्णतया मुक्त हो जाए। ऐसी विहंगम दृष्टि से युक्त वैज्ञानिक की हम सभी भारतीय दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की मंगल कामना करते हैं ताकि भारत को पुनः विश्व मंच पर एक सर्वशक्तिमान राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित कर सकें। ■ ■ ■

कहानी थैलियम की

□डॉ० राजकुमार दुबे
व्याख्याता, रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद-2

थैलियम एक लम्बे समय तक विवाद के घेरे में रहा है। इसके रासायनिक रूप के विषय में वैज्ञानिक आपस में असहमत रहे हैं। रसायनज्ञों द्वारा तो लगभग एक शताब्दी तक इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया परन्तु इसका अन्धाधुन्ध प्रयोग होता रहा है। जीवनाशी एवं ड्रग के रूप में इसके प्रयोग से अनेकानेक दुःखद परिणाम सामने आये हैं। हत्यारों के लिये तो थैलियम अत्यन्त प्रिय हथियार रहा है। और सच कहा जाये तो थैलयम का जन्म अभिशाप बन गया।

प्राणघातक गुणों में यह मेण्डलीवकी आवर्तसारणी में मरकरी व लेड के करीब है तथा अत्यन्त ज़हरीला है। इसके दो आवर्ती पड़ोसियों (मरकरी तथा लेड) की अत्यल्प मात्रा भी प्राणघातक रही है और इनके पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभावों से हम भली-भाँति परिचित हैं किन्तु थैलियम का पर्यावरण पर बुरा प्रभाव कम ही देखने में आया है।

प्रायः लेड के धुआंकश चूर्ण (flue dust) और जिंक प्रगालक (Smelter) से इसका उत्पादन किया जाता है।

तालिका-1 में मरकरी (पारा), थैलियम और लेड (सीसा) के गुणों को दर्शाया गया है।

तालिका-1 घातक त्रिक (Deadly Trio)

	मरकरी	**थैलियम**	**लेड**
परमाणु क्रमांक	80	81	82
पृथ्वी की सतह पर सान्द्रण	500	800	1600
समु द्री जल में सान्द्रण	0.2	0.01	0.03
वार्षिक विश्व उत्पादन (टनों में)	9240	15	3430000

आश्चर्य की बात तो यह है कि पृथ्वी की सतह पर थैलियम की मात्रा मरकरी से अधिक है परन्तु यह यत्र-तत्र बिखरा (Widely dispersed) हुआ है और जहाँ पर इस तत्व के स्थानापन्न (Subsitute) पाये जा सकते हैं, क्योंकि उनकी रासायनिक समानता एक जैसी है। इसी विशेषता के कारण थैलियम को पोटैशियम के अनुहारक (Mimiee) के रूप में रखते हैं तथा जीवित कोशिकाओं से इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। थैलियम प्राणघातक ज़हर का कार्य करता है।

इसकी खोज के एक शताब्दी बाद भी रसायन विज्ञान की पुस्तकों में इसका उल्लेख संक्षेप में ही मिलता था। घुलनशील थैलियम एसीटेट और थैलियम सल्फेट के दो

बिल्कु अलग-अलग प्रयोग ज्ञात हुये जो असंगत प्रतीत होते हैं। चिकित्सकों द्वारा यह खोज की गई कि थैलियम एसीटेट को मुख द्वारा लेने से शरीर पर से बाल झड़ जाते हैं और चिकित्सकों द्वारा बाल हटाने (Hair remover) के लिये इसके इस्तेमाल की संस्तुति की गई। दूसरी तरफ, अनेक रोगों गठिया, पेचिस, दाद के उपचार में तथा फफूंदनाशक, कीटनाशक एवं चूहा मारने (रोडेन्टीसाइड) के रूप में प्रयुक्त किया गया।

अन्य भारी धातुओं की तरह, थैलियम का तुलनात्मक विषैला प्रभाव कोशीय व उपकोशीय दोनों स्तरों पर संरचनात्मक एवं एन्जाइमेटिक प्रोटीन के साथ अनर्तअभिक्रिया के फलस्वरूप होता है। इसका भी प्रमाण मिल चुका है कि थैलियम उत्तेजनशील ऊतकों (मांसपेशियों व तन्तुओं) में पोटैशियम का स्थान ग्रहण कर लेता है। जठरांत्र नली (Gastrointestinel tract) के द्वारा शीघ्रता से अवशोषित हो जाता है। वैसे त्वचा द्वारा भी इसका अवशोषण सम्भव है।

थैलियम एसीटेट, सर्वप्रथम, चिकित्सकीय प्रयोग में प्रयुक्त किया गया, विशेष रूप से टर्मिनल टयूबरकुलोसिस (क्षयरोग) में तथा रात को पसीना आने (Night Sweats) से छुटकारा पाने के लिये परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि यह परीक्षण सफल था? क्योंकि इससे उपचार करने पर मरीज़ों के बालों का गिरना इसके कुप्रभाव को दर्शाता है।

पेरिस के सेंट लूइस अस्पताल के प्रमुख त्वचा रोग विशेषज्ञ ने 1898 में इसे रिंग वर्म (दाद) के उपचार के लिये प्रस्तुत किया था। किन्तु बालों के गिरने के कारण हम कह सकते हैं कि इसके उपयोग के दुष्परिणाम भी हैं।

केमिकल न्यूज (30मार्च 1861 अंक) में 29 वर्षीय नौजवान विलियम क्रुक्स ने एक नये तत्व की खोज की घोषणा की, जिसे उसने सल्फ्यूरिक अम्ल प्लान्ट में विद्यमान अवशेष द्वारा प्राप्त स्पेक्ट्रम से खोज निकाला था। वैसे, दस वर्ष पहले ही कुक्स ने इस अवशेष को सेलेनियम के स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया था। इसका दावा उन्होंने अवशेष के स्पेक्ट्रम से एक नये हरी चमकीली रेखा को प्रेक्षित करके किया था।

वास्तव में थैलियम शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द थैलस, से हुई है जिसका अर्थ ग्रीन बड (Green bud) या हरी कली है। स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से एक नये तत्व की उपस्थिति को दर्शाना अधिक आसान था।

सन् 1861 की घोषणा के उपरान्त क्रुक्स ने अपनी खोज के ऊपर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु समय व संसाधनों की कमी के कारण कार्य को रोकना पड़ा, जबकि 1862 के बसन्त के आते-आते उन्होंने प्रचुर मात्रा में थैलियम साल्ट का उत्पादन किया तथा 1 मई 1862 को लंदन में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में एक काला चूर्ण, थैलियम के रूप में प्रदर्शित किया। यह काला चूर्ण थैलियम सल्फाइड था।

सन् 1862 के जून प्रथम सप्ताह में क्रुक्स आश्चर्य चकित रह गया, जब उसे पता चला कि थैलियम की खोज लैमी ने मार्च 1862 में ही कर ली थी तथा शुद्ध थैलियम को वियुक्त (isolate) भी किया था। इसने बताया कि इसकी भौतिक समरूपता (Physical resemblance) धात्विक लेड से तथा रासायनिक समरूपता पोटेशियम से मिलती-जुलती हैं। लैमी की मुलाकात क्रूक्स से 1 जून को हुई और उन्होंने अपने कार्य के बारे में कहा तो क्रुक्स ने यह महसूस किया कि थैलियम की खोज के विषय में बताने में अधिक देर हो चुकी है।

किन्तु क्रुक्स का असन्तोष उस समय गुस्से में बदल गया जब थैलियम की खोज के लिये प्रदर्शनी का मेडल (पुरस्कार) लैमी को दिया गया। इससे क्रुक्स को अमर्यादित होना पड़ा तथा उन्होंने 14 जुलाई को एक शिकायत भरा पत्र प्रदर्शनी के संयोजक के नाम लिखा। केमिकल न्यूज में एक माह बाद वह पत्र छपा। जबकि यहस्पष्ट था कि निर्णायकों द्वारा निर्णय को नहीं बदला जा सकता। सान्त्वना पुरस्कार के रूप में क्रुक्स को भी एक मेडल दिया गया, यह कहते हुए कि यह एक प्रशासनिक भूल हुई है। क्रुक्स को इतनी आसानी से तसल्ली नहीं मिली। केमिकल न्यूज के अगस्त-सितम्बर अंक में उन्होंने शुद्धि पत्र छपाया जिसमें उसने अपने दावे का समर्थन किया।

लैमी ने थैलियम पर अपना पत्र केमिकल न्यूज को

भेजा, जो फ्रेंच अकादमी ऑफ साइन्सेज में 23 जून को आयोजित व्याख्यान पर आधारित था। 19 जुलाई को प्रकाशित लैमी के लेख के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए, दो सप्ताह बाद क्रुक्स ने स्वयं अपना एक पत्र प्रकाशित किया।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि किसी एक तत्व की खोज करने के दावे का अधिकार वास्तव में उसे है जो सर्वप्रथम इसके परिष्कृत नमूने का प्राप्त करने में सफल रहा हो।

क्रुक्स को इस समस्या का पूर्वाभास हुआ और अपने दावे को सत्य सिद्ध करने के लिये 21 जून के केमिकल न्यूज में एक पत्र छपवाने का प्रयत्न किया। इसके लिये साथ में जॉन विलियम का एक पत्र छपा जिसमें कहा गया था कि शुद्ध थैलियम, क्रुक्स की प्रयोगशाला में जनवरी 1862 में ही देखा गया था जो लैमी की खोज से काफी पहले का समय है।

धीरे-धीरे विवाद समाप्त हुआ और इसके फलस्वरूप, क्रुक्स का असन्तोष भी लगभग समाप्त हो गया। तत्पश्चात क्रुक्स महोदय को रायल सोसायटी का फेलो (एफ. आर. एस.) चुन लिया गया सन् 1878 में लैमी की मृत्यु हो गयी।

लैमी और क्रुक्स ने थैलियम के रासायनिक प्रकृति के अध्ययन में आगे भी योगदान किया। लैमी ने थैलियम की द्वधा संयोजकता (Dual Valency) को प्रदर्शित किया। थैलियम (1) जो क्षारीय धातुओं, खासतौर से पोटैशियम से मिलता-जुलता है तथा त्रिसंयोगी थैलियम (III) एल्युमिनियम के समान है। इन्होंने सूचित किया कि यह विषैला है। पहले के कुछ शोधकर्ताओं ने पाया था कि थैलियम की अल्प मात्रा शराब, चुकन्दर और तम्बाकू में पायी जाती है। सन् 1860 में क्रुक्स को रासायनिक विश्लेषण के क्षेत्र में आधिकारिक-वैज्ञानिक के रूप में पहचाना गया था। 1871 में इस विषय पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी। इनका विश्लेषणात्मक शोध, खासतौर से निर्वात में तौले जाने वाले नमूनों के लिये प्रचलित है। इस प्रकार क्रुक्स को 10वीं शताब्दी का अत्यधिक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक माना गया।

इनकी उच्च निर्वात प्राप्त करने की तकनीकी इनके स्वयं के लिये गैस में निम्नदाब पर उन्मुक्त करने का अध्ययन, जो कैथोड-किरणों की खोज में प्रयुक्त की गई, अब भी सर्वमान्य है।

क्रुक्स का रेडियोमीटर (एक मनोरंजक मेज लट्टू) जो सूर्य प्रकाश में अन्तहीन घूर्णन करता है, आज भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त क्रुक्स ने अध्यात्मवाद पर भी कार्य किया, जबकि वह थैलियम पर कार्य कर रहे थे। अध्यात्म के द्वारा वह अनर्थकारी परिणामों के साथ 18 वर्षीया मेडियन फ्लोरेन्स नामक एक लड़की के चक्कर में धोखे-धड़ी के मामले में बदनाम भी हुए। इस प्रकार एक रसायनज्ञ अपने मार्ग से भटक जाने के कारण आशानुरूप ख्याति अर्जित नहीं कर सका तथा अपने वैज्ञानिक साथियों द्वारा तिरस्कृत भी हुआ।

आश्चर्य की बात यह है कि क्रुक्स का व्यवहार एक हास्यास्पद व्यवहार में क्यों बदल गया? इसका एक कारण तो नारी सम्मोहन हो सकता है परन्तु एक दूसरा कारण (बराबर का ही) धीमा थैलियम विष (Mild Thallium Poisoing) जिसके कपटपूर्ण लक्षणों में मानसिक खराबी का होना भी सम्भावित है। इस प्रकार से दुष्प्रभावित होने के लिये विष को मुख से लेने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि थैलियम त्वचा के द्वारा आसानी से अवशोषित किया जा सकता है, फिर भी थैलियम द्वारा उन्हें कोई स्थाई क्षति नहीं हुयी और वे 87 वर्ष तक जीवित रहे।

इसकी खोज के बाद के वर्षों में अनेक थैलियम लवण बनाये गये। किन्तु ऐसा कुछ भी प्रकाश में नहीं आया जिसको लेकर एक बार पुनः विवाद उठ खड़ा हो।

■ ■ ■

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	35
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	25
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	25
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	25
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जैव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

ISSN : 0373 – 1200
ल ऑफ साइंटिफिक
इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली
आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
विज्ञान
फरवरी 1997
मूल्य रु० 3.50
विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
फरवरी 1997 : वर्ष 82 अंक 11
मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	कम्प्यूटर कम्पोजर	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

परिषद् का पृष्ठ

1. डॉ० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यान माला के लिए स्वीकृति : विज्ञान परिषद् की वाराणसी शाखा से डॉ० श्रवण कुमार तिवारी का इस आशय का पत्र प्राप्त हुआ था कि स्वर्गीय डॉ० नन्दलाल सिंह के शिष्य उनकी स्मृति में एक व्याख्यान माला के लिए आवश्यक धन जुटाने की अनुमति चाहते हैं। परिषद् की कार्यकारिणी ने इस व्याख्यान माला की स्थापना किये जाने की स्वीकृति दे दी है और डॉ० श्रवण कुमार तिवारी को लिखा गया है कि वे बीस हजार रुपये या इससे अधिक धन एकत्र करके प्रधान कार्यालय भेज दें। वह व्याख्यान वाराणसी शाखा के द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित होगा। मानदेय आदि की व्यवस्था प्रधान कार्यालय से स्वीकृति लेकर की जावेगी।

2. डॉ० नन्दलाल सिंह स्मृति विशेषांक : डॉ० सिंह के शिष्यों ने परिषद् से यह भी अनुरोध किया है कि "विज्ञान" का एक विशेषांक डॉ० नन्दलाल सिंह स्मृति अंक हो जिसका आंशिक व्यय वाराणसी शाखा वहन करेगी। परिषद् की कार्यकारिणी ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लिया है। स्मृति अंक की सामग्री मिलने पर विज्ञान सम्पादक यथा समय "विज्ञान" का विशेषांक निकालेंगे।

डॉ० नन्दलाल सिंह भौतिकी के जाने माने विद्वान थे। उन्होंने काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी कक्ष के निदेशक के रूप में वर्षों तक सराहनीय कार्य किया।

3. हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मान समारोह सम्पन्न : लखनऊ 9 जनवरी, 1997 को हिन्दी संस्थान के यशपाल सभागार में सम्मान समारोह आयोजित किया गया जिसमें हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर पुरस्कृत लेखकों के साथ ही विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र को "विज्ञान भूषण" सम्मान से सम्मानित किया गया। विज्ञान विषय में जिन अन्य लेखकों को नामित पुरस्कार या अन्य पुरस्कार मिले वे थे डॉ० रामलखन सिंह तथा डॉ० ओ० एन० कल्ला। हिन्दी में विज्ञान लेखकों को जो मान्यता मिल रही है वह इसकी सूचक है कि अब विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी प्रविष्ट हो चुकी है।

अन्य प्रदेशों में भी ऐसे ही सम्मान दिये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

4. विज्ञान परिषद् द्वारा विज्ञान प्रसार नई दिल्ली के विचारार्थ दो योजनाएँ प्रेषित : विज्ञान परिषद् ने "पारिभाषिक शब्दावली पर बहस" तथा "हिन्दी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष : सौ श्रेष्ठ निबन्ध" ये दो योजनाएँ विज्ञान प्रसार नई दिल्ली के पास विचारार्थ प्रेषित किया है। आशा है शीघ्र ही इस विषय में निर्णय लिया जावेगा।

5. अनुसन्धान पत्रिका के अंक : खेद है कि प्रेस की गड़बड़ी के कारण तथा कम्प्यूटर प्रिंटिंग होने से विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका के वर्ष 1996 के अंकों के प्रकाशन में अनावश्यक विलम्ब हुआ है। अब अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर 1996 के तीन अंक तैयार हैं। इन्हें शीघ्र ही प्रेषित किया जावेगा।

6. लेखकों को सूचना : कई वर्षों से "विज्ञान" में वर्षभर में प्रकाशित श्रेष्ठ लेखों पर डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार प्रदान किये जाने की परम्परा है। वर्ष 1997 से इस पुरस्कार की राशि में वृद्धि की जा रही है। लेखकों को चाहिए कि वे अपने उत्तमोत्तम लेख विज्ञान में प्रकाशनार्थ भेजते रहें।

शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमन्त्री

■■■

भोजन का एक विस्मृत अवयव : कच्चा रेशा

❑ डॉ० पी० एस० रावत एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार

रक्षा कृषि अनुसंधान-प्रयोगशाला
पिथौरागढ़-262501

प्रस्तावना

मनुष्य के संसार में अवतरित होने से लेकर आधुनिक स्तर तक पहुँचते-पहुँचते अनेक सामाजिक तथा सभ्यता के उतार चढ़ाव आये हैं। इस उतार चढ़ाव के अंतराल के पीछे उसका रहन-सहन व भोजन का प्रमुख योगदान रहा है। उसका भोजन स्तर, भोजन का संगठन तथा उसकी आपूर्ति किसी भी भू-भाग पर उस संगठन विशेष का प्रभुत्व स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाने में सहायक रहा है। भोजन की दक्षता तथा प्रचुर मात्रा में उपलब्धता उसके जन संसाधनों की मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, वैचारिक, सामाजिक, शैक्षिक सम्बन्धी समस्याओं को प्रभावित तथा उनके स्तर को बनाने तथा विफल करने में मुख्य भूमिका निभाती आयी हैं। प्रमुख रूप से भोजन का संगठन उसके प्रमुख अवयवों की संतुलित मात्रा पर निर्भर करता है। इन अवयवों को भोजन रसायनज्ञों ने प्रोटीन, शर्करा, वसा, खनिज लवण, विटामिन, अपच तन्तु (क्रूड फाइबर) आवश्यक अमीनो अम्ल, रंग, सुगंध तथा स्वाद आदि में विभक्त किया है। अतः भोजन के संगठनात्मक स्तर को बनाये रखने के लिए भोजन के रासायनिक तथा उसके भौतिक गुणों का संतुलन आवश्यक है। इन भोज्य अवयवों के जैविक उपापचय कार्यों में भाग लेने से ही कोशिका, ऊतक तथा विभिन्न संस्थानों के निर्माण तथा क्षति पूर्ति में अति आवश्यक तथा अनन्य सम्बन्ध है साथ ही कुछ कारक जैसे क्रूड फाइबर सुगंध तथा स्वाद भोजन के भौतिक स्तर को बनाये रखते हैं, जिससे उसकी ग्राह्यता बढ़ती या घटती है।

भोजन रसायन के बढ़ते प्रभाव से तथा सभ्यता के निरंतर गतिशील होने से आधुनिक समाज में त्वरित या उच्च ऊर्जा भोजन लेने के प्रति मनुष्य प्रवृत्ति के रुझान में परिवर्तन हो आया है। अतः अनेक प्रकार के तैयार, परिष्कृत तथा संश्लेषित भोजन तथा पेय जो सुगन्धित तथा स्वाद युक्त तथा कहने को अधिक ऊर्जाकारक हैं, लेने का शौक निरन्तर वृद्धि पर है। फलस्वरूप कम आयतन तथा अधिक, ऊर्जाकारक भोजन का बोलबाला बढ़ चला है। जिसमें भोजन की भौतिक संरचना को बनाने वाले अवयव क्रूड फाइबर की उपस्थिति प्रायः अत्यधिक परिष्कृत भोजन जिसमें क्रूड फाइबर नगण्य के बराबर हो चला है, लेना उपयुक्त समझा जा रहा है जो रासायनिक तथा जैविक उपापचय की दृष्टि से बहुत घातक है

आधुनिक धनी समाज में परिस्कृत भोजन लेने की प्रवृत्ति प्रायः अधिक प्रचलित हो चुकी है। अतः प्रायः यह देखा गया है कि अनेक बीमारियों का संक्रमण जैसे हृदय सम्बन्धी बीमारियाँ, दंत-क्षय, मधुमेह, क्षय रोग, कैंसर, एड्स तथा आँत सम्बन्धी अन्य बीमारियों का प्रतिशत दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इन सब घातक बीमारियों की जड़ कहीं न कहीं पोषक कारकों का असंतुलन तथा अनुपस्थिति है, जिसमें क्रूड फाइबर एक आवश्यक कारक है। अतः पोषक कारक में इसकी संरचना, गुण, रूप तथा पोषण में इसकी उपयोगिता का अवलोकन आवश्यक है।

क्रूड फाइबर की प्रवृति

साधारणतया फाइबर या तन्तु का आशय किसी रेशीय संरचना से लगाया जाता है। भोजन के फाइबर का अभिप्राय भी कुछ-कुछ अपच तन्तु या रेशा से ही है। भोजन का वह भाग जो पाचन में बच जाता है या जो पाचन क्रिया में अक्रिय है फाइबर या खुरदरा भाग (रफेज) कहा जाता है। भोजन वैज्ञानिकों, रसायनज्ञों तथा स्वास्थ्य भौतिकविदों के प्रयासों से अब यह स्पष्ट हो चुका है कि फाइबर अनेक प्रकार के होते हैं और प्रत्येक किस्म के फाइवर की शरीर के अलग-अलग कार्यों में अलग-अलग भागीदारी है। अतः इसे मनुष्य के स्वास्थ्य रखरखाव में बहुत बड़े कारक के रूप में अब पुनः माना जाने लगा है। इसकी भोजन में उपस्थिति मनुष्य के स्वास्थ्य रखरखाव के लिये आवश्यक मानी जाने लगी है। अभी तक अक्रिय तथा अनावश्यक अंश के रूप में जाना जाने वाला अवयव अधिकांश पश्चिमी सभ्यता में व्याप्त बीमारियों व रोगों से सम्बन्ध रखता है। परिणामस्वरूप आहार के इस निष्क्रिय अंश ने अपनी ओर ध्यान आकृष्ट किया है और यह एक विस्मृत अवयव से आवश्यक अवयव के रूप में पुनः स्थापित होने लगा है।

नामकरण

फइबर की प्रवृति तथा उपयोगिता के आधार पर इसको मुख्यतया तीन नामों से जाना जाता है।

(1) क्रूड फाइबर (कच्चा रेशा)

(2) डायटरी फाइबर (भोजन रेशा)

(3) प्लान्ट फाइबर (पादप रेशा)

ट्रावल ने 1973 में डायटरी फाइबर नाम भोजन के उस अवयव के लिये प्रयुक्त किया जो पौधो की कोशिका भित्ति बनता है तथा मनुष्य की भोजन नली में उपस्थित एन्जाइम्स के द्वारा ज़लीय अपघिटत नहीं हो पाता। इसके विपरीत क्रूड फाइबर भोजन के उस अंश को माना जो तनु अम्ल तथा क्षार के पाचन में अक्रिय हो (ऐ० ओ० ऐ० सी० सम्मेलन 1970) इसकी महत्ता पशु आहार के लिये अधिक मानी गयी। पादप तन्तु शब्द का प्रयोग स्पीलर (1975) ने भित्ति पादप कोशिका में उपस्थित सभी पदार्थों को व्यक्त करने (संयुक्त रूप से) के लिए किया। इसको पुनः अपरिष्कृत तथा परिष्कृत फाइबर में वर्गीकृत किया गया। प्रथम का अभिप्राय भोजन सम्बन्धी तथा उसके दैहिकी कार्यो से है तथा द्वितीय का शुद्ध सेल्यूलोस या पेक्टिन आदि से।

फाइबर के लिये इस प्रकार अभी तक कोई उचित प्रचलित शब्द का प्रयोग नहीं हो पाया है क्योंकि यह अनेक रासायनिक पदार्थों के एक समूह का संयुक्त नाम है, जिनके रासायनिक तथा भौतिक गुण अलग-अलग होने के बाद भी फाइबर को कुछ विशिष्ट गुण संयुक्त रूप में प्रदान करते हैं। अतः फाइबर के लिये एक शब्द का चयन अभी भी मुश्किल बना हुआ है, जो शोध का खुला विषय है।

फाइबर की रासायनिक संरचना व गुण

फाइबर का अधिकांश अंश पौधों की कोशिका भित्ति से तथा उसमें उपस्थित पदार्थों से बना होता है, जो एक बहुत जटिल संरचना में बँधे होते हैं। भोजन के अवयव के रूप में ये पदार्थ विभिन्न दरों और अंशों में आहार नाल में उपस्थित एन्जाइम तथा जीवाणुओं से प्रभावित होते रहते हैं। मुख्यतः इन पदार्थों को छः समूहों में बाँटा गया है।

(1) निश्चित संरचना वाले शर्करा पदार्थ जैसे सेल्यूलोस। विभिन्न प्राकर की मिश्रित शर्कराएं तथा एक ही प्रकार की मिश्रित शर्कराएं।

(2) लिगनिन पदार्थ- जो प्रायः प्रोपेन बहुलक है।

(3) अप्राप्य वसीय पदार्थ जैसे मोम तथा क्यूटिन।

(4) नत्रजनीय पदार्थ।

(5) फाइबर में संलग्न सूक्ष्म तत्व जैसे जस्ता, सिलिकॉन, क्रोमियम तथा मैंगनीज आदि।

(6) बहुत से अपरिचित खनिज लवण, वनस्पतिक अम्ल जैसे फाइटिक अम्ल तथा कैलसियम आदि।

क्रूड फाइबर में सेल्यूलोज, लिगनिन तथा हेमी

सेल्यूलोज का अंश बहुत अधिक है। यह ग्लूकोस अणुओं के परस्पर 1-4 कार्बन परमाणुओं के पारस्परिक बंधन से बनता है, जो हाइड्रोजन बंधन के द्वारा परस्पर सख्त बंडलों की आकृति अपना लेते हैं। पैक्टिन में शर्कराओं के ग्लेक्ट्युरान्स, गेलेक्टान्स तथा एरबिनान्स, यूरोनिक अम्ल यौगिक पैक्टिन बहुलक के रूप में उपस्थित रहते हैं, जिसमें यूरोनिक अम्ल के अम्लीय मूलक मिथाइल मूलकों के द्वारा प्रतिस्थापित होकर पेक्टिनिक अम्ल या पेक्टिन कहलाता है। ये शर्करा तथा अम्लों के साथ स्थायी जेली बनाते हैं। हेमी सेल्यूलोज विभिन्न शर्कराओं का रेखीय तथा शाखीय बहुलक है, जिसमें प्रमुखतया जाइलोस, ऐराबिनोस ग्लूकोस, मेनोस और लगभग 4 प्रतिशत यूरोनिक अम्ल के साथ उपरोक्त शर्कराओं के ग्लैक्टान्स उपस्थित रहते हैं। लिग्निन प्रायः कोशिका भित्ती को सीमेन्ट की शक्ति प्रदान करता है, जो सुगंधित पदार्थ विशेषतः फिनाइल प्रोपेन का बहुलक है। यह बहुलक शर्करा नहीं है। इसके अतिरिक्त फाइबर के प्रमुख भाग में म्यूसिलज (लसलसा) पदार्थ भी उपस्थित रहता है जो यूरोनिक अम्लों का बहुलक है। यह पानी को अपने में बहुत अधिक मात्रा में ग्राह्य करता है तथा सघन जैली बनाता है।

संक्षेप में पौधों की कोशिका भित्तियाँ संकीर्ण गतिशील रेखीय तन्तु संरचना है जो बहुलक शर्कराओं के सांचे में बनी रहती है तथा लिगनिन पदार्थ से मज़बूती पाकर सुगंधित अवशेषों से सिंचित रहती है। इन पदार्थों की मात्रा पौधों की आयु तथा किस्म पर निर्भर करती है। जब पौधे के आवश्यक भागों को पीस कर पूर्ण अलग-अलग भोज्य अवयवों में विघटित किया जाता है, तो यह कोशिका भित्ति ही फाइबर का रूप धारण करती है। प्रायः फलों बीजों के आवरण इसका प्रमुख भाग बनाते हैं।

क्रूड फाइबर के भौतिक स्वरूप व गुण

पौधाजनित क्रूड फाइबर विभिन्न देहिकी जैव-रसायन-अभिक्रियाओं को प्रभावित करता है, जो इसके निम्न भौतिक गुणों के कारण सम्भव है। ये गुण हैं: (1) पानी का अवशोषण, (2) धनायन विनिमय (3) कार्बनिक अवशोषण व (4) जैलीय छनन।

पानी का अवशोषण मुख्यतया बहुलक शर्कराओं, पैक्टिन तथा सेल्यूलोज की वजह से होता है, जो पानी के साथ फूल कर जैली बना देती है। धनायन विनिमय मुख्यतया फाइवर के यूरोनिक अम्ल बहुलक, हेमी सेल्यूलोज तथा पेक्टिन पदार्थों के द्वारा होता है। कार्बनिक पदार्थों जैसे कि बाइल अम्लों का शोषण फाइबर की सक्रिय सतहों के द्वारा किया जाता है। इसकी जैली संरचना बैक्ट्रिया, एन्ज़ाइम तथा अन्य पदार्थों के आणविक प्रथकीकरण कर उनका सम्बंध दूसरे पदार्थों से करने में सहायक होता है।

फाइबर का पोषण में योगदान

पोषण साहित्य में फाइबर को क्रूड फाइबर के रूप में तथा आज कल इसे पादप फाइबर के रूप में भी लिया जाता है, लेकिन आम प्रचलन में इसे अभी भी क्रूड फाइवर ही अधिक माना जाता है। क्रूड फाइवर यद्यपि भोजन के शक्तिवर्धक अवयवों तथा कोशिका के उपपाचय क्रिया में भाग लेने वाले अवयवों की भाँति कोशिका तथा ऊतकों की जैव रासायनिक क्रियाओं में भाग नहीं लेता, लेकिन इसका इन क्रियाओं के संतुलन तथा जैव-उपापचय क्रियाओं में उत्पन्न होने वाले हानिकारक सह-उत्पादों तथा उनकी क्रियाशीलता को कम करना तथा उन पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल कर शरीर को अनेक दुष्प्रभावों तथा बीमारियों से बचाना है।

फाइबर की आवश्यक मात्रा

भोजन में अभी तक वास्तव में कितने क्रूड फाइबर की आवश्यकता है, इसका वास्तविक वैज्ञानिक अनुमापन व उसकी संस्तुति नहीं हो पायी है : क्योंकि इसकी मात्रा भोजन के प्रकार तथा लेने के स्वरूप पर निर्भर है। कुछ अफ्रीकी ग्रामीण समाजों में सर्वेक्षण कर यह पता लगाया गया कि वे प्रतिदिन 16-24 ग्राम क्रूड फाइबर लेते हैं, जो कि इतिहास पूर्व के लिये मानक माना गया है (नेलशन - 192वें)। इसके विपरीत आधुनिक पाश्चात्य भोजन में इसकी मात्रा केवल 0.8 ग्राम तथा 10 ग्राम से कम तथा औसत 5 ग्राम लगभग पायी गयी है। अब आधुनिक सभ्यता में भोजन आदत के

परिवर्तन के साथ यह मात्रा और कम होकर औसतन 3 से 5 ग्राम ही रह गयी है। उसमें भी अनाज वाले फाइबर की मात्रा काफी कम हो गयी है। जब कि सम्पर्ण फाइबर का लेना 1900 से 1970 तक अंशतः बढ़ा है। फिर भी यह अफ्रीकी ग्रामीण तथा उन्नीसवी सदी से कम है। 1900 तथा 1970 के बीच आँकड़े निम्न स्थिति प्रदर्शित करते हैं।

फाइबर किस्म	1900	कुल अन्तः करण मात्रा (ग्राम/प्रतिदिन) 1970
कुल फाइबर	3.6	4.2
सब्जियों से	2.1	2.6
फलों से	0.6	1.1
अनाज से	1.0	0.3

अतः फाइबर की मात्रा का बढ़ना कुछ फल तथा सब्जियों के अधिक उपयोग की वजह से है, परन्तु अनाज के फाइबर का कम होना अत्यधिक परिष्कृत रूप में लेने के कारण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राचीन ग्रामीण परिवेश की अपेक्षा आज क्रूड फाइबर का लेना 70 से 75 प्रतिशत कम हो गया है, जिसका बढ़ना नितान्त आवश्यक है।

क्रूड फाइबर पर आहार नाल के सूक्ष्म जीवांशों का प्रभाव

क्रूड फाइबर पर आहार नाल के एन्ज़ाइम्स का कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर सूक्ष्म शाकीय जीव इसका किणवन कर देते हैं। ये सेल्यूलीस, पेक्टिन तथा हेमी सेल्यूलीस का कुछ हद तक पाचन भी करतेहैं। हेमी-सेल्यूलास, सेल्यूलोज से अधिक पाच्य है तथा लिगनिन केवल 10 प्रतिशत ही पाच्य है।

आहार नाल पर फाइबर का प्रभाव

प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि वे आहार जिनमें क्रूड फाइबर की अधिकता होती है, मुलायम तथा अधिक आयतन वाला मल (स्टूल) उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत कम क्रूड फाइबर (परिष्कृत) आहार सख्त तथा कम मात्रा में मल बनाते हैं। अधिक आयतन तथा हल्के मल का परिवहन समय ठोस तथा म मल की अपेक्षा कम होता है, जिससे आहार आल की दीवारों पर कम दबाव व रगड़ पैदा होती है तथा आहार नाल में गरिष्ठता (कांस्टीपेसन) कम होती है। निम्न तालिका से इसकी पुष्टि होती है।

तालिका : औसत परिवहन समय तथा मल भार

समूह	आहार का प्रकार	औसत परिवहन समय (घंटे)	औसत मल भार (ग्राम)
अफ्रीकी गाँव	अपरिष्कृत ज्यादा क्रूड फाइबर	20	510
शाकाहारी तथा बौर्डिंग स्कूल	मिश्रित आहार	30	270
अंग्रेजी बोर्डिंग स्कूल	परिष्कत कम क्रूड फाइबर	55	90

क्रूड फाइबर तथा आन्त्र बीमारियों का सम्बन्ध

रोग विशेषज्ञों ने पाश्चात्य व्यक्ति में अनेक किस्म की आधुनिक बीमारियों का होना पाया है, जो प्रायः अविकसित देशों में नहीं देखी गयी हैं। आहार नाल तथा अन्य संस्थानों की इन आधुनिक बीमारियों का सम्बन्ध भोजन में क्रूड फाइबर के अंतर का होना पाया गया है। क्रूड फाइबर अपने निम्न दो गुणों से रोगों का संतुलन करता है।

(1) फाइबर द्वारा मल की संगति, संरचना तथा आवृत्ति पर प्रभाव।

(2) फाइबर की बाइल अम्ल तथा अन्य पोषक अंशों को अपने में बाँटने की शक्ति पर।

प्रथम वर्ग की फाइबर की प्रवृत्ति आँत से सम्बन्धित गरिष्ठता डाईभरडिकूलाईटस तथा हर्नियाँ आदि बीमारियाँ से सम्बन्ध रखता है। दूसरा रक्त रसायन सम्बन्धी तथा आँत पर होने वाले विषैले प्रभावों से सम्बन्ध रखता है, जिसका मुख्य उत्पाद घातक कैंसर है।

विभिन्न बीमारियों की रोकथाम में फाइबर का महत्व

बीमारियाँ जो स्टूल की संरचना तथा संगत से सम्बन्ध रखती हैं-

(1) कोष्ट बद्धता (कांस्टिपेशन) : क्रूड फाइबर, विशेषतः गेहूँ के चोकर में मृदुरेचक या पेट साफ करने वाली प्रवृति होती है। अनुमानतः भोजन में 6 ग्राम गेहूँ का चोकर भोजन के अन्य अवयव, दाल, सब्जियाँ, फल तथा अन्य के फाइबर के साथ आहार नाल के सामान्य क्रियान्वयन में सहायक होता है। इस अवस्था में कोष्ट बद्धता नहीं होती, क्योंकि फाइबर युक्त भोजन हल्का, कोमल तथा शीघ्र विसर्जित होने वाला मल उत्पन्न करता है।

(2) आंत्र उभार या डाइमर्टिकूलर बीमारियाँ : इस बीमारी में आँतों की दीवालों में बाहर की ओर छोटी-छोटी थैली उभर आती हैं। यह बीमारी लगभग आधे लोगों में जो 40 साल से ऊपर, तथा दो तिहाई लोगों में जो 80 साल के ऊपर होते हैं, पायी जाती है। अतः उम्र के साथ इसका सम्बन्ध है। कम क्रूड फाइबर आहार इस स्थिति को पैदा करने में सहायक होता है, क्योंकि ऐसे आहार के अवशेष ज्यादा सख्त होते हैं, जिनको आगे धकेलने में आहार नाल की म्यूकोषा ऊतकों को अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। इस कारण उन पर लगातार खिंचाव व तनाव पैदा होता रहता है, जिससे ऊतक ढीले हो जाते हैं और उपरोक्त थैलियों का बनना प्रारम्भ हो जाता है। फाइबर युक्त भोजन का अवशेष कोमल तथा हल्का होता है और आसानी से बाहर विसर्जित हो जाता है। अभी हाल के अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि वायुविकार, आंत्र उभार रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

वायुविकार प्रायः मल के परिवहन तथा आँत में अधिक समय लगने से पैदा होता है, तथा मल द्वार से उसे निकलने के बजाय वापस वृहद् आँत में धकेल दिया जाता है और वहाँ वापस पहुँच कर आँत के ऊतकों में अधिक तनाव उत्पन्न करता है।

प्रयोगों से यह देखा गया है कि यदि क्रूड फाइबर की 6 से 20 ग्राम मात्रा प्रतिदिन तीन समय के भोजन में वितरित की जाय तो इस रोग से मुक्ति मिलती है तथा रोग होने का भय नहीं रहता है। क्योंकि इससे मल-विसर्जन प्रक्रिया तथा उसके स्वरूप में कोमलता आ जाती है। इस उपचार विधि को धीरे-धीरे अधिक स्वीकार किया जा रहा है।

तालिका : मल त्याग आदत का प्रभाव (62 रोगियों पर परीक्षण)

मल त्याग की आवृति	ब्रान लेने से पहले	ब्रान लेने के बाद
1. अनियमित	13	-
2. प्रत्येक 3 दिन में	7	-
3. प्रत्येक 2 दिन में	8	-
4. प्रत्येक दिन	28	31
5. दिन में दो बार	3	25
6. दिन में तीन बार	-	6
7. बारम्बार	3	-
	62	62

इस प्रकार सारणी से स्पष्ट हैं कि क्रूड फाइबर को चोकर में लेने से मल त्याग प्रवृति नियमित हो जाती है।

खिसकने वाला हर्निया

यह एक स्वतः प्राप्त, एपेन्डिसाइटिस तथा आँतों में उत्तेजना, बीमारी है, जिसमें आमाशय डायाफ्राम की ओर उभार लेता है। यह अफ्रीका वासियों में प्रायः नहीं पाया जाता है। अतः इसको भी परिष्कृत तथा कम फाइबर आहार से जनित माना जाता है। इसी प्रकार कम क्रूड फाइबर आहार लेने वाले लोगों में एपेन्डिसाइटिस अधिक देखा गया है। इसी प्रकार आँत में कष्टदायक तथा उत्तेजनात्मक, लक्षण भी आँत की मांसपेशियों के अधिक तनाव तथा खिंचाव की वजह से होते हैं, जो कम तथा सख्त मल उत्पन्न करते हैं। साथ ही कभी-कभी दर्द के साथ दस्त भी होते रहते हैं। आँतों के इस प्रकार के लक्षणों का सम्बन्ध भी कम फाइबर आहार की वजह से होता है। इस प्रकार के लक्षणों को बिना पकाये चोकर तथा परिष्कृत हेमी सेल्यूलोस के पकवानों के इस्तेमाल से उपचरित किया जा सकता है।

बीमारियाँ जो क्रूड फाइबर के अवशोषण गुणों से सम्बंधित हैं

विष निवारक के रूप में : क्रूड फाइबर की अवशोषण की प्रवृत्ति उसके रासायनिक संघटन के कारण है। फाइबर का यह गुण उसको एक प्रभावी विष निवारक के रूप में प्रतिष्ठित करता है। फाइबर एक अवशोषक का कार्य कर भोजन में मिले बहुत से विषैले पदार्थों के प्रभाव को दूर करता है। अतः भोजन में निगले गये पदार्थों के प्रभाव को शरीर से बाहर निकालने में परोक्ष रूप से दो प्रकार से मदद करता है-

(1) प्रथम रूप में रक्त रसायन में परिवर्तिन कर जिससे वह वस्तुओं के अवशोषण तथा पुनः शोषण को रोकता है।

(2) विषैले पदार्थों को अपने में अवशोषित कर आँत को उनके प्रभाव से मुक्त रखता है तथा मल बाहर विसर्जित करता है।

आँत का कैंसर : फेफड़ों के कैंसर के बाद आँतों का कैंसर दूसरी घातक बीमारी है जो मारक का काम करती है। अन्वेषणों से यह पता लगा है कि उच्च फाइबर आहार लेने वाले लोगों में यह कम पाया जाता है। यह बात विभिन्न वर्ग व जाति के लोगों में कैंसर के विस्तार में अध्ययन से पुष्ट हुई है।

देश	जाति/वर्ग	विस्तार
अमेरिका (कैलिफोर्निया)	काले लोग	69.8
(हवाई)	कौकासियन	68.0
(हवाई)	जापानीज	66.4
रोडेशिया	काले	18.2
जापान (ग्रामीण)	जापानीज	11.8
दक्षिण अफ्रीका	काले	10.8
नाइजीरिया	काले	5.8

फाइबर से मल की गति तथा आयतन आँत में बढ़ता है और यह उसके धारक समय को कम करता है जिससे आँत के ऊतक विषैले पदार्थों के सम्पर्क में कम आते हैं। अधिक आयतन, धनायन विनिमय तथा कार्बनिक अवशोषण गुण इस प्रक्रिया में मंदद करते हैं, तथा विषनिवारक दक्षता को बढ़ाते हैं, जैसे कि डिआक्सी कोलेट जो कि आँत के जीवांश का, बाइल अम्लों पर प्रक्रिया का सह उत्पाद है। साथ ही यह भी पाया गया है कि जो लोग उच्च फाइबर युक्त अपरिष्कृत भोजन लेते हैं, उनमें प्रचुर मात्रा में बाइल अम्लों को दूसरे प्रकार के कम विषैले उपापचय उत्पाद पैदा होते हैं तथा कम फाइबर लेने वालों में दूसरे किस्म के और इसी तरह आँत में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवांश भी। अतः यह प्रमाणित है कि कैंसर कारक पदार्थ आँत में उपस्थित जीवंशों की बाइ अम्लों के तथा अन्य पदार्थों पर प्रक्रिया के सह उत्पाद हैं। इसी प्रकार कैंसर विस्तार तथा शाकाहारी भोजन में ॠणात्मक सह सम्बन्ध पाया गया है तथा उच्च वसा युक्त भोजन के साथ धनात्मक सम्बन्ध साथ ही हृदय-परिवहन-तंत्र सम्बन्धी बीमारियाँ भी अधिक पायी गयी हैं। अतः आज दोनों विचार, (1) उच्च फाइबर कम कैंसर (2) उच्च वसा उच्च कैंसर विचार आँत तथा हृदय गतिविधियों के लिये आवश्यक उद्घोष हैं।

फीकल वसा पोषण वसा के साथ परिवर्तित नहीं होती। अतः वसा का अधिक प्रभाव वाइल अम्लों की मात्रा पोषण स्टीरोलस तथा उनके उपापचय उत्पाद, जो आँत में पहुँचते हैं, उन पर पड़ता है। जीवाणु इनकों विभिन्न पदार्थों में परिवर्तित करते हैं। जिसमें से सम्भवतः कुछ कैंसर कारक होते हैं। अतः कम फाइबर उच्च वसा युक्त भोजन आँत में स्टीरोल उपापचय उत्पाद पहुँचाने में सहायक होते हैं जो काफी लम्बे समय तक आँत में निवास करते हैं। यह देखा गया है कि उच्च फाइबर कम वसा युक्त भोजन वास्तव में लाभदायक होगा परन्तु हानिकारक बिल्कुल भी नहीं, इसी आशय पर आगे अनुसंधान की आवश्यकता है।

रक्त-परिवहन तथा हृदय सम्बन्धी प्रभाव

हृदय रोगों का कम विस्तार तथा कम रक्त सीरम कोलेस्ट्रोल उन लोगों में देखा गया है, जो अपरिष्कृत उच्च फाइबर कम वसा युक्त भोजन करते हैं। अफ्रीकी गोरों तथा वान्टू कैदियों पर लम्बे परीक्षण के बाद ये निष्कर्ष निकाले गये हैं। केयीस ने दिखाया कि पेक्टिन कोलेस्ट्रोल कम करता है।

विभिन्न प्रकार के फाइबर युक्त चारा पशुओं को खिला कर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि फाइबर का कोई न कोई अवयव अवश्य ही कोलेस्ट्रोल को कम करता है। अतः सम्भावित प्रक्रिया की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

रक्त में उपस्थित कोलेस्ट्रोल सम्पूर्ण निधि का भाग है। अतः कोलेस्ट्रोल निधि को कम करने से रक्त कोलेस्ट्रोल स्वतः कम हो सकता है। यह कमी अकृय स्टीरोल और वाइल अम्लों को फीकस द्वारा बाहर निकाल कर की जा सकती है। अतः कोई भी पदार्थ जो इनका अवशोषण कर मल-विसर्जन की गति को बढ़ावा देता है, वह कोलेस्ट्रोल स्तर कम करने का कार्य करेगा। संक्षेप में कोलेस्ट्रोल पोषण, कोलेस्ट्रोल का अवशोषण तथा बाइल अम्लों का पुनः अवशोषण रोकने वाला पदार्थ इसमें सहायक होता है। फाइबर में ये सब प्रकृतियाँ मौजूद हैं, क्योंकि उसमें अवशोषण तथा इस प्रकार के पदार्थों को अपने में जकड़ने के गुण विद्यमान हैं। साथ ही यह भी पाया गया है कि कम फाइबर युक्त भोजन जस्ते तथा ताँबे का अनुपात असंतुलित कर देता है जिससे कोलेस्ट्रोल बढ़ जाता है।

सारांश : उपरोक्त कथनों तथा सिद्धियों से यह स्पष्ट है कि क्रूड फाइबर की आवश्यकता पोषण में विभिन्न रोगों की उत्पन्ति को रोकने तथा रोगों के निदान के लिये अति आवश्यक है। अतः भोजन के परिष्कृत उच्च ऊर्जा, बनावटी तथा त्वरित रूप को जो कि आजकल एक सम्पन्नता का प्रतीक बनने जा रहा है, को त्यागना होगा। क्योंकि जितने भी पूर्व उपलब्ध त्वरित भोजन तथा पेय हैं उनमें ऊर्जा, स्वाद, गंध तथा रंग बड़े ही लुभावने होते हैं परन्तु उनमें दैहिक कार्मिकी उपापचय में संतुलन बनाने की क्षमता नहीं होती, क्योंकि वे सभी उच्च परिष्कृत भोजन हैं; जिनमें फाइबर की बहुत कमी होती है। आज की सभ्यता में उपरोक्त रोगों के उत्पन्न होने का यह एक प्रमुख कारण है। अतः शारीरिक गतिविधियों को रोग मुक्त तथा दीर्घायु बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हम शाकों, फलों, चोकर वाले अनाजों तथा छिलके वाली दालों का अधिक प्रायोग करें। परिष्कृत दालें, अनाज तथा सब्जियाँ, जिनके छिलके निकाल दिये गये हैं, उनका कम उपयोग करें। सब्जियों के छिलके केवल आवश्यक होने पर ही निकालें तता शाकाहारी भोजन जिसमें फाइबर की प्रचुरता तथा वसा की कमी हो उसे अपनाना चाहिए। यह निश्चित हैं कि भोजन में फाईबर की मात्रा बढ़ाना लाभदायक ही होगा, हानिकारक नहीं। फाइबर के द्वारा रक्त रसायन पर पड़ने वाले प्रभाव तथा आंत्र रोगों में इसके निजात दिलाने की प्रक्रिया तथा उसके लिये आवश्यक फाइबर का कौन सा अंश सक्रिय है, का अध्ययन करना आवश्यक है, जिससे भोजन औषधि के रूप में प्रयुक्त हो तथा कृत्रिम त्वरित तत्काल उपलब्ध भोजनों में भी पाइबर का उचित आवश्यक अनुपात रखकर किस में कितना फाइबर मिलाया जाय यह निश्चित किया जा सके, ताकि फाइबर की कमी से होने वाले भयानक रोगों से मुक्ति मिल सके। आवश्यक है, प्राकृतिक बनने की और प्रकृति प्रदत्त शाकीय भोजन की। किसी ने सच कहा है, प्रकृति की गोद ही संरक्षण करती हैं उससे दूर होना कष्टकारी व विनाश को आमंत्रित करना है, क्योंकि शरीर की संरचना प्रकृति की देन है। अतः उसका संरक्षण भी उसी में निहित है।

■ ■ ■

आ रही जो नव सदी, विज्ञान की वह शान हो

❑डॉ० रामगोपाल परिहार

हिन्दी विभागाध्यक्ष
जवाहर नवोदय विद्यालय हदगढ़
(क्योंझर) उड़ीसा-758023

विज्ञान मन की शान्ति का,

संसार हो-

विज्ञान सारी क्रान्ति का आधार हो।

विज्ञान जन-जन की,

सजग आशा बने।

विज्ञान में विश्वास,

सबके हों घने।

अन्धश्रद्धा, शोषणों का,

दौर मिट जाए यहाँ।

विज्ञान सारे ज्ञान का,

सन्धान बन जाए यहाँ।

यान्त्रिकी सबकी,

समझ की राह हो-

और तकनीकी

सहज उत्साह हो।

स्वस्थ जीवन दे यहाँ,

सबको चिकित्सा-

ना रहे यहाँ पर किसी में

कापुरुषता।

राष्ट्रभाषा में यहाँ,

विज्ञान का सब ज्ञान हो-

आ रही जो नव सदी,

विज्ञान की वह शान हो।

■ ■ ■

प्लाज्मा : पदार्थ की चौथी अवस्था

❑ कृषिचयन

द्वारा डॉ० चतुर्भुज साहू
रीडर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह, बिहार

पदार्थ की तीन ज्ञात अवस्थायें- ठोस, द्रव और गैस के अलावा एक और अवस्था के बारे में वैज्ञानिकों ने खोज की है, जो हमारे ब्रह्माण्ड के 99% से अधिक भाग में व्याप्त है। यह अवस्था 'प्लाज्मा' के नाम से जानी जाती है। पदार्थ की चतुर्थ अवस्था यानी प्लाज्मा का अनुप्रयोग पिछले दसक से अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। वर्तमान में तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

-सम्पादक

ठोस, द्रव और गैस पदार्थ की तीन सामान्य अवस्थायें हैं। साधारणतः जब ठोस पदार्थ को गर्म किया जाता है तो वह ठोस द्रव में और द्रव गैस में परिवर्तित होती है। जब गैस को आवश्यकतानुसार किसी उच्च ताप पर इस प्रकार गर्म किया जाता है कि परमाणु (अणु) परमाण्विक आकर्षण विघटित करते हुए आयनीकृत गैस में परिवर्तित हो जाती है अर्थात् परमाणु युक्त इलेक्ट्रॉन तथा आयन में टूट जाती है मुक्त इलेक्ट्रॉन तथा आयन के इस प्रकार के गैस का गतिकीय गुण सामान्य आयनीकृत गैस से बहुत भिन्न होता है और इस प्रकार के आयानीकृत गैस को पदार्थ की चौथी अवस्था कहा गया है। इसे "प्लाज्मा" नाम दिया गया है।

प्लाज्मा विद्युत् आवेश की दृष्टि से आवेशहीन होता है जिसे कल्प उदासीनता कह जाता है। मुक्त विद्युत् आवेश (इलेक्ट्रॉन तथा आयनों के अलग-अलग होने के कारण) के कारण इनमें विद्युत् चालकता का गुण होता है, जो किसी विद्युत् चालक धातुओं की विद्युत् चालकता से भी अधिक हो सकती है।

प्लाज़्मा अवस्था एक अति ऊर्जा युक्त अवस्था है। इसमें पदार्थ की ऊर्जा-मात्रा ठोस, द्रव या गैस अवस्था से अधिक होती है। यह कथन इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि औसतन 10^{-2} प्रतिकण ऊर्जा किसी भी पदार्थ की ठोस से द्रव अवस्था में लाने के लिए आवश्यक होती है और अनुमानतः इतनी ही ऊर्जा पदार्थ को द्रव से गैस की अवस्था में परिवर्तित करने में इस्तेमाल होती है जबकि गैस से प्लाज्मा अवस्था में परिवर्तित करने के लिए हमें 1ev से 30ev प्रतिकण ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो पदार्थ के गुण पर निर्भर करती है।

किसी विद्युतीय उदासीन गैस में दो अणुओं के बीच कम दूरी का आन्तरिक आकर्षण होता है, परन्तु प्लाज्मा में यह आकर्षण कूलाम्ब के नियम के अनुसार होता है और इस प्रकार प्रत्येक कण एक पूर्ण क्षेत्र के अन्दर एक-दूसरे से आकर्षित रहते हैं।

प्लाज्मा अवस्था की खोज का आरंभ सन् 1821 ई० से माना जा सकता है जब सर हम्फ्री डैवी ने विद्युत् आर्क का नामकरण किया, जिसे सर विलियम कुक्स ने 1879 में पदार्थ की चतुर्थ अवस्था कहा एवं 1929 ई० में लैंगमूर नामक वैज्ञानिक ने इसे "प्लाज्मा" नाम दिया।

अनुसंधान के दौरान यह पता लगा है कि मानव द्वारा ज्ञात ब्रह्माण्ड का 99 प्रतिशत से भी अधिक भाग प्लाज्मा अवस्था में विराजमान है जबकि पृथ्वी ग्रम में प्लाज्मा अपने किसी विशेष अवस्था में उपस्थित है।

सौर परिमंडल, पृथ्वी के आयन मंडल, पृथ्वी के चुम्बकीय मंडल, धूमकेतु के पूंछ,तारे के आतंरिक भाग, तड़ित, तारे के टूटे हुए भाग, सूर्य से निकलने वाले आवेशित कण, प्लाज्मा अवस्था के उदाहरण हैं।

हमारे आम जीवन में जीवन में ज्वाला, प्रतिदीप्त बल्ब, बेल्डिंग टार्च, इत्यादि प्लाज्मा अवस्था के कुछ उदाहरण है।

चूँकि पदार्थ की अत्यधिक मात्रा, प्लाज्मा की अवस्था में रहती है, इस कारण, इसे पदार्थ की चौथी अवस्था मानी गयी है। यह पदार्थ की चतुर्थ अवस्था, अन्य तीन अवस्थाओं के समतुल्य होती है जिसके अपने कुछ विशेष गुण होते हैं। पदार्थ की इस चतुर्थ अवस्था का निर्माण ठीक उसी प्रकार से होता है जिस तरह से अन्य तीनों अवस्थाओं का होता है।

जब किसी पदार्थ, जो कि ठोस अवस्था में विद्यमान होता है तथा जिसमें विभिन्न आण्विक कण एक दूसरे से न्यूक्लीय बल से सुंगठित रहते हैं, को गर्म किया जाता है तो तापक्रम के बढ़ने के कारण उन कणों के बीच का पारस्परिक बल धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है और ताप में वृद्धि के फलस्वरूप जब यह बल कमजोर हो जाता है तो इसके परमाण्विक कण टूट कर अलग होने लगते हैं, परिणामस्वरूप पहले द्रव की अवस्था तथा बाद में गैस की अवस्था में परिणत हो जाता है। इसी क्रम में जब ताप और बढ़ता है तो उसके परमाण्विक कण अलग-अलग हो जाते हैं अर्थात् गैस में परिवर्तित हो जाती है। इस आयनीकृत गैस को ही प्लाज्मा कहा जाता है।

प्लाज्मा के गुण उसके दाब, ताप, घनत्व विद्युत् चालकता, संगठन विमा चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के प्लाज्मा के कुछ भौतिकीय गुणों को तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1

प्लाज्मा के प्रकार	इलेक्ट्रॉन घनत्व संख्या c-c	तापक्रम 0k	डेस्ये दूरी Cm.	प्लाज्मा आवृत्ति kc/s
तारा मंडलीय	10^1-10^2	10^2-10^4	10^5-10^2	10^1-10^2
सौर परिमण्डल	10^2	10^5	10^2	10^3
पृथ्वी के वायुमण्डल	10^6	10^3	1	10^4-10^5
ग्लो विसर्जन वाष्प	10^{10}	10^5	10^{-2}	10^7
एल्काली द्रवीत प्लाज्मा	10^{13}	10^4	10^{-4}	10^8
सोलर एक्सटेरियर	10^{14}	10^4	10^{-5}-10^{-6}	10^9
एच० एम० डी० डिमाइसेस स्टॉक ट्यूब	10^{18}	10^5	10^{-6}	10^{11}
कंट्रोल्ड फ्युजन	10^{10}-10^{14}	10^6-10^9	1-10^{-2}	10^5-10^9
स्टेलर इन्टेरियर	10^{22}-10^{24}	10^6-10^8	10^{-6}-10^{-8}	10^{13}
धातु	10^{24}	300^0	10^{-8}	10^{13}
अर्ध चालक तथा अर्ध धातु	10^{19}	309^0	10	10^{12}

सामान्यतः प्लाज्मा गैसों की उदासीन अवस्था है जिसमें कुल ऋणात्मक इलेक्ट्रॉनिक आवेश, धनात्मक इलेक्ट्रॉनिक आवेश के पूर्णतः होती है परन्तु आजकल इसके परिभाषा के क्षेत्र को बढ़ा कर इसके अन्तर्गत अर्द्ध रूपेण हुए विसर्जित गैसों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसी आधार पर पदार्थ प्रक्रियाओं में प्रयुक्त प्लाज्मा को मूलतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है। पहला तापीय या उष्मीय प्लाज्मा एवं दूसरा शीत या असाम्य प्लाज्मा। तापीय प्लाज्मा पूर्णतया आयनित होते हैं जबकि शीत प्लाज्मा में आयनीकरण काफी कम होता है और यह 10^{-6} से 1% के बीच होता है।

उष्मीय प्लाज्मा के प्रयोग पुराने हैं और इनका व्यापक रूप में प्रयोग हो रहा है, परन्तु शीत प्लाज्मा का प्रयोग नया है।

उष्मीय प्लाज्मा का उपयोग बेल्डिंग, स्प्रेइंग,

आर्कभट्टी प्रौद्योगिकी में व्यापक रूप से हो रहा है वहीं शीत प्लाज्मा का उपयोग अधिकतर इलेक्ट्रॉनिक पदार्थों की प्रक्रियाओं में हो रहा है जैसे पृष्ठ शांध, पृष्ठों का रासायनिक रूपान्तरण, कण गठन (Texturing) प्लाज्मा निक्षारण, प्लाज्मा, सहायियत, फिल्म निक्षेपण आदि।

असाम्य प्लाज्मा में उच्च इलेक्ट्रॉन एवं अणुवर्ग संघटन कर उत्प्रेरित संकीर्ण बनाये हैं जो आपस में एक दूसरे से या ठोस पृष्ठों में अभिक्रिया कर नये एवं उपयोगी ठोस उत्पाद बनाते हैं। इसी सिद्धान्त का उपयोग ऊपर बनाए गये अनुप्रयोगों में किया जाता है। उष्मीय एवं असाम्य प्लाज्मा की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन तालिका-2 में दी गयी है।

तालिका 2

लक्षण	असाम्य प्लाज्मा	ऊष्मीय प्लाज्मा
कैथोड धारा घनत्व (ए०/मी०)	निम्न 10^2	10^4- 10^6
कैथोड विभव पतन (बोल्ट)	10^3	10
आयन घनत्व (मी० 3)	10^{16}	10^{22}
गैस तापमान (इले० वो०)	0.03	1
इलेक्ट्रॉन तापमान (इले० वो०)	10	1(गैस तापमान के बराबर)
कैथोड से इलेक्ट्रॉन उत्सर्जन प्रक्रिया	परवर्ती उत्सर्जन	तापयनिक उत्सर्जन
उत्सर्जन प्रक्रिया	परवर्ती उत्सर्जन	तापयनिक उत्सर्जन

प्लाज्मा से संबंधित विभिन्न प्रकार की घटनाओं को जानने हेतु मुख्यः दो प्रकार के मॉडल का अध्ययन किया जाता है।

(1) एक तरल मॉडल (One fluid model) प्लाज्मा को एकल आयनित उच्च चालकता वाले द्रव के रूप में समझा जाता है जिसके पूर्णरूपेण व्याख्या के लिए हाइड्रोडाइनेमिक्स समीकरण के समूह का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के प्लाज्मा का अस्तित्व तभी संभव हो सकता है जब यह प्लाज्मा एक उच्च बाह्यतम चुम्बकीय क्षेत्र में उपस्थित हो। वास्तव में यह अवस्था काफी महत्व रखती है क्योंकि उच्च चुम्बकीय क्षेत्र, फ्युजन प्लाज्मा निर्माण के लिए जिम्मेवार होते हैं। मैक्सवेल तथा हाइड्रोडाइनेमिक्स का सम्मिलित रूप मैग्नेटोहाइड्रोडाइनेमिक्स कहलाता है। यह मैग्नेटोहाइड्रो-डिनेमिक्स प्लाज्मा की सबसे विकसित शाखा है।

(2) द्वितरल मॉडल : इस मॉडल के अन्तर्गत प्लाज्मा का व्यापक अर्थ दिया गया है जिसमें इलेक्ट्रॉन तथा आयन एक दूसरे से अलग हैं तथा इनके बीच कूलाम्ब के दूरस्थ बल कार्यशील होते हैं। इस मॉडल के तहत प्लाज्मा में उच्च आवृत्ति वाला अनुदैर्ध्य दोलन पाया जाता है। इस प्रकार के दोलन को "प्लाज्मा तरंग" अथवा "लैंगमूर तरंग" कहा जाता है।

माइक्रोस्कोपिक व्याख्या

तरल मॉडल व्याख्या, प्लाज्मा के विभिन्न प्रकार के माइक्रोस्कोपिक घटनाओं को बतलाने में असफल रहा है और इसके लिए इसके गतिकीय धारणा (Kinetic theory) ने कुछ हद तक सही जानकारियाँ प्रदान की हैं।

प्लाज्मा निर्माण

दो इलेक्ट्रोडों के बीच किसी गैस में विद्युतधारा के प्रवाह से प्लाज्मा उत्पन्न की जा सकती है। चूँकि सामान्य ताप पर गैसें कुचालक होती हैं अतः गैस को विद्युत्चालक बनाने के लिए उसमें पर्याप्त आवेश-वाहकों का उत्पादन किया जाता है। यह प्रक्रिया "विद्युत् अपघटन" कहलाती है। आजकल प्लाज्मा के निर्माण के लिए लेसर या उच्च ऊर्जा कण किरण, रेडियो आवृत्ति विसर्जन, सूक्ष्म तरंग, आघात तरंग आदि का उपयोग किया जा रहा है।

प्लाज्मा के उपयोग

प्लाज्मा प्रवर्धन एक आधुनिक पदार्थ प्रौद्योगिकी है जिसमें द्रव्य की प्लाज्मा अवस्था के विभिन्न गुणों का उपयोग नये पदार्थों का निर्माण, निक्षेपण एवं रूपान्तरण में किया जाता है, जिससे यह वैज्ञानिकों के बीच प्रभावी भूमिका निभा रहा है।

प्लाज्मा के कुछ अनुप्रयोग अग्रलिखित हैं-

1. प्लाज्मा स्प्रेइंग

प्लाज्मा स्प्रे प्रौद्योगिकी एक अत्यधिक उपयोगी एवं प्रचलित टेक्नोलॉजी है जिसमें उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्र जैसे नाभिकीय क्षेत्र, तेल अन्वेषण इत्यादि के आते हैं।

इस प्रकार प्लाज्मा स्प्रे के कई लाभ हैं जैसे-

(1) कोई भी चूर्ग, जिसका गलन उर्ध्वपातन के बिना हो, अवतरित किया जा सकता है।

(2) किसी भी आकार एवं आकृति की वस्तुखंड का प्रयोग कर सकते हैं।

(3) आवरण की मोटाई कुछ माइक्रॉन से लेकर कुछ मिमी० तक हो सकती हैं।

(2) फिल्म निक्षेपण

प्लाज्मा सहायियत फिल्म निक्षेपण प्रक्रियाएँ अत्यंत सफल रही हैं। इसके निम्नलिखित लाभ हैं- (i) उच्चकोटि की फिल्में (ii) फिल्म निक्षेपण की दर में कई गुणा वृद्धि (iii) परिशुद्ध नियंत्रण संभव।

3. प्लाज्मा निक्षारण

इसका उपयोग विशेष रूप से अर्द्धचालक उद्योगों में प्रतिरूप (Pattern) उत्पादन में हो रहा है।

इसके अलावा प्लाज्मा के कई उपयोग हैं, जैसे-पृष्ठ आवरण अर्थात पृष्ठ दृढ़ीकरण क्षेत्र, सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक्स, इलेक्ट्रॉनिक यंत्र उत्पादन, रासायनिक विश्लेषण, धातुकर्म, वेल्डिंग एवं कटान, अपशिष्ट शोधन, रेशा एवं वस्त्र प्रतिपादन, धातु प्रवर्धन, बहुलक फिल्म इत्यादि।

■ ■ ■

धरती के परिधान

डॉ० दीपक कोहली

वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
बीरबल सॉहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान
53-विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ-226007 (उ० प्र०)

हे धरती के परिधान तरु
तेरी मूक भाषा को
क्या समझ सका
आज का मानव ?
शायद नहीं !
तेरे ही आँगन में
जन्मा ये अबोध प्राणी
और तुझसे ही पाये
प्रकृति के अनुपम वरदान ।
स्वच्छ वायु में श्वांस ली
पाया शुद्ध भोजन
हरियाली की छठा निहारी
बना स्वस्थ, निरोगी व संज्ञान ।
तुझसे पाया रिमझिम सावन
साथ मिला स्पन्दन
मन मयूर थिरक उठा
सुना जब पत्तों का वृंद-गान ।
पर आज यह सिरफिरा है
नहीं समझता तेरे महत्व को
अपने स्वार्थ की सेज पर
बना रहा धरती को कब्रिस्तान ।
बैठा है जिस वृक्ष पर
उसी की टहनियों को रहा काट
सोचता है मूरख कि
वह है बड़ा बुद्धिमान ।
अपनी विनाशलीला का
आरम्भ कर दिया है इसने
सोचता नहीं है कि
कितने घातक हो सकते परिणाम ।
कहीं बाढ़ की भीषण विपदा
कहीं पड़ रहे हैं अकाल
ओज़ोन परत को संकट है
और बढ़ रहा पृथ्वी तापमान ।
प्रदूषण का बाज़ार गर्म है
प्रकृति को है संकट महान
आज के दौर के हे मानव
इस खतरे को तू पहचान ।
स्वयं जाग व जगा चेतना
छेड़ एक पावन अभियान
लगा वृक्ष अपने परिवेश में
पहना धरती को उसका परिधान ।

■ ■ ■

महाप्रलय

❑सतीशचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

ग्राम—विजयनगर (बजेइरा), डाकघर रामपुर, मथुरा,
जिला-सीतापुर (उत्तर– प्रदेश)—261204

तेज़ आवाज़ करती नीली रोशनी वाली कारनुमा उड़नतश्तरी धीर-धीरे ज़मीन पर उतर रही थी। उड़न तश्तरी के दोनों यात्री विचित्र शक्ल और वेष-भूषा वाले थे। माना कि स्पेस सूट पहन कर अंतरिक्षयात्री की शक्ल हास्यास्पद हो जाती है, पर यहाँ वैसी बात नहीं थी। उन दोनों की शारीरिक बनावट ही अजीब बेड़ोल किस्म थी।

"लगता है हम पृथ्वी पर उतरने ही वाले हैं" एक अंतरिक्षयात्री ने अपने सहयात्री से अपनी भाषा में कहा। उसका नाम जीट्रॉन था।

हाँ उसके साथी डीट्रॉन ने हामी भरी तो जरूर पर नीचे का दृश्य देखकर मानो उसे अपने आप पर विश्वास ही नहीं आ रहा था। उसने अपने मन की आशंका जीट्रॉन से बताई "जीट्रॉन, पिछली बार जब हम अपने ग्रह कीरो से इस पृथ्वी पर सन् 2050ई० में आये थे तब तो यहाँ का रूप कुछ और ही था, पर आज तो यहाँ सब कुछ बदला-बदला सा ही नज़र आ रहा है।" तब तक कम्प्यूटर चलित उड़न-तश्तरी के बर्छी जैसे नुकीले पाये समतल मैदान में धस चुके थे।

हलांकि पृथ्वी के वातावरण में अनेक प्राणघातक विषैली गैसें घुली हुयी थीं, परन्तु उन दोनों सहयात्रियों पर उनका कुछ भी प्रभाव पड़ने वाला नहीं था। वे ऑक्सीजन गैस से सांस लेते ही नहीं थे। कारण था कि कीरो ग्रह पर ऑक्सीजन गैस उपलब्ध ही नहीं थी, हां-डेन्टाक्सीजन गैस के सिलेण्डर उनकी पीठों पर ले हुये थे। कीरो ग्रह के निवासी इसी गैस से सांस लेते थे जो कि पृथ्वी पर अनुपल्ब्ध थी। उस जगह पर उड़नतश्तरी के नीले प्रकाश से काफी दूर तक हल्की उजियारी सी छाई थी पर वह सीमित ही थी। वे सबेरा होने की प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीच इन दोनों यात्रियों का तीसरा सहयात्री जो कि एक कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित रोबोट था, भी उड़नतश्तरी से बाहर उतर आया। उसके सिर पर लगे संवेदनशील एण्टेना खड़े हो गये। उसने चारों तरफ घूम-घूम कर वातावरण का जायजा लिया और स्वयं ही अपने शरीर पर लगी हुयी विभिन्न घड़ियों, बटनों और वॉल्यूमों को दबा-घुमा कर नियंत्रित किया।

जीट्रॉन और डीट्रॉन उसकी हरकतों को ध्यान से 'वाच' कर रहे थे। अचानक रोबोट ने बोलना प्रारम्भ किया- "वर्तमान में पृथ्वी ग्रह का तापमान-25° से० ग्रे० से भी नीचे पहुंच गया है। सूर्य की किरणें अब कई सौ वर्षों तक यहाँ नहीं पहुंच पायेंगी क्योंकि पूरे ग्रह के वातावरण पर वेषैली गैसों और घने काले धुये की गहरी पर्त छाई हुयी है। सूर्य की किरणें इन्हें भेद कर पृथ्वी तक नहीं आ सकतीं।"

रोबोट द्वारा दी गई सूचना से आश्चर्य के कारण जीट्रॉन और डीट्रॉन के बिना दाँतों वाले विचित्र मुंह खुले के खुले ही रह गये।

अचानक ऊपर बादलों की तेज़ गड़गड़ाहट होने लगी और देखते ही देखते बरसात होने लगी। बड़ी आश्चर्यजनक थी यह वर्षा। उस तेज़ाबी बरसात का जो भी बूंद ज़मीन पर गिरता, मिट्टी को उबाल कर ही रख देता। डीट्रॉन और जीट्रॉन दौड़ कर उड़नतश्तरी में चले गये पर रोबोट बाहर ही खड़ा रहा। रोबोट ने बरसात का थोड़ा सा जल अपने हाथों

में लेकर अपने मुंह में भर लिया। उसके पेट में एक सूक्ष्म प्रयोगशाला जैसी ती, परीक्षण करने के उपरान्त वह पानी उसने उगल दिया। बोला- "यहाँ के गाढ़े धुयें की सल्फर डाइऑक्साइड गैस बादलों के साथ रासायनिक क्रिया करके सल्फ्यूरिक एसिड की वर्षा कर रही है।" कीरो ग्रह के उन अंतरिक्ष यात्रियों के लिये बड़े काम का था वह रोबोट। उसने दोनों को चेतावनी दी-"यहाँ अभी कुछ ऐसी भी घटनाएँ हो सकती हैं जो कम से कम तुम दोनों जीवधारियों के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हो सकती है, अतेव तुम दोनों उड़नतश्तरी में फिट माड्यूल अलग करके मेरे लिये छोड़ जाओ और उड़न तश्तरी सहित तुम दोनों पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगाओ। मैं यहाँ की वर्मान स्थिति-परिस्थिति के बारे में पूरी जानकारी, नमूने और चित्र उड़नतश्तरी की संकेत अभिग्रहण प्लेट पर सूक्ष्म तरंगों द्वारा भेजता रहूंगा। रिपोर्ट पूरी हो जाने पर माड्यूल के राकेट को दाग कर पृथ्वी की कक्षा में आकर उड़नतश्तरी से माड्यूल को पूर्वत जोड़ लूंगा।

जीट्रॉन और डीट्रॉन स्वयं ही पृथ्वी की सारी स्थितियों का अध्ययन करके जाना चाहते थे, परन्तु रोबोट की बात उन्हें माननी ही पड़ी। कारण, रोबोट विशेष धातु का बना होने के कारण प्रत्येक परिस्थित में निश्चिन्त होकर कार्य कर सकता था। अतेव उन दोनों ने वैसा ही किया। माड्यूल को अलग करके वे उड़नतश्तरी से पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगाने लगे।

पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगा रही उड़नतश्तरी की संकेत अभिग्रहण प्लेट में पृथ्वी पर स्थित रोबोट निरंतर अपने विचार और चित्र प्रेषित करता जा रहा था जिन्हें जीट्रॉन और डीट्रॉन आसानी से स्क्रीन पर देख सकते थे, विश्लेषण कर सकते थे और आवाज़ भी सुन सकते थे।

स्क्रीन पर पृथ्वी के धरातल की तस्वीरें उभर रहीं थीं जिन्हें रोबोट का कैमरा प्रेषित कर रहा था और साथ ही ऑडियो सेट पर आवाज़ भी आती जा रही थी-"पृथ्वी पर से जीवन पूर्णतः समाप्त हो चुका है और अब कई सौ वर्षों तक यहाँ किसी भी जीवधारी का पनपना सम्भव नहीं है।" स्क्रीन पर जो वीभत्स चित्र उभर रहे थे, उन्हें देख कर किसी भी पृथ्वीवासी मानव के होश उड़ जाते, लेकिन जीट्रॉन और डीट्रॉन पता नहीं किस मिट्टी के बने थे, उनके चेहरे पर कोई भी भाव नहीं था! लगता था कीरो ग्रह के निवासियों के मन में मानवीय संवेदनाएं होती ही नहीं थीं।

ऑडियो सेट पर पुनः आवज़ उभरी- "जैसे पृथ्वी पर से भीमकाय प्राणी डायनासोर का अस्तित्व समाप्त हो गया था वैसे ही अब इस पृथ्वी पर से प्राणि मात्र का अस्तित्व समाप्त हो चुका है।" स्क्रीन पर जीवधारियों की जली-अधजली, भयानक-वीभत्स लाशें ही दिखई दे रहीं थी। कार्बनिक पदार्थों को सड़ाने-गलानें के लिये जैविक अपघटकों (जीवाणुओं-कवकों) का अस्तित्व समाप्त हो चुका था।

"यहाँ के लोगों को स्वयं अपने ही कर्मों का फल भुगतना पड़ा है। अत्यधिक पर्यावरण प्रदूषण से वातावरण की ओज़ोन पर्त फट गयी है। पराबैंगनी विकिरण से यहाँ के लोग पहले ही मारे जा चुके थे।" डीट्रॉन की ओर देख कर कहा- "अब हमें भी कीरो ग्रह पर बढ़ते प्रदूषण के बारे में सोचना होगा।"

बात यहीं तक ही सीमित नहीं रही, स्क्रीन पर काले धुंये का साम्राज्य छा गया था। ऑडियो सेट बोलता ही जा रहा था-"इन सब को विज्ञान और तकनीकी के अविवेकपूर्ण उपयोग का राक्षस खा गया है। एक दूसरे के खून के प्यासे पृथ्वी के देश कुछ माह पहले विश्व युद्ध पर उतर आये। सभी देशों ने अपने-अपने परमाणु-अस्त्रों का खुल कर प्रयोग किया। नाभिकीय युद्ध और रेडियोविकिरण से यहाँ जन-जीवन बचना कहाँ सम्भव था! परिणामतः महाप्रलय में कोई भी नहीं बच सका।" एक बार फिर डीट्रॉन ने जीट्रॉन की ओर देखा, जीट्रॉन ने कहा- "अब यहाँ पर हमारे अध्ययन करने के लिये कुछ शेष बचा ही नहीं। अब कम्प्यूटर से रिमोट कंट्रोल द्वारा रोबोट को पृथ्वी से वापस लौटने को कहो।"

डीट्रॉन ने कम्प्यूटर के कुंजीपटल पर कुछ छेड़-छाड़ की। अगले ही पल माड्यूल सरसराता हुआ पृथ्वी की कक्षा में आया और उड़नतश्तरी में निश्चित स्थान पर सेट हो गया। कक्षा से निकल कर उड़नतश्तरी नीली रोशनी बिखेरती हुयी कीरो ग्रह की ओर बढ़ चली। डीट्रॉन ने जीट्रॉन से अन्तिम वाक्य कहा-"हमारे कीरो ग्रह पर भी पृथ्वी जैसी परिस्थितियाँ पनपने लगी हैं। यहाँ का परिणाम देख कर हमें अपने ग्रह पर सभी को सावधान करना होगा अन्यथा पूरे ब्रह्मांड से ही जीवन समाप्त हो जायेगा।" ■ ■ ■

ऊतक-संवर्धन : कृषि-जगत् में क्रान्ति

□वन्दना पान्डेय एवं नरेन्द्र कुमार

रक्षा कृषि अनुसन्धान प्रयोगशाला
पिथौरागढ़- 262501

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि ही यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसायस एवं आजीविका का साधन है। कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिकों द्वारा नयी-नयी तकनीकों का विकास किया जा रहा है ताकि देश में हरित क्रान्ति लायी जा सके। जैव-यान्त्रिकी भी उन तकनीकों में से एक हैं। वर्तमान समय में जैव-यन्त्रिकी ने फसलों के सुधार के लिए नये द्वार खोल दिये हैं। ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) एक ऐसी ही तकनीक है जिसके द्वारा कृषि, वानिकी व बागवीनी में महत्वपूर्ण योगदान मिल रहा है। ऊत्तक संवर्धन पौधों को कीटाणुनाशक (Aseptic) व नियन्त्रित (Controlled) वातावरण में उगाने की तकनीक है। इस क्रान्तिकारी तकनीक द्वारा पौधे का संवर्धन बहुत कम समय में किया जा सकता है। इस विधि में कम समय में बड़ी संख्या में पौधों को उगाया जाता है। इसमें पौधों को परखनली, बोतल या फ्लास्क के अन्दर उगाया जाता है। अतः इसे इन विट्रो के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त पौधे निरोगी, स्वस्थ्य व जननिक समरूप (Genetically identical) होते हैं।

सभी जीवधारियों के जीवन में एक महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इस क्रिया में दो युग्मक निषेचित होकर जाइगोट का निर्माण करते हैं। जाइगोट जीवधारी की प्रारम्भिक कोशिका है। जाइगोट लगातार सूत्री विभाजन द्वारा बहुकोशिकीय शरीर का निर्माण करता है। जीवधारी की सभी कोशिकाएं जननिक समरूपता में जाइगोट के समान होती हैं। प्रत्येक कोशिका में यह क्षमता होती है कि वह एक नये प्रारूप को जन्म दे सके। कोशिकाओं की इस क्षमता को टोटीपोटेन्सी) कहते हैं। इससे वैज्ञानिकों के मन मे यह विचार उठा कि,सभी कोशिकाएं जो जननिक समरूप हैं, एक नये अंग का निर्माण क्यों नहीं कर सकतीं? इसी विचार को लेकर ऊतक संवर्धन की नींव पड़ी। ऊतक संवर्धन के जनक कहलाने का श्रेय जर्मन वैज्ञानिक गौटलीब हैबरलैण्ड (1854-1945) को जाता है।

ऊतक संवर्धन की विधि

ऊतक संवर्धन के लिए एक सुव्यवस्थित प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। इसमें कांच के पात्रों (ग्लास वेयर) को धोने व संग्रह, पोषक माध्यम की तैयारी व संग्रह, टीकाकरण (इनोकुलेशन) व संवर्धन के लिए नियंत्रित वातावरण की व्यवस्था होती है।

पोषक माध्यम

पोषक माध्यम (Nutrient medium) कुछ आवश्यक तत्वों की पूर्ति करने वाले रसायनों से तैयार किया जाता है। माध्यम में पोषक तत्वों एवं लवणों की मात्रा जल की मात्रा के अनुसार मिलायी जाती है। अनेक वैज्ञानिकों ने लवणों की भिन्न-भिन्न सान्द्रता के अनुसार माध्यम (मीडियम) बनाये। जैसे मुरआशिगे व स्कूल मीडियम गैम्बोर्ग मीडियम, 'व्हाइट मीडियम आदि। इसमें मुराशिगे व स्कूग (MS) मीडियम सार्वत्रिक रूप में प्रयोग में लाया जाता है। मीडियम को

सान्द्रित अवस्था में संग्रहीत कर रखा जाता है। मीडियम में पोषक तत्वों की मात्रा निम्नलिखित प्रकार से होती है।

स्टोक विलयन 1 - (मिली ग्राम/लीटर)
(सान्द्रता 100x)

अमोनियम नाइट्रेट	-	165000
पोटैशियम नाइट्रेट	-	19000
कैल्शियम क्लोराइड	-	4400
मैग्नीशियम सल्फेट	-	3700
पोटैशियम हाइड्रोजन फास्फेट	-	1700

स्टोक विलयन 2 - (मिलीग्राम/लीटर)
(सान्द्रता 200x)

पोटैशियम आयडाइड	-	166
बोरिक एसिड	-	1240
मैगनीज सल्फेट	-	4460
जिंक सल्फेट	-	1720
सोडियम मोलीबीडेड	-	0.50
कॉपर सल्फेट	-	0.5
कोबाल्ट क्लोराइड	-	5.0

स्टोक विलयन 3 - (मिलीग्राम/लीटर)
(सान्द्रता 100x)

फेरस सल्फेट	-	2780

स्टोक विलयन 4 - (मिलीग्राम/500 मिलीलीटर)
(सान्द्रता 200x)

निकोटिनिक एसिड	-	50
पाइरीडॉक्सिन	-	50
थायमिन HCl	-	50

स्टोक विलयन 5 -(मिलीग्राम/500 मिलीलीटर)

इनोसिटोल	-	2500
ग्लाइसीन	-	50

उपरोक्त लवणों के अतिरिक्त पोषक माध्यम में हारमोन्स भी मिलाये जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं।

1. रूट हारमोन

यह जड़ों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं जैसे इन्डोल एसीटिक एसिड (IAA), इन्डोल ब्यूटाइरिक एसिड (IBA), नैप्थालीन एसिड (NAA) आदि।

2. शूट हारमोन

तने व शाखाओं की वृद्धि को प्रभावित करते हैं जैसे बैन्जाइल अमीनों प्यूरीन (BAP), काइनेटिन, जिएटिन आदि।

रूट हारमोन को मीडियम में मिलाने पर रूट मीडियम व शूट हारमोन को मीडियम में मिलाने पर शूट मीडियम कहते हैं। प्रत्येक प्रजाति के लिए रूट हारमोन व शूट हारमोन की सान्द्रता भिन्न-भिन्न होती है।

पोषक माध्यम में 2-5% सुकरोज भी मिलाया जाता है। यह ऊर्जा स्रोत के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

मीडियम ठोस व द्रव दोनों प्रकार का हो सकता है। ठोस मीडियम बनाने के लिए मीडियम में एगर-एगर नामक रसायन मिलाया जाता है। मीडियम का पी० एच० 5.8 होना चाहिये। मीडियम को 15 पौन्ड प्रेशर (121°C) तापमान पर जीवाणु रहित (Sterlize) किया जाता है।

मीडियम बनाने के उपरान्त टीकाकरण (Inoculation) की विधि आती है। इसके लिए मातृ पौधे का चयन आवश्यक होता है। मातृ पौधा स्वस्थ होना चाहिये पौधे के किसी भी भाग जैसे जड़ का अग्रस्थ सिरा, तने व शाखाओं के अग्रस्थ सिरे, पत्ती के छोटे टुकड़े, पुंकेसर, भ्रूण इत्यादि को इनोकुलेशन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इनोकुलेशन से पहले ऊतक को धोना आवश्यक होता है। इसको पहले पांच-छः बार आसुत जल (Distilled water) से धायो जाता है। फिर कीटाणुनाशक पदार्थ (Sterlized agent) जैसे मरक्यूरिक क्लोराइड ($HgCl_2$) ब्रोमीन वाटर, कोबाल्ट क्लोराइड या कैल्शियम हाइपोक्लोराइट आदि से धोया जाता है। फिर जीवाणु नाशक आसुत जल (Sterlized Distilled water) से धोकर अन्त में 70% एल्कोहॉल में

डुबाकर तुरन्त निकाल लिया जाता है। ऐसा करने से ऊतक कीटाणुरहित व धूल कण से मुक्त हो जाता है। ऊतक को मीडियम में इनोकुलेट किया जाता है। संवर्धन (Culture) को संवर्धन कक्ष में रखा जाता है। संवर्धन कक्ष का तापमान 25° $C\pm$ व प्रकाशिक व्यवस्था 16 घंटा लगातार रोशनी व 8 घंटा अन्धकार होती है। संवर्धन कक्ष के अन्दर पूर्ण पौधे का निर्माण शीघ्रता से होता है।

परखनली या फ्लास्क के अन्दर पौधे के पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर इसको परखनली से बाहर निकाला जाता है। परखनली के अन्दर निर्जर्मीकृत (Sterlized) अवस्था में रहता है। अतः परखनली से बाह्य वातावरण में लाने के लिए काफी सावधानी रखनी पड़ती है जिससे कि पौधा स्वयं को बाह्य वातावरण में रहने के लिए अनुकूलित हो सके। इस विधि को हर्डेनिंग (Hardenning) कहते हैं। इसमें पौधों को परखनली से निकालकर जड़ों को धोया जाता है जिससे उसमें लगा हुआ एगर मीडियम धुल जाय। अब पौधों को निर्ज्मीकृत (Sterlized) की गयी मिट्टी व बालू (1:1) को छोटे गमलों में लगा दिया जाता है। ऊपर से पॉलीथीन से ढँक दिया जाता है, जिससे नमी बनी रहे। इस प्रकार आठ-दस दिन में पौधे बाह्य वातावरण में रहने योग्य हो जाते हैं। फिर इन्हें नये गमलों या खेत में प्रतिरोपित कर दिया जाता है। इसको मैनुअल हर्डेनिंग (Manual Hardenning) कहते हैं।

प्रयोगशालाओं में 'ग्रोथ चैम्बर' नामक उपकरण भी उपयोग में लाया जाता है। इसमें तापमान, प्रकाश, व नमी नियन्त्रित होती है। परखनली से निकालकर, धोकर, छोटे गमलों में लगाने के पश्चात् पौधों को इसमें रख दिया जाता है।

ऊतक संवर्धन

कृषि, वानिकी, व बागवानी में प्रयुक्त बहुउपयोगी पौधों का शीघ्र गुणन व प्रवर्धन माइक्रोप्रोपागेशन (Micropropagation) कहलाता है। यह निम्न विधियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(अ) बहुगुणित शुटलेट (Shoot let) उत्पादन

इस विधि में पौधे की तने व शाखाओं के अग्रस्थ वर्धन को लेकर शूट मीडियम (Shoot medium) में डाला जाता है जिससे एक से अनेक शूट लेट्स (Shoot lets) बनते हैं। इन शूटलेट्स (Shoot let) को अलग-अलग करके रूट मीडियम में डाला जाता है। प्रत्येक शूट लेट (Shoot let) से एक नया पौधा बन जाता है। इस विधि द्वारा आलू, टमाटर, केला, बिगोनिया, कारनेशन, गुलदाउदी, जरबेरा का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

(ब) सोमेटिक ऐम्ब्रियोजेनेसिस

जीवधारी के शरीर में दो प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं। सतत (Somatic) व जननिक (generative)। सतत कोशिकाओं से उत्पन्न भ्रूण को सोमोटिक भ्रूण (Somatic embryo) कहते हैं। गाजर, सेलरी (Celery) व एल्फा-एल्फा घास में सोमेटिक एम्ब्रयोजेनेसिस द्वारा नये पौधों का निर्माण होता है। पोषक माध्यम में हज़ारों की संख्या में सोमेटिक भ्रूण डाले जाते हैं। प्रत्येक भ्रूण से एक नया पौधा प्राप्त होता है।

सोमेटिक भ्रूण 'आर्टीफीशियल सीड' (artificial seed) या 'सिन्थेटिक सीड' (Synthetic seed) के नाम से भी जाना जाता है। भ्रूण में कैल्शियम एल्जीनेट की परत चढ़ाई जाती है जिसकेकारण इनके संग्रह व एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सुविधा होती है। बीज बोने के बाद पुनः नये पौधों का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार यह पादप-प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

(स) रोग रहित पौधों का निर्माण

व्यापारिक विधि द्वारा तैयार किये गये पौधों में संक्रमण की अधिक आशंका होती है। ऊतक संवर्धन द्वारा उत्पन्न पौधे रोगरहित होते हैं। इसमें पौधे के अग्रस्थ भाग या अग्रस्थ मैरीस्टेमेटिक ऊतक को मीडियम में डाला जाता है। इस विधि द्वारा आलू, गन्ना, शकरकन्द, स्ट्राबैरी, जीरेनियम, कारनेशन, डहेलिया आदि बागवानी से सम्बन्धित स्वस्थ पौधे

बनाये जा सकते हैं।

एक तु पुंकेसर-संवर्धन

पुंकेसरों को माध्यम में इनोकुलेटकर के नये पौधों का निर्माण पुंकेसर- संवर्धन (Anther Culture) कहलाता है। इस विधि द्वारा तम्बाकू, चावल, गेहूँ व मक्का की नयी-नयी प्रजातियाँ उत्पन्न की गयी हैं। आजकल पुंकेसर संवर्धन द्वारा प्रजनन में महत्वपूर्ण योगदान मिल रहा है।

(य) भ्रूण-संवर्धन

पौधे के बीज से भ्रूण निकालकर माध्यम में प्रतिरोपित कर नया पौधा बनाने की क्रिया भूर्ण-संवर्धन (Embryo Culture) कहलाती है। इस विधि द्वारा भी पादप-प्रजनन में काफी सहायता मिल रही है। पादप-प्रजनन में हाइब्रिडाइजेशन की क्रिया फसलों की अच्छी प्रजाति पैदा करने का प्रमुख साधन है। हाइब्रिडाइजेशन की क्रिया में कभी-कभी परागण व निषेचन सफल न हो पाने के कारण 'हाइब्रिड एम्ब्रियो' का निर्माण हो पाता है। कभी-कभी निषेधन के बाद एन्डोस्पर्म का विकास न होने के कारण हाइब्रिड एम्ब्रियो मृत हो जाता है। ऐसी अवस्था में हाइब्रिड एम्ब्रियो को बीज से निकाल कर मीडियम में प्रतिरोपित कर दिया जाता है।

बीन (*Phaseolus vulgaris*) की प्रजाति व जंगली प्रजाति (*Phaseolus angustissimus*) का संकर पादप-प्रजनन के लिए काफी सफल रहा है क्योंकि इससे रोगप्रतिरोधकता व अन्य कई महत्वपूर्ण गुण शैतान में आ जाते हैं। भ्रूण-संवर्धन द्वारा इसका प्राप्त करने में काफी सफलता मिली है। इसके अन्य उदाहरण टमाटर की जाति (*Lycopersicon esculentum*) व जंगली प्रजाति (*Lycopersicon pervianum*) का संकर है। इससे पौधों में विटामिन सी व रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। जूट में भी उन्नत गुण एवं रोग प्रतिरोधक प्रजाति उत्पन्न करने में सफलता मिली है।

जीवद्रव्य- संवर्धन

पादप कोशिकाओं में कोशिका भित्ती सैल्यूलोज की बनी होती है। कोशिका भित्ती कोशिका को दृढ़ता प्रदान करती है। सैल्यूलेज पैक्टिन एन्ज़ाइम द्वारा कोशिका भित्ती को हटाकर कोशिका को भित्तीरहित किया जाता है। इस तरह भित्तीरहित प्रोटोप्लास्ट प्राप्त होता है। प्रोटोप्लास्ट को एगर मीडियम में उगाया जा सकता है। विभिन्न प्रजातियों के प्रोटोप्लास्ट आपस में संयोजित किये जा सकते हैं। इसमें एक यौगिक प्रयोग होता है जिसे पॉलीइथाइलीन ग्लाइकोल (तङछ) कहते हैं। संयोजित प्रोटोप्लास्ट अपने चारों ओर नयी भित्ती उत्पन्न कर लेते हैं और नये पौधों का निर्माण करते हैं। इस विधि द्वारा सरसों, तम्बाकू, पिटूनिया व आलू के पौधे प्राप्त करने में सफलता मिली है। आलू व टमाटर के प्रोटोप्लास्ट आपस में संयोजित कर पोमेटो व बैगन व टमाटर के प्रोटोप्लास्ट आपस में संयोजित कर ब्रोमेटो नामक नयी प्रजातियाँ बनी हैं। इस तरह यह विधि अगर सफलता-पूर्वक में लायी जाय तो भविष्य में पादप प्रजनन में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है

ऊतक्त-संवर्धन के उपयोग

1. इस विधि द्वारा कम समय व कम स्थान में अधिक पौधों को उगाया जा सकता है।

2. इस विधि द्वारा प्राप्त पौधे रोग रहित व स्वस्थ होते हैं।

3. इस विधि द्वार अच्छी फसलों के जीन (Genes) आपस में संयोजित कर नयी प्रजातियाँ निर्मित कर पादप-प्रजनन में विशेष योगदान मिल रहा है।

4. इस विधि द्वारा जमनिक द्रव्य (Germ Plasm) को इन विट्रो अवस्था में कम तापमान पर संग्रहीत कर रखा जा सकता है। इसमें पौधे का शीर्षस्थ मैरीस्टैम भाग या अग्रस्थ भाग (केला, शकरकन्द), कक्षस्थ कालिका (अदरक) या टोनो जाइगोटिक या सोमेटिक भ्रूण, (कोका, पान इत्यादि) को द्रव नाइट्रोजन (Liquid nitrogen, - 145 - 195°) पर सुरक्षित रखा जाता है। रोगाणुओं और विषाणुओं से रहित होने के कारण इसका एक देश से दूसरे देश को आसानी से

निर्यात किया जा सकता है।

5. महत्वपूर्ण उत्पादों का उत्पादन - आजकल पादप-ऊतक-संवर्धन का उपयोग महत्वपूर्ण उत्पादों (Biproducts) को बनाने में भी हो रहा है। इस प्रकार का एक उत्पाद लाल रंग (Red dye) है जिसे शिकौनिन कहते हैं। यह सौन्दर्य प्रसाधन (Cosmetics) बनाने में प्रयोग में लाया जाता है यद्यपि यह प्रयोग अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है फिर भी वैज्ञानिक ऊतक संवर्धनों द्वारा महत्वपूर्ण पादप उत्पादों को व्यापारिक स्तर पर उत्पन्न करने के लिए प्रयासरत हैं।

ऊतक-संवर्धन तकनीक काफी लम्बे समय से विदेशों में व भारत के कई प्रान्तों में प्रचलित है। हमारे देश की अनेक निजी संस्थाएं इस तकनीक द्वारा प्राप्त पौधों को विदेशों को निर्यात कर रही हैं एवं विदेशी मुद्रा का अर्जन कर रही हैं।

ऊतक-संवर्धन तकनीक काफी महंगी है। आम आदमी के लिए इसका प्रयोग करना मुश्किल है। फिर भी इस तकनीक को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा व्यापक कदम उठाये जाने चाहिए। जगह-जगह पर ऊतक-संवर्धन प्रयोगशालाएं स्थापित की जानी चाहिये, ताकि प्रयोगशाला के वैज्ञानिक इस विधि द्वारा उत्पन्न पौधों को पूर्ण रूप से विकसित कर समीपवर्ती किसानों को उपलब्ध करा सकें।

उत्तर प्रदेश के सीमान्त प्रान्त में स्थित रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला, पिथौरागढ़ द्वारा ऊतक-संवर्धन विधि द्वारा टमाटर की संकर जातियाँ, स्टाबैरी तथा कारनेशन पर सफलता पूर्वक कार्य किया जा रहा है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि ऊतक-संवर्धन द्वारा प्राप्त पौधों में वृद्धि अधिक, फल आकार में बड़े व संख्या में अधिक व फूल आकर्षक होते हैं। इस विधि द्वारा प्राप्त फलों का स्वाद भी बेहतर होता है। वर्ष भर में कई फसलें ली जा सकती हैं। इस प्रयोगशाला के वैज्ञानिक इस विधि द्वारा प्राप्त पौधों को पूर्ण रूप से विकसित कर विभिन्न गाँवों में लगाने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि ग्रामवासी अच्छी प्रजाति व उन्नत किस्म की फसल प्राप्त कर विज्ञान की इस अनुपम देन का लाभ उठा सकें। ■ ■ ■

[पृष्ठ 25 का शेषांश]

अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, भिन्न-भिन्न अस्पतालों, गिरिजाघरों तथा विश्वविद्यालयों को उपलब्ध कराने का काम किया है जो कई देशों से संबंधित हैं। यह वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सिस्टम डिजिटल टेलीफोन नेटवर्क द्वारा संचालित होता है। इसके बिम्ब इतने अधिक स्पष्ट होते हैं कि इस तंत्र की सहायता से अत्यधिक जटिल चार्टों को प्रदर्शित कर पाना संभव है। आयु- विज्ञानीय चित्रों, को भी स्पष्ट रूप से इस तंत्र द्वारा विश्व के कोने-कोने में प्रदर्शित कर पाना संभव है।

इस तंत्र की कार्य प्रणाली के अन्तर्गत् संचालक की पैड की सहायता से आडियो विजुअल संबंध पर अपना नियंत्रण बनाए रखता है। इसके द्वारा एक समूह को वार्तालाप में सम्मिलित किया जा सकता है। वार्तालाप के दौरान संबंधित स्लाइडों तथा चित्रों का प्रदर्शन करके वक्तव्य को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इंग्लैण्ड में विकसित की गई यह तकनीक अन्तर्राष्ट्रीय मानकों पर तो खरी उतरती ही है साथ ही विश्वव्यापी संगतता के लिए भी आदर्श है तथा कन्सल्टेटिव कमेटी फॉर इन्टरनेशनल टेलीफोनी एण्ड टेलीग्राफी के मानकों के अनुरूप भी है।

जी० टी० पी० वीडियो सिस्टम्स दावा करते हैं कि यह संसार में संगत उपस्करों का एक प्रभावशाली रूप है और वे अपनी इस प्रकार की सेवाएँ संसार के विभिन्न भागों तक उपलब्ध कराने में तत्पर हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा एशिया में यह वीडिओ कॉन्फ्रेंसिग टैक्नोलॉजी निकट भविष्य में उपलब्ध हो सकेगी।

वीडियोकॉन्फ्रेंसिंग टैक्नोलॉजी के आगमन से अधिक सुचारु प्रबन्धन अल्प समय में अनुक्रिया तथा अन्य संबंधी कार्य सुगम हो जाएँगे। इस टैक्नोलॉजी का लाभ विशेष रूप से आयुर्विज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में हुआ है। इसके द्वारा चिकित्सक दूरस्त विशेषज्ञों से परामर्श कम से कम समय में आमने-सामने कर पाते हैं जिसका सीधा लाभ दुर्बल रोगी को पहुँचता है। कैलीफोर्निया स्टेट यूनिवर्सिटी अपने 3,60,000 छात्र-छात्राओं तथा विश्व के अन्य देशों के 1,75,000 छात्र-छात्राओं के लिए सेवाएँ प्रदान कर रही है। वीडिओकॉन्फ्रेंसिंग टैक्नोलॉजी इस संचार-कार्यक्रम को और सुगम बना देगी।

■ ■ ■

विज्ञान के बढ़ते कदम

❑प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय
हिल साइड रोड, नई दिल्ली-110012

1. डक्ने मस्कुलर डिस्ट्रॉफी का इलाज संभव

युनाइटेड मेडिकल एण्ड डेन्टल स्कूल, लन्दन के प्रो० फ्रैन्क वाल्श का विश्वास है कि दोषपूर्ण जीन को प्रयोगशाला में तैयार किये गये कृत्रिम जीन से बदलकर डक्ने पेशी दुर्विकास (डक्ने मस्कुलर डिस्ट्रॉफी) का उपचार करना संभव है। इस ओर युनाइटेड मेडिकल एण्ड डेन्टल स्कूल के रॉयल वेटिरीनरी कॉलेज और जॉन रेडक्लिफ हस्पताल, ऑक्सफोर्ड के अनुसंधानकर्ताओं की एक टीम ने एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया है।

वंशानुक्रम द्वारा होने वाला डक्ने पेशी दुर्विकास आज 3500 में से एक बच्चे को प्रभावित कर रहा है। इस रोग की चपेट में आने वालों की पेशियाँ बाल्यावस्था में ही, लगभग 3 से 5 वर्ष की आयु के बीच, अशक्त हो जाती हैं और उनमें से अधिकतर की 25 से 26 वर्ष की आयु में ही मृत्यु हो जाती है। डक्ने मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के लिए उत्तरदायी दोषपूर्ण जीन को बदलने में प्राप्त हुई सफलता से इस विनाशकारी रोग के विरुद्ध, संघर्ष करने के लिए नई आशाएँ बँध गई हैं।

आरम्भ में यह पाया गया कि इस रोग के लिए उत्तरदायी जीन सामान्य रूप से डिस्ट्रॉफिन नामक प्रोटीन अधिक मात्रा में उत्पन्न करने लगता है। स्वस्थ पेशी में यह प्रोटीन पेशी तन्तुओं को घेरने वाली झिल्ली की अंदरूनी सतह पर टिक जाती है। यह अन्य अणुओं से जुड़ी होती है जो झिल्ली से पार हो जाते हैं और पेशी कोशिका की भीतरी सतह को इसके परिवेश से जोड़ते हैं। पर किसी प्रकार प्रोटीन की हानि होने से पेशी का बिनाश होने लगता है जो अभी भी समझ से बाहर है।

हाल ही में रोग से पीड़ित चूहों के एक विभेद के उपचार के लिए कृत्रिम जीन स्थानांतरित करने में सफलता प्राप्त की गई है। डिस्ट्रॉफिन कॉपी जीन को सुई से सीधे पेशी में लगा दिया गया और अत्यन्त आश्चर्य तो तब हुआ जबकि चूहों ने डिस्ट्रॉफिन नामक प्रोटीन का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। विकसित की जा रही इस युक्ति को यदि मापा जा सके और मनुष्यों में इसे अपनाया जाय तो यह एक जीवन क्षम रोगोपचार बन सकती है। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि यह कार्य अत्यन्त चुनौती पूर्ण है क्योंकि दोषपूर्ण जीन अभी तक खोजे गये जीनों में सबसे बड़ा है। डी० एन० ए० के इस बृहत खण्ड के अध्ययन के उद्देश्य से युनाइटेड मेडिकल एण्ड डेन्टल स्कूल के अनुसंधान कर्ता कार्यरत हैं।

2. बुढ़ापे के कारण की खोज

एलेनर रुजवेल्ट कैन्सर सेन्टर, डेनवर के डेविड पैटरसन ने मैसाचुसैट्स जनरल हॉस्पिटल, नाथ वैस्टर्न यूनिवर्सिटी मेडिकल स्कूल, मेकगिल यूनिवर्सिटी, मॉन्ट्रिअल, तथा जनरल हॉस्पिटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मॉन्टिअल के अनुसंधानकर्ताओं के सहयोग से 'लोऊ गहरिग' रोग के नाम से ज्ञात पारिवारिक पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य (एमापोट्रॉफिक लेटरल स्क्लेरोसिस) के लिए उत्तरदायी एक जीन दोष ढूँढ़ निकाला है। इस संदर्भ में 400 परिवारों को

सम्मिलित करते हुए एक अध्ययन के उपरान्त परिणामों को अभिलिखित किया गया है। पेशी शोषी काठिन्य से संबंधित ग्यारह अन्य उत्परिवर्तनों को गुणसूत्र (क्रोमोसोम) 21 पर उपस्थित एक जीन में पाया गया। एक स्वस्थ मनुष्य में यह जीन एक प्रकार के प्रोटीन-उत्पादन का संचालन करता है जो ऑक्सीजन-मुक्त मूलक नामक जीवविषयों से शरीर को बचाए रखता है। ये जीवविष सामान्य उपापचय के दौरान सह उत्पाद के रूप में बनते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अत्यधिक मात्रा में ये मुक्त मूलक कोशिका को क्षतिग्रस्त करते हैं तथा साथ ही वृद्धावस्था प्राप्त करने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सुपर ऑक्साइड डिस्म्युटेस नामक यह जीन प्रोटीन डी० एन० ए० तथा अन्य कोशिका अवयवों को क्षति पहुँचाने से पूर्व ही विनाशक (भंजक) मुक्त मूलकों को विखंडित करने में सहायता करती है। सुपर ऑक्साइड डिस्म्युटेस में किसी भी प्रकार से रुकावट आ जाने पर रक्षण सामर्थ्य को क्षति पहुँचती है। सुपर ऑक्साइड डिस्म्युटेस जीन का अनेक वर्षों तक अध्ययन करने वाले अनुसंधानकर्ता का विश्वास है कि अधिक समय होने पर संचयी ऑक्सीकरणी क्षति का कारण विभिन्न अंगों की कार्यक्षमता वृद्धावस्था आने पर शिथिल पड़ जाती है। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य के लिए उत्तरदायी जीन दोष के संबंध में प्राप्त हुई इस नई जानकारी से सामान्य वृद्धावस्था प्राप्त करने की दर में कमी लाने वाली धारणा को बल मिलता है तथा साथ ही वय संबंधी कुछ रोगों का ऑक्सीकरणी क्षति के निवारण से उपचार संभव हो सकेगा। इस अनुसंधान से अनेक अन्य लाभ उठाए जाने की संभावना को भी बल मिलता है।

पैटरसन ने वयोवृद्धि की प्रक्रिया का अनेक वर्षों तक अध्ययन किया है। चूंकि पेशी, शोषी पार्श्वपथ काठिन्य वयस्कों में ही पाया जाता है, इसलिए पैटरसन का विचार है कि वयोवृद्धि की प्रक्रिया के संबंध में इसे प्रभावी मॉडल के रूप में लाया जा सकेगा। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य मस्तिष्क एवं सुषुम्ना में प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं की ही एक प्रकार की अव्यवस्था है। तंत्रिका कोशिकाओं की पेशियों को तथा दुर्बल होते हुए हाथ और पैरों को सूचना भेजने की क्षमता क्षीण हो जाती है और बोलने, निगलने तथा सांस लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य के दो रूप होते हैं। पारिवारिक-जो कि लगभग 48 वर्ष की आयु में होता है और कदाचनिक-जो कि लगभग 58 वर्ष की आयु में होताहै। यह रोग आम तौर पर 5 वर्ष में ही मृत्यु का कारण बन जाता है। इसके उपचार के संबंध में जानकारी प्राप्त नहीं है। कहीं अब जाकर अनुसंधानकर्ता इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के संबंध में स्पष्टीकरण दे पाने में तथा बुढ़ापे के क्षेत्र में इसकी संबद्धता दर्शाने में सक्षम हुए हैं।

3. अब टैक्नेगैस द्वारा रोग निदान सरल

आस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के बिल बर्च ने टैक्नेगैस नाम देते हुए एक ऐसे पदार्थ का विकास किया है जिसकी सहायता से अनेक प्रमुख रोगों तथा बीमारियों के निदान में और अधिक यथार्थता लायी जा सकेगी।

वैसे टैक्नेगैस का उपयोग सम्पूर्ण विश्व में पहले से ही अस्पतालों में किया जा रहा है। इसके द्वारा एक सरल और प्रभावकारी विधि के रूप में फुफ्फुसी अनतः शल्यता (Pulmonary embolism) अथवा फुफ्फुसी में रक्त के जमने के संबंध में निदान किया जाता है।

बकी बॉल जो कि अत्यन्त स्थिर, गोलाकार कार्बन अणु हैं, का उपयोग सर्वप्रथम टैक्नेगैस के रूप में ही संभव हुआ। टैक्नेगैस में प्रत्येक बकी बॉल टैक्नेशियम नामक विकिरण समस्थानिक एक अत्यन्त सूक्ष्मकण को परिबद्ध (Enclose) किये होती है, जिसे यह फुफ्फुस में ले जाती है, जबकि शरीर की सामान्य क्रियाओं में बाधा भी नहीं आने पाती। शरीर में रेडियो ऐक्टिव पदार्थ पहुँचाने के उद्देश्य से यह एक आदर्श कार्बनिक वितरक प्रणाली समझी जा सकती है, जिसकी सहाया से क्रमवीक्षण तकनीक (Scanning technology) द्वारा चित्रण किया जा सकता है।

बर्च एक ऐसे अनुसंधान कार्य की योजना बनाने में संलग्न हैं जिसके अनत्र अस्थिमज्जा व्याधियों (Bonemarrow disorders) आदि के लिए निदान के उद्देश्य से गैस को सुई के रास्ते शरीर में प्राविष्ट किया जा

.सके, जबकि पेट की गड़बड़ियों के लिए मुख के रास्ते।

विश्वास किया जाता है कि संभावनाओं का अन्त है ही नहीं, क्योंकि बकी बॉल नामक बकमिन्सटर फुल्लरीन के गुण अद्वितीय (Unique) हैं जो कि स्वयं इसका महत्वपूर्ण अवयव है। इसकी संरचना के बारे में निशृचित रूप में पता नहीं है, लेकिन यह तो निश्चित है कि इसमें बकी बॉलें होती हैं पर यह ज्ञात नहीं है कि क्या रेडियोऐक्टिव टेक्नेशियम आन्तरिक रूप से बंधा है अथवा बन्ध किसी अन्य रूप में उपस्थित है।

फुप्फुसी अनतः शल्यता वास्तव में एक घातक अवस्था है और इसका निदान करना कठिन हो जाता है क्योंकि इसके लक्षण जो कि विशेष रूप से दम घुटना तथा छाती में भयंकर पीड़ा इत्यादि हैं, वास्तव में हृदयाघात और यहाँ तक कि पसली टूटने पर होने वाले लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। यदि निदान स्पष्टरूप से न हो सके तो परिणाम जानलेवा सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि फुप्फुसी अनतःशल्यता के लिए उपयुक्त ओषधि उपचार घातक सिद्ध हो सकता है।

टैक्नेगैस द्वारा फुप्फस के वायु मार्गों का चित्रण स्पष्ट रूप से संभव हो पाता है। रुधिर-प्रवाह में टैक्नेशियम का प्रयोग भी करते हुए इसका संयोजन करने पर निदान शत-प्रतिशत सही होता है।

तरल टैक्नेशियम तथा शुद्ध ग्रैफाइट मिलाकर तापमान को आर्गन से भरे कोष्ठ में 25000 से० तक बढ़ाने पर स्पष्ट फुप्फुस एयरोसाऑल मिला।

सिडनी के एक निर्माणकर्ता के साथ सहयोग करके एक ऐसी मशीन का विकास किया गया है जो कि रोगी को टैक्नेगैस के अंतः श्वसन (inhale) के योग्य बनाती है। साथ ही एक जनित्र का भी विकास किया गया है जो कि गैस को केवल 15 सैकण्डों में ही उत्पन्न करने में सक्षम है। कुछ मामूली सुधारों के उपरान्त प्रभावशाली रूप से इस मशीन का उपयोग शिशुओं तथा संन्यस्त रोगियों (Comatose patients) के लिए किया जा सकेगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि और अधिक अनुसंधान होने पर निदान संबंधी क्षेत्र में बढ़ोत्तरी ही होगी।

यदि टैक्नेगैस उसी रूप में प्रकट होती है, जैसा कि अनुमानित है और अनुभव संकेत देते हैं, तो अवश्य ही कार्बन गुच्छ (Carbon Cluster) श्रेय का पात्र होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुसंधान के बाद शरीर में कहाँ क्या है, वह कब गति करता है, जाना जाना सुगम अवश्य हो जाएगा (आस्ट्रेलियन साइंस एण्ड टैक्नोलॉजी न्यूजलैटर, जनवरी 1994 पृ० 4)।

4. बिना यात्रा किये अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन संभव

अब महत्वपूर्ण विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलनों का आयोजन किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन करने वाले मेज़बान देश के आयोजकों को सम्मेलन की सफलता के लिए न केवल भारी व्यय ही वहन करना बड़ता है अपितु बहुत पहले से ही आयोजन से संबंधित तैयारियाँ प्रारंभ करनी पड़ती हैं। विभिन्न देशों से प्रतिभागी हवाई यात्रा के सहारे आते-जाते हैं लेकिन शायद भविष्य में इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की आयोजन-प्रणाली में पूर्ण रूपेण बदलाव आ जाएगा। इस बदलाव की संभावनाओं को उजागर करती है- वीडिओकॉन्फ्रेंसिंग इक्विपमैंट के समान एक प्रणाली जिसका विकास ब्रिटेन में किया गया है।

इस प्रणाली के आगमन से विश्व स्तर पर संचार के क्षेत्र में एक क्रान्ति-सी आ गई है। इस तंत्र की सहायता से अधिकारिओं और उनके संगठनों के बीच आवश्यक विचार-विमर्श पूर्ण होने के पश्चात् निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। इस तंत्र द्वारा संसार के कोने-कोने में बैठे संबंधित लोगों से आमने-सामने प्रत्यक्ष रूप से बात कर पाना संभव होने के कारण यात्रा के दौरान लगने वाल समय और आने वाले व्यय से बचा जा सकता है। अधिकारीगण अपने डेस्क पर विद्यमान इस तंत्र द्वारा अल्प समय में ही संबंधित दूरस्त विदेशी अधिकारियों से संबंध साध लेते हैं।

दक्षिण इंग्लैण्ड में बार्कशायर मेडनहैड की एक कम्पनी जी० टी० पी० वीडियो सिस्टम्स ने इस प्रकार के तंत्रों को

[शेष पृष्ठ 21 पर]

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	35
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	25
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	25
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	25
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

मार्च 1997

मूल्य रु० 3.50
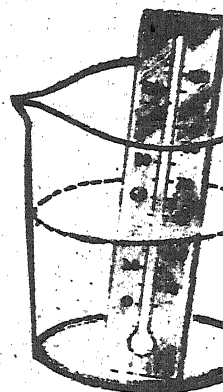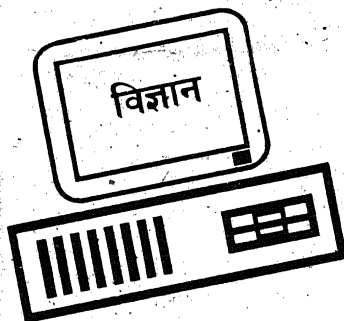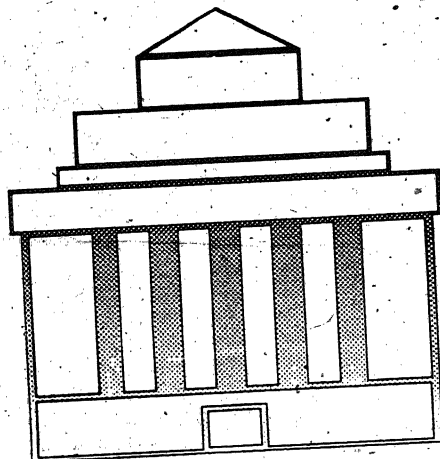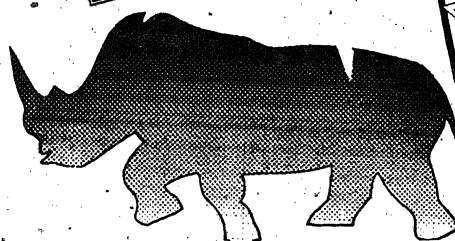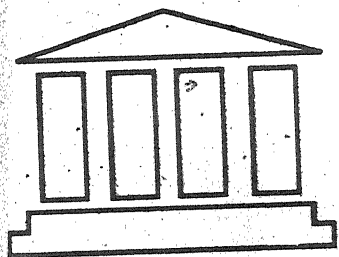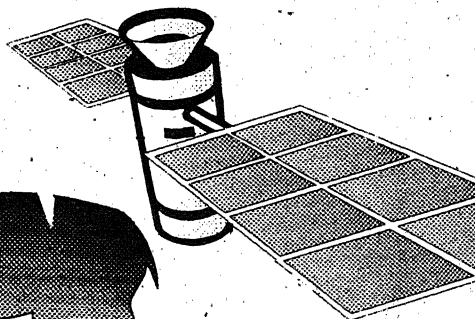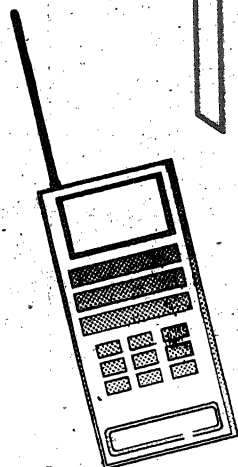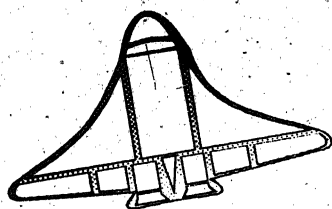
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
मार्च 1997 : वर्ष 82 अंक 12
मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक	सम्पादक	मुद्रक	सम्पर्क
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	कम्प्यूटर कम्पोजर	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

'विज्ञान' के जनवरी और इस अंक के बीच में ऐसी बहुत सी घटनायें घटी हैं, अनेक सूचनायें हैं जिनके विषय में आपसे बात करनी है। कहने को तो बहुत कुछ है, किन्तु पृष्ठ-सीमा है। 84 वें भारतीय विज्ञान कांग्रेस 1997 के अवसर पर भारतीय विज्ञान में आई गिरावट को लेकर भी चर्चा हुई, यह शुभ लक्षण है। किन्तु सत्य को स्वीकार न करके दोष किसी न किसी के मत्थे मढ़ने का प्रयास किया गया। इस बात पर चिंता व्यक्त की गयी कि विद्यार्थियों की रुचि विज्ञान में कम हो रही है। विधिवत विज्ञान की शिक्षा प्राप्त युवावर्ग कुछ अन्य प्रकार की नौकरियों की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है। ऐसा विचार व्यक्त करने वालों में विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ० एस० के० जोशी, दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर वी० आर० मेहता और एटॉमिक एनर्जी कमीशन के चेयरमैन डॉ० आर० चिदम्बरम प्रमुख थे। और इस पर जब विज्ञान और तकनीकी के एक पूर्व केन्द्रीय राज्यमंत्री से अपने विचार व्यक्त करने को कहा गया तो उनका सीधा सा उत्तर था- 'जब पिछले दिनों सत्ता में आई सरकारों को विज्ञान में रुचि नहीं है तो युवा वर्ग पर दोषारोपण क्यों?' इसलिए यदि विज्ञान की ओर विद्यार्थियों की रुचि को मोड़ना है तो विज्ञान और तकनीकी पर होने वाले व्यय में वृद्धि के साथ ही साथ विज्ञान में शिक्षा ग्रहण करने वालों के लिए आकर्षक नौकरियों की भी व्यवस्था करनी होगी। ध्यान रहे कि जब कोई इंजीनियर, डॉक्टर या वैज्ञानिक किसी दूसरी नौकरी में चला जाता है तो उसकी शिक्षा पर लगा हुआ देश का धन 'नेशनल वेस्ट' है, राष्ट्रीय क्षति है।

एक ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक डॉ० वी० कृष्णमूर्ति ने देश में गणित की शिक्षा में आई गिरावट का दोषी गणित के अध्यापकों को ठहराते हुए कहा कि अध्यापक गणित को मुश्किल तरीके से पढ़ाते हैं। डॉ० कृष्णमूर्ति के अनुसार गणित की पढ़ाई विभिन्न शाखाओं यथा जियोमैट्री, एलुजेब्रा और एनैलिसिस में न बाँटकर वरन् एक ऐसे ऑरकेस्ट्रा के रूप में होना चाहिए जिसमें विभिन्न राग-रागनियाँ शामिल हों।

एक अच्छा समाचार। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के वर्तमान प्रधानमंत्री और हिन्दी विज्ञान लेखन के शलाका पुरुष डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को सम्मान और पुरस्कारों की कड़ी में एक और सम्मान- 'विज्ञान भूषण' सम्मान-उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रदान किया गया है। डॉ० शिवगोपाल मिश्र को परिषद् परिवार की बधाई।

कुछ दुःखद समाचार भी हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में अध्यापक रह चुके अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वनस्पति विज्ञानी डॉ० कृष्णसहाय बिलग्रामी, अंतरिक्षविज्ञानी कार्ल सागा और "प्लूटो" के खोजी खगोलशास्त्री क्लाइड टॉम्बो का पिछले दिनों निधन हो गया। इन्हें परिषद् परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है।

—**प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव**

■ ■ ■

भौम-जल संसाधनों का सुप्रबन्ध : क्यों और कैसे

❑ शिवेन्द्र नाथ राय एवं द्रोणमूराजू वेंकटरमण

राष्ट्रीय भू भौतिकीय अनुसंधान संस्थान,
हैदराबाद-500007

जनसंख्या विस्फोट तथा कृषि एवं औद्योगिक विकास के फलस्वरूप जल संभरण की मांग में दिनोदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। आज के परिप्रेक्ष्य में केवल सतही जलस्रोत भू- सतह के नीचि विद्यमान है। भू-सतह के नीचे पाये जाने वाले जल को भौम जल के नाम से जाना जाता है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर तरल रूप में पाये जाने वाले कुल ताजे जल का 97% भाग भौम जल के बढ़ते हुए योगदान की वजह से भौम जलस्रोतों को कई प्रकार की अवांछनीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिससे उनकी गुणवत्ता व दीर्घकालीन उपयोग के बारे में प्रश्न-चिन्ह लग चुका है। इस विश्व-व्यापी समस्या ने विश्व भर के वैज्ञानिकों, अभियन्ताओं व प्रबन्धकों का ध्यान भौम जल के स्रोतों के सुप्रबन्ध की ओर आकर्षित किया है जिससे इनकी गुणवत्ता व दीर्घकालीन उपयोगिता को सुनिश्चित किया जा सके। इस दिशा में बहुत से व्यावहारिक व सैद्धान्तिक शोधकार्य हुए हैं। इस शोध-प्रपत्र में भौम जल स्रोतों के सुप्रबन्ध से संबन्धित उपायों की व्याख्या की गयी है। इस कार्य में गणितीय मॉडलों का विशेष योगदान है जिसकी चर्चा विशेष रूप से की गयी है।

प्रस्तावना

भौम जल पृथ्वी के जलीय-चक्र का एक महत्वपूर्ण भाग है। सूर्य की गर्मी के प्रभाव से समुद्रों, नदियों, झीलों, तालाबों आदि सतही जल स्रोतों का पानी वाष्प के रूप में परिवर्तित होकर आकाश की तरफ उड़ जाता है। यही वाष्प आकाश में सर्दी के प्रभाव से बादल का रूप धारण कर लेता है तथा वर्षा के रूप में पुनः पृथ्वी की ऊपरी सतह पर लौट आता है। फिर वह भू-सतह के नीचे शैल समूहों में प्रविष्ट कर जाता है। भू-सतह से होकर शैल समूहों में जल प्रवेश की क्रिया को अंतः स्यंदन (Infiltration) कहते हैं। भू-सतह के नीचे पाये जाने वाले जल को भौम जल के नाम से जाना जाता है। शैल समूहों के पारगम्य रन्ध्रों से होकर प्रवाहित होने वाला यही भौम जल प्राकृतिक अथवा कृत्रिम बहावों द्वारा पुनः भू-सतही जल स्रोतों में पहुँचता है। इस प्रकार से यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है जिसे जलीय-चक्र के नाम से जाना जाता है। इस जलीय-चक्र में भौम जल के स्थान को चित्र में दर्शाया गया है।

जलीय चक्र में भौम जल का स्थान
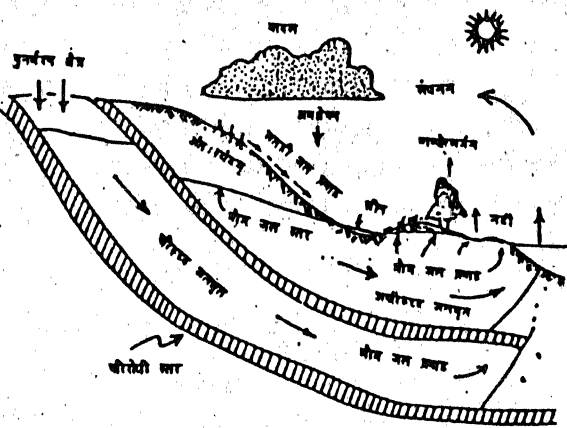
भौम जल कई रूपों में पाया जाता है। वह भौम जल जो अवसादी (Sedimentary) शैलों के निक्षेपण काल में उनके रन्ध्रों में बन्द होकर रह जाता है सहजात जल (Connate water) कहलाता है। वह भौम जल जो मैग्मीय या ज्वालामुखीय उत्पत्ति का होता है, मैग्मज (Juvenile) जल कहलाता है। वे पारगम्य रन्ध्र युक्त शैल समूह जो साधारण क्षेत्रीय परिस्थितियों में भौम जल को धारण कर सकते हैं तथा जिनसे होकर भौम जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रवाहित हो सकते हैं, जलभृत (Aquifer) कहलाते हैं। जलभृतों में पाया जाने वाला भौम जल ही मुख्य रूप से उपयोग के लिए उपलब्ध होता है। इसके विपरीत अपारगम्य रन्ध्र युक्त कुछ ऐसे शैल समूह होते हैं जो भौम जल को धारण तो कर सकते हैं लेकिन इन शैल समूहों से होकर भौम जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रवाहित नहीं हो सकते हैं। इसका मुख्य कारण है कि इसमें विद्यमान रन्ध्र एक दूसरे से जुड़े नहीं होते हैं। इन अपारगम्य शैल समूहों को एक्वयक्लड (Aquiclude) कहते हैं।

जलभृत मुख्यतः क्षेत्रीय विस्तार के होते हैं तथा उनमें जल का पुनःपूरण प्राकृतिक तथा कृत्रिम स्रोतों द्वारा होता है। प्राकृतिक स्रोतों में अवक्षेपण, जलधाराएं, तालाब व झील प्रमुख हैं। कृत्रिम स्रोतों में प्रमुख हैं मानव निर्मित पुनः भरण क्षेत्र, सिंचाई, नहरें आदि जिनकी तलहटी से रिसकर पानी जलभृतों में संचित होता रहता है। जलभृतों की इस विशेषता की वजह से इनका उपयोग भूमिगत संचायक जलाशय के रूप में किया जाता है। वर्षा तथा बाढ़ के समय सतही जल को पुनः पूरण की विभिन्न विधियों द्वारा जलभृतों में संचित कर लिया जाता है, जिसका उपयोग भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर किया जाता है।

जलभृतों को मुख्य रूप में दो श्रेणी में विभाजित किया जाता है। वे जलभृत जिसमें भौम जल स्तर संतृप्त भाग के ऊपरी सतह का काम करता है तथा निचली सतह परिरोधी स्तरों से बद्ध होती है, अपरिरुद्ध (Unconfined) जलभृत कहलाते हैं। दूसरे वे जलभृत होते हैं जो ऊपर तथा नीचे दोनों तरफ से परिरोधी स्तरों से बद्ध होते हैं, इन्हें परिरुद्ध (Confined) जलभृत कहते हैं। परिरुद्ध जलभृतों का पुनःपूरण उन स्थानों से होता है जहाँ परिरोधी स्तरें भू-सतह तक आ जाती हैं। अपरिरुद्ध जलभृतों में भौम जल दाब वायुमण्डलीय दाब के बराबर होता है जबकि परिरुद्ध जलभृतों में जलदाब उपरशायी परिरोधी स्तर की उपस्थिति की वजह से वायुमण्डलीय दाब से अधिक होता है।

समस्या एवं निवारण

गृह कार्यों, कृषि, ऊर्जा उत्पादन एवं औद्योगिक विकास हेतु जल संभरण की मांग में दिनोदिन बढ़ोत्तरी हो रही है। जल संभरण की इस बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए भौम जल के उपयोग में गुणात्मक वृद्धि हुई है और यह वृद्धि भविष्य में भी जारी रहेगी। इस कार्य के लिए भौम जल को नलकूपों द्वारा जलभृतों से बाहर निकाला जाता है। यदि जलभृतों से बाहर निकाले गये भौम जल का आयतन पुनः पूरण द्वारा प्राप्त जल से अधिक होता है तो उस अवस्था में जलभृतों में उपलब्ध भौम जल की मात्रा में लगातार कमी होती जाती है जिससे क्षेत्रीय भौम जल संतुलन बिगड़ जाता है। इसकी वजह से भौम जल सतह में गिरावट, समुद्रीय तटों में स्थित ताजे जल वाले जलभृतों में लवणयुक्त समुद्रीय जल का अतिक्रमण, जमीन का धसना, जल संचयन की क्षमता में ह्रास जैसी कई तकनीकी व प्राकृतिकी समस्याएँ पैदा होती हैं। इन सब समस्याओं से बचने तथा जल संभरण की मांग को पूरा करने के लिए क्षेत्रीय भौम जल संतुलन को बनाए रखना अति आवश्यक होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कई कृत्रिम उपाय प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें से एक प्रमुख उपाय है जलभृतों का विशेष रूप से बनाए गये पुनर्भरण क्षेत्रों से पुनःपूरण कराना। इसके द्वारा सतही जल को भविष्य में उपयोग के लिए जलभृतों में संचित किया जाता है। इसके लिए अपरिरुद्ध जलभृत परिरुद्ध जलभृतों की तुलना में ज्यादा उपयोगी होते हैं। क्योंकि परिरुद्ध जलभृतों में जल संचयन की क्षमता उसकी सरन्ध्रता पर निर्भर करती है। साथ ही वह अपने ऊपरी सतह के पूरे विस्तार क्षेत्र में पुनःपूरण क्रिया द्वारा जल ग्रहण कर सकता है।

उन क्षेत्रों में जहाँ भौम जल सतह भू-सतह के पास होता है, सिंचाई द्वारा तथा नहरों की तलहटी से हुए रिसाव

द्वारा जलभृतों के पुनःपूरण से भौम जल सतह भू-सतह के और पास आ जाता है जिससे पौधों के जड़ों को मिलने वाले आवश्यक ऑक्सीजन में कमी हो जाती है। साथ ही उपयोग में लाये गये रासायनिक खाद के लवण प्रधान अवशेषों की मात्रा का अनुपात जमीन के ऊपरी उपजाऊ भाग में बढ़ जाता है जिससे जमीन की उपजाऊ शक्ति का ह्रास होने लगता है। इन परिस्थितियों में भौम जल सतह को नलकूपों अथवा जल निकासी के और तरीकों को उपयोग करके वांछित स्तर तक नीचे लाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भौम जल सतह की गतिशीलता जलभृतों के पुनः पूरण या उनसे निकाले गये भौम जल के ऊपर निर्भर करती है। इसलिए भौम जल संसाधनों के सुप्रबन्ध के लिए प्रस्तावित उपायों के परिणामस्वरूप भौम जल सतह में समय व स्थान के साथ होने वाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान आवश्यक है। पूर्वानुमान के आधार पर ही प्रस्तावित उपायों में फेर बदल करके उपयुक्त उपायों का चयन किया जा सकता है जिससे भौम जल सतह को वांछनीय स्तर पर स्थिर रखकर भौम जल के क्षेत्रीय संतुलन को बनाए रखा जा सकता है।

भौम जल सतह में होने वाले परिवर्तनों के पूर्वानुमान के लिए गणितीय मॉडलों का प्रयोग बहुत ही सार्थक सिद्ध हुआ है। इस विधि में जलभृतों में भौमजल प्रवाहों को गणितीय समीकरण द्वारा वर्णित किया जाता है। पूर्वानुमान की समस्या का हल इन्हीं समीकरणों के हल में निहित होता है। उदाहरण के तौर पर अपरिरुद्ध जलभृत में भौमजल के प्रवाह को निम्नलिखित गणितीय समीकरण द्वारा वर्णित किया जाता है।

$$\frac{d}{dx}\left(kh\frac{dh}{dx}\right)+\frac{d}{dy}\left(kh\frac{dh}{dy}\right)+N(x,y,t)=Sy\frac{dh}{dt}$$

इसमें K पारगम्यता गुणांक है, N पुनःपूरण की दर है, Sy. विशिष्ट प्राप्ति है, h अवलोकन समय t, तथा विचाराधीन स्थान, (x, y) पर किसी निर्धारित सतह के सापेक्ष नापा हुआ परिवर्तनीय भौम जल सतह की ऊंचाई है। इस समीकरण के हल द्वारा हम h का मान ज्ञात कर सकते हैं। इसके लिए K, N (x, y, t) Sy का मान तथा जलभृतों में आरम्भिक भौम जल सतह की ऊँचाई व उसकी सीमाओं पर भौम जल प्रवाह की दशा (boundary condition) का पूर्वज्ञान होना आवश्यक है।

भौम जल संसाधनों के सुप्रबन्ध से जुड़ी एक और समस्या भौम जल की गुणवत्ता से संबन्धित है। कल-कारखानों, गावों तथा शहरों से निकला हुआ प्रदूषित जल अंतः स्यंदन द्वारा जलभृतों में पहुँच कर उसमें विद्यमान ताजे जल को दूषित कर देता है जिसके परिणामस्वरूप दूषित भौम जल किसी भी कार्य में प्रयोग के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए भी गणितीय मॉडलों का प्रयोग बड़ी विश्वसनीयता के साथ किया जा रहा है। मॉडलों के उपयोग से दूषित जल के प्रवाह की दिशा, उसका उद्गम स्थान तथा उससे बचने के लिए प्रस्तावित उपायों की वैधता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जाती है।

इस संबन्ध में एक और महत्वपूर्ण बात है लोगों को भौम जल के उपयोग के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराना तथा उसके दुरुपयोग से उत्पन्न हानियों को उजागर करना। इस कार्य को जन आन्दोलन का स्वरूप प्रदान करके सरकारी तन्त्रों तथा स्वयंसेवी संगठनों द्वारा जन-जन तक पहुँचाना चाहिए।

■ ■ ■

वायुमण्डल के घटक जो हमारे मौसम को प्रभावित करते हैं

❑ डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी कॉलेज
भागलपुर-813210 (बिहार)

मौसम विज्ञान संबंधी हाल में किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि पृथ्वी के मौसम में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। इन आँकड़ों से संकेत मिलता है कि सन् 1880 ई० से 1940 ई० के बीच पृथ्वी के वायुमण्डल के औसत तापमान में 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि हुई तथा 1940 ई० से 1970 ई० के बीच इसके औसत तापमान में 0.3 डिग्री का ह्रास हुआ। वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी के तापमान में उपर्युक्त परिवर्तन इस ग्रह के ताप बजट में परिवर्तन को प्रतिबिम्बित करता है। तापमान में परिवर्तन तभी आता है जब वायुमंडलीय परिभ्रमण (ऐटमौसफेरिक सर्कुलेशन) में बृहद पैमाने पर परिर्वत होता है या वायुमण्डल के घटकों में परिवर्तन आता है। संसार भर के वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पृथ्वी के मौसम में उपर्युक्त परिवर्तन वायुमंडलीय प्रदूषण से प्रभावित होता है तथा उससे पूर्णतः संबंधित है।

मानव के दैनिक कार्यकलापों के उप-उत्पाद के रूप में अनेक प्रकार के विजातीय पदार्थ पृथ्वी के वातावरण में पहुँचते रहते हैं। इन विजातीय पदार्थों में कार्बन डाइऑक्साइड तथा धूल-कण की भूमिका पार्थिव मौसम में परिवर्तन लाने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड के एक अणु का औसत आवास काल अनेक वर्षों का होता है। ईंधनों के जलने से उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड वायु संचालन द्वारा वायुमंडल के सभी भागों में अच्छी तरह मिश्रित हो जाती है। अनुसंधानों से पता चला है कि खनिज तेल तथा खनिज कोयला के जलाने से लगभग 10 अरब मीट्रिक टन कार्बनडाइऑक्साइड प्रतिवर्ष वायुमंडल में पहुँचती है। हवाई द्वीप तथा अंटार्कटिका जैसे दूर-दराज़ के क्षेत्रों के ऊपर स्थित वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की उपस्थिति की परिभाषा की सही माप से पता चलता है कि उपर्युक्त प्रकार का मिश्रण काफी अच्छी तरह चलता रहा है। विश्व स्तर पर वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि सन् 1954 ई० से अब तक लगभग 0.25 प्रतिशत हुई है।

हमारे मौसम को प्रभावित करने वाले दूसरे प्रमुख वायुमंडलीय घटकों में शामिल हैं धूल-कण। यह पाया गया है कि भू-सतह के निकट स्थित वायुमंडल में प्रवेश करने वाले धूल-कणों का औसत आवास काल सिर्फ चन्द दिनों का होता है। धूल कणों का स्रोत इतना सर्वव्याप्त है कि ये कण वायुमंडल के काफी बड़े भाग में फैल जाते हैं, हालाँकि इनकी सघनता ऊँचे स्थानों पर या दूर-दराज़ के स्थानों पर उस सघनता की तुलना में बहुत कम रहती है जो शहरी क्षेत्रों या औद्योगिक स्थानों पर पायी जाती है। पूरे विश्व स्तर पर वायुमंडल में उपस्थित धूलकणों की संपूर्ण मात्रा लगभग दस लाख टन है।

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड तथा धूलकण दोनों की उपस्थिति हमारे मौसम के लिये हानिकारक पायी गयी

है। ये दोनें ही घटक पार्थिव ताप-बजट में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने की सामर्थ्य रखतें हैं। जहाँ तक कार्बन डाइऑक्साइड का प्रश्न है, यह लम्बी तरंग दैर्ध्य वाले उन तापीय विकिरणों को सोख लेता है जो भूसतह से निकल कर बाह्य अंतरिक्ष की ओर जाते हैं तथा इन शोषित ताप विकिरणों में से कुछ अंश को पुनः भू-सतह की ओर वापस लौटा देता है। इस प्रकार वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड एक प्रकार का ग्रीन हाउस प्रभाव (हरित पौध गृह प्रभाव) पैदा करता है तथा मौसम को गर्म करने में अपना योगदान देता है।

जहाँ तक वायुमंडल में उपस्थित धूल-कणों का प्रश्न है, स्थिति कार्बन डाइऑक्साइड की तुलना में अधिक जटिल है। ये धूल-कण वायुमंडल से गुजर कर पृथ्वी की सतह की ओर जाने वाले सौर-विकिरणों के एक अंश को सोख लेते हैं तथा दूसरे अंश को अंतरिक्ष की ओर विकीर्ण कर देते हैं। इसका अंतिम प्रभाव पृथ्वी पर क्या पड़ेगा, यह निर्भर करता है, (i) सौर विकरणों के अवशोषण तथा उन्हें पुनः अंतरिक्ष की ओर लौटाने में धूल-कणों की दक्षता, (ii) भू-सतह से धूल कणों की ऊँचाई, तथा (iii) धूल कणों के ठीक नीचे स्थित भूसतह के कुछ भौतिक गुणों पर। इन समस्याओं से सम्बन्धित अध्ययनों में प्रायः यह मान लिया जाता है कि धूल-कणों द्वारा अंतरिक्ष में वापस भेजे जाने वाले विकिरण का परिमाण उनके द्वारा अवशोषित विकिरणों के परिमाण से अधिक है। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि इसके कारण पृथ्वी का मौसम धीरे-धीरे ठंडा होता जायेगा। अधिक ऊँचाई वाले धूल-कणों (जैसे ज्वालामुखी से निकलने वाले धूल-कण) के द्वारा निश्चित रूप से मौसम को ठंडा होता पाया गया है। परन्तु कम ऊँचाई वाले धूल-कण (जो मानव कार्य कलापों के कारण पैदा होते हैं, जैसे खनिजों के खनन या कारखानों की वजह से) मौसम को गर्म करने में योगदान देते हैं।

वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के कारण मौसम पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में मनाबे नामक एक अमेरिकी वैज्ञानिक तथा उसके साथियों ने एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार वायुमंडल में 10 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड की वृद्धि होने पर निम्न ऊँचाई वायुमंडल के तापमान में औसत रूप से 0.3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है। साथ ही साथ 10 किलोमीटर से अधिक ऊँचाई पर स्थित वायुमंडल के तापमान में कुछ कमी आती है।

कुछ शोधकर्ताओं ने मानव कार्य-कलापों का कारण लम्बे समय तक वायुमंडल में शामिल होने वाले धूलकणों के कारण तापमान में परिवर्तन के संबंध में गहन अध्ययन किये हैं। परन्तु ये अध्ययन कुछ कल्पनाओं पर आधारित हैं। अब संसार के लगभग सभी वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि कम ऊँचाई पर उपस्थित धूलकणों के कारण तापमान पर पड़ने वाला प्रभाव ठंडक उत्पन्न न कर कुछ गर्मी उत्पन्न करने का है तथा इसी कारणवश ईंधनों के जलने से उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड द्वारा उत्पन्न गर्मी के पूरक के रूप में कार्य करता है। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि वायु प्रदूषण के कारण सन् 1880 ई० से 1940 ई० तक पृथ्वी के वायुमंडल के तापमान में औसत 0.6 डिग्री सेल्शियस की वृद्धि हुई।

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड तथा धूलकणों की वृद्धि के फलस्वरूप तापमान में परिवर्तन के कारण बादलों के निर्माण की गति प्रभावित हो सकती है। धूलकणों की उपस्थिति के कारण जलबूँदों के निर्माण हेतु असंख्य नाभिकों की उपलब्धता के कारण बादल निर्माण की गति बढ़ सकती है। ये सभी घटनायें अंततः पृथ्वी के मौसम को प्रभावित करती हैं।

■ ■ ■

गिरते जलस्तर का गहराता संकट

❑ विनय राणा

डी-753, सरस्वती विहार,
दिल्ली-110034

जल, भूमि एवं हरितमा का आपस में एक संतुलन है। इस संतुलन पर प्रभाव पड़ते ही भूमि की उत्पादकता पर असर पड़ता है और जल का स्तर मनुष्य की पहुँच से दूर हो जाता है। इस आपसी निर्भरता को ध्यान में रखते हुए नदी के प्रवाह क्षेत्र में पेड़ों के विस्तार पर जोर दिया जाना चाहिए। भारत जैसे भूभाग के लिए जहाँ कुछ महीने की मानसूनी वर्षा और हिमालय, विंध्य एवं पश्चिमी घाट की नदियों के जल के ऊपर यहाँ के प्राणियों का जीवन निर्भर करता है, वहाँ यह आवश्यक हो जाता है कि मानसूनी वर्षा की जलराशि को पौधे, जानवर और मनुष्यों के लिए सुरक्षित रखा जाए। वर्षा का जल पर्याप्त मात्रा में स्थिर बनाए रखने के लिए दो ही रास्ते हैं:- पहला नदियों में आए अतिरिक्त जल को समुद्र में तीव्र गति से जाने से रोकना एवं दूसरा अन्तः स्रोत वाले कूप और रिसन के दर को बढ़ाना। इन दोनों ही कार्यों के लिए घने जंगलों की वृद्धि आवश्यक है। इस समय भारत में 48 प्रतिशत जलराशि वाष्प के रूप में उत्सर्जित हो जाती है एवं 52 प्रतिशत जल ही कृषि, उद्योग एवं घरेलू कार्यों में प्रयुक्त हो पाता है।

शीतोष्ण कटिबन्ध में उष्णकटिबन्ध के समान जल को सुरक्षित रखने की समस्या ज्यादा नहीं है, वरन् शीतोष्ण क्षेत्र में नदी के प्रवाह को सामान्य रखने के लिए लोग जंगलों को काटने लगते हैं। भारत में जंगलों को काटा जाना जलराशि में वृद्धि नहीं कर सका, उल्टे मानसून के दिनों में बाढ़ की अभिवृद्धि अवश्य हुई और सूखे के दिनों में पानी का अभाव होता गया। जलीय संसाधन के अव्यवस्थित रूप का ही परिणाम है कि सन् 1972 तक बाढ़ प्रभावित क्षेत्र 20 मिलियन हेक्टेयर भूमि थी जो 1992 में बढ़ कर 50 मिलीयन हेक्टेयर से अधिक हो गई। सूखे से प्रभावि क्षेत्र का भी विस्तार होकर 52 मिलियन हेक्टेयर हो गया है। नेउरा घाटी, दार्जिलिंग के जंगलों की कुछ वर्षों में हुई कटाई ने जल के सारे स्रोत सुखा डाले हैं।

संयुक्त राष्ट्र के एक रिर्पोट में इस बात का उल्लेख है कि अधिकांशतः पौधों के लिए जल की आवश्यकता को लोग समझते हैं, लेकिन जल के संग्राहक के रूप में यही वृक्ष कार्य करतें हैं इस ओर कम ही ध्यान दिया जाता है। भूमिगत जल की संग्राहकता इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ पर हरियाली कैसी है? मिट्टी की संरचना कैसी है? यू० एन० कीं इस रिर्पोट पर ध्यान रखकर सूखे से प्रभावित क्षेत्रों में जल संग्राहक की क्षमता को बढ़ाने के लिए मिट्टी में रासायनिक पदार्थों को मिलाने का प्रयोग भी किया गया है लेकिन वांछित परिणाम नहीं मिले। वैज्ञानिकों का कहना है कि कृत्रिम उपाय की अपेक्षा सूखा प्रभावित क्षेत्रों में उन वृक्षों को लगाया जाना चाहिए जो कार्बनिक उर्वरक भूमि को प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। साथ ही जानवरों के माध्यम से खेती करने की पद्धति को इसके लिए उपयोगी बताया गया है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि जहाँ एक ओर जंगलों की कटाई से भूमिगत जल का स्तर प्रभावित हुआ है, वहीं गलत किस्म के पेड़ों का विस्तार किया जाना भी इस तल को प्रभावित करने वाला सिद्ध हुआ है। अपने देश में **यूक्लिप्टस** का विस्तार भूमिगत जल को सुखने वाला सिद्ध हो रहा है।

यह वृक्ष ज्यादा जल सोखने वाला होता है एवं बहुत ही अल्प मात्रा में खाद मिट्टी का उत्पादन करता है। भारतीय मूल के वृक्ष इस क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुकूल अच्छे जल संग्राहक होते हैं, रोपण उन्हीं का ही किया जाना चाहिए।

भूमि तल की जलराशि का कम होते जाना मानवीय अदूरदर्शिता का दुष्परिणाम ही दिखाई देता है। अन्न उत्पादन के क्षेत्र में जल की सीमित व्यवस्था का ध्यान नहीं रखते हुए अधिक जल लेने वाले अन्नों का उत्पादन समस्या का कारण बनता है। चावल के उत्पादन में जल की बहुत ज्यादा आवश्यकता होती है। कृषकों द्वारा भूमिगत जल का प्रयोग इस अनाज के उत्पादन के लिए किया जाना कैसी समस्या खड़ी कर रहा है, इसका उदाहरण तमिलनाडु के कोयम्बटूर एवं उसके आसपास के जिलों में देखने में आ रहा है। इस क्षेत्र में भूमि के अन्दर जल के रिसने की दर से कहीं ज्यादा जल खेती के लिए निकाला जाता है। फलस्वरूप दस साल के अन्दर जल सतह 30 मीटर नीचे हो गई है।

महाराष्ट्र में स्थिति और भी गंभीर है। इस क्षेत्र में जल का जमाव एवं रिसने की दर बहुत ही कम है। पथरीली भूमि का भाग ज्यादा होने से जल की सतह काफी नीचे है। गहरे कुओं की संख्या में अभिवृद्धि के साथ ही कृषि लायक भूमि का क्षेत्र भी बढ़ा है। चूंकि महाराष्ट्र का ज्यादा भाग सूखा प्रभावित क्षेत्र में आता है अतः यहाँ ऐसे उत्पादन की ओर ज्यादा ध्यान दिया जा सकता है जिसमें कम जल की आवश्यकता पड़ती है। प्राकृतिक संतुलन की ओर ध्यान न रखकर व्यापारिक दृष्टिकोण से लाभकारी गन्ने का उत्पादन सबसे ज्यादा जल की मांग करता है, इस कारण जल की सतह, सतत् नीचे होती जाती है। उदाहरणार्थ सन् 1981 में उस क्षेत्र के तासगाँव ताल्लुका में गहरे कुएँ खोदे गए थे जो एक साल के पश्चात् सूख गए। पुनः 60 मीटर की और खुदाई करके जल स्रोत प्राप्त करने की कोशिश की गई तो यह योजना भी एक साल पश्चात् असफल हो गई। इस क्षेत्र के 2000 निजी कुएं भी सूख चुके हैं। कितने ही गाँव पीने के पानी की कठिनाई से जूझ रहे हैं। गर्मियों में ज्यादातर खेतों में टैंकर से पानी की व्यवस्था की जाती है।

भू-वैज्ञानिकों के अनुसार सामान्य मान्यता यह है कि वर्षा के अभाव में जलस्तर नीचे चला जाता है लेकिन यह पूर्णतः सत्य नहीं है। भूमि के अन्दर यह जल के रिसने की प्रक्रिया लम्बे समय से चलती रहती है। जैसे सहारा के रेगिस्तान में चार घन किलोमीटर प्रतिवर्ष पानी जमा हो रहा है, यदि पानी का जमाव इसी गति से होता रहा तो 4000 वर्षों में सहारा का क्षेत्र हरियाली के योग्य बन सकेगा। दूसरी तरफ वर्षा वाले क्षेत्रों में भी भूमिगत जल को निकालने की दर यदि ज्यादा बनी रहे तो उस क्षेत्र के मरुस्थल बन जाने की संभावना अधिक रहती है। रोमन साम्राज्य एवं अफ्रीका के बड़े भू-भाग का मरुस्थल में परिवर्तित होना हज़ार साल पहले का इतिहास है। रेगिस्तान से लगी भूमि का ही सिर्फ परिवर्तन मरुस्थल में नहीं होता, बल्कि मनुष्यों द्वारा ज्यादा जल संसाधन एवं वृक्षों का दोहन भी भूमि को मरुस्थल में परिवर्तित कर देता है। अमेरिका के ग्रेट पूलेन क्षेत्र का रेगिस्तान में परिवर्तन होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जल-चक्र के संतुलन में जहाँ जलराशि का भूमि से अधिक निकाला जाना एक कारण है, वहीं दूसरी ओर अधिक पानी का जमाव भी इसे असंतुलित कर देता है। यह स्थिति नहर परियोजना एवं अत्यधिक जल जमाव वाले क्षेत्र में उत्पन्न होती है। अमेरिका में करीब 25 प्रतिशत कृषि भूमि लवणीयता एवं पानी के जमाव से बेकार हो गई है। अपने देश में 10 मिलियन हेक्टेयर नहर से कृषित क्षेत्र पानी के अतिरिक्त जमाव का शिकार है एवं आने वाले वर्षों में 25 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवणीयता से प्रभावित हो जायेगी। वह भूमि जिसके सतह से मात्र डेढ़ मीटर से दो मीटर के अंदर जल मिल जाए, पानी के जमाव से प्रभावित कहलाती है।

जहाँ महाराष्ट्र तमिलनाडु जैसे राज्य जल सतह के नीचे जाने की समस्या से जूझ रहे हैं, वहीं पंजाब हरियाणा जैसे राज्य में अति जलराशि मुसीबत का कारण बनी हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में पौधे, भूमि एवं जल के बीच की अन्योन्याश्रित क्रिया को सही रूप में समझा जाए एवं प्राकृतिक संतुलन की ओर ज्यादा ध्यान रखकर आर्थिक विकास की परियोजनाएँ बनाई जाएं।

■ ■ ■

स्वास्थ्य के अनुकूल हो हमारी दिनचर्या

❑ चंचल मल चोरड़िया

चोरड़िया भवन, जालोरी गेट के बाहर
जोधपुर- 342 003

दिनचर्या का आधार क्या?

सूर्य प्रतिदिन प्रातःकाल उदय होकर सायंकाल अस्त होता है। किन्तु निद्रा का समय रात्रि में ही क्यों उपयुक्त होता है? प्रातःकाल ही प्रायः अधिकांश व्यक्ति मल-त्याग क्यों करते हैं? भ्रमण एवं श्वसन संबंधी व्यायाम अथवा प्राणायाम प्रातः ही क्यों विशेष लाभप्रद होता है? जैनधर्म में रात्रि-भोजन का क्यों निषेध किया गया है? समुद्र में ज्वार रोजाना क्यों नहीं आते, विशेष दिवसों पर ही क्यों आते हैं? मौसम के अनुकूल खान-पान और रहन-सहन में परिवर्तन क्यों आवश्यक है? पुराने लोग स्वास्थ्य वर्धक आंवलों का विधिपूर्वक पूर्ण परहेज के साथ सेवन करने के लिए चैत्र और आसोज मास का ही क्यों परामर्श देते हैं? जैनियों का ओलीतप एवं हिन्दुओं द्वारा नवरात्रि तपकी आराधना चैत्र एवं आसोज मास में ही क्यों की जाती है? हमारी दिनचर्या एवं रात्रिचर्या के पीछे क्या दृष्टिकोण है? क्या उपर्युक्त सारी बातों का कोई वैज्ञानिक सोच या आधार है अथवा मात्र हमारी सुविधा या अन्धानुकरण? कोई बीज कितना ही अच्छा क्यों न हो, अच्छी उपजाऊ जमीन पर, उचित हवा, पानी, धूप होने के बावजूद उचित समय पर न बोने से नहीं उगता। ठीक उसी प्रकार भोजन, पानी, हवा, निद्रा आदि का बराबर ख्याल रखने के बावजूद उचित सय पर सेवन न करने से वे अपेक्षाकृत लाभदायक नहीं होते। राम का नाम सत्य है, परन्तु शुभ प्रसंगों पर भी राम नाम सत्य है कहना अप्रासंगिक समझा जाता है। अतः हमारी दिनचर्या का चयन इस प्रकार करना चाहिये कि शरीर के अंगों की क्षमताओं का अधिकतम उपयोग हो। प्रायः चिकित्सा पद्धतियाँ इस तथ्य की उपेक्षा कर रही हैं। इसी कारण उपचार प्रभावशाली नहीं हो रहे हैं तथा उपचार के कभी-कभी दुष्प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

क्या शरीर में सभी अंग चौबीसों घण्टे सक्रिय होते हैं?

शरीर के सभी अंगों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह वैसे तो चौबीसों घंटों होता है। परन्तु सभी समय एक सा नहीं होता। प्रायः प्रत्येक अंग कुछ निश्चित समय के लिए अपेक्षाकृत सबसे कम सक्रिय होते हैं। इसी कारण कोई भी रोगी चौबीसों घंटे एक जैसी स्थिति में नहीं रहता। अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह का संतुलन ही स्वास्थ्य का सूचक है। यदि कोई रोग किसी अंग की असक्रियता से होता है तो जिस समय उस अंग में प्रकृति से सर्वाधिक प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है तब रोगी को अपेक्षाकृत राहत का अनुभव होता है। उसके विपरीत उस अंग में प्राण ऊर्जा (चेतना) का प्रवाह जब सबसे कम होता है तो रोगी के ज्यादा सक्रिय होने पर भी रोगी को आंशिक राहत मिलती है। कभी-कभी हम अनुभव करते हैं कि निश्चित समय होते ही रोगी में रोग के लक्षण प्रकट होने लग जाते हैं। ऐसा क्यों होता है?

वैज्ञानिक शोधों का यह निष्कर्ष है कि शरीर के सभी अंगों में सभी समय एक समान चेतना का प्रवाह नहीं होता। यदि दिन-रात को बराबर 12-12 घंटे का आधार मानें तो

लगभग प्रत्येक प्रमुख अंग में दो-दो घण्टे सर्वाधिक, तो उसके ठीक विपरीत समय अर्थात् 12 घंटे पश्चात् निम्नतम चेतना का प्रवाह होता है। इसीलिए एक ही लक्षण वाली बीमारियों के अलग-अलग समय में प्रकट होने के कारण अलग-अलग होते हैं। जैसे किसी व्यक्ति को प्रातःकाल सिरदर्द होता है अथवा चक्कर आता है और किसी अन्य रोगी को दोपहर अथवा रात्रि में सिरदर्द अथवा चक्कर आता हो तो दोनों के कारण अलग-अलग होते हैं। रोग का कारण उससे सम्बन्धित अंग में चेतना का प्रवाह उस समय ज्यादा अथवा कम होना है। इस दृष्टि से सम्बन्धित रोगग्रस्त अंग का आसानी से सही निदान किया जा सकता है।

शारीरिक क्रियाओं का प्रकृति से तालमेल आवश्यक

मनुष्य की दिनचर्या का प्रारम्भ निद्रा-त्याग से और समापन निद्रा आने के साथ होता है। स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों के शरीर में कौन सा अंग और क्रियाएँ कब विशेष सक्रिय रहती है, इस बात की जानकारी आवश्यक है, और उसके अनुरूप आचरण करना चाहिए। हमें चिन्तन करना होगा कि कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक क्रिया और कार्य क्यों करें? कितना करें? कहां करें? कैसे करें? इन सबके साथ-साथ यह भी जानना आवश्यक है कि वह क्रिया कौन से समय में करें? जैसे भोजन कब करें। निद्रा कब लें? पानी कब पीयें? व्यायाम कब करें? इत्यादि प्रकृति के अनुरूप दिनचर्या का निर्धारण और संचालन करने से शारीरिक क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग होता है। हम रोगों से सहज ही बच जाते हैं। यदि अज्ञानतावश रोगग्रस्त हो भी जावें तो पुनः शीघ्र स्वस्थ बन सकते हैं। दुःख इस बात का है कि आज अधिकांश व्यक्तियों की दिनचर्या प्रकृति के अनुरूप नहीं है और न वे इसके प्रभाव एवं महत्व को समझने का प्रयास करते हैं। अज्ञान, अविवेक, पूर्वाग्रहों, कुतर्कों, मायावी विज्ञापनों, सरकारी और सामाजिक व्यवस्थाओं के अन्धानुकरण के कारण प्रकृति के साथ जनसाधारण का सही सामञ्जस्य नहीं है। परिणामस्वरूप भोजन के समय नाश्ता और निद्रा के समय जागृत रहने जैसी आदतों को संजोये हुये हैं। हम उनके दुष्प्रभावों से अपरिचित हैं।

हम यह भूल जाते हैं कि जिसमें प्रकृति के विरुद्ध चलने की ताकत न हो वह कम से कम उसका सहयोग तो ले। तूफान का सामना करने की क्षमता न हो तो कम से कम हवा की दिशा में तो चलें ताकि कठिनाई का अनुभव कम हो। शरीर में जिस समय जो अंग सर्वाधिक सक्रिय हो, उस समय उस अंग से सम्बन्धित कार्य एवं क्रियायें कम से कम आवश्यकतानुसार करें। दूसरी बात जिस समय किसी अंग में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक हो, यदि उस समय दूसरे अंगों के कार्य और क्रियायें करेंगे तो सम्बन्धित अंग प्रकृति से प्राप्त अपने हिस्से की विशेष प्राण ऊर्जा (चेतना) से वंचित रह जावेगा। जैसे नगर-निगम से पानी के वितरण के समय जो पानी का संग्रह नहीं करेगा उसको बाद में पानी की आवश्यकता पड़ने पर पछताना पड़ेगा।

शरीर की संरचना का आधार पंच तत्व

चिकित्सकों ने शरीर के विभिन्न अंगों का उनके गुण धर्म के आधार पर पंच तत्वों से सम्बन्ध स्थापित किया है। जिन अंगों के गुण धर्म अग्नि से मिलते-जुलते हैं उन्हें अग्नि तत्व के रूप में, जिनके गुण पृथ्वी के समान हो, उन्हें पृथ्वी तत्व के रूप में, जो जल से संबंधित हैं, उन्हें जल के रूप तत्व में, जो वनस्पति के समान हैं, उन्हें वनस्पति तत्व के रूप में तथा जिनकी क्रियाएँ धातु जैसी हों उन्हें धातु तत्व के रूप में मान्यता प्रदान की है। उसके अनुसार शरीर में हृदय और छोटी आंत का सम्बन्ध अग्नि तत्व से, तिल्ली, पेन्क्रियाज और आमाशय का सम्बन्ध पृथ्वी तत्व से तथा फेफड़े एवं बड़ी आँत का सम्बन्ध धातु से होता है। इन अंगों के अलावा अग्नि तत्व से सम्बन्धित शारीरिक क्रियाओं को संचालित करने वाली त्रिअग्नि (क्रोधाग्नि, कामाग्नि, जठराग्नि) तथा उसका पूरक पेरीकार्डियन (हृदय को बाह्य संवेदनाओं से सुरक्षित रखने वाली शक्ति तथा धड़कनों को संचालित करने वाली ऊर्जा) भी होते हैं।

ये पांच तत्व प्राकृतिक चिकित्सा में चर्चित पांच तत्वों से थोड़े भिन्न होते हैं। प्रत्येक तत्व से सम्बन्धित अंग अथवा ऊर्जाएं पति-पत्नी की भांति जोड़े से कार्य करते हैं। चुम्बक के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव की भांति ये एक-दूसरे के पूरक

होते हैं। दोनों के गुणों में काफी समानता होती है तथा वे आपसी सहयोग से शरीर में संतुलन बनाये रखते हैं। किसी तत्व का यदि कोई अंग रोगग्रस्त हो जाता है तो सबसे ज्यादा प्रभाव उसके सहयोगी अंग पर पड़ता है। किसी तत्व में उससे सम्बन्धित अंगों का संतुलन ही स्वास्थ्य का प्रतीक है। जैसे यदि किसी व्यक्ति की पत्नी ज्यादा बीमार है और उसके कारण उसका पति तनावग्रस्त है तो पति का तनाव दूर करने के लिए उसका उपचार करने के बजाय उसकी पत्नी का उपचार कर रोग मुक्त करना होगा। पत्नी के स्वस्थ हुए बिना पति पर तनाव के लिए किया गया उपचार बेअसर होगा। इसी कारण अस्थमा के अनेक रोगियों का मुख्य कारण बड़ी आंत का बराबर कार्य न करना तथा असाध्य समझे जाने वाले डायबिटीज (मधुमेह) का कारण आमाशय की खराबी भी हो सकती है।

शरीर में पंचतत्वों से सम्बन्धित प्राण ऊर्जा के प्रवाह का समय

शरीर में प्रतिदिन विभिन्न अंगों में प्राकृतिक प्राण ऊर्जा की स्थिति का विवरण निम्न तालिका में दिया गया है-

तालिका दिन एवं रात को 12-12 घंटों का तथा सूर्योदय प्रातः 6 बजे तथा सूर्यास्त सायंकाल 6 बजे का आधार मानकर बनाई गयी है। तालिका को देखने से दूसरा तथ्य यह सामने आया कि किसी तत्व के अंग 4 घंटे तक अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होते हैं और ठीक 12 घंटे पश्चात् 4 घंटों तक उनमें प्रकृति से चेतना शक्ति का प्रवाह निम्नतम होता है।

अंगों/क्रियाओं का नाम	प्राण ऊर्जा के सर्वाधिक प्रवाह का समय	प्राण ऊर्जा निम्नतम प्रवाह का समय
फेफड़े	रात्रि 3 बजे से प्रातः 5 बजे	दोपहर 3 बजे से दोपहर 5 बजे
बड़ी आंत	प्रातः 5 बजे से प्रातः 7 बजे	दिन के 5 बजे से सायंकाल 7 बजे
आमाश्य	प्रातः 7 बजे से प्रातः 9 बजे	सायंकाल 7 बजे से रात्रि 9 बजे
तिल्ली/पेन्क्रियाज	प्रातः 9 बजे से दिन 11 बजे	रात्रि 9 बजे से रात्रि 11 बजे
हृदय	दोपहर 11 बजे से दोपहर 1 बजे	रात्रि 11 बजे से रात्रि 1 बजे
छोटी आंत	दोपहर 1 बजे से दोपहर 3 बजे	रात्रि 1 बजे से रात्रि 3 बजे
मूत्राशय	दोपहर 3 बजे से दोपहर 5 बजे	प्रातः 3 बजे से प्रातः 5 बजे
गुर्दे	दिन के 5 बजे से सांकाल 7 बजे	प्रातः 5 बजे से प्रातः 7 बजे
पेरीकार्डियन	सायंकाल 7 बजे से रात्रि 9 बजे	प्रातः 7 बजे से प्रातः 9 बजे
त्रिअग्नि	रात्रि 9 बजे से रात्रि 11 बजे	प्रातः 9 बजे से दिन 11 बजे
लीवर	रात्रि 1 बजे से रात्रि 3 बजे	दोपहर 1 बजे से दोपहर 3 बजे

निद्रा कब त्यागें?

प्रातः 3 बजे से प्रातः 5 बजे फेफड़ों में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक होता है। इसी कारण प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर खुली हवा में घूमने वाले शुद्ध वायु में प्राणायाम तथा श्वसन का व्यायाम करने वालों के फेफड़े सशक्त होते हैं। परन्तु दमा के रोगी प्राण ऊर्जा के उस अतिरक्त प्रवाह को ग्रहण न कर सकने के कारण पिछली रात अधिक परेशान और बेचैन रहते हैं। प्रातः काल 3 बजे से 5 बजे पीयूष एवं पीनियल ग्रन्थियों से सोमरस निकलता है, जो शरीर की प्रतीकारात्मक शक्ति को बढ़ाता और शरीर के व्यवस्थित विकास हेतु आवश्यक है। इस समय निद्रा लेने पर शारीरिक

स्थिरता के कारण सोमरस की धारा गले के नीचे प्रवाहित नहीं हो पाती। इस रस के कारण उस समय मस्तिष्क की स्मरण शक्ति जितनी अच्छी होती है अन्य समय नहीं होती। ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाले छात्र अधिक बुद्धिमान्, स्वस्थ, सजग एवं क्रियाशील होते हैं। उनमें आलस्य अपेक्षाकृत कम होता है।

प्रातः 5 बजे से 7 बजे के बीच के समय में फेफड़ों के सहयोगी अंग बड़ी आंत में चेतना का विशेष संचार होने से यह अंग अधिक क्रियाशील होता है। इसी कारण मलत्याग के लिए यह सर्वोत्तम समय है। जो व्यक्ति उस समय मल त्याग नहीं करते हैं उनके कब्जी रहने का एक कारण यह भी रहता है। इसलिये जो देर तक सोये रहते हैं उनका पेट प्रायः खराब रहता है।

भोजन कब करें?

प्रातः 7 बजे से 9 बजे तक आमाशय में प्रकृति से प्राण ऊर्जा का सर्वाधिक प्रवाह होने तथा बड़ी आंत की सफाई हो जाने से इस समय पाचन आसानी से हो जाता है। आजकल प्रायः उस समय भोजन नहीं किया जाता, अपितु नाश्ते का प्रचलन बढ़ गया है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रातः 10 बजे तक का समय शरीर में कफ प्रकृति का होता है और 10 से 12 बजे तक का समय पित्त प्रकृति का होता है। अतः हमेशा भोजन कफ प्रकृति में करने के बाद में पित्त प्रकृत्ति का समय होने से पाचन में मदद मिलती है। 10 बजे के पश्चात् शरीर की गर्मी बढ़ने के साथ-साथ बाह्य सूर्य की गर्मी भी बढ़ती है। कफ प्रकृति में भोजन करने से भोजन के तुरन्त पश्चात् इतनी ज्यादा प्यास भी नहीं लगती, जिससे खाने के तुरंत पश्चात् पानी पीने से जो पाचन बिगड़ता है, उससे हम सहज बच जाते हैं, भोजन के पश्चात् निद्रा भी नहीं आवेगी। भोजन के पश्चात् आलस्य, निद्रा एवं आराम खराब पाचन क्रिया के सूचक है। प्रातः भोजन करने से पाचन सर्वोत्तम होता है और हम सैकड़ों पाचन सम्बन्धी रोगों से सहज ही बच जातेहैं। इसीलिये तो कहा गया है कि सुबह का खाना खुद खाओ, दोपहर का दूसरो को खिलाओ तथा रात को दुश्मनों को खिलाओ।
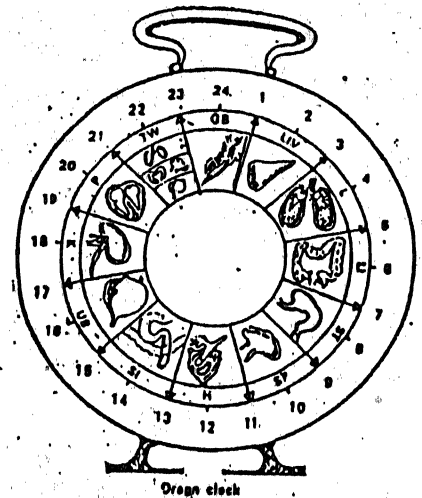
प्राण ऊर्जा की घड़ी

प्रातः 9 से 11 बजे तक का समय तिल्ली और पेन्क्रियाज का सबसे अधिक सक्रियता का समय और रात्रि 9 बजे से 11 बजे तक सबसे कम प्राण ऊर्जा का समय होता है। ठीक उसी प्रकार सांयकाल 7 बजे से 9 बजे आमाशय में निम्नतम प्राण ऊर्जा का प्रवाह प्रकृति से होता है। अतः प्रातः 9 से 11 बजे शरीर में पेन्क्रियाटिक रस और इन्सुलिन सबसे ज्यादा बनता है। इन रसों का पाचन में विशेष महत्व है। अतः जो मधुमेह अथव अन्य किसी प्रकार के पाचन रोगों से ग्रस्त हैं उनके भोजन करने के समय में परिवर्तन आवश्यक है। उन्हें जब आमाशय और पेन्क्रियाज सबसे अधिक सक्रिय हो अर्थात् प्रातः 9 बजे के लगभग अवश्य भोजन कर लेना चाहिये तथा सांयकाल 7 बजे से रात्रि 11 बजे के बीच भोजन

नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस समय पाचन क्रिया बहुत मंद पड़ जाती है।

दिन में 11 से 1 बजे के बीच हृदय में विशेष प्राण ऊर्जा का प्रवाह होता है। हृदय हमारी संवेदनाओं, करुणा, दया एवं प्रेम का प्रतीक है। यदि उस समय हम भोजन करते हैं तो हमारी अधिकांश संवेनाएँ भोजन के स्वाद की तरफ आकर्षित रहती है। अतः हृदय प्रकृति से मिलने वाली अपनी प्राण ऊर्जा को पूर्ण रूपेण ग्रहण नहीं कर सकता। 1 बजे से 3 बजे तक छोटी आंत, जो हृदय का पूरक अंग है, का अन्य कार्यों के साथ एक कार्य आमाशय से पचे हुए भोजन के अवशिष्टों को प्राप्त करना है। अतः हृदय रोगियों को भी दोपहर 11 बजे से 3 बजे के बीच भोजन जहाँ तक संभव हो त्यागना चाहिए। उस समय भोजन करने से हृदय, छोटी आंत अपनी पूर्ण क्षमताओं से कार्य नहीं करते। इसी कारण आजकल मानव में संवेदना, करुणा, दया अपेक्षाकृत कम होती जा रही है। प्रेम सूख रहा है। छल-कपट जन-साधारण में बढ़ रहा है। व्यक्ति हृदयहीन बनता जा रहा है। दूसरों के लिए क्या कहें वह स्वयं अपने प्रति भी ईमानदार नहीं रह पा रहा है। अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग कर रहा है। उसके लिये अच्छा और बुरा का विवेक समाप्त हो रहा है। वह अपनी प्राथमिकतों के प्रति अपरिचित हो रहा है। आत्म-विश्वास घट रहा है। उसका चिन्तन विज्ञापनों पर आधारित एवं परावलम्बी बनता जा रहा है। बढ़ते हुए हृदय रोगों का एक प्रमुख कारण व्यक्ति की गलत दिनचर्या का चयन भी है। यदि हम संयममय जीवन जीयें, नियमित और परिमित एक समय ही भोजन करें तो पाचन समय के साथ इतना अधिक प्रभावी नहीं होता। परन्तु जो न संयमित है, न जिनका आचरण नियमित और परिमित है उनको स्वस्थ रहने के लिये तो इन नियमों का पालन करना ही चाहिए।

परन्तु आज हमारे दिल और दिमाग में ये बातें नहीं बैठ पा रही हैं। हमारे लंच (LUNCH) और डिनर (DINNER) रोगों के मंच बनते जा रहे हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय को पूर्वाग्रह छोड़ इस सत्य को स्वीकार करना चाहिये तथा भोजन के उपर्युक्त सर्वोत्तम समय की जानकारी जनसाधारण तक पहुँचानी चाहिए। सारी सामाजिक एवं सरकारी व्यवस्थाओं को उसके अनुरूप बदलने के लिये पहल करनी चाहिए। यदि उचित समय पर भोजन न किया गया तो हमें हमारी पाचन-क्रिया को अच्छा रखने के लिये बाह्य साधनों का उपयोग करना पड़ेगा।

निद्रा कब लें?

इसी प्रकार दोपहर 3 बजे से 5 बजे तक मूत्राशय, सांयकाल 5 बजे से 7 बजे तक गुर्दे, सांयकाल 7 बजे से रात्रि 9 बजे तक पेरीकार्डियन, रात्रि 9 बजे से 11 बजे तक त्रिअग्नि पित्ताश्य तथा रात्रि 11 बजे से 1 बजे तक, रात्रि 1 बजे से 3 बजे तक लीवर में प्राण ऊर्जा का प्रवाह सर्वाधिक होता है। रात्रि 11 बजे से 3 बजे तक अग्नि तत्व से सम्बन्धित अंगों हृदय और छोटी आंत में चेतना का प्रवाह निम्नतम होता है। अर्थात् उस समय संवेदनायें सबसे कम सक्रिय होती है। अतः निद्रा के लिए सबसे अच्छा समय है रात्रि 11 बजे से 3 बजे तक। इस समय वनस्पति तत्त्व से सम्बन्धित अंगों लीवर और गाल ब्लेडर में प्राण ऊर्जा का प्रवाह अपेक्षाकृत ज्यादा होता है। इन अंगों का हमारी आंखों से विशेष सम्बन्ध है तथा ये क्रोध, आक्रमण, आचरण, अधीरता आदि को भी संचालित करते हैं। लीवर, गालब्रेडर शरीर में सबसे उत्तेजित अंग हैं। इसी कारण जिनके ये अंग खराब हो जाते हैं उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। बात-बात में क्रोध आने लगता है। इसके विपरीत जिनको क्रोध ज्यादा आता हो, स्वभाव चिड़चिड़ा हो, उसके ये अंग रोगग्रस्त हो जाते हैं। इसीलिये जब व्यक्ति गहरी निद्रा में हो, बाहर का वातावरण भी एकदम शान्त हो तब ही ये अंग प्रकृति से प्राप्त विशेष प्राण ऊर्जा को ग्रहण कर सकते हैं। अतः स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को किसी भी हालात में 11 बजे तक गहरी निद्रा में चले जाना चाहिये। गहरी निद्रा का मतलब है किसी भी कारण से, जैसे पानी पीने या पेशाब करने या अन्य किसी कारण से निद्रा भंग न हो। अतः जो लोग देर रात जागृत रहते हैं, उनका लीवर खराब होने से स्वभाव अपेक्षाकृत चिड़चिड़ा एवं जिद्दी हो जाता है।

उपर्युक्त तथ्य हमारी वर्तमान धारणाओं एवं परिस्थितियों के अनुकूल हो अथवा नहीं, ये बातें हमें अच्छी

लगें अथवा न लगें, प्रकृति के कानून मनुष्य की व्यक्तिगत अनुकूलताओं के आधार पर नहीं बदलते। बड़े-बड़े शहरों में जीवन आज प्रकृति के विपरीत हो रहा है। सूर्योदय एवं सूर्यास्त का समय उनकी दिनचर्या के अनुरूप नहीं होता। सनातन सत्य सभी के लिए सभी काल में सभी स्थानों पर एक जैसे ही रहते हैं। जानवर आज भी उनका बिना तर्क पालन करते हैं और उनको अपना जीवन चलाने के लिए दवाइयों अथवा डॉक्टरों की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु जो-जो पशु मानव के सम्पर्क में आते हैं, उनके सान्निध्य में रहकर अपना नियमित आचरण बदलकर प्रकृति के विरूद्ध चलने लगते हैं, वे ही मानव की भांति रोगग्रस्त बन रहे हैं। जो सनातन सत्य है, हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है, उसके अनुरूप अपनी प्राथमिकताओं का चयन कर दिनचर्या का निर्धारण करना होगा अन्यथा रोगमुक्त रहने की कल्पना आग के प्रास बैठ ठण्डक प्राप्त करने के समान होगी। सरकार से अपेक्षा है कि रात्रि में 10 बजे बाद टी०वी०, रेडियो का प्रसारण बन्द करे। पाठशालाओं, कार्यालयों का समय एवं भोजनावकाश निश्चित करते समय प्रकृति के समय-चक्र का ख्याल रखा जावे। हम जितना-जितना प्रकृति से तालमेल रखकर अपनी दिनचर्या बनायेंगे, उतने-उतने स्वास्थ्य को सरलता से प्राप्त कर नीरोगी जीवन जी सकेंगे। हमारे जीवन का प्रथम सुख नीरोगी काया है, उसके अभाव में हमारी सारी दौड़ हमें सुखी न बना सकेगी।

फार्म 4/ FORM IV

नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-211002
2. प्रकाशन अवधि	मासिक, प्रत्येक मात का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	श्री अरुण राय
क्या भारत का नागरिक है? हाँ	
पता	प्रसाद मुद्रणालय, 7 ए बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-२
4. प्रकाशक का नाम	डॉ० शिवगोपाल मिश्र
पता	अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाआबद विश्वविद्यालय, इलाहाबद-2
5. सम्पादक का नाम	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
क्या भारत का नागरिक है? हाँ	
पता	रीडर एवं अध्यक्ष वनस्पति विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकार एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य है।

दिनांक : 01.03.01997

शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान
परिषद्, इलाहाबाद-211002

■ ■ ■

भू-जल स्तर के गिरावट से भू-जलीय पर्यावरण के बिगड़ते आसार

❑ टी० के० सिन्हा एवं डी० एन० त्रिपाठी

पर्यावरण विज्ञान विभाग
उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी- 221 002

आज एकाएक पर्यावरण की चिन्ता व्यक्त करने के लिए अनेक व्यक्ति, पर्यावरणविद्, संगठन एवं संस्थायें चेतनशील हो गये हैं और पर्यावरण के प्रति जनजागरण कर रहे हैं। यह भी देखा जा रहा है कि पर्यावरण की परिभाषा एवं क्षेत्राधिकार बढ़ता जा रहा है। यह ठीक है कि पर्यावरण का अर्थ हमारे चारों ओर के वातावरण से लिया जा सकता है और यह हमारे चारों ओर की सजीव एवं निर्जीव चीजों से मिलकर बनता है। इसकी चर्चा जनता के प्रांगण में सहज एवं ग्राह्य प्रणाली से अवश्य होनी चाहिये, तभी हम उससे भलिभाँति परिचित होंगे और इस पर्यावरण को बनाये रखने में सहायक होंगे। इससे हम अपने क्रिया-कलाप में कुछ परिवर्तन कर पर्यावरण के असन्तुलन को रोकने में कुछ कर सकेंगे और तभी पर्यावरण को संरक्षण मिल सकेगा। जब पर्यावरण संरक्षित रहेगा तो हम भी संरक्षित रह सकेंगे।

प्रतिकूल पर्यावरण कई चीजों का ऐसा जटिल क्रिया-कलाप है जो सभी सजीव प्राणियों के समुचित विकास, उनके स्वास्थ्य एवं जीवन पर प्रभाव डालता है। आज इतने चेतना के बाद भी मोटे तौर पर हममें से अधिकांशतः वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव से ही अधिक परिचित हैं जो पर्यावरण को असंतुलित कर रहे हैं। इनमें वायु प्रदूषण के प्रभाव का अनुभव प्रायः समय-समय पर सभी करते हैं। बच्चे-बच्चे भी सड़क पर वाहनों द्वारा फैलाये जाने वाले दूषित गैस से विचलित हो जाते हैं। भोपाल गैस त्रासदी ने तो सभी को झकझोर दिया है। वायु के बाद जल प्रदूषण के प्रभाव से भी हम सभी परिचित हैं। डब्लू० एच० ओ० के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के अस्पतालों में इलाज के लिए भर्ती रोगियों में आधे से अधिक रोगी किसी न किसी जलजन्य रोग के कारण सीधे या परोक्ष रूप से प्रभावित हैं। लेकिन जीने के लिए तो जल पीना ही पड़ेगा। यह हमारे जीवन का आधार है। मनुष्य के शरीर में 70 प्रतिशत से अधिक मात्रा पानी ही है। इस पानी की मात्रा हमारे शरीर में तनिक भी घटती है तो हम बेचैन हो जाते हैं और न मिलने पर मूर्छित हो जाते हैं जो बाद में मृत्यु का कारण बन जाता है। आज बाल-मृत्यु का सबसे बड़ा कारण निर्जलीकरण (डीहाइड्रेशन) ही है। अतः इस ओर ध्यान जाना अपरिहार्य हो गया है। जल एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो पृथ्वी पर विभिन्न रूपों में पाया जाता है। इन्हीं में एक रूप भूगर्भ जल का भी है जहाँ कुल जल की लगभग 0.6 प्रतिशत मात्रा उपलब्ध है। यह पृथ्वी के धरातल के नीचे विभिन्न गहराइयों में पायी जाने वाली प्राकृतिक जल सम्पदा है। इसका बहुधा प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं, क्योंकि इसकी शुद्धता धरातलीय जल की अपेक्षा अधिक रहती है बशर्ते कि उस क्षेत्र का भूगर्भ जल किन्हीं कारणों से प्रदूषित न हो गया हो।

भू-जलीय मात्रा एवं धरातल के नीचे उसके तल के अनुसार यह आवश्यक है कि उसका जल स्तर एक संयमित

सीमा तक उचित ढंग से हो। अधिक ऊपर या अधिक नीचे भूजल स्तर भू-जलीय पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है जिसका प्रभाव परोक्ष रूप से हम पर पड़ता है। भू-जलस्तर का अधिक ऊपर या नीचे होने का प्रमुख कारण सतही जल का भूगर्भ में अधिक भराव या भूगर्भ जल से भूजल का अधिक दोहन है जो भू-जलीय सन्तुलन को बाधित करता है और यह भू-जलीय पर्यावरण के प्रतिकुल है। अत्यधिक ऊपर भू-जल स्तर होने से उस क्षेत्र में 'वाटर लागिंग' की स्थिति बन जाती है जो पौधों एवं वृक्षों के लिए अनुकूल नहीं है। इसके साथ-साथ दलदलीय क्षेत्र भी बनने के आसार हो जाते हैं, बहुयात से अनावश्यक जलीय पौधे पनपने लगते हैं, मच्छरों की बढ़ोतरी होने लगती है, जल-प्रदूषण की समस्याएँ बढ़ जाती हैं, नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। भूमि तल पर लवणों का प्रक्षेपण होने लगता है, ऊसर क्षेत्र बनने लगते हैं, जमीन अनुपजाऊ हो जाती है। इसी प्रकार अत्यधिक भू-जल दोहन होने से भूजल स्तर काफी नीचे चला जाता है जिसके कारण दैनिक कार्यों के लिए आवश्यक शुद्ध जल की कमी हो जाती है। पौधों एवं वृक्षों के लिए जल कम या अनुपलब्ध हो जाता है जिसके कारण उनपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है तथा वे सूख जाते हैं। भू-तल फट एवं धस जाने से प्राकृतिक आपदा जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पिछले छः वर्षों में जनपद इलाहाबाद एवं फरुखाबाद में इसी प्रकार की प्राकृतिक आपदा की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जो मुख्यतः अधिक भू- जल दोहन के कारण हुयी थी।

आज भी उत्तर-प्रदेश के कई क्षेत्रों में जल की कमी की बात कही जा रही है। पीने के पानी के लिए विशेषकर गर्मियों में त्राहि-त्राहि मचने लगती है। कारण भू-जल स्तर उस समय अधिक नीचे चला जाता है। तालाब, पोखरे इत्यादि भी सूख जाते हैं। उत्तरप्रदेश भूगर्भ जल विभाग द्वारा एक अध्ययन के दौरान पाया गया कि प्रदेश (उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों के अलावा अन्य भागों में) का भू-जल स्तर अधिकांशतः क्षेत्रों में गिरावट के क्रम में है जहाँ नहरें नहीं है। जनवरी 1996 की रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश के 8 प्रतिशत क्षेत्रों में भूगर्भ जल का स्तर खतरे के बिन्दु से नीचे जा चुका है। अतः इन क्षेत्रों को 'डार्क श्रेणी' में घोषित करते हुये यहाँ उथले नलकूप लगाने के लिए शासन की तरफ से दी जाने वाली आर्थिक सुविधा बन्द कर दी जायेगी। क्योंकि इन क्षेत्रों में अब और नलकूप लगाकर अधिक भू-जल का दोहन करने से भू-जलीय पर्यावरण के बिगड़ने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार प्रदेश के 21 प्रतिशत क्षेत्रों में भू-जल का तल खतरे के बिन्दु के पास पहुँचने वाला है। अतः इन क्षेत्रों को 'ग्रे श्रेणी' में घोषित करते हुये यहाँ जाँच-पड़ताल के बाद ही आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नलकूप निर्माण के लिए आर्थिक मदद दी जा सकती है। शेष 71 प्रतिशत क्षेत्रों में भू-जल की स्थिति अभी अस्पष्ट है। अतः ऐसे क्षेत्रों को 'ह्वाइट श्रेणी' में घोषित करते हुए यहाँ भू-जल दोहन के लिए नलकूप लगाने हेतु आर्थिक मदद दी जा रही है।

उत्तर प्रदेश के जिन क्षेत्रों में भूगर्भ जल की स्थिति खतरे के बिन्दु से नीचे चली गयी है,वे क्षेत्र विकासखण्डवार इस प्रकार हैं:-

जनपद	विकास खण्ड
आगरा	अकोला, बरौली अहीर, एतमादपुर, फतेहाबाद, फतेहपुर सीकरी, शमशाबाद, सैयां।
अलीगढ़	अतरौली, चन्दहास, लोधा, ससनी।
इलाहाबाद	चायल, चाका, करक्षना, मंझनपुर, मूरतगंज।
बरेली	आलमपुर जफराबाद, मीरगंज।
बस्ती	परसरामपुर।
बिजनौर	अकु (नेहतपुर), किरतपुर।
बदायूँ	आसफपुर, बिनवार (सलारपुर), बिसौली, इस्लामनगर, मिआंव, वजीरगंज।
बुलन्दशहर	बीबीनगर, दानपुर जहाँगिरबाद, लखौती।

एटा	गरहरा, निधौलीकलॉ।
फरुखाबाद	बरहपुर, छिब्रामऊ, जलालाबाद, कैमगंज, कमालगंज, कनौज, नवाबगंज, शमशाबाद, टालेग्राम।
फिरोजाबाद	फिरोजाबाद, कोटला (नरखी), शिकोहाबाद।
गाजियाबाद	हापुड़।
गोण्डा	छिपिड़ा।
कानपुर देहात	बिलहापुर, झिनझक, शिराजपुर।
लखीमपुर खेरी	बेहजाम।
मैनपुरी	ब्रनाहल, सुल्तानगंज।
मथुरा	मात, सैदाबाद
मऊनाथ भंजन	मोहमदाबाद।
मेरठ	बरउत, बिनौला, खरखोंदा।
मुरादाबाद	अमरोहा, असमुली, बहजोई, बनीखेरा, बिदारी, हसनपुर, जोया, कांथ (छिजलेत), कुन्देरखी (दिगेरपुर), पवसां, संभल।
मुजफ्फरनगर	शहरपुर।
रायबरेली	सतावं।

इन सभी क्षेत्रों में सबसे नाजुक स्थिति मुरादाबाद एवं फरुखाबाद जनपदों में है। अतः यहाँ की भूजल स्थिति को सुधारने के लिए कृत्रिम भराव के साथ-साथ निम्न सुझाव हैं:-

वहाँ की जनता से

1. भूजल की बर्बादी न होने दें। नल में यदि टोटी न हो या टूटी हो तो उसे तत्काल किसी चीज से बन्द कर देवें और नया टोटी लगवाने का प्रबन्ध करें।

2. अपने क्षेत्रों में भू-जल आपूर्ति हेतु किसी संस्था, नेता या मंत्री पर दबाव न डालें कि वहाँ पर और नलकूप लगा दिये जाँय जब तक कि भूजल की स्थिति वहाँ सुधर न जाय।

नेता/मंत्री जी से

इन क्षेत्रों में भूजल समस्या से निपटने के लिए अपने वोट रूपी स्वार्थ के लिए नलकूप निर्माण के लिए अब आदेश/दबाव न देकर, यदि आवश्यक हो तो वहाँ सतही जल (नहर आदि) की व्यवस्था कराने का कष्ट करें।

जिन जनपदों में भूज-जल की स्थिति आगामी भविष्य में खराब होने की सम्भावना है (कम से कम छः विकास खण्डों तक) उनकी संख्या इस प्रकार है :-

जनपद	आगामी भविष्य में भूजल स्थिति के खराब होने वाले (ग्रे श्रेणी) विकास खण्डों की संख्या	जनपद के विकास खण्डों की संख्या जो पहले से ही खराब(डार्क श्रेणी) है
गोंडा	11	1
फैजाबाद	10	-
जौनपुर	9	-
अलीगढ़	8	4
बदायूँ	7	6
गोरखपुर	7	-
कानपुर देहात	7	3
वाराणसी	6	-
बुलन्द शहर	6	4
देवरिया	6	-
आगरा	6	7
मेरठ	6	3
मथुरा	6	2

इनके अलावा जनपद इलाहाबद, हरदोई, शाहजहाँपु, सुल्तानपुर के पांच-पांच; आजमगढ़, बिजनौर, एटा, फिरोजाबाद, लखीमपुर खीरी, मुजफ्फरनगर, प्रतापगढ़ के चार-चार; बस्ती, मैनपुरी, मऊनाथ भंजन, सहारनपुर, उन्नाव

के तीन-तीन; इटावा, फरुखाबाद, फतेहपुर, गाजीपुर, रामपुर के दो-दो तथा बहराइच, बरेली, भदोही, गाजियाबाद, हरद्वार, कानपुर (शहर), ललितपुर, लखनऊ, मिरजापुर, मुरादाबाद, रायबरेली, सिद्धार्थनगर, सोनभद्र के एक-एक विकास खण्डों में भी भू-जल की स्थिति खराब होने की संभावना है।

अतः इन क्षेत्रों में भी भूजल के बर्बादी को रोकने की आवश्यकता है। भू-जल स्तर के गिरावट के प्रमुख कारण निम्नवत् हैं:-

प्राकृतिक	वर्षा का कम होना	वृक्षों के अन्धाधुन्ध कटान, जंगलों का विनाश, पर्यावरण असन्तुलन के कारण मौसम में बदलाव आदि।
जनसंख्या	बड़ती हुई जनसंख्या	जल के अधिक माँग के कारण भू-जल का अधिक खर्च।
	बढ़ते हुए शहरीकरण एवं भू-तल के पक्कीकरण	भू-जल के बढ़ोत्तरी में बाधा।
लापरवाही	आलस एवं स्वार्थ	नल की टोटी खुली है, टूटी है या सार्वजनिक नल की टोटी चोरी हो गयी है- कोई परवाह नहीं है उसे ठीक करने का या पानी की बर्बादी को रोकने का, जब तक कि कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न हो।

आज प्राकृतिक संसाधनों का अभूतपूर्व विपुल भण्डार हमें विरासत में मिला है और इनमें से जिन चीजों का ज्ञान प्राप्त हो गया है, हम उनका उपभोग करते हैं। अतः इनका संरक्षण हमारा परम कर्त्तव्य ही नहीं महान दायित्व भी है। भारत में संविधान द्वारा पर्यावरण संरक्षण का दायित्व राज्य (स्टेट) को सौंपा गया है। इस सम्बन्ध में नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि स्वच्छ, स्वस्थ, पर्यावरण में गरिमामय जीवन का अवसर उनका मौलिक अधिकार है। अतः पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने में हमें आलस नहीं करना चाहिए। हम जिस लायक हैं, जो भी जहाँ भी कर सकते हैं अवश्य करें और प्राकृतिक संसाधनों को बर्बाद होने से बचावें ताकि पर्यावरण में असन्तुलन कम से कम हो।

■ ■ ■

विज्ञान के बढ़ते कदम

❑ प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान,
नई दिल्ली

1. रक्त रोग के लिए जीन क्लोन

सेंट विन्सेन्ट अस्पताल सिडनी के गरवान संस्थान के डॉ० सिल्वी तथा साथियों ने विश्व में पहली बार जीन क्लोन तकनीक का प्रयोग करते हुए एक महत्वपूर्ण क्लोन तैयार किया है जो मुख्य रूप से उच्च रक्त चाप के उपचार के लिए सार्थक होगा।

यह प्रक्रिया उच्च्य रक्त चाप के विशिष्ट उपचार के लिए एक नई दिशा देगी। उच्च्य रक्त चाप आघात, परिहृद हृदय रोग तथा गुर्दे के रोगों के लिए एक अत्यन्त जोखिम युक्त कारक है।

इस अनुसंधान के अंतर्गत् एक ऐसा जीन क्लोन तैयार किया गया है जो मस्तिष्क में न्यूरोपेप्टाइड बाई (एन पी वाई) नामक तंत्रिका संचरण करने वाले प्रमुख रसायंन के लिए ग्राहक अणु को कोडित करता है।

मानव तंत्रिका तंत्र में यह एक शक्तिशाली संकेतन अणु है जो विशेष रूप से रक्त चाप तथा हृदय गति सहित हृदय वाहिका तंत्र के कार्यों को नियंत्रित करता है। यह भूख, लैंगिक अनुक्रिया, तथा बोध जैसे अनुक्रियात्मक प्रभावों सहित मस्तिष्क में होने वाले अनेक क्रिया कलापों को भी प्रारंभ करता है। एन पी वाई इन क्रियाकलापों को तंत्रिका अथवा हृदय कोशिकाओं की सतह पर विशिष्ट ग्राहक अणुओं के साथ परस्पर क्रिया करके कार्यान्वित करता है। पड़ने वाला विशेष प्रभाव कोशिका की सतह पर ग्राहक के प्रकार पर निर्भर करता है। निरंतर नवीन प्रोयग करते हुए गरवान के अनुसंधानकर्त्ताओं ने दर्शाया कि एन पी वाई ग्राहक कोशिका के भीतर कुछ रसायनों के स्तर को बदल देता है। रसायनों के सांद्रण में इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप रक्तचाप बढ़ जाता है।

इस तकनीकी जानकारी को प्रयोग में लाते हुए सिल्वी एवं साथी एन पी वाई के विशिष्ट अनुरूपों का विकास कर रहे हैं जो इस ग्राहक की सक्रियता को रोक देंगे जिससे रक्त चाप घट जाएगा।

2. लोऊ गेहरिन रोग के लिए उत्तरदायी जीन तथा वयोवृद्धि की प्रक्रिया

एलेनर रुजवेल्ट कैन्सर सेन्टर, डेनवर के डेविड पैटरसन ने मैसाचुसैट्स जनरल हॉस्पिटल, नार्थ वैस्टन यूनिवर्सिटी मेडिकल स्कूल, मैकगिल यूनिवर्सिटी, मॉन्ट्रिअल तथा जनरल हॉस्पिटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, मॉन्ट्रिअल के अनुसंधानकर्ताओं के सहयोग से लोऊ गेहरिग रोग के नाम से ज्ञात पारिवारिक पेशी शोषी पार्श्व पथ काठिन्य (Amyotrophic lateral sclerosis) के लिये उत्तरदायी एक जीन दोष ढूंढ निकाला है। इस संदर्भ में 400 परिवारों को सम्मिलित करते हुए एक अध्ययन के उपरान्त परिणामों को अभिलिखित किया गया है। पेशी शोषी काठिन्य से संबंधित ग्यारह अन्य उत्परिवर्तनों को गुणसूत्र पर उपस्थित एक जीन में पाया गया। एक स्वस्थ मनुष्य में यह जीन एक प्रकार के

प्रोटीन उत्पादन का संचालन करता है जो ऑक्सीजन मुक्त मूलक नामक जीव विषों से शरीर को बचाए रखता है। ये जीव विष सामान्य मैटाबोलिस्म (Metabolism) के दौरान सहउत्पाद के रूप में बनते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अत्यधिक मात्रा में ये मुक्त मूलक कोशिका को क्षति ग्रस्त करते हैं तथा साथ ही वृद्धावस्था प्राप्त करने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सुपर ऑक्साइड डिसम्युटेस नामक ये जीन प्रोटीन डी० एन० ए० तथा अन्य कोशिका अवयवों को क्षति पहुँचाने से पूर्व ही विनाशक (भंजक / Destructive) मुक्त मूलकों को विखंडित (Dismantle) करने में सहायता करती है। सुपर ऑक्साइड डिसम्युटेस में किसी भी प्रकार से विघ्न आ जाने पर रक्षण सामर्थ्य (Protective Capabitity) को क्षति पहुँचती है। सुपर ऑक्साइड डिसम्युटेस जीन का अनेक वर्षों तक अध्ययन करने वाले ये अनुसंधानकर्ता विश्वास करते हैं कि अधिक समय होने पर संचयी ऑक्सीकरणी क्षति (Accumulated Oxidative injury) के कारण विभिन्न अंगों की कार्यक्षमता वृद्धावस्था आने पर शिथिल पड़ जाती है।

पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य के लिए उत्तरदायी जीन दोष के संबंध में प्राप्त हुई इस नई जानकारी से सामान्य वृद्धावस्था प्राप्त करने की दर में कमी लाने वाली धारणा को बल मिलता है तथा साथ ही वय संबंधी कुछ रोगों का ऑक्सीकरणी क्षति (Oxidative injury) के निवारण से उपचार संभव हो सकेगा। इस अनुसंधान से अनेक अन्य लाभ उठाये जाने की संभावना को भी बल मिलता है।

पैटरसन ने वयोवृद्धि की प्रक्रिया (aging process) का अनेक वर्षों तक अध्ययन किया है। चूंकि पेशी शोषी पर्श्वपथ काठिन्य वयस्कों में ही पाया जाता है इसलिये पैटरसन का विचार है कि वयोवृद्धि की प्रक्रिया के संबंध में इसे प्रभावी मॉडल के रूप में लिया जा सकेगा। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य मस्तिष्क एवं सुषम्ना (Brain and Spinal cord) में प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं (Motor neurons) की अवस्था है। तन्त्रिका कोशिकाओं की पेशियों, दुर्बल होते हुए हाथ और पैरों को सूचना भेजने की क्षमता क्षीण होती जाती है और बोलने-निगलने और श्वांस लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य के दो रूप होते हैं : (1) पारिवारिक जो कि लगभग 48 वर्षीय वर्ष की आयु में होता है और (2) कदाचनिक- जो कि लगभग 58 वर्ष की आयु में होता है। पेशी शोषी पार्श्वपथ काठिन्य आमतौर पर 5 वर्षों में ही मृत्यु का कारण बन जाता है। इसके उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं है।

अनुसंधानकर्त्ता अब इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के संबंध में स्पष्टीकरण दे पाने में तथा वयोवृद्धि के क्षेत्र में इसकी संबद्धता दर्शाने में सक्षम हुए हैं।

■ ■ ■

[पृष्ठ 24 का शेषांश]

17.3.96 गुलाब वाड़ी में होली मिलन
21.4.96 परिषद् की सामन्य बैठक

19.5.96 पूर्वान्चल में विज्ञान की अवनति पर चर्चा।

21.7.96 विद्यालयों में विज्ञान की दुर्दशा पर चर्चा।

18.8.96 प्रो० एस० चन्द्रशेखर-स्मृति गोष्ठी।

3.11.96 डॉ० हेमन्त कृष्ण नागर-वैज्ञानिक, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैज़ाबाद द्वारा "सुगंधित धान की नवीन जातियों की खोज" विषय पर गोष्ठी।

18.12.96 डॉ० विन्ध्याचल पाण्डेय, प्रो० नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय द्वारा "एकीकृत कीटनाशी प्रबंध" विषय पर भाषण। उपर्युक्त सभी वार्तोओं के सारांश समाचार पत्रों में प्रकाशित हुये।

जनपद में परिषद् की गोष्ठिओं एवं वार्ताओं से लोग लाभान्वित हुये।

—डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय
परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग
फैज़ाबाद, उत्तर-प्रदेश

■ ■ ■

परिषद् की बडोदरा शाखा से बडोदरा में परिषद् की प्रगति का पहला वर्ष

❑ डॉ० अरुण आर्य

सचिव, विज्ञान परिषद् वडोदरा शाखा
प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय,
महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा
वडोदरा-390002 (गुजरात)

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' अपने देश की एकमात्र ऐसी प्राचीन संस्था है जो कि हिन्दी में विज्ञान के प्रचार-प्रसार में सतत् संलग्न है। देश के अनेक नगरों में इसकी शाखायें हैं। नववर्ष के दिन (1.1.96) सायंकाल आयोजित एक सभा में विज्ञान परिषद् की वडोदरा शाखा का शुभारम्भ हुआ। जागरूक नागरिकों ने विविध तरीकों से विज्ञान के क्षेत्र में हुयी नवीन जानकारी को जन-जन तक पहुँचाने की आवश्यकता महसूस की। प्रथम बैठक में शाखा की कार्यनीति का निर्धारण किया गया। एक वर्ष के लिये संस्था के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। डॉ० योगेश जशराय अध्यक्ष एवं डॉ० एम० डेनियल उपाध्यक्ष चुने गये।

पाँच फरवरी को आयोजित एक संगोष्ठी में चर्चा का विषय था "रोचक कवक" । युवा वैज्ञानिक डॉ० अरुण आर्य ने विस्तारपूर्वक बताया कि कवक पौधों पर बीमारी ही नहीं फैलाते वरन् उपयोगी भी हो सकते हैं। फफूंद पर इस रोचक वार्ता को प्रसिद्ध अँग्रेजी पत्रिका 'साइंस रिपोर्टर' ने 'फैसीनेटिंग फन्जाई ' के नाम से जुलाई 1996 अंक में प्रकाशित किया है।

मंगलवार 16 अप्रैल को देश के ख्याति प्राप्त भूगर्भशास्त्री प्रो० एस० एस० मेढ़ ने 'गुजरात की समुद सीमा की विशेषतायें' विषय पर व्याख्यान दिया। आपने गुजरात की 1,600 कि०मी० लम्बी समुद्री सीमा को अतिविशिष्ट बताया। विज्ञान संकाय के अवकाशप्राप्त डीन प्रो० मेढ़ ने जोर देकर कहा, "हमें निश्चय ही हिन्दी पर अपना प्रभुत्व रखना होगा क्योंकि अब यह साबित हो गया है कि विज्ञान के लिये अँग्रेजी जरूरी हो सकती है, परन्तु एकमात्र भाषा नहीं।"

प्रकृति में होने वाली कुछ अप्रत्याशित घटनाओं ने प्राचीन मानव को भयमुक्त कर दिया और यहीं से शुरुआत हुयी अंधविश्वास की। अनेक अंधविश्वास आज हमारी दिनचर्या का अंग बन चुके हैं। "विज्ञान एवं अंधविश्वास" विषय पर एक पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। 6 पुरस्कारों की घोषणा 26 नवम्बर को प्रो० अतुल मेहता द्वारा की गई। बालक वर्ग में कु० मेनका जोशी को प्रथम एवं 18 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में श्री एस० ए० जतीन को पहला पुरस्कार मिला। सभी प्राप्त पोस्टरों की प्रदर्शनी 'योग-निकेतन' फतेहगंज में 26 नवम्बर से 3 दिसम्बर तक आयोजित की गई। प्रो० एल० जे० पारेख, विज्ञान संकायाध्यक्ष ने युवा चित्रकारों के इस प्रयास को सराहनीय बताया। आपने 26 नवम्बर को चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

योग निकेतन सभागार में 26 नवम्बर सायंकाल एक विशेष आयोजन किया गया। 3 घंटे के विज्ञान प्रदर्शन का **विषय था** विज्ञान एवं अंधविश्वास। इस शो का दीप जला कर उद्‌घाटन किया बरोडा के म्यूनिसिपल कमिश्नर श्री आर० एन० दास ने। संस्था के अध्यक्ष डॉ० योगेश जशराय ने विज्ञान परिषद् के बारे में एवं डॉ० अरुण आर्य ने शो की भूमिका के बारे में जानकारी दी। उन्होंने कहा कि गतवर्ष 21 सितम्बर को हमने एक अनहोनी घटना देखी जब देश भर के देवी-देवता दुग्ध पान करने लगे। यह एक साधारण से भौतिक सिद्धान्त का वृहद् स्वरूप था। हमारे हाथ में पहनी अँगूठी मात्र शोभा के लिये नहीं वरन् किसी खास ग्रह की शांति के लिये है। इंग्लैण्ड में भी सात धातुओं से बनी अँगूठी पहनने का रिवाज है। मिस्र से प्राप्त ममी से अँगूठी, गहने एवं ताबीज़ मिले हैं जिनका अर्थ आज भी ज्ञात नहीं।

वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा जमीन से गणेश का निकलना, बिना लिफ़ाफ़ा खोले संदेश पढ़ लेना, गणेश को दूध पिलाना, नारियल से भूत भगाना, हवन कुंड में बिना माचिस के अग्नि प्रज्वलित करना, कागज में अग्नि से संदेश लिखना, पवित्र भभूत पैदा करना, नारियल से गणेश निकालना, नारियल से फूल आदि निकाल कर जादुई करतबों द्वारा जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया। प्रदर्शन में श्री नरेश शाह, श्री गोस्वामी, श्री रवि, समीर एवं अखिल दवे तथा रसायन विभाग के श्री मनोज परमार, भावेष दवे एवं संजय गायकवाड़ ने विशेष सहयोग दिया।

भाई दोरजी एवं उनके सहयोगियों ने कुछ विशेष पौधों की जानकारी दी तो सुश्री स्नेहल भट्ट ने साँपों के बारे में फैली गलत धारणाओं के बारे में बताया।

विज्ञान प्रदर्शन में तीन प्रमुख वक्ता भी थे। विश्वविद्यालय के प्रमुख चिकित्सक डॉ० किरण भाई सिंगलोट ने योग के महत्व पर प्रकाश डाला। शिक्षण एवं मनोचिकित्सा विभाग में रीडर डॉ० वी० डी० थामस ने अंधविश्वास और मानव मस्तिष्क की मनोदशा की भूमिका पर अपनी राय दी। श्री कनुभाई पुरोहित ने ज्योतिष शास्त्र, तन्त्र शास्त्र और अन्धश्रद्धा पर अपना प्रवचन दिया। आचार्य श्री विष्णु प्रसाद जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि ये युवा वैज्ञानिक ही प्राचीन ऋषि हैं। इस कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग आकाशवाणी अहमदाबाद, बरोडा ने 29 नवम्बर को सायं 5.30 बजे प्रसारित की।

6, 7, 8 को विज्ञान संकाय ने विज्ञान मेले का आयोजन किया जिसमें विज्ञान परिषद् ने भी एक प्रदर्शनी लगाई और प्रतिदिन सायंकाल एक विज्ञान शो का आयोजन किया।

21 एवं 22 दिसम्बर को बड़ौदा से 25 कि० मी० दूर इंदिरावास एवं कोयली नामक ग्रामों में संस्था के अध्यक्ष डॉ० योगेश जशराय ने अंधविश्वासों एवं चमत्कारों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। ग्रामवासियों के समक्ष इस प्रदर्शन में सहयोग दिया सुश्री मानसी एवं ज्योयेता ने।

लोक विज्ञान केन्द्र, वडोदरा ने 26 से 28 दिसम्बर को विज्ञान मेले का आयोजन किया। छोटे बच्चों के लिये आयोजित इस विज्ञान मेले में विज्ञान परिषद् ने भी हिस्सा लिया। पोस्टर प्रदर्शनी के अतिरिक्त मेले के अंतिम दिन चमत्कारों का सुरुचिपूर्ण प्रदर्शन किया गया जिसे बालकों ने बहुत सराहा।

विज्ञान की यह ज्योति अब एक वर्ष पुरानी हो चुकी है। आने वाला समय यह बतायेगा कि अनेक विपरीत परिस्थितियों के बावजूद यह कितना उजाला कर सकी, कितनी दूर-दूर तक विज्ञान का पावन संदेश पहुँचा सकी।

2. फैज़ाबाद शाखा से

परिषद् की फैज़ाबाद शाखा में पिछले वर्षों की भाँति विभिन्न विषयों पर भाषण एवं वार्तायें हुयीं। विज्ञान परिषद् में वर्ष 1996 में निम्न कार्यक्रम हुये—

21.1.96 डॉ० पी० डी० सिंह द्वारा धूमकेतुओं की भौतिक एवं रसायनिक संरचना विषय पर विस्तृत भाषण हुआ। डॉ० सिंह साओपालो विश्वविद्यालय, ब्राजील के आंतरिक्ष भौतिकी विभाग में कार्यरत वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं।

18.2.96 डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय के पिता श्री दिनेश नारायण उपाध्याय एम० ए० साहित्यरल के निधन पर शोक सभा हुयी।

[शेष पृष्ठ 22 पर]

Society of Pilgrimage Studies

4A / 2 / 1 Muirabad, Allahabad, UP 211002, India

President : Dr. Rana P. B. Singh *Secretary* : Dr. D. P. Dubey

Preamble

- Pilgrimage to sacred places is an ancient and continuing tradition in all the cultures of the world. The various forms and structures involved therein form a unique faithscape where various dimensions of faith meet. Pilgrimage is a process, fluid and changing phenomenon, spontaneous, initially unstructured and outside the bounds of religious orthodoxy. The ecological mysteries and invisible revelations related to man's cosmic integrity may be visioned and experienced through the pilgrimage system. There exist strong linkage among faith system, pilgrimage and tourism—all moving to unravel the mysteries and powers of the earth-places.

Plan

- The SPS, established in 1989, aims to promote the overall perspectives and dimensions of pilgrimage institution in the context of inter-disciplinary approach, preservation and conservation of pilgrimage centres and monuments, planning of sacred places to make them better for pilgrimage without disturbing the religious glory, checking the human and environmental pollutions at sacred places through mass awareness campaigns, and finally revitalizing the deeply involved values at sacred places for attracting more people in search of revelation and peace.

Theme

- The SPS is interested o support and encourage any aspect of study like pilgrimage studies, conceptual frame, cosmic/purview and sacred ecology, historical outlook, travel genre, typology and hierarchy of sacred places, sacred time, sacred rituals, sacred functionaries, sacred organisations and systems, and heritage preservation.

Function

- The SPS functions around two broad activities ; (a) organisation of international conference and, (b) publication of **Bulletin**. The first international conference on "*Pilgrimage Traditions*" was organised on Oct. 14-16, 1990, at Vrindavan, India. The second conference on "*Pilgrimage Tourism and Conservation of Cultural Heritage*" was organised on January 21-23, 1995 at Allahabad, India. The third conference on "*Cultural Heritage of Allahabad*" was held on February 3-5, 1996 at Allahabad. Based on invited papers and presentations in the conferences, the **Pilgrimage Studies** series is published, which includes *Kumbhaparva Prayāga* (1989), *Pilgrimage Studies : Text and Context* (1990), and *Pilgrimage Studies : Sacred Places, Sacred Traditions* (1995), and *Triveni : Essays on the Cultural Heritage of Allahabad* (1996).

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें		Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	35
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	25
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	25
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	25
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया		Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें		
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	50
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध		
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली
के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1997

मूल्य रु० 3.50
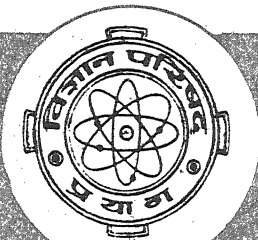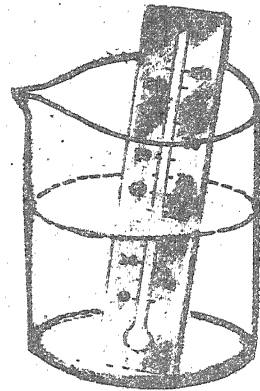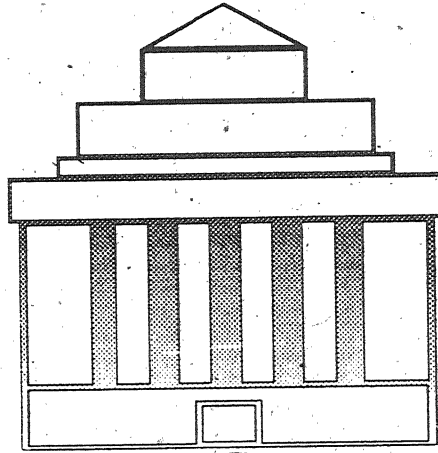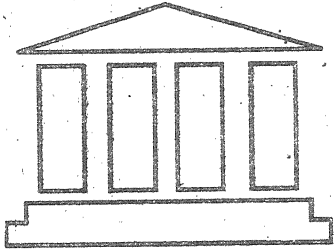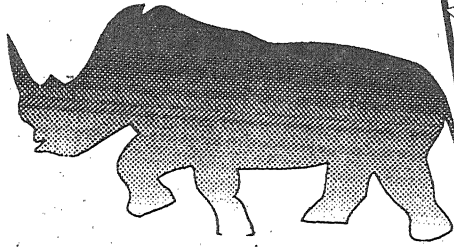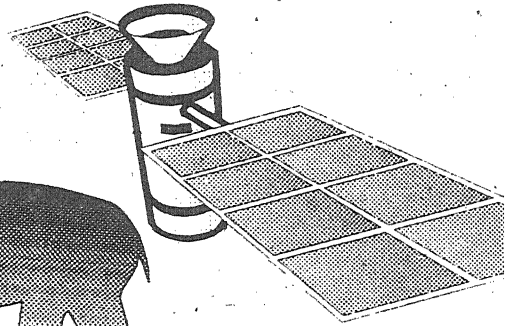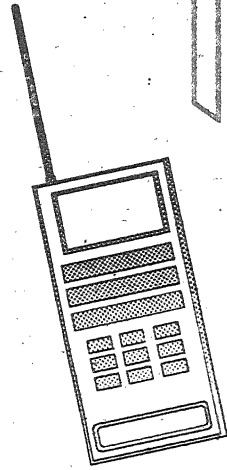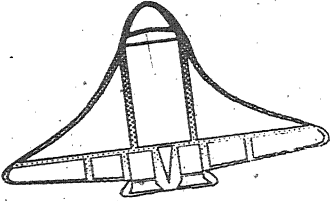
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

अप्रैल 1997 : वर्ष 83 अंक 1

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	कम्प्यूटर कम्पोजर	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद!

"विज्ञान" के अप्रैल 1997 अंक के साथ ही "विज्ञान" पत्रिका प्रकाशन के 83वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह आप सभी के सहयोग, शुभकामनाओं और आशीर्वाद का सुफल है। अतएव आप सभी साधुवाद के पात्र हैं और मैं इस अवसर पर आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

पिछले दिनों एक चौंकाने वाला अनुसंधान सामने आया है। मैं चाहता हूँ इस विषय पर आपके पास भी जो नवीन जानकारियाँ हों, "विज्ञान" में अवश्य भेजें।

चौंकाने वाली बात यह है कि आम धारणा के विपरीत स्त्रियों के लिए पुरुषों की अपेक्षा प्रकृति का व्यवहार पक्षपात पूर्ण है। पुरुष भले ही अपने आपको शारीरिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होने के कारण, प्रकृति का चहेता मानता आया हो किन्तु वास्तविकता यह है कि महिलायें अपने दिमाग़ का इस्तेमाल अधिक शीघ्र और अधिक प्रभावी ढंग से करने में माहिर होती हैं। और उनको यह प्रकृति का वरदान बचपन से ही प्राप्त हो जाता है। अब जो लोग पुरुषों की श्रेष्ठता में विश्वास रखते हैं उन्हें इस तथ्य के प्रकाश में आने से आश्चर्य के साथ ही साथ धक्का तो लगेगा ही।

बर्लिन के विख्यात आणुविक जीवविज्ञानी प्रो० जेन्स रीख़ के अध्ययनों को स्टुटगार्ट की एक शोध पत्रिका-बाइल्ड डेर बिसेन श्राफ्ट (Bild der Wissenschaft) ने प्रकाशित किया। प्रो० जेन्स के अनुसार महिलायें प्रकृति को अधिक प्रिय हैं। प्रकृति तो बालिका का ही सृजन करना चाहती है। बालक का जन्म तो बारंबार होने वाला "जीन दोष" ("genetic defect") है। सुनने में भले ही अटपटा लगने वाला हो, किन्तु सच्चाई यही है कि भ्रूण के विकास के दौरान छोटी गड़बड़ी नरभ्रूण को मादा भ्रूण में बदल देती है।

हम सभी जानते हैं कि बच्चे को रूप-रंग आदि उसे माता-पिता से विरासत में मिलते हैं। पैतृक गुणों के वाहक 'जीवन' होते हैं। ये जीन 'X' और 'Y' (वाई) क्रोमोसोम (गुणसूत्र) के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते हैं। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि 'Y' क्रोमोसोम 'X' क्रोमोसोम की तुलना में छोटा होता है और वास्तविकता यह है कि 'Y' क्रोमोसोम का अधिकांश भाग कोई सूचना नहीं रखता। यह 'जीन शून्य' ('genetic zero') कहलाता है। इसका 'X' क्रोमोसोम से जुड़ना, जो बालक के जन्म का कारण होता है, संयोग और परिस्थिति पर निर्भर करता है। भ्रूण के नर भ्रूण में विकसित होने की प्रक्रिया जटिल होती है और यह तभी सफल हो पाती है जब विकास के दौरान किसी तरह की कोई गड़बड़ी नउत्पन्न हो जाये। प्रख्यात अमेरिकी हारमोन फिजियालोजिस्ट प्रो० क्रैपो भी कुछ इसी तरह का विचार प्रकट करते हैं। यह नया विचार उस पुरानी अवधारणा को भी ध्वस्त करता है, जिसके अनुसार लिंग का निर्धारण अपने आप गर्भाधान के समय ही हो जाता है। किन्तु नयी अवधारणा के अनुसार प्रत्येक मानव भ्रूण माता के गर्भ में प्रारंभ के कुछ सप्ताह उभयलिंगी अवस्था में व्यतीत करता है। कुछ विशेष संकेत देने वाले पदार्थों की सहायता से ही उभयलिंगी भ्रूण नर भ्रूण में परिवर्तित होता है। बस यहीं अगर भ्रूण के विकास में कुछ गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है तो बालिका पर विशेष रूप से कृपालु प्रकृति विकासशील नर भ्रूण को मादा भ्रूण में बदल देती है।

प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि बधिया किया हुआ (Castrated) भ्रूण मादा भ्रूण में परिवर्तित हो जाता है। भ्रूण का लिंग चाहे जो भी हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है।

[शेष पृष्ठ 9 पर]

प्रभावशाली रेकी चिकित्सा

❑ चंचलमल चोरड़िया

जालोरी गेट के बाहर, गोल बिल्डिंग रोड
जोधपुर -342003 (राजस्थान)

रेकी क्या है?

'रेकी' ब्रहमाण्ड में उपलब्ध चैतन्य शक्ति की तरंगों को शरीर में सुव्यवस्थित ढंग से प्रवाहित करने की सरल प्रक्रिया है जिसके द्वारा शरीर, मन एवं आत्मा को सन्तुलित कर सम्पूर्ण स्वास्थ्य, प्रसन्नता, समृद्धि प्राप्त की जा सकती है। 'रेकी' एक जापानी शब्द है जिसका मतलब होता है ब्रहमाण्ड की प्राण ऊर्जा (यूनिवर्सल लाइफ फोर्स)हमारा ब्रहमाण्ड जीवन-दायिनी ऊर्जा से परिपूर्ण है। इस प्राण ऊर्जा को चीन में 'ची', इंग्लैण्ड में 'लाइट' अथवा 'होली स्प्रिट' रूस में 'ब्रायोप्लास्मिक' तथा भारत में 'प्राण ऊर्जा' के नाम से पहचाना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति इस ऊर्जा (रेकी) के साथ ही जन्म लेता है, बड़ा होता है और इसी के साथ मरता है अर्थात् रेकी जीवन का सार है। रेकी हमारी क्षमताओं को बढ़ाती है। जीवन में मानवीय गुणों को विकसित करने में सहयोग देती है। रेकी प्रज्ञावन्त है। शुद्ध एवं सात्विक प्रेम का भण्डार है। अन्तर आत्मा की आवाज है। जन्म के साथ हमारे अन्दर इस ऊर्जा का भण्डार होने के बावजूद तनाव युक्त जीवन कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) की जीवन में बाहुल्यता, अनैतिक आचरण, गुणग्राहकता के अभाव में जीवन के प्रति निराशा, वैचारिक प्रदूषण आदि कारणों से हमारा इस ऊर्जा से सम्बन्ध टूटने लगता है परन्तु जब कोई अनुभवी रेकी प्रशिक्षक उसे रेकी-वाहक बनाता है तो यह सम्पर्क पुनः स्थापित हो जाता है जो भविष्य में भी बना रह सकता है। रेकी प्राण ऊर्जा के प्रवाह की एक प्रक्रिया है। सारे विश्व की रचना, अस्तित्व एवं घटना चक्र के पीछे रेकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रायः सभी धर्मों ने इस चैतन्य शक्ति को स्वीकारा है।

रेकी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाएं एवं परम्पराएं

माता-पिता एवं गुरूजनों द्वारा आर्शीवाद के रूप में इस ऊर्जा को हस्तान्तरित करने का आज भी प्रचलन है। सिर दर्द के समय सिर पर और आँखें भारी होने पर आँखों पर हथेली का स्पर्श करने से क्यों राहत का अनुभव होता है? रामायण में वर्णित लक्षण रेखा क्या थी? उसके अन्दर का क्षेत्र इतना प्रभावशाली एवं सुरक्षित कैसे बन गया जिससे रावण जैसा पराक्रमी भी उस क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस नहीं कर सका? कौन सी शक्ति द्वारा श्री राम ने अहिल्या में प्राणों का संचार किया? स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द में प्राण ऊर्जा का शक्तिपात कैसे किया? जैन साधुओं द्वारा मांगलिक श्रवण का आज भी प्रचलन है। ध्यान साधना के पश्चात आध्यात्मिक संत पुरुषों से श्रवण किया गया मांगलिक क्यों प्रभावशाली हो जाता है? कभी-कभी हम संत पुरुषों के समीप बैठे-बैठे क्यों खिंचे-खिचें रहते हैं? सामुहिक जाप, भक्ति एवं मंत्रोंचारण द्वारा वातावरण को शुद्ध बनाने की प्रक्रिया आज भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रचलित है। सांप और बिच्छू का विष उतारने तथा भूत-प्रेत का प्रभाव

हटाने के लिए जो प्रक्रिया अपनाई जाती है वह रेकी का ही रूप है। आज भी फिलीपीन्स देश में डिवायन हीलींग द्वारा बिना किसी औजार अथवा उपकरणों के शल्य चिकित्सा करने के पीछे कौन-सी अदृश्य शक्ति कार्य करती है जो विज्ञान के लिए रहस्य बनी हुई है? आज भी दवा से ज्यादा दुआओं की शक्ति को स्वीकारा जा रहा है।

रेकी का इतिहास

इस प्रभावशाली प्राण ऊर्जा के बार में पुन: व्यवस्थित ज्ञान उपलब्ध कराने में जापान के मिकाउसइ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मिकाउसइ जापान में एक चर्च में पादरी के रूप में कार्य करते थे। एक दिन किसी जिज्ञासु ने उनसे पूछा-"ऐसी कौन-सी शक्ति है जिसके कारण जीसेस क्राईस्ट जब किसी दु:खी को आशीर्वाद देते थे तो उसका कष्ट दूर हो जाता"? मिकाउसइ द्वारा इस प्रश्न का संतोषजनक समाधान न कर पाने के कारण उन्होंने उस पद पर रहना उचित नहीं समझा और इस प्रश्न का समाधान ढूँढ़ने विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा विभिन्न देशों का भ्रमण किया। इस हेतु उन्होंने अमेरिका, भारत, तिब्बत में विशेष रूप से अनुसंधान क और अन्त में पुन: जापान आकर शान्त एकांत पहाड़ी पर 21 दिन तक ध्यान की मौन साधना की। साधना के अंतिम दिन उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि कोई अदृश्य चैतन्य शक्ति उनमें प्रवाहित हो रही है। साधना समाप्त कर पहाड़ी से नीचे उतरते समय उनके पैर के अंगूठे में चोट लग गई और रक्त बहने लगा परन्तु जब उन्होंने हथेली से अपने अंगुठे को दबाया तो थोड़ी देर में अंगूठे का दर्द समाप्त हो गया और रक्त का प्रवाह भी बन्द हो गया यही उनकी रेकी का प्रथम प्रयोग था और यहीं से रेकी का पुन: प्रादुर्भाव हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने इस ऊर्जा द्वारा हजारों भिखारियों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ बना सुखी जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त किया। रेकी द्वारा उनके स्पर्श मात्र से हाजारों असाध्य रोगी स्वस्थ होने लगे। डॉ० मिकाउसइ के साथ कार्य करचे वाले डॉ० चिजिरो हयाशी ने इस कार्य को आगे बढ़ाया तथा टोकियो स्थित अपने चिकित्सालय में सैकड़ों असाध्य एवं पुराने रोगियों को रोगमुक्त किया। 1941 में चिजिरो हयाशी की मृत्यु के पश्चात् हवायों तकता ने इस विद्या को आगे बढ़ाया और सैकड़ों लोगों को रेकी का प्रशिक्षण दिया। परिणाम स्वरूप आज संसार में हजारों रेकी प्रशिक्षक एवं अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं इसके प्रचार प्रसार में संलग्न हैं।

रेकी कैसे कार्य करती है?

जब कोई रेकी प्रवाहक रोगी के रोगग्रस्त भाग पर अपनी हथेली रखता है तो रेकी उसके मस्तिष्क से शरीर में प्रवेश कर हथेली के मार्ग से रोगी के शरीर में प्रवाहित होने लगती है। रेकी का प्रभाव शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आत्मिक आदि सभी स्तरों पर पड़ता है। यह शरीर और मन में उत्पन्न असंतुलन को दूर करती है, अवरोधों को हटाती है जो सभी रोगों के प्रमुख कारण है। यह अपने ही ढंग से कार्य करती है। इसकी कार्य प्रणाली बिल्कुल स्वतंत्र है। हम इस शख्ति का न तो दुरुपयोग ही कर सकते हैं और न ही इस पर जोर जबरदस्ती। रेकी पूर्णत: वैज्ञानिक है। किसी प्रकार के अंधविश्वास को यहाँ स्थान नहीं। रेकी वाहक हथेली द्वारा ऊर्जा भेजता है परन्तु हस्त स्पर्श ही सब कुछ नहीं। रेकी वाहक गलती कर सकता है परन्तु रेकी गलती नही करती। रेकी वाहक तो केवल उपचार का माध्यम है। उपचार स्वीकार करना अथवा न करना रोगी पर निर्भर करता है। रेकी का कार्य बिजली के तारों की भांति बिजली के उपकरणों तक बिजली पहुँचाने के माध्यम के समान ही उसकी भूमिका होती है। यदि 15 वाट का बल्ब होगा तो 15 वाट जितनी बिजली खिचेगा और 1000 वाट का बल्ब होगा तो 1000 वाट जितनी बिजली ग्रहण करेगा तथा यदि बल्ब फ्यूज होगा तो तनिक भी बिजली का उपयोग नहीं करेगा। ठीक उसी प्रकार रेकी द्वारा उपचार करते समय शरीर में कितनी ऊर्जा कहाँ भेजनी है इसका मार्गदर्शन रेकी स्वयं अपने वाहक को करती है। जिस प्रकार बिजली का स्वीच चालू करने मात्र से प्रकाश हो जाता है। व्यक्ति को यह जानने की आवश्यकता नहीं कि बिजली कहाँ से और कैसे प्रवाहित हो रही है, उसको प्रकाश मिल जाता है ठीक उसी प्रकार रेकी प्रवाहक का कार्य तो मात्र ऊर्जा भेजना है। रेकी प्रवाहक को रोगी के रोग के बारे में पूर्ण जानकारी की आवश्यकता नहीं और न ही शरीर विज्ञान की सूक्ष्म जानकारी । प्राय: सभी रोगों के लिए उपचार पद्धति एक जैसी है। यह पूर्ण रूप से विश्वसनीय,

आनन्ददायक, स्मरण मात्र में उपस्थित होने वाली, मानव को पूर्णत्व की ओर ले जाने वाली एक अनमोल देन है।

रेकी की विशेषताएं

रेकी सरल, सस्ती, अहिंसक, स्वावलम्बी, पीड़ा एवं दुष्प्रभावों से रहित शारीरिक मानसिक, भावनात्मक, आत्मिक संतुलन के सिद्धान्तों पर आधारित सर्वाकालीन, सबके लिए, सभी समय उपलब्ध व्यक्ति को स्वस्थ समृद्धि बनाने की प्रभावशाली चिकित्सा पद्धति है। शरीर में विजातीय तत्वों को पूर्ण रूप से समाप्त कर स्वाभाविक अवस्था में आती है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तथा स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता विकसित होने से रोगों की पुनरावृत्ति नहीं होती । रोगी एवं रेकी वाहक उपचार करते समय दोनों लाभान्वित होते हैं। रेकी व्यक्ति को पुनः स्वाभाविक जीवन जीने की प्रेरणा की अनुभूति कराती है। बुरी आदतों दुर्व्सनों से छुटकारा दिलाती है। मानसिक एवं शारीरिक तनाव घटाती है। विषैले जानवरों के काटने से शरीर में फैले विष को निकालने में, छुआछूत की बीमारियों की रोकथाम, टूटी हड्डियों को जल्दी जोड़ने, घाव शीघ्र भरने में रेकी अत्यधिक प्रभावशाली है। रेकी मानसिक एवं शारीरिक तनाव घटाती है और सजगता बढ़ाती है। आधि, व्याधि और उपाधि को संतुलित कर व्यक्ति को समभाव यानि समाधि में लाती है। व्यक्ति में आत्मविश्वास बढ़ने लगता है, कषाय मन्द होने लगती है तथा जीवन में सच्ची सुख, शांति, समृद्धि की प्राप्ति होती है जिससे वह अपने चरम लक्ष्य नर से नारायण बनने की तरफ प्रगति करता है। रेकी सेवा का उत्तम साधन है।

रेकी वनस्पति एवं सारे प्राणी मात्र के लिए भी लाभप्रद है। आज के युग में रेकी को अनुभवी रेकी प्रवाहक ब्रहमाण्ड में कहीं भी हस्तान्तरित कर सकते हैं। रेकी के प्रयोग जीवन की प्रत्यके समस्या के समाधान में हो रहे हैं। जैसे इच्छा शक्ति बढ़ाने, आत्मविश्वास जगाने, बुरी आदतें छुड़वाने, दुर्व्यसनों से मुक्ति दिलाने, पारिवारिक प्रेम बढ़ाने, कारखानों में मालिक मजदूरों के सम्बन्धों में सौहार्द रखने, घरों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में एवं अन्य स्थानों को दूषित तरंगों से स्वस्थ करने, व्यापार व्यवसाय में सुधार करने, योजनाओं को समयबद्ध पूर्ण करने, असहनीय दर्दों में तुरन्त राहत दिलवाने, स्मरण शक्ति सुधारने, अशुभ कर्मों को क्षय करने आदि में सफलता पूर्वक किये जा सकते हैं।

रेकी द्वारा व्यक्ति की अनुपस्थिति में भी उपचार तथा उसकी समस्याओं का समाधान उतनाही प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है जितना उसकी उपास्थिति में। टी० वी०, रेडियो, टेलिफोन, फैक्स आदि की तरंगों के प्रभाव से हम भलीभांति परिचित हैं। उसी प्रकार रेकी का उपयोग दूरस्थ समस्याओं के लिए समान रूप से किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रेकी द्वारा समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। रेकी जैसी प्रभावशाली ऊर्जा का उपयोग स्व-पर कल्याण के लिए ही करना चाहिए। जबरदस्ती अथवा बिना आग्रह किसी के कष्ट दूर करने के लिए इसका उपयोग नहीं करना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि इसका अवमूल्यन व उपेक्षा न हो।

रेकी की सीमाएं

1. रेकी जन्म से प्राप्त दोषों को दूर नहीं कर सकती।

2. किसी के शरीर में कोई अवयव न हो अथवा शल्य चिकित्सा द्वारा निकाल दिया गया हो तो फिर से निर्माण नहीं कर सकती।

3. रेकी मृत्यु को नहीं टाल सकती परन्तु असाध्य रोगों में पीड़ा से राहत, शांति से मृत्यु को पाने में सहायता करती है।

रेकी-प्रवाहक कौन बन सकता है?

सामान्य बुद्धि वाला छोटे से छोटा बच्चा रेकी सीख सकता है परन्तु सफल रेकी प्रवाहक बनने के लिए रेकी प्रवाहक बनते समय जीवन में निम्न बातें आवश्यक हैं।

1. रेकी वाहक का जीवन सात्विक, आय के स्रोत अनैतिक नहीं हों।

2. रेकी वाहक को रेकी करते समय तनाव मुक्त चिन्ता मुक्त, यश कीर्ति से दूर, मायावृत्ति, छल-कपट, धोखाधड़ी,

घमण्ड आदि दुर्गणों से बचना आवश्यक है।

3. रेकी करते समय विश्व के सभी सजीव और निर्जीव पदार्थों के प्रति कृतज्ञता का भाव होना चाहिए।

4. अपने गुरुजनों तथा अन्य सभी श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति आदर की भावना।

5. प्राणी मात्र के प्रति करुणा, मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ भावना का होना।

रेकी प्रशिक्षण

आज दुनिया भर में हजारों रेकी प्रशिक्षक रेकी प्रवाहक बनने का प्रशिक्षण देते हैं। रेकी प्रशिक्षण हेतु जापान, अमेरिका, इंग्लैण्ड, भारत आदि विभिन्न राष्ट्रों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएं कार्यरत हैं। अमेरिका में आजकल अधिकांश डॉक्टर, वैज्ञानिक, नर्सेज, व्यवसायी रेकी का प्रशिक्षण ले रहे हैं। जापान में रेकी सर्वाधिक लोकप्रिय है और उपचार के साथ-साथ स्वयं की अथवा दूसरों की समस्याओं को समाधान करने, क्षमताओं का अधिकतम उपयोग कर राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में विश्व में अपनी अलग पहचान बनाये हुये है। रेकी प्रशिक्षण में सर्वप्रथम विचार शून्य जागृत अवस्था (Alpha Level) में प्रशिक्षणार्थियों को लाने का अभ्यास कराया जाता है, उसके पश्चात् शरीर में शक्ति के केन्द्र सातों चक्रों का उनसे सम्बन्धित ध्वनि एवं रंगों के आधार पर ध्यान का अभ्यास कराया जाता है। इसके साथ-साथ आभामण्डल को स्वच्छ एवं शुद्ध करने की प्रक्रिया करवाई जाती है। साथ ही साथ चेतना के प्रवाह का श्वसन क्रिया के साथ एक लय में अभ्यास कराया जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्रशिक्षणार्थियों के शरीर में विभिन्न प्रकार के तरंगों के प्रवाह की अलग-अलग अनुभूति होती है। रेकी प्रशिक्षक विद्यार्थी के चक्रों का ब्रह्माण्ड की प्राण ऊर्जा के साथ सम्बन्ध जुड़वाते हैं जिससे रेकी उनसे मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र (Crown Centre) में प्रवेश कर हथेली में प्रवाहित होने लगती है। लगातार अभ्यास से रेकी का प्रवाह विद्यार्थियों में सुव्यवस्थित ढंग से होने लगता है। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थी स्वयं रेकी वाहक बन जाते हैं और जहां-जहां वे अपनी हथेली रखते हैं वहाँ से रेकी का प्रवाह होने लगता है। रोगग्रस्त भाग में हथेली स्पर्श करने अथवा चक्रों पर हथेली का स्पर्श करने से वह भाग सक्रिय हो जाता है और रोग से राहत मिलने लगती है। रेकी के प्रवाह से शरीर में पुराने जमें हुए शारीरिक मानसिक आवेगों से उत्पन्न अवरोध, विकार, दुर्गण हटने लगते हैं। जितना-जितना अभ्यास किया जायेगा, आवश्यक मापदण्डों का पालन किया जायेगा रेकी का प्रवाह उतना ही शक्तिशाली होगा तथा अच्छे परिणाम शीघ्र ही प्राप्त होने लगेगे।

प्रभावशाली चिन्हों का अदृश्य व्यक्तियों / क्षेत्रों में विभिन्न कार्यों हेतु रेकी द्वारा उपयोग

विभिन्न चिन्हों की सहायता से रेकी प्रवाहक रेकी को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष क्षेत्रों में प्रभावशाली ढंग से हस्तान्तरित कर सकते हैं। इन्हीं चिन्हों के प्रभाव से रेकी का प्रभाव कई गुणा बढ़ जाता है। जिस प्रकार हथियारों एवं लड़ाई के काम में आने वाले विशिष्ट उपकरणों से सैनिक की लड़ने की ताकत बढ़ जाती है, ठीक उसी प्रकार इन चिन्हों के साथ रेकी प्रवाहित करने से उसका प्रभाव और कार्य क्षेत्र काफी बढ़ जाता है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रेकी का उपयोग किया जा सकता है। जिस प्रकार टेलिफोन का सही नम्बर डायल करने पर सामने वाले के टेलीफोन की घंटी बजने लगती है, वह इसकी चिंता नहीं करता कि तरंगें कैसे प्रवाहित होती हैं ठीक उसी प्रकार रेकी प्रवाहक का कार्य तो मात्र चिन्ह का चुनाव कर रेकी को भिजवाना मात्र है। बाकी सारा कार्य तो रेकी स्वयं करती है। अलग-अलग कार्यों अथवा समस्याओं के समाधान हेतु अलग चिन्ह होते हैं। इन चिन्हों को कैसे अंकित किया जावे, उच्चारण कैसे किया जावे तथा कितने समय तक किस अनुक्रम में चिन्हों के साथ रेकी को अन्यत्र भेजा जावे आदि विधियाँ द्वितीय श्रेणी के प्रशिक्षण में सिखाई जाती हैं। उदाहरण के लिए जैसे- किसी परिवार में आपसी सौहार्द नहीं है तो सर्वप्रथम जिस चिन्ह की सम्बन्धित व्यक्ति के ललाट पर अंकित करने की कल्पना की जाती है उसका कार्य परिवार के सदस्यों की गलतफहमियों को दूर करना, घृणा, द्वेष, निंदा चुगली, व्यंग्यों, आक्षेपों आदि से दूषित धारणाओं को साफ करना, अपने दोष देखने तथा

दूसरों की अच्छाइयाँ देखने हेतु प्रेरित करने का होता है। तत्श्चात् इन सारी बुराइयों को अन्य चिन्हों द्वारा रेकी भेजकर सदा के लिए समाप्त करना, दफनाना अथवा जलाने का होता है जिससे सम्बन्धित व्यक्ति पुरानी बातों को भूल जावे। उसके पश्चात् सदस्यों में मैत्री, प्रेम, सौहार्द, त्याग, समर्पण की भावना बढ़ाने वाले चिन्हों के द्वारा स्वस्थ, शक्तिशाली बनाने के लिए उपर्युक्त रेकी का हस्तान्तरण किया जाता है। अन्त में उन व्यकतियों को भविष्य में पुन: दूषित विचारों से बचाने के लिए उनके ऊपर सुरक्षा का आचरण बनाने के लिए उपर्युक्त चिन्ह रेकी द्वारा भिजवाई जाती है। जिससे भविष्य में पुन: वैमनस्य की पुनरावृत्ति न हो। प्रत्येक प्रक्रिया का समय साधारणतया 3 से 5 मिनट का होता है परन्तु अलग-अलग परिस्थितियों में ज्यादा कम भी हो सकता है। रेकी का हस्तान्तरण उसका आग्रह करने वालों में करना चाहिए जिसका इसमें विश्वास हो अथवा अपनी समस्या के समाधान का हृदय से इच्छुक रेकी जैसी अमूल्य ऊर्जा का उपयोग अनचाहे व्यक्तियों पर करने से इसका अवमूल्यन होगा, समय की व्यर्थ बरबादी होगी, हालाँकि रेकी ग्रहण न करने की स्थिति में रेकी प्रवाहक को तो लाभ ही होगा।

इसी प्रकार रेकी का उपयोग व्यापार, व्यवसाय बढ़ाने, घर समाज एवं राष्ट्र को समृद्ध बनाने, संकट पूर्ण स्थितियों से निबटने, विष के प्रभाव को समाप्त करने, दुर्वयसनों से छुटकारा पाने, मालिक-मजदूरों के सम्बन्ध सुधारने, उत्पादन बढ़ाने, दुर्घटनाएँ रोकने, घाव भरने, स्मरण शक्ति सुधारने, पीड़ा को तुरन्त शांत करने, पूर्व उपार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाव को कम करने आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किया जा सकता है। रेकी का उपयोग स्व-पर कल्याण के लिए ही करना चाहिये। रेकी के प्रभावशाली चिन्हों को गुप्त रखना चाहिए और यदि ऐसा न किया गया परन्तु दुरुपयोग किया गया तो उसके दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि रेकी का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं के समाधान हेतु सरलता पूर्वक किया जा सकता है। हम अधिक से अधिक रेकी का प्रशिक्षण लें तथा अपने जीवन को शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक रूप से समृद्ध बनावें। पूर्ण स्वास्थ्य का मतलब शारीरिक स्वस्थता अर्थात् पीड़ा रहित संतुलित शारीरिक, मानसिक प्रक्रियाएं, मानसिक और आत्मिक स्वस्थता के लिए हम समभाव की अवस्था प्राप्त करें, अनुकूल अथवा प्रकूल परिस्थितियों में विचलित न हों, शांति, संतोष स्वावलम्बन, स्वतंत्रता, शुद्धता, नैतिकता एवं कामना रहित हमारा जीवन बने। सम्पूर्ण प्रसन्नता के लिए हम खुश हों, हमारा परिवार सुखी हो, हमारा व्यवसाय अनुकरणीय हो तथा समाज और राष्ट्र समृद्धशाली हो। ये सब लक्ष्य रेकी से सरलता पूर्वक प्राप्त किये जा सकते हैं। भारत जैसे विकासशील देश के लिए जो विदेशी कर्जों के भार से निरन्तर दबता जा रहा है, रेकी विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। प्रसन्नता का विषय है कि हमारे देश में अनेक प्रतिष्ठित अच्छी-अच्छी कम्पनियों ने अपने प्रबन्धकों को इसका प्रशिक्षण दिलाकर अपने मैनेजमेन्ट में आपेक्षित सुधार किया है। अपेक्षा है सरकार हमारी इस अमूल्य पौराणिक निधि के प्रतिरुचि बढ़ाने और जनसाधारण के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करे।

■ ■ ■

जलकुम्भी : कुछ उपयोगी तथ्य एवं जानकारियाँ

❑ डॉ० ए० सी० पाण्डेय

मत्स्य विज्ञान विभाग,
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
कुमारगंज, फैजाबाद -224 229

जलकुम्भी या समुद्र सोख ब्राज़ील से हमारे देश में 1896 में सजावटी पौधे के रूप में लायी गयी थी। इसका वैज्ञानिक नाम **आइकॉर्निया क्रैसीपीस** है तथा आंग्ल भाषा में इसे "वाटर हाइसीन्थ" कहते हैं। यह जल की सतह पर स्वच्छ विचरण करने वाला अवांछनीय पौधा है। पत्तियाँ बीच में चौड़ी, अग्र भाग पर नुकीली तथा वायुकोष से भरे पर्ण-वृन्त (डंठल) युक्त होती हैं। प्रकन्द (राइजोम) से ही सभी पर्ण-वृन्त जुड़े होते हैं, इसके निचले भाग पर रेशेदार जड़ें पायी जाती हैं जो कि जल अवशोषण की असीमित क्षमता रखती हैं। एक हे० क्षेत्र की जलकुम्भी में 5700 घन मी० जल ग्रहण करने की क्षमता होती है। जल के वाष्पीकरण प्रक्रिया को यह पौधा 3-5 गुना तीव्र कर देता है।

जलकुम्भी उत्तरी अमेरिका का मूल निवासी है। आस्ट्रेलिया में 1930 एवं अफ्रीका महाद्वीप में 1950 में लायी गयी थी। जलकुम्भी बांध, जलाशय, नहर, झील, नाला, नदियों आदि में इतनी अधिक संख्या में पायी जाने लगी है कि यह समस्या का रूप ले चुकी है। प्रत्येक 6-7 दिन में इस पौधे का क्षेत्रफल दुगुना हो जाने के कारण किसी भी जलक्षेत्र को आच्छादित करने में देर नहीं लगती है। 300 से 400 पौधे एक हे० जलक्षेत्र को लगभग 3 माह में पूर्ण रूप से भर सकने के लिये पर्याप्त हैं। एक प्रयोग से ज्ञात होता है कि दो पौधों से 23 दिनों में 30 एवं 4 माह में 1200 नवीन पौधे तैयार हो जाते हैं।

इस पौधे से अच्छादित जलराशि तक सूर्य प्रकाश नहीं पहुँच पाता है जिससे जल के अन्दर ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। भा- संश्लेषण की प्रक्रिया अवरोधित हो जाने के कारण जलक्षेत्र की उत्पादकता प्रभावित होती है। जल -भराव वाले क्षेत्रों के धान के खेतों में जलकुम्भी के कारण धान के पौधे के अंकुरण पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है तथा अंकुरित पौधे की पत्तियाँ जलकुम्भी के पत्तियों के ऊपर नहीं पहुँच पाती है जिससे भा- संश्लेषिण एवं धान की पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जलकुम्भी के घने आवरण के मध्य विभिन प्रकार के कीट, कृमि, घोंघे आदि अपना आवास बना लेते हैं, जो कि अनेक रोगों (जैसे मलेरिया, पीत-ज्वर, मष्तिष्क- ज्वर आदि) के कारक बनते हैं। इन पौधों की जड़ों व पत्तियों से चिपके घोंघे तैरते हुए प्रवाहित नालों, नदियों, नहरों आदि में दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं एवं कृमि-रोग (सी स्टोसोमियासिस, फैसीओलियासिस) फैलाने में सहायक होते हैं।

नियंत्रण के उपाय

रसायनिक उपचार में 2,4 डी० (डाईक्लोरोफीनाक्सी एसीटिक एसिड) तथा सीमाजीन (2-क्लोरो4,6 बिस इथाइल अमीनो-एस-ट्राइजीन) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 2,4 डी० के 4-6 कि० ग्रा० मात्रा का जलीय घोल (0.25% कपड़ा धोने वाला सर्फ पाउडर) बना कर जलकुम्भी के पौधों पर छिड़क देते हैं, यह मात्रा एक हे० (हेक्टेयर) जलक्षेत्र के लिए पर्याप्त है। यह रसायन जलकुम्भी की पत्तियों, पर्णवृन्त, जड़

आदि द्वारा शोषित कर लिया जाता है जिससे गर्म मौसम में लगभग 7 दिनों में पौधें नष्ट हो जाते हैं, ठंडे मौसम में यह समय कुछ बढ़ जाता है। सीमाजीन के 5 कि० ग्रा० मात्रा का जलीय घोल का पर्णीय छिड़काव एक हे० जलक्षेत्र के जलकुम्भी को नष्ट करने के लिए पर्याप्त होता है। दोनों रसायनों की उपरोक्त मात्रा प्रमुख शफर मछलियों के लिए सुरक्षित पायी गयी है।

रासायनिक नियंत्रण विधि के अतिरिक्त "एकीकृत जीवनाशी प्रबंध" के अन्तर्गत् अनेक ऐसे जीवों की खोज की गयी है जो जलकुम्भी के पौधों को नष्ट करने में सहायक होते हैं- **नियाचैटीना आइकार्निया** नामक बीविल, शाकभोजी घोंघा **मरीसा कारनूएरीटीज, जीरोनूला पंक्टीफ्रान्स** नामक ग्रासहापर, शाकभोजी स्तनपायी जन्तु **ट्राईकेकुस मैनेटी** आदि जन्तु विभिन्न देशों में जलकुम्भी के पौधों का भक्षण करते पाये गये हैं।

इसी प्रकार **सरकोस्पोरा रोडमानी** नामक कवक जलकुम्भी को रोग से ग्रसित कर नष्ट कर देता है। परन्तु कोई भी रासायनिक विधि अथवा "जैविक नियंत्रक" अभी तक जलकुम्भी के समूल विनाश के अकेले दम पर सफल नहीं हो पाये हैं। अत: वैज्ञानिक अब इस वनस्पति के उन्मूलन की बात न करके इसके मानवहित में उपयोग की बात सोचने लगे हैं।

जलकुम्भी की उपयोगिता

1. **आहार** : जलकुम्भी में नाइट्रोजन 1.7-2.15%, फॉस्फोरस 0.38-0.56%, पोटैशियम 2.68-3.45%, प्रोटीन 9.14-14.37%, संकल ठोस पदार्थ 5-9% तथा जल 91-95% पाया जाता है। सूखे जलकुम्भी में प्रोटीन की 12-18% मात्रा पायी जाती है। इससे प्रति एकड़ 304.82 कि० ग्रा० प्रोटीन/माह प्राप्त की जा सकती है। गाय, भैंस आदि चौपाये जानवर इसे खाते हुए देखे जा सकते हैं, परन्तु इसकी उपयोगिता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि जलकुम्भी को काटकर अन्य चारे के साथ समुचित अनुपात में मिला कर जानवरों को खिलाया जाय। 150 कि० ग्रा० जलकुम्भी (जड़ को निकाल कर) के साथ 16 कि० ग्रा० धान का पुआल तथा 7 कि० ग्रा० सरसों की खली मिला कर जानवरों को दिया जा सकता है। शाकभोजी मछलियां इसे खाती तो है परन्तु वायवीय भागों तथा पहुँचने में असमर्थ होती हैं तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि गोबर या बायोगैस स्लरी की अपेक्षा जलकुम्भी का कम्पोस्ट अधिक लाभाकारी सिद्ध हो सकता है।

पदार्थ	नाइट्रोजन %	फास्फोरस %	पोटाश %
क. जलकुम्भी	1.70-2.15	0.33-0.56	2.68-3.45
ख. गोबर (कम्पोस्ट)	1.07-3.03	0.80-1.56	0.25-0.49
ग. बायोगैस स्लरी	1.18	1.43	0.23

2. **खाद** : नवीनतम शोध परिणामों से पता चलता है कि नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक उर्वरकों के अधिक एवं लम्बे अवधि तक प्रयोग से भूमि की उर्वरता क्षीण होती जा रही है तथा वायुमंडल में ओज़ोन की मात्रा भी प्रभावित होती है। अत: भूमि की उर्वरता की निरंतरता बनाये रखने के लिये रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को हतोत्साहित करके जैविक खाद के प्रयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जलकुम्भी के कम्पोस्ट का प्रयोग इस दिशा में अति उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह किसी भी निम्न विधि से बनाया जा सकता है-

1. प्रथम विधि में छोटे-छोटे गड्ढ़ों (3 x 3 x 1 मी०) के अन्दर जलकुम्भी (30 से०मी० मोटा) एवं ताजा गोबर या सीवर का कचरा या बायोगैस स्लरी का पतला तह (10 सेमी) एक दूसरे पर बारी-बारी लगाते चले जाते हैं, बाद में इसे ढक देते हैं। 3-5 माह में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

2. दूसरी विधि में जलकुम्भी को धूप में सुखा कर गोबर, राख तथा मिट्टी के साथ क्रमिक रूप से तह (2:1:1:1 अनुपात) लगा कर बांस के बने बाड़े में रख देते हैं। 3-5 माह में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

3. तीसरी विधि में ताजे जलकुम्भी के ऊपर गोबर या सीवर-कचरा (2:1 अनुपात में) का तह लगाकर गड्ढे में रखते हैं। एक-एक माह के अन्तराल पर इसे उलट दिया जाता है,

इस प्रकार तीन माह में कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका (सरासोटा, फ्लोरिडा) में जलकुम्भी का प्रयोग भूमि सुधार व कृषि कार्यों में किया जा रहा है। इसके खाद के प्रयोग के फलस्वरूप मृदा में कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्निशियम, मैगनीज एवं क्लोराइड की मात्रा तथा कैटायन विनियम क्षमता में वृद्धि हो जाती है, साथ ही साथ बाजरा (पर्ल मिलेट) की उपज भी 27000 कि० ग्रा०/ हे० तक बढ़ गयी। कई अन्य देशों से भी इसी प्रकार के उत्साहबर्धक परिणाम मिल रहे हैं।

3. प्रदूषण नियंत्रण : विश्व भर में दशकों के अथक सतत प्रयास के बाद भी जलकुम्भी का उन्मूलन एवं विनाश दिवास्वप प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में इसका जानवरों के आहार, कम्पोस्ट खाद, प्रदूषण नियंत्रण आदि कार्यों में प्रयोग करना अधिक लाभकारी प्रतीत होता है। अपने रेशेदार जड़ों की सहायता से जलकुम्भी जल में उपस्थित कैडमियम, निकल, पारा या मरकरी, फिनाल आदि खनिज तत्वों व पदार्थों को (जल की तुलना में 4000-20000 गुना अधिक) अवशोषित कर लेता है। जलकुम्भी में नाइट्रोजन 22-44, फॉस्फोरस 8-17, पोटैशियम 22-44, कैल्शियम 11-22, मैगनीशियम 2-4 तथा सोडियम 18-34 कि० ग्र०/हे०/दिन तथा 89 ग्रा० पारा, 104 ग्रा० शीशा, 297 ग्रा० निकल, 321 ग्रा० स्ट्रान्शियम, 343 ग्रा० कोबाल्ट, 285 ग्रा० रजत, 398 ग्रा० कैडमियम एवं 2134 ग्रा० फिनाल प्रति हे० प्रति दिन अवशोषित करने की क्षमता पायी गयी है।

4. जैविक गैस : एक हे० जलकुम्भी से 70000 घन मी० गैस (10.40% कार्बन डाइआक्साइड, 60-90% मीथेन) प्राप्त की जा सकती है, इससे 5292 किलो कैलोरी ऊर्जा भी प्राप्त हो जाती है। इस गैस का उपयोग भोजन पकाने, गर्म करने एवं ऊर्जा-उत्पादन में किया जा सकता है। उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि एक हे० जलकुम्भी से 900-1800 कि० ग्रा० सूखी जलकुम्भी प्रतिदिन प्राप्त की जा सकती है, इससे 336600-673200 लीटर जैविक गैस उत्पन्न होती है जो कि ऊर्जा उत्पादन की दृष्टि से 233-265 लीटर पैट्रोल के बराबर होती है। जलकुम्भी के साथ-साथ कचरा एवं पत्तियाँ आदि भी मिलायी जा सकती है। इस प्रकार उत्पन्न गैस से पेट्रोल पर निर्भरता कम होगी एवं स्लरी का उपयोग खाद के रूप में करने से रसायनिक उर्वरकों की खपत भी कम की जा सकेगी।

उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपर्युक्त तकनीक का प्रयोग करके जलकुम्भी की समस्या का निराकरण मानव जाति के हित में किया जा सकता है।

■ ■ ■

[पृष्ठ 1 का शेषांश]

एक और चौंकाने वाली बात। जर्मनी की एक कम्पनी ने भारत के एक और औषधीय पादप को हथिया लिया है। इस पौधे से बनी औषधि का पेटेन्ट भी करा लिया है। चौंकाने वाली बात यह है कि इस पादप का उपयोग औषधि के रूप में प्राचीन आयुर्वेद्रिक काल से होता आ रहा है। और तो और, वर्षों पूर्व 1974 में यह तथ्य प्रकाश में आ चुका था, जब 'इण्डियन सेण्ट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट' सारे भारत देश के औषधीय पादपों का सर्वेक्षण कर रहा था। इस पौधे में उच्च रक्त चाप को कम करने और दर्द निवारण का गुण विद्यमान पाया गया था। इस पौधे का वानस्पतिक नाम **कोलियस फोर्सकोहली** (Coleus Forskohlii) है और यह लैबिएटी (Labiatae) कुल का पौधा है। कनाडा स्थित 'रूरल एडवांसमेंट फाउण्डेशन इण्टरनेशनल' की ताज़ी सूचना के अनुसार (जर्मनी) की औषधि बनाने वाली हीश्ट कम्पनी इसी वर्ष सारे संसार में इस पौधे से बनी औषधि बाज़ारों में बिकने के लिए तैयार कर देगी। इस कम्पनी द्वारा भारतीय मिट्टी के 90,000 नमूनों की जाँच की जा चुकी है। इसके ले हम स्वयं ही जिम्मेवार हैं। "आ बैल मुझे मार" वाली कहावत शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

बिना मिट्टी के सब्ज़ी उगाने की विधि हाइड्रोपॉनिक्स

❑ संजीव त्रिपाठी

शोधछात्र, शीलाधर मृदा विज्ञान संस्थान
इलाहाबद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2

आज अपने देश का प्रत्येक व्यक्ति बाज़ार में सब्ज़ियों के आसमान छूते दामों में परेशान है। वह अपने महीने भर के बजट को ध्यान में रखते हुए बहुत कम मात्रा में सब्ज़ियाँ खरीद पाता है। फलस्वरूप पूरे परिवार के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे बचने के लिए मध्यमवर्गीय परिवार के लोग अपने घर के पीछे अथवा आँगन में खाली स्थान पर सब्ज़ियाँ उगा लेते हैं। परन्तु आजकल शहरों में स्थान की कमी के कारण बहुमंजिली इमारत पद्धति का विकास हो गया है। अब कृषि वैज्ञानिकों ने बिना किसी भूखण्ड और मिट्टी के सब्ज़ियों के उगाने की नयी पद्धति विकसित की है। मिट्टी रहित खेती करने की इस नयी तकनीक को "हाइड्रोपॉनिक्स" कहते हैं। अर्थात् 'मिट्टी रहित संवर्धन', संवर्धन विलयन (Culture Solution) में पौधों को उगाने की पद्धति।

यह मात्र कल्पना नहीं, वास्तविकता है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर **डब्लू० एफ० गैरिक** ने किया। गैरिक ने अपनी प्रयोगशाला में टमाटर के 20 फीट ऊँचे पौधों को उगाकर इस विधि की सार्थकता प्रमाणित की।

हाइड्रोपॉनिक्स ग्रीक भाषा के शब्द 'वाटर वर्किंग' से बना है। यह उसी सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्वों की पूर्ति प्राकृतिक तरीके से भूमि द्वारा होती है। किन्तु हाइड्रोपॉनिक्स की सफलता स्थानीय परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि हाइड्रोपॉनिक्स विधि द्वारा सब्जियों को उत्पादित करने में तथा प्रचलित विधियों से खेती करने में कोई विशेष अंतर नहीं है। जलवायु तथा मिट्टी से मिलने वाले अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता दोनों में होती है। बस अंतर मात्र यही है कि आम विधि में जो पोषक तत्व भूमि से मिलते हैं, उन्हें संवर्धन विलयन में मिलाना पड़ता है।

इसके लिये उपयुक्त पात्र लकड़ी, पत्थर, सीमेन्ट, काँच अथवा प्लास्टिक का बनाया जा सकता है। पात्र के निचले भाग में किसी तरफ एक छोटा, नियन्त्रित जल-निकास की व्यवस्था होनी चाहिए। पात्र की चौड़ाई एक मीटर तक रखनी चाहिए । किन्तु गहराई 9 से 12 सेमी ही रखनी चाहिये, जिससे कि सीमेन्ट का पौधों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। लकड़ी के पात्र को प्रयोग करने से पहले उसकी बाहरी सतह पर आयल पेंट (Oil - Paint) कर देना चाहिए। इस पद्धति में पात्रों में पानी, बालू तथा पोषक तत्वों (Plant Nutrients) का मिश्रण भरा जाता है। ये मिश्रण निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं-

1. संवर्धन विलयन (Culture Solution)

इस विधि में पौधों को केवल वांछित तत्वों से तैयार किये गये विशुद्ध माध्यम में उगाया जाता है। पायरेक्स अथवा कोई अन्य स्वच्छ सख्त काँच का बना पात्र इसमें प्रयोग किया जाता है। पौधों को सहारा प्रदान करने हेतु विशेष प्रकार का ढाँचा प्रयोग किया जाता है। संवर्धन विलयन में काई (Algae) के विकास को रोकने तथा जड़ों की सीधे प्रकाश से बचाने के लिए पात्र के बाहरी सतह को काले कागज़

से ढँक देना चाहिए। फिर भी जड़ों में वातन (Aeration) की व्यवस्था निर्वात लाइनों के द्वारा किया जाता है। पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण होने से विलयन में परिवर्तन होता रहता है। अत: समय-समय पर विलयन का पी-एच (pH) समायोजित कर देना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार पोषक घोल को बदलते रहना चाहिए। **सैच** ने संवर्धन में सोडियम क्लोराइड 0.25 ग्राम, पौटेशियम नाइट्रेट 1.0 ग्राम, कैल्शियम फॉस्फेट 0.5 ग्राम, कैल्शियम सल्फेट 0.5 ग्राम, मैग्निशियम सल्फेट 0.5 ग्राम तथा फेरस सल्फेट लवण 0.5 ग्राम प्रति लीटर प्रयोग करने की सिफारिस की है। इसी प्रकार **नाप** ने विलयन संवर्ध में 0.8 ग्राम कैल्शियम नाइट्रेट, 0.2 ग्राम पोटैशियम नाइट्रेट, 0.2 ग्राम पोटैशियम हाइड्राफोस्फेट तथा 0.2 ग्राम मैग्निशियम सल्फेट लवण प्रति लीटर प्रयोग करने की सिफारिस की है।

2. संवर्धन बालू (Sand Culture)

इस विधि में विशुद्ध सिलिका बालू तथा कंकड से पोषक तत्वों को छोड़कर अन्य पदार्थों को हटाने के लिए ठंडा-अम्ल अथवा गर्म उपचार हेतु घुले हुए बालू को एक स्वच्छ पात्र में रखकर ऑग्ज़ैलिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति में 6.75 किग्रा० प्रति वर्ग सेमी दाब पर 2 घंटे तक रखा जाता है। धुलाई के बाद उसे ब्यूटमीन से कलई किये हुए मिट्‌टी अथवा क्ले क्लावर से बने पात्र में भर देते हैं। पात्र के जल-निकास छिद्र को स्वच्छ काँच तथा ऊन से बने पैड युक्त वाच ग्लास से बन्द कर देते हैं। बालू का पी-एच (pH) ठीक करने के बाद उसमें पौधे उगाये जाते हैं। इसमें प्रतिदिन विशुद्ध तनु पोषक तत्वों को डाला जाता है। यह विधि प्राकृतिक दशाओं में पौधों की वृद्धि के अध्ययन हेतु एक अच्छी तकनीक है।

3. संवर्धन बंगाल (Bengal Cntture)

मिश्रण का यह नया माध्यम भारतीय परिस्थितियों के लिये सर्वोत्तम है। यह 'बालूकल्चर' का ही सुधरा रूप है। इसमें पत्थरों के छोटे-छोटे (4-9 मिमी) टुकड़ों के साथ बालू के मिश्रण को पात्र में 6 से 7 सेमी० तक भरते हैं। सामान्यत: पत्थर व बालू को 5:2 के अनुपात में भरते हैं। ठंडे स्थानों पर पत्थर का अनुपात बढ़ा देते हैं जबकि अन्य स्थानों पर बालू अधिक मात्रा में मिलाते हैं।

संवर्धन विलयन तथ संवर्धन बालू दोनों तकनीकों द्वारा पौधों के उपापचय तथा वृद्धि पर खनिज पोषक तत्वों के अभाव व विषाक्तता के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उत्तम विधियाँ विकसित की गयी हैं। उपरोक्त मिश्रणों में से किसी एक को भरकर पात्र में इतना पानी डालते हैं कि वह ऊपर बहकर न निकले। इस प्रकार तैयार पात्र के पानी की अम्लीयता व क्षारीयता का लिटमस पेपर द्वारा परीक्षण करते हैं। पानी भरे पात्र में अम्ल अथवा क्षार को डाल कर पानी का माध्यम उदासीन कर लेना चाहिए। अम्लीय होने पर चूने का पानी डाला जा सकता है।

बीज को बालू भरे पात्र अथवा नम ब्लाटिंग पेपर में सर्वप्रथम अंकुरित कर लेते हैं। जब अंकुर 3 से 4 सेमी का हो जाता है तो उसकी अभीष्ट पात्र में रोपाई कर देते हैं। बीज के अंकुरित होने तथा उसके 4 सेमी होने तक किसी भी खाद अथवा उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पोषक तत्वों की मात्रा ऋतु के आधार पर प्रयोग करते हैं।

इस तकनीक से उगाये गये पौधों तथा बेलों को सहारा देने के लिए लकड़ी या एल्युनियम के तार से बाँध देते हैं। अधिक लम्बी बेल के लिए पात्र के पास लकड़ी बाँध देते हैं।

इस प्रकार की कृषि ऐसे स्थानों के लिए वरदान सिद्ध हुई है जहाँ पर खेती के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं है अथवा जहाँ की भूमि कृषि कि लिए अनुपयुक्त है। इस तकनीक से सब्जियों की उत्पादन लागत भी प्रचलित विधियों से कम आती है। महानगरों में इस तकनीक को काफी लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी है। इस तकनीक का सही तरीके से प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया है अत: आवश्यकता इस बात की है कि इसे प्रयोगशाला से घरों तक पहुँचाया जाय। यदि थोड़ी सावधानी व लगन से कार्य किया जाय तो हाइड्रोपॉनिक्स द्वारा सब्जियाँ उगा करके हम अपनी आर्थिक बचत तो कर ही सकते हैं साथ ही हमेशा ताज़ी सब्जियों का उपभोग भी कर सकते हैं।

■ ■ ■

सांप नेवले के समक्ष असहाय क्यों?

❑ डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्था, मनखुर्द
मुंबई- 400088

सांप एवं नेवले की शत्रुता एवं लड़ाई की कहानी बहुत प्राचीन एवं सर्वविदित है। आम आदमी भी इस तथ्य से सुपरिचित है कि नेवले एवं सांप में जन्मजात बैर है तथा लड़ाई में नेवला सांप को पराजित कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर मार डालता है। जिस सांप को मात्र देखकर ही कितनों के मन में सिहरन उत्पन्न होने लगती है तथा लोग भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें सांप के रूप में साक्षात् काल ही दिखाई पड़ता है, उसी सांप से नेवला जैसा प्राणी निर्भीक होकर लड़ जाता है। सांपों को लेकर विश्व के लगभग सभी देशों में तरह-तरह की दंत कथाएँ एवं भ्रान्तियाँ पायी जाती हैं। हमारे देश में तो सांप को पूज्य माना गया है तथा 'नागपंचमी' के दिन उसे दूध एवं लावा चढाकर पूजा की जाती है। धर्मशास्त्रों में ऐसा वर्णन है कि हमारी पृथ्वी एक बड़े साँप 'नागराज' के फन पर स्थित है। सांप सुनते हैं, पहचानते हैं तथा दुश्मन से बदला लेते हैं इत्यादि न जाने कितनी अवैज्ञानिक भ्रान्तियाँ समाज में व्याप्त हैं। यहाँ तक कि भारतीय सिनेमा जगत् ने सांपों पर कई फिल्में बनाकर इस अंधविश्वास को पुष्ट ही किया है। इतनी महिमा व मिथवाला सांप चाहे वह अति विषैला कोबरा ही क्यों न हो, नेवले के सामने निरुपाय हो जाता है। जनसामान्य में यह धारणा रही है कि नेवले को किसी प्राकृतिक जड़ी-बूटी की जानकारी है जिसके द्वारा स्व विष से वह अपनी रक्षा कर पाता है। जहाँ जनसामान्य के लिए नेवले एवं सांप का युद्ध मनोरंजक दृष्य रहा वहीं वैज्ञानिक समुदाय के लिए यह चुनौतीपूर्ण प्रश्न रहा है।

विगत कई दशकों से इस दिशा में निरंतर अनुसंधान कार्य होते रहे हैं किन्तु अब जाकर इसका रहस्योद्घाटन हुआ है। इजरायल स्थित वीजमैन इंसटीट्यूट के वैज्ञानिकों ने गहन प्रयासों के बाद पाया है कि इसका कारण नेवले की शारीरिक संरचना में ही स्थित है।

किसी भी प्राणी के जीवित रहने के लिए उनके अंगों-उपांगों के मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान आवश्यक होता है। यह दो प्रकार से संपादित होता है जिसे हम क्रमश: नर्वस सिस्टम तथा हार्मोनल सिस्टम कहते हैं। प्राणियों में पेशिओं की गति "एसिटाइलकोलीन" नामक रसायन के अपने 'रिसेप्टरों' से जुड़ने से नियंत्रित होती है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि सांप के विष में पाया जाने वाला अल्फा न्यूरोटॉक्सिन नामक पदार्थ इन रिसेपटरों से आसानी से जुड़ जाते हैं तथा उन्हें निष्प्रभावी कर देते हैं। अनुसंधान से यह बात सामने आयी है कि नेवले में इस रिसेप्टर नामक प्रोटीन की रचना मनुष्य या चूहे के रिसेप्टरों से भिन्न होती है। अत: अल्फा न्यूरोटॉक्सिन इनसे संयोग नहीं कर पाते। मनुष्य या अन्य प्राणियों में अल्फा न्यूरोटॉक्सिन के द्वारा एसिटाइलकोलीन को निष्प्रभावी बना देने से मांस-पेशियों की गति बाधित हो जाती है, अंग लकवाग्रस्त हो जाते हैं तथा अंतत: प्राणी की मृत्यु हो जाती है। प्रकृति के द्वारा नेवले को यह एक वरदान ही है कि उसकी संरचना हमसे भिन्न है तथा उसे इस बात का ज्ञान है कि सांप के काटने से उसे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। यही कारण है कि वह सांप रूपी काल का भी काल बनकर सांप पर टूट पड़ता है।

■ ■ ■

धरती पर जीवन

❑ जॉन न्यूवैल

बीबीसी विश्व सेवा के पूर्व विज्ञान संपादक
द्वारा ब्रिटिश समीक्षा, ब्रिटिश उच्चायोग,
चाणक्यपुरी, नयी दिल्ली- 110021

धरती पर जीवन की उत्पत्ति को लेकर एक नया विवाद शुरू हो गया है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने पिछले दिनों अपने शोध कार्यों से यह साबित कर दिया है कि जीवन का डी एन ए पर निर्भर होना जरूरी नहीं है। डी एन ए दोहरे सर्पिलाकार अणु होते हैं और हमारे जीन्स इन्हीं अणुओं से मिलकर बने होते हैं। ब्रिटेन में बर्मिंघम विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र विभाग के डॉ० **डगलस फिलिप** ने हाल में यह प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त की है कि डी एन ए की तरह एक और प्रकार के अणु होते हैं जो धरती पर आरंभिक दिनों में रही परिस्थितियों में अपने आप को समान अणुओं में विभक्त कर सकते हैं।

डॉ० फिलिप की इस उपलब्धि से यह संकेत मिलता है कि केवल डी एन ए ही धरती पर जीवन के प्रारम्भ के समय जीवन का एकमात्र रूप नहीं था। डॉ० फिलिप की यह सफलता व्यावसायिक रूप से भी कोई कम महत्व की नहीं है। ऐसे अणु जो अपने को अपनी तरह के अणुओं में बाँट सकें, औषधि निर्माण के क्षेत्र में बड़े काम के साबित हो सकते हैं। इनसे दवाओं का निर्माण न सिर्फ काफी सस्ते में बल्कि अत्यत शुद्ध रूप में किया जा सकता है।

धरती पर जो सबसे पुराने जीवाश्म हैं वे बैक्टीरिया की तरह के जीवों के हैं जो पृथ्वी पर कोई साढ़े तीन अरब साल पहले मौजूद थे। बैक्टीरिया के बारे में आम तौर पर धारण यह है कि वे अत्यन्त पुराने होने के साथ बहुत ही साधारण किस्म के जीव हैं, परन्तु सच यह है कि वे न सिर्फ अत्यंत जटिल हैं बल्कि उनका विकास कई चरणों से होकर गुजरा है। बैक्टीरिया के सबसे पुराने जीवाश्म साढ़े तीन अरब वर्ष पुराने भले ही हों पर निश्चित रूप से उन्हें बैक्टीरिया के जीवों के रूप में धरती पर शुरुआत का स्वरूप नहीं माना जा सकता। ऐसा समझा जाता है कि बैक्टीरिया के जिस रूप में जीवाश्म हमें मिले हैं उन्हें भी विकसित होने में अनेक वर्षों का समय लग गया होगा।

लेकिन जीवाश्म से पहले के बैक्टीरिया के स्वरूप की हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। डॉ० फिलिप जानकारी के इस अभाव को धरती पर जीवन की शुरुआत के बारे में हमारे ज्ञान की सीमित होने का एक बड़ा कारण मानते हैं। वे इस स्थिति की तुलना अपराध के उस स्थल से करते हैं जहाँ पुलिस अपराधी के भाग जाने के बाद पहुँचती है।

वे कहते हैं, "अपराध के होने एवं अपराधी के फरार हो जाने पर पुलिस को उपलब्ध संकेतों से ही काम चलाना पड़ता है। लेकिन पुलिस तो फिर भी किस्मत वाली होती है कि वह अनेक मामलों में अपराध के होने के तुरंत बाद घटनास्थल पर पहुँच जाती है। जरा जीववैज्ञानिकों की स्थिति को तो देखिये, जीवन की उत्पत्ति के बारे में पता लगाना हो तो उन्हें कम से कम चार अरब साल पहले के समय उपलब्ध संकेतों का सहारा लेना पड़ता है। यही नहीं, इतने वर्षों के बीतने के दौरान अनेक लोग उन संकेतों के साथ काफी कुछ छेड़खानी भी कर चुके हैं। इसीलिए बर्मिघम विश्वविद्यालय में अपने शोध के दौरान हम पीछे की ओर

देखने के बजाय केवल यह जानने की कोशिश कर रहे हैं कि किस तरह साधारण अणु अपनी कॉपी स्वयं ही बना लेते हैं।

धरती पर शुरुआत में जीवन का स्वरूप कैसा रहा होगा इस बहस में उलझने के बजाय डॉ० फिलिप यह मानकर चल रहे हैं कि जीवन की उत्पत्ति साधारण रसायनों से हुई है। वे यह भी मान रहे हैं कि ये रसायन डी एन ए से अलग तरह के होंगे पर उनमें डी एन ए की ही तरह अपने आपको दोहराने, यानी अपनी ही तरह के रसायन पैदा करने की क्षमता होगी।

डॉ० फिलिप के अनुसार, "हम प्रयोग के लिए एक साधारण अणु अमीन का उपयोग करके उससे वैसे ही और अमीन बना सकते हैं। इसके लिए तैयार किये गये एक विशेष घोल में हम निर्माण प्रक्रिया में उत्प्रेरक का काम करने वाले कुछ रसायन मिला कर अमीन से वैसे ही अमीन प्राप्त करने लग सकते हैं। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रह सकती है, बशर्ते पुराने अमीन टूटते जाएँ और प्रत्येक टूटने वाला अमीन अपने जैसे दो या उससे अधिक अमीन बनाता जाए।"

वे कहते हैं, "लेकिन अमीन के टूटने और अपने जैसे अमीन को बनाने की प्रक्रिया डी एन ए द्वारा अपनी प्रतियाँ बनाने की प्रक्रिया से भिन्न होती है। डी एन ए द्वारा अपनी प्रतियाँ बनाना एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है जो अनेक चरणों से होकर गुजरती है। लेकिन उस जटिलता में जाए बगैर हम प्रकिया के केवल उस स्वरूप पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं जिससे कुछ खास किस्म के रसायन अपने आप को अपने जैसे ही रसायनों में बांट सकें। हमारा ऐसा मानना है कि अतीत में धरती पर जब जीवन अपने स्वरूप में आ रहा था तब ऐसी प्रक्रिया निश्चित रूप से मौजूद थी, क्योंकि जीवों की उत्पत्ति का इससे आसान और कोई तरीका हो ही नहीं सकता।"

अब इस समय तो यह जानना संभव नहीं लगता कि धरती पर सबसे पहले किन रसायनों ने अपनी प्रतियों को बनाना शुरू किया जिसके कारण जीवन की उत्पत्ति हुई। लेकिन उस प्रक्रिया को खोज कर डॉ० फिलिप आणुविक रसायनों के उस रहस्य को जान लेना चाहते हैं जो आगे चल कर न सिर्फ धरती पर जीवन की उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ नयी जानकारी दे सकता है बल्कि व्यवसायिक रूप से बहुत ही फायदेमंद साबित हो सकता है।

उनके अनुसार, "सबसे पहली बात तो हमें यह पता चली है कि अपनी प्रतियाँ बनाने वाले रसायन कोई बहुत असाधारण अवयव या यौगिक नहीं होते। आज हम अपने को ही ले लें और यह मान लें कि मानव जीवन दैहिक और बौद्धिक रूप से कितना जटिल है, पर जहाँ तक संतानोत्पत्ति का सवाल है हम सभी जानते हैं कि यह कोई बहुत ज्यादा मुश्किल काम नहीं है। मनुष्य बड़ी आसानी से संतान पैदा कर सकता है, यानी स्वयं अपनी प्रतियाँ बना सकता है। हम यही संबंध रसायनों के बीच खोजना चाहते हैं, ताकि वे भी अपनी प्रतियाँ बनाने में सक्षम हो जाएं।

"हमारी योजना का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि किसी तरह हमारे हाथ वह रहस्य लग जाए जिससे एक साधारण अणु अपनी तरह के लाखों अणु बना डाले। इसके फायदे वास्तव में बेशुमार होंगे। मान लीजिये कि हम कोई दवा बनाना चाहते हैं, तो प्रत्येक गोली के लिए रसायनों की निश्चित मात्रा की बजाय फिर हम केवल वे अणु लेंगे जो एक बार अपनी प्रतियों को बनाने का सिलसिला शुरू करने के बाद तब तक यह क्रम जारी रखे जब तक हमें वांछित मात्रा में दवा नहीं मिल जाती। इस प्रक्रिया में दवा का तो केवल एक अणु ही इस्तेमाल होगा, केवल कुछ ऐसे रसायन मिलाने होंगे जो निर्माण की प्रक्रिया को जारी रखें। इस तरह बहुत आसानी से और काफी सस्ते में मनचाही दवाएं बनाई जा सकेंगी।"

दवाओं के निर्माण के पारंपरिक तरके में उत्प्रेरकों का उपयोग किया जाता है और अक्सर उच्च तापमान और दबाव के जरिये छोटे अणुओं को बड़े अणुओं में बदला जाता है और अक्सर उनका नया आकार वांछित आकार से भिन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त जब एक ही औषधि के अणु के दो वैकल्पिक रूप हों तो बनने वाली दवा की गुणवत्ता एक समान नहीं रह पाती है। इसके अतिरिक्त इसमें रासायनों की काफी बर्बादी भी होती है। क्योंकि दूसरे तरह के वैकल्पिक अणु

[शेष पृष्ठ 16 पर]

गुणों की खान है नीबू

❑ संगीता

डी-753, सरस्वती बिहार
दिल्ली-110034

नीबू का इस्तेमाल हम हज़ारों वर्षों से करते आ रहे हैं। इसके गुणों को देखकर चिकत्सक भी हैरान हैं। यह बेहद सस्ता है और सेहतमंद है। दरअसल यह गुणों की खान है। सेहत बनाने के साथ-साथ यह सौंदर्यवर्धक कि भी है।

आयुर्वेद में नीबू के गुणों के कई उल्लेख मिलते हैं। नीबू के इस्तेमाल से सबसे पहले गुर्दा प्रभावित होता है, वैसे पपीता, जामुन और मुनक्के भी गुर्दे के लिए फ़ायदेमंद हैं। मीठे दूध में आधा नीबू निचोड़कर, उस दूध को तुरंत पी लें, इससे पाचन में सुधार होगा। शिकंजी या पानी और शक्कर में नीबू का रस मिलाकर पीने से पीलिया रोग से मुक्ति पाने में मदद मिलती है। इसके नियमित सेवन से कुछ ही दिनों में आप पीलिया से पूरी तरह छुटकारा पा सकते हैं।

पुरानी खांसी की हालत में नीबू के रस से फायदा होता है। इसके सेवन से कफ बाहर निकलता है। यदि आप कफ से परेशान हैं तो नीबू का औषधि के रूप में सेवन कुछ इस प्रकार कर सकते हैं। नीबू को कपड़े में लपेटें और इसके बाद इसे गूंथे हुए आटे में लपेट दें। अब इसे कुछ देर के लिए गरम कोयले या किसी गरम सतह पर रखें। इसके पश्चात् नीबू को गरम अवस्था में ही रहने दें और इसका रस निचोड़ लें। शहद में मिला कर नीबू के इस गरम रस को दिन में तीन बार चाटें, लेकिन यह ध्यान रहे कि जब भी आप इसका प्रयोग करें तो यह गरम रहे। बुखार की स्थिति में भी नीबू का चमत्कारिक असर होता है, लेकिन बुखार की स्थिति में ध्यान सिर्फ इस बात का रखना है कि नीबू पूरी तरह पके हुए हों। कच्चे नीबू घातक हो सकते हैं। ऊपर बताई गई विधि के अनुसार नीबू को गरम कर लें या फिर रस निकलने से पहले उसे हाट केस में थोड़ी देर के लिए रखें या फिर लेमनेड बनाने के लिए गरम पानी का प्रयोग करें। पानी जब थोड़ा गर्म हो जाए तो शक्कर मिलाएं। नीबू की अम्लीयता से प्यास बुझती है, कफ बाहर निकलता है, ज़हरीले तत्व कम होते हैं और शरीर को ताज़गी मिलती है।

भोजन के बाद नीबू का एक टुकड़ा अगर चूसा जाए तो इससे पाचन-क्रिया में मदद मिलती है। यही कारण है कि नीबू सलाद का एक आवश्यक अंग है। विटामिन-सी की प्रचुरता के कारण नीबू से फेफड़े, पेट, अंतड़ियां, गुर्दा और शरीर के अन्य हिस्से ठीक-ठाक रहते हैं।

नीबू के ऊपर नमक और मिर्च छिड़क कर चूसने से उल्टी और चक्कर आने की प्रक्रिया में नियंत्रण होता है। हिस्टीरिया के मरीजों को नीबू के रस से नियंत्रित किया जा सकता है। इसी विधि से तेज धड़कते हृदय की गति भी सामान्य की जा सकती है। काली काफी में बिना दूध-चीनी के नीबू डाल कर पीने से, मलेरिया में फायदा होता है। दस्त की शकायत भी इसी तरह दूर की जा सकती है। सभी सब्जियों और दालों में नीबू का रस मिलाने से भोजन की पोषकता में वृद्धि होती है। घर में बने नीबू के जैम का उपयोग रतौंधी और सायटिका जैसी नाड़ी से संबंधित बीमारियों में किया जा सकता है। नीबू में विद्यमान सायट्रिक अम्ल शरीर में क्षारीय कार्बोनेट के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं इसलिए

हाइपर एसीडिटी की शिकायत में भी नीबू का इस्तेमाल लाभदायक साबित होता है।

नीबू के रस में काली मिर्च, धनिया और भुना हुआ जीरा मिला कर सेवन करने से पेट का विकार दूर होता है। यह हैजा जैसी महामारी के निरोधक के रूप में भी काम करता है। नीबू के ऊपर नमक छिड़क कर दिन में दो बार चूसा जाए तो तिल्ली के आकार को बढ़ने से रोका जा सकता है। नीबू को अगर सादे पानी के साथ पीया जाए, तो मधुमेह के रोगियों की प्यास बुझती है।

नीबू का रस पूरे शरीर की सफाई भी करता है। इससे पेट के कीड़ों का नाश होता है। आयुर्वेद इस बात की भी पुष्टि करता है कि नीबू वायु और पित्त शामक है। सर्दी में यह असर कारक है और इसमें एंटीसेप्टिक गुण भी है।

प्रतिदिन अगर दांतों पर एक चम्मच नीबू के रस में गुलाब जल और आधा चम्मच नमक मिला कर मालिश की जाए तो दांतों के स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। नीबू के छिलके को बाद में उपयोग में लाया जा सकता है। नीबू के सूखे हुए छिलकों को बारीक पीस लें, इसमें लौंग का तेल और सेंधा नमक मिला कर दांतों की सफाई के लिए पाउडर बनाया जा सकता है। याद रखें नीबूं का रस गरमी और बरसात में अधिक और बारिश के दिनों में कम उपयोग में लाएं। औषधीय कारणों के लिए कागजी नीबू सबसे अच्छा होता है। नीबू के रस से अगर पनीर बनाया जाए तो वह अधिक पौष्टिक होगा।

गरम पानी शहद और नीबू अगर सुबह के समय खाली पेट पीया जाए तो वजन कम होता है। ठंडा पानी शहद और नीबू अगर शाम के समय पीया जाए तो इससे वजन बढ़ता है। नीबू के रस से अगर खोपड़ी की मालिश की जाए तो इससे रूसियां खत्म हो जाती हैं। नीबू और अदरक के प्रयोग से जूए मर जाते हैं। बालों में से अंडे की बदबू को भगाने के लिए अंडे के साथ नीबूं को भी फेंटें। नीबू को बीच से आधा काटें, अब नीबूं के कटे हुए हिस्से को ऊपर की तरफ रखते हुए नॉन स्टिक तवे या फ्राइंग पैन पर रखें। तवे को गरम होकर लाल होने दें; कटे हुए नीबू में चीनी मिलाएं और उसे पिघलने दें। अब इस गरम नीबू को कील मुहासे पर लगाएं। कुछ ही दिनों के बाद कील-मुहासे गायब हो जाएंगे। नीबू के टुकड़े पर शक्कर मिलाकर हाथ और पांव पर मालिश करने से त्वचा मुलायम होती है और उसके रंग में निखार आता है। चेहरे पर इसे न लगाएं। नहाने के पानी में एक नीबू का रस मिलाएं। नीबू का रस, शहद और गुलाब जल एक बढ़िया फेस पैक प्रमाणित किया जा चुका है। बेसन में गुलाब जल और नीबू मिला कर चेहरे पर लगाने से चेहरे के बाल समाप्त हो जाते हैं। नीबू के बचे हुए छिलके नाखून पर लगाने से नाखून मजबूत और चमकदार होते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि नीबू हमारे लिए कितना उपयोगी है । नीबुओं में कागजी नीबू सर्वोत्तम माना जाता है लेकिन अगर कागजी नीबू न मिले तो जमेरी नीबू को उपयोग में लाया जा सकता है। (सम्प्रेषण)

■ ■ ■

[पृष्ठ 14 का शेषांश]

की दवा निर्माण के काम में कोई जरूरत ही नहीं होती है उसे तो सिर्फ दवा निर्माण की प्रक्रिया को शुरू करने के लिए ही मिलाना होता है।

पारंपरिक तरीकों के विपरीत बर्मिंघम विश्वविद्यालय में चल रहे शोध कार्य के अन्तर्गत ऐसी प्रक्रिया को विकसित किया जा रहा है जिससे दवाओं के निर्माण में किसी उत्प्रेरक अणु को मिलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि दवा निर्माण में काम आने वाले अणु ही उत्प्रेरक का काम करेंगे और अपनी प्रतियाँ भी बनाते जाएंगे। इस तरह से दवाएं बनाना न सिर्फ सस्ता हो सकता है, बल्कि उनकी गुणवत्ता की विश्वसनीयता को भी बढ़ाया जा सकता है क्योंकि बनने वाली दवा की मात्रा में रसायनों की मात्रा एक समान ही होगी।

■ ■ ■

रुडोल्फ डीज़ल

❑ जावेद अख्तर खान (विद्यार्थी)

376/33 शमशेर नगर
(नई बस्ती)
लखीमपुर खीरी- 262701

यह बात सन् 1870 की है। उस समय तक जेम्सवाट, न्यूकोमैन, ट्रौवीथिक द्वारा बनाये गये भाप इंजनों में काफी सुधार हो चुके थे। अनेक देशों में इन इंजनों द्वारा रेलें चलाये जाने में सहायता ली जा रही थी। बहुत से कारखानों में भी उनका प्रयोग किया जा रहा था। हमारे देश में भी उन दिनों रेल इंजनों से नियमित रेल सेवाएँ हो रही थीं, परन्तु उनमें अब भी कमियाँ थीं, उनमें जितना ईंधन खर्च होता था उसकी तुलना में बहुत कम शक्ति पैदा होती थी। एक तरह से वे काफी खर्चीले इंजन थे। उसी समय एक जर्मन युवक बड़े ध्यान से अपने अध्यापक से भाप इंजन की फिजूल-खर्ची सुना करता था। उस युवक का नाम रुडोल्फ डीज़ल था। एक दिन अध्यापक महोदय ने कक्षा में बताया कि बढ़िया से बढ़िया भाप इंजन भी अपनी क्षमता के केवल दसवें भाग का ही इस्तेमाल करता है बाकी नब्बे प्रतिशत शक्ति नष्ट हो जाती है, पर ऐसा इंजन बनाना सम्भव है जो अपनी क्षमता का अधिक उपयोग कर सके।

रूडोल्फ ने यह सुनकर उसी दिन यह निश्चय कर लिया कि वह एक ऐसे इंजन का आविष्कार करेगा जो भाप की तुलना में बहुत अधिक दक्ष हो और रुडोल्फ उसे बनाने में जी जान से जुट गये। आखिर एक दिन उन्हें सफलता मिल ही गयी। यह भाप इंजन की तुलना में छोटा था पर अधिक दक्ष था। यह डीज़ल से चलता था। इस इंजन का नाम उसके आविष्कारक के नाम पर ही डीज़ल इंजन पड़ गया।

रुडोल्फ के डीज़ल इंजन का उपयोग अनेक स्थानों, मशीनों में करते हैं। इन्हीं से अधिकतर मोटर, बसें, ट्रकें तथा रेलें चलती हैं। जलयानों में भी इन्हीं इंजनों का उपयोग किया जाता है। ट्रेक्टर तथा मोटरकार भी इन्हीं इंजनों की बदौलत ही आज सड़कों पर फर्राटे से दौड़ रही हैं।

रुडोल्फ डीज़ल का जन्म 18 मार्च सन् 1858 को पेरिस (फ्रांस) में हुआ था। उसके मात-पिता जर्मन थे। बचपन से ही रुडोल्फ की रुचि विज्ञान में रही। वह अपना अधिकांश समय अजायबघरों में बिताते थे। दुर्भाग्य से 1870 में फ्रांस तथा जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ गया। फलस्वरूप डीज़ल का परिवार भाग कर लंदन चला गया और युद्ध समाप्त होने के बाद युवा डीज़ल को अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिये जर्मनी भेज दिया गया।

जर्मनी आकर डीज़ल ने म्यूनिख पॉलीटैक्निक इंस्टीट्यूट में इंजीनियरी पाठ्यक्रम में दाखिला लिया। वहाँ डीज़ल के प्राध्यापकों में महान कार्ल फान लिण्डे अपने समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। दरअसल डीज़ल को दक्ष और सुचारु इंजन बनाने की प्रेरणा लिण्डे ही ने दी थी।

म्यूनिख पॉलीटैक्निक इंस्टीट्यूट में स्नातक की उपाधि लेने के बाद डीज़ल ने प्रोफेसर लिण्डे की ही रेफ्रीजरेटिंग मशीन कम्पनी में काम करना शुरू कर दिया। उन दिनों घरेलू फ्रिज तो बनते नहीं थे। कारखानों में ही बर्फ जमाकर उन्हें बेचा जाता था। एक बार रुडोल्फ कम्पनी के बर्फ के कारखाने में कम्प्रेशर का निरीक्षण कर रहे थे। परीक्षणों के दौरान

उन्होंने पाया कि काम करते समय कम्प्रेशर बहुत गर्म हो जाता है। उनके दिमाग में अचानक यह विचार कौंधा कि क्यों न कमप्रेशर द्वारा उत्पन्न ऊर्जा को इंजन में ईंधन को जलाने के लिये प्रयुक्त कर लिया जाए।

इस बारे में उन्होंने गहन अध्ययन किये, बारम्बार प्रयोग किये, और अन्त में एक विधि विकसित कर ली और 1892 में इस विधि को पेटेन्ट करा लिया। इसके अगले वर्ष उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को एक पुस्तिका "थ्योरी एण्ड कांस्ट्रक्शन ऑव एरेशनल हीट मोटर" के रूप में प्रकाशित किया। उनके इंजन के डिजाइन आदि को देखकर डीज़ल के अनेक साथियों और मित्रों ने उनका मज़ाक उड़ाया और कहा कि यह कभी भी कार्य नहीं कर पाएगा। लेकिन डीज़ल लगन के पक्के थे। वे एक दक्ष इंजन का निर्माण करने में निरन्तर लगे ही रहे। उन्होंने अपने कार्य करने के स्थान के निकट की एक प्रयोगशाला में अपने इंजन सम्बन्धी प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त कर ली और अन्त में उन्होंने अपने सिद्धान्त के अनुसार इंजन का कार्यकारी माडल बना ही लिया। यह एक सिलिण्डर वाला इंजन था और ईंधन के रूप में कोयले की राख का उपयोग करता था।

अब थी उसके जाँच करने की बारी। डीज़ल ने जब पहली बार यह इंजन चालू किया तो वह भयंकर रूप से आवाज़ करता हुआ तेजी से चल पड़ा पर वह एकाएक इतनी तेज़ी से व इस प्रकार चला कि खुद डीज़ल ही उससे मरते-मरते बचे, लेकिन इस प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि डीज़ल का सिद्धान्त सही है। उन्होंने शक्ति उत्पन्न करने वाला एक ऐसा इंजन विकसित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी जो बिना किसी विद्युत चिंगारी या ज्वाला के चालू हो सकता था। अब आवश्यकता केवल इस बात की थी कि इंजन की डिज़ाइन सम्बन्धी कमियों को दूर किया जाए।

इसके लिए डीज़ल ने एक सम्पन्न उद्योगपति, **फ्रेडरिख ए० क्रप** की सहायता ली। क्रप उन दिनों इस्पात तथा तोपें तैयार करने का काम करते थे। उनकी सहायता से डीज़ल अपने इंजन के डिज़ाइन में सुधार करने लगे। अब उन्होंने इंजन के ईंधन को बदल दिया। कोयले की राख के स्थान पर उन्होंने खनिज तेल का उपयोग किया तथा कमजोर पुर्जों को मज़बूत बनाया। इस तरह से इन्होंने 1898 तक ऐसा इंजन बना लिया जो प्रदर्शन योग्य था, उसी वर्ष उसे प्रदर्शित किया गया। यह एक सफल इंजन था।

इस इंजन की सफलता ने डीज़ल को करोड़पति बना दिया, लेकिन दुर्भाग्य से वे इस सुख को भोगने के लिये अधिक दिन तक जीवित न रह सके। सितम्बर 1913 में वे एक ब्रिटिश यात्री जल-जहाज से ब्रिटिश नौसेना इंजीनियरों को उनके जल जहाजों में डीज़ल इंजन लगाने के बारे में सलाह देने जा रहे थे कि 19 सितम्बर की रात्रि, जब जहाज़ इंग्लिश चैनल पार कर रहा था तो वे एकाएक गायब हो गये। उसके बाद वे जीवित या मृत किसी भी अवस्ता में न मिले। समझा जाता है कि उस रात्रि में किसी समय वे डैक से नीचे समुद्र में गिर पड़े और उनके शव को सागर के जीवों ने खा लिया।

एक समय जर्मनी और फ्रांस के बीच तीव्र तनाव चल रहा था और उनमें आपस में युद्ध की नौबत तक आ गई थी। अगले र्ष 1914 में ब्रिटेन और ज़र्मनी में युद्ध छिड़ गया था। कुछ लोगों का संदेह है कि किसी व्यक्ति ने उनकी हत्या करके उनके शव को समुद्र में फेंक दिया था। पर डीज़ल की मृत्यु से इंजन का विकास कार्य रुका नहीं बल्कि उसमें दिन-प्रतिदिन सुधार होते गए और आज यह अत्यन्त सुचारु और अत्यधिक इस्तेमाल किया जाने वाला इंजन है।

■ ■ ■

रक्त जीवन के लिए कितना आवश्यक

❑ डॉ० ए० के० सक्सेना

डी-753, सरस्वती बिहार
दिल्ली-110034

दक्षिण फ्रांस में कुछ गुफाओं की दीवारों पर बड़े-बड़े जानवरों के चित्र हैं। इन चित्रों मे प्राणियों के हृदय के स्थान पर लाल धब्बे दिखाए गए हैं। चित्र मे लगभग पच्चीस हज़ार वर्ष पुराने हैं और इस प्रकार हृदय और रक्त के महत्व के बारे में मनुष्य की जानकारी के ये सबसे पुराने अभिलेख हैं।

यदि एक व्यस्क आदमी का वज़न 70 कि०ग्रा० माना जाए तो उसमें आठ प्रतिशत भार रक्त का होता है। माप में यह पांच से छः लीटर होता है। सारे शरीर में रक्त का संचार हृदय की पम्पिंग क्रिया से होता है। इस क्रिया में प्रति मिनट हृदय की 72 धड़कनें होती हैं।

रुधिर अतिसूक्ष्म कणों का बना होता है। ये कण प्लाज्मा नामक द्रव्य में तैरते हैं। सारे खून में भार का आधा भाग इन्हीं कणों का होता है। परन्तु प्लाज्मा से इनका आपेक्षिक घनत्व कम होता है और आयतन में ये केवल रक्त का केवल 46 प्रतिशत भाग ही घेरते हैं।

यदि हम रक्त को सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखें तो हमें तीन मुख्य कण दिखाई देंगे। लाल रक्त कण (एरिप्रोसाइटस), श्वेत रक्त कण (ल्यूकोसाइट) तथा प्लेटलेट। इन सभी का निर्माण मज्ञा में होता है। पुरुष के एक धन मिलीलीटर रक्त में 50 लाख रक्तकण, 8 लाख श्वेतकण और 3 लाख प्लेटलेट होते हैं। स्त्रियों में इनका अनुपात भिन्न रहता है।

प्रत्येक रक्त कण तीस सैकेंड में सारे शरीर का एक चक्कर लगा लेता है। इस प्रकार कोई तीस खरब रक्त कण प्रतिमाह हमारे शरीर की एक लाख परिक्रमा कर लेते हैं। एक लाल रक्त कण 120 दिनों के बाद नष्ट हो जाते हैं। श्वेत कणों और प्लेटलेट कणों का प्रमुख कार्य शरीर की रक्षा करना, श्वेत कण पांच प्रकार के होते हैं और बाहर से शरीर में प्रवेश करने वाले प्रतिजन जीवाणुओं (रोगाणुओं) से लड़ते हैं। घाव आदि लगने पर प्लेटलेट रक्त को जमाने तथा उसका बहाव रोकने में सहायता करते हैं।

प्लाज्मा पीले रंग का द्रव है। एक लीटर प्लाज्मा में 70 ग्राम प्रोटीन होता है जिसके लगभग 60 प्रकार होते हैं। रक्त में घुल जाने वाले इन प्रोटीनों का बड़ा महत्व है। इनके अतिरिक्त प्लाज्मा में अनेक लवण और जैविक तत्व होते हैं। इनमें से कुछ हैं सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम, यूरिक एसिड इत्यादि, इनके साथ ही कुछ अन्य पदार्थ जैसे प्रोथ्रोम्बिन,विटामिन्स, एन्जाइम तथा प्रतिपिण्ड भी रहते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में लगभग 7 प्रतिशत प्लाज्मा रक्त के साथ बहती रहती है। इसका जीवन काल आठ से अट्ठाइस दिन तक का होता है। इसके पश्चात् शरीर इन्हें तोड़ कर नए सिरे से संयोजित करता है। जोड़ने-तोड़ने की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और शरीर-तंत्र ऐसी व्यवस्था रखता है कि सारे ताजे प्रोटीन रक्त में प्रवाहित होते रहें।

रक्त का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है कि श्वासोच्छवास को बनाए रखना। जीवन की इस आधारभूत क्रिया का दायित्व रक्त कणों में स्थित होमोग्लोबिन पर है।

होमोग्लोबिन लौह युक्त जटिल प्रोटीन है। इसक मुख्य कार्य है। ऑक्सीजन को फेफड़ों से दूसरे तन्तुओं तक पहुँचाना और वहाँ से कार्बन डाइऑक्साइड को खींचकर फेफड़ों में लाना, जिससे वह नि:श्वास के साथ बाहर निकल जाए। अपने जीवन काल में होमोग्लोबिन का हर कण 1040 गुना ऑक्साइड को लाता ले जाता है।

मस्तिष्क में शरीर के विभिन्न अवयवों को दिए जाने वाले आदेशों का पालन कराने का कार्य भी रक्त ही करता है। उदाहरण ग्रन्थि मस्तिष्क में स्थित है। यह बहुत ही अल्प मात्रा में जैविक प्रोटीन के अणु पैदा करती है, जिन्हें हारमोन कहते हैं। हारमोन दूसरे अंगों में विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ तथा प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

मस्तिष्क जब कोई आज्ञा देता है तब पिटयूटरी ग्रन्थि रक्त में हारमोन छोड़ती हैं।। यह हारमोन शरीर में चक्कर लगाते हुए उस ग्रन्थि तक पहुँच जाता है जिससे क्रियाओं के दौरान कोशिकाओं में अनेक प्रकार के अम्ल और क्षार उत्पन्न हो जाते हैं, जो कोशिकाओं के लिए बहुत घातक हो सकते हैं।

रुधिर में उपस्थित प्लाज्मा, प्रोटीन और अन्य अजैविक तत्व इन क्षारों व अम्लों को सोखकर उन्हें निष्क्रिय बना देते हैं। हमारा 70 प्रतिशत वजन शरीर में उपस्थित जल के कारण होता है। प्रतिदिन पाचन क्रिया में 14 लीटर पानी आँतों से गुजरता है। भोजन व पेय के साथ-साथ पानी शरीर में पहुँचता रहता है और मल-मूत्र के रूप में तथा त्वचा द्वारा पसीने के रूप में शरीर से बाहर जाता रहता है। इस प्रकार निरन्तर पानी आता रहता है। परन्तु शरीर में उसकी मात्रा सदा समान बनी रहती है। इस संतुलन का कार्य रक्त करता ही रहता है।

रक्त में पानी शरीर के तापमान का नियंत्रण करता है। जल का तपांश बहुत ऊँचा होता है। हमारी त्वचा से पसीना भाप बनकर निरन्तर उड़ता रहता है। वाष्पीकरण की इस क्रिया में शरीर की बहुत सी गर्मी निकल जाती है। त्वचा ठंडी होती है और ठंडी त्वचा में बहता हुआ खून भी ठंडा होता है।

जल एक अच्छा तापवाहक भी होता है। इस कारण वह शरीर के भीतरी व बाहरी अवयवों में तापमान का संतुलन बनाए रखता है। सारे शरीर में पौष्टिक तत्वों को पहुँचाने का कार्य भी रुधिर करता है। आहार के पौष्टिक तत्व पेट और आंतों द्वारा रक्त के प्रवाह में घुल जाते हैं और सर्वत्र पहुंच जाते हैं ।

(सम्प्रेषण)

■ ■ ■

[पृष्ठ 24 का शेषांश]

आवश्यकता का अनुभव किया गया जिस प्रकार के "ब्लैक बॉक्स" वायुयानों में लगाए जाते हैं। इन नवीन "ब्लैक बॉक्स" रिकॉर्डरों का विकास इलैक्ट्रॉनिक्स सिस्टम डिवीज़न, मारकोनी डिफेन्स सिस्टेम्स कम्पनी, मिडिलसेक्स (यू० के०) के इंजीनियरों द्वारा किया गया है। ये "ब्लैक बॉक्स" रिकॉर्डर हर प्रकार के यानों के लिए सूचनाओं का विश्लेषण तथा अभिलेखन करने में सक्षम हैं।

इन्हें वेहिकिल डेटा लॉगिंग (Vehicle data logging system) के रूप में जाना जाता है तथा ये यान चालन, प्रणालियों की सम्पूर्णता, उद्भार-गुणक (load factor) पैसिंजर कैपेसिटी यूटिलाइज़ेशन इत्यादि से संबंधित सभी प्रकार के आंकड़ों का विश्लेषण और अभिलेखन करते हैं। सूचना एक दुर्घटना रक्षित मैमोरी मॉड्यूल (जिसके कारण यह वायुयानों से मिलते जुलते "ब्लैक बॉक्स" की भांति कार्य करते हैं), में अभिलेखित हो जाती है जिसे विश्लेषण के उद्देश्य से मुख्य कम्प्यूटर पर लिया जा सकता है।

वेहिकल डेटा लॉगिंग सिस्टम का मैनचेस्टर मैट्रोलिंक रेलगाड़ियों में गहन परीक्षण किया गया है और अब शीघ्र ही इसका उनमें व्यवस्थापन किया जा रहा है।

■ ■ ■

विज्ञान के बढ़ते क़दम

❑ प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान,
नई दिल्ली

1. नये ईंधन से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में कमी

एपेस रिसर्च, डनगॉग, न्यु साउथ वेल्स (आस्ट्रेलिया) के **रसैल रीव्स** ने "डाइसोहल" नामक ऐसे ईधन का विकास किया है जिसे 84.5% डीज़ल, 15% जलयोजित इथैनॉल (hydrated ethanol), तथा 0.5% इमल्सीकारक (Emulsifier) के सम्मिश्रण से तैयार किया गया है।

ऑस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबरा में इस ईधन को उपयोग में लाते हुए बसें चलायी जा रही है। इस ईधन की विशेषता ये है कि यह ग्रीनहाऊस उत्सर्जन में कमी लाने में सहायक भूमिका निभाता है।

इस ईंधन में मुख्य अवयव के रूप में इमल्सीकारक का प्रयोग किया जाता है जिसके कारण डीज़ल और इथैनॉल के मिश्रण में कठिनाई नहीं आती। इस ईंधन का प्रयोग असंशोधित डीज़ल इंजनों में भी किया जा सकता है। अत: सम्मिश्रित उत्पाद एवं शुद्ध डीज़ल दोनों का उपयोग अदल-बदल कर भी किया जा सकता है।

अस्सी के दशक के प्रारंभ से ही रीव्स रेशेदार वनस्पतियों के किण्वित अपशिष्टों (fermented wastes) से इथैनॉल निष्कर्षण की ऊर्जा दक्ष (Energy efficient) प्रक्रियाओं के संबंध में अध्ययनरत हैं।

प्रारंभिक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक उपयुक्त अवस्थाओं में डीज़ोहल से Co 2 उत्सर्जन में लगभग 15% की कमी होने की संभावना रहती है। साथ ही वाहन द्वारा कार्बन मोनोऑक्साइड (लगभग 40%), नाइट्रोजन के ऑक्साइड (10%), और काला धुआं (50%) जैसे प्रदूषक उत्सर्जनों में भी कमी आने के संकेत मिलते हैं।

जैसी कि आशा की जाती है, यदि उत्पादन इसी प्रकार से हुआ तो न केवल अमिश्रित डीज़ल की तुलना में कम दामों पर ही डीज़ोहल व्यापक रूप से उपलब्ध हो सकेगा अपितु ऑस्ट्रेलिया में एक नवीन विस्तृत उद्योग की स्थापना हो सकेगी जिससे सम्पूर्ण विश्व पर्याप्त रूप से लाभ उठा सकेगा।

प्रयोग के तौर पर 6 बसें एक वर्ष के परीक्षण के लिए चलायी जाएंगी। जिनमें से तीन बसें डीज़ोहल वाली और शेष तीन सामान्य डीज़ल वाली होंगी। तुलना कर पाने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उन्हें एक जैसे क्षेत्र में ही लगभग 80,000 किमी चलाया जाएगा। इस बीच ईंधन की खपत मानीटर पर देखी जाएगी, तेल के सैंपिल लिये जायेंगे तथा होने वाले उत्सर्जन का यथा संभव परीक्षण किया जाएगा।

इसी संदर्भ में ऑस्ट्रेलियायी सरकार ने काष्ठीय अपशिष्टों से इथैनॉल के उत्पादन हेतु एक निदर्शन संयंत्र (Demonstration Plant) लगाने के लिये सहायता के रूप में 20 लाख डॉलर की राशि निश्चित की है।

ऑस्ट्रेलिया में इथैनॉल का उत्पादन मुख्यरूप से शर्करा उत्पादन में बचे बेकार शीरे से किया जाता है, जिसे खाद्य, मुद्रण के लिये उपयुक्त स्याही, एरोसॉल, अपमार्जकों (Detergents), पेन्ट, भैषजिक (Pharmaceuticals) तथा प्लास्टिक उत्पादों में प्रयोग में लाया जाता है।

2. आमाशयी कैन्सर के लिए वैक्सीन का विकास

यूनिवर्सिटी ऑव न्यू साउथ वेल्स, ऑस्ट्रेलिया के अनुसंधानकर्ताओं ने एक ऐसे एनिमल मॉडेल (animal model) की रचना की है जो विकासशील देशों में मुख्य रूप से विनाशकारी आमाशयी कैन्सर ए प्रति वैक्सीन के विकास की संभावनाओं को साकार करेगा।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि **हेलिकोबेक्टर पाइलोरी** (Helicobacter pylori) नामक जीवाणु (Bacteria) ही संसार में अधिकतर आमाशयी कैन्सर का प्राथमिक कारण है। यह विशेष रूप से विकासशील देशों में उग्र रूप धारण कर चुका है, जिसके कारण अकेले चीन में ही दस लाख लोग प्रतिवर्ष मृत्यु के घेरे में आ जाते हैं।

रोगसमीकरण (Immunization) की संभावनाओं के संदर्भ में संदेह बने रहे हैं। लेकिन **हेलिकोबैकटर पाइलोरी** से बहुत कुछ संबंधित जीव **हेलिकोबैक्टर फेलिस,** को प्रयोग में लाकर विकसित किये गये एनिमल मॉडेल से यह संभव हो गया है। **हे० फेलिस** को चुनौती देने पर एनिमल मॉडेल ने 95% सुरक्षण दर प्रदर्शित की।

यद्यपि ऑस्ट्रेलिया में इसे किसी बड़ी समस्या के रूप में नहीं समझा जाता है फिर भी सम्पूर्ण विश्व के हिसाब से इसे दूसरे नम्बर का कैंसर माना जाता है क्योंकि इस आमाशयी कैन्सर से प्रत्येक वर्ष लाखों लोगों की मृत्यु हो रही है। लगभाग 95% ग्रहणी संबंधी व्रण (Duodenal ulcers) तथा कुछ अनुपात में अमाशयी व्रण **हे० पाइलोरी** से संबंधित होते हैं।

इस विकास के माध्यम से वैक्सीन तैयार करने के उद्देश्य को लेकर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ मिलकर अनुसंधान कार्यक्रम तैयार करने के लिये इस ओर आकर्षित हुई हैं। लेकिन यूनिवर्सिटी ऑव न्यू साऊथ वेल्स ने कॉमनवेल्थ सीरम लैबोरेटरीज़, जहाँ से एक वर्ष के आरंभिक कार्यक्रम (Pilot Programme) के लिए 250,000 डॉलर का अंशदान प्राप्त हुआ है, के साथ ऑस्ट्रेलिया से ही किसी सहयोग की इच्छा व्यक्त की है।

नेशनल हेल्थ एण्ड मेडीकल रिसर्च काउंसिल, ऑस्ट्रेलिया ने आमाशय शोध (Gastritis) से संबंधित **हे० पाइलोरी** के एक रोडेन्ड मॉडेल के विकास के लिए एकवर्षीय कार्यक्रम के रूप में 75,000 डॉलर का अंशदान किया है। यह परिषद् **हेलिकोबैक्टर** संबंधित ग्रहणी संबंधी रोग के प्रति वैक्सीन का विकास करने के लिए अगले पांच वर्ष तक प्रति वर्ष 63,000 डॉलर का अंशदान भी करेगी।

3. ऑक्सीजन मानीटरन से शल्यक्रिया द्वारा प्रसव में कमी होना संभव

यूनिवर्सिटी कॉलेज तथा मिडिलसेक्स स्कूल ऑव मेडिसिन, लन्दन के **डोनाल्ड पीबिल्स** तथा अनेक सहयोगियों ने एक ऐसी विधि विकसित की है जिसके द्वारा जन्म के समय शिशुओं के रक्त में ऑक्सीजन के स्तर को मापा जा सकता है, और उनकी प्रथम श्वांस का पता लगाया जा सकता है। इस विधि से प्रत्येक वर्ष शल्यक्रिया द्वारा होने वाले प्रसवों की संख्या में पर्याप्त कमी लायी जा सकती है।

गर्भाशय में गर्भ के विकास के समय ऑक्सीजन का स्तर काफी कम होता है। यह स्तर लगभग प्रसव पूर्व और भी कम हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि घातक सिद्ध होने से पूर्व ऑक्सीजन का स्तर कहाँ तक गिर जाए कि स्थिति सहनीय भी बनी रहे। निकट अवरक्त स्पेक्ट्रोमिकी (Near-infrared spectroscopy) से अनुसंधानकर्त्ताओं को यह ज्ञात करने में सहायता मिलेगी कि कैसे, क्यों तथा कब शिशुओं के मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

शल्यक्रिया द्वारा अनगिनत प्रसव हृदय गति के आधार पर ही अनावश्यक रूप से सम्पन्न होते हैं। शिशु की हृदय गति में आने वाले घटाव के कारणों के बारे में पूरी तरह से जानकारी प्राप्त नहीं है। यह संभव है कि शिशु के सिर पर

होने वाले निष्पीड़न से प्रतिवर्ती प्रतिक्रिया के कारण ऐसा हो, अथवा यह अनुक्रिया प्लैसेन्टा से विऑक्सीजनित रुधिर (Deoxygenated blood) के बहाव के कारण हो। इस संभावना के परीक्षण के उद्देश्य से पीबिल्स ऑक्सीजनीकरण (Oxygenation) तथा गर्भाशय के संकुचन की आवृत्ति के बीच होने वाले संबंध पर अध्ययन कर रहे हैं।

पूर्व विकसित निकट अवरक्त स्पेक्ट्रोमिकी मॉनीटर में दो प्रकाशीय तंतु होते हैं। इन तंतुओं के सिरों को एक चूषण कप (Suction cup) की सहायता से शिशु के सिर की त्वचा पर लगा दिया जाता है। एक तन्तु से अवरक्त प्रकाश (Infrared light) दिखाया जाता है जो कि त्वचा में रक्त द्वारा परावर्तित हो जाता है और दूसरे तन्तु द्वारा एकत्र कर लिया जाता है।

हीमोग्लोबिन जो कि रक्त में ऑक्सीजन ले जाने का कार्य करता है, ऑक्सीजनित अवस्था में लाल होता है तथा ऑक्सीजन त्यागने के पश्चात् नीला हो जाता है। ऑक्सीजनित अवस्था अधिक अवरक्त प्रकाश परावर्तित करती है अत: रक्त में ऑक्सीजन की सांद्रता का प्रत्यक्षत: परिकलन किया जा सकता है। निकट अवरक्त स्पेक्ट्रोमिकी शिशु के लिए हानि रहित है तथा शलाका (Probe) माता के लिये विश्लेषण करने वाले अन्य उपकरणों की तुलना में अधिक अंतर्वेधी (Intrusive) नहीं है।

इस तकनीक को पिछले दो वर्षों के दौरान लगभग 30 सामान्य एवं सहायता प्राप्त प्रसवों में विश्लेषण के लिये प्रयोग में लाया गया है। तीन से पांच वर्षों के बीच यह अन्वेषी शलाका अस्पतालों में उपयोग के लिए उपलब्ध हो सकेगी।

अनुसंधानकर्ता नवीन औषधियों की खोज में लगे हैं ताकि अल्प ऑक्सीयता (Hypoxia) के बाद शिशु के मस्तिष्क को सुरक्षा प्रदान की जा सके। कहा जाता है कि अल्पॉक्सीयता के दौरान रक्त में दो प्रकार के रसायन पाये जाते हैं : उद्दीपन शील अमीनो अम्ल (exitatory amino acids) तथा ऑक्सीजनमुक्त मूलक (Oxygen-free radicls)। ये दोनों ही रसायन कोशिका को क्षति पहुँचाते हैं। यदि कुछ ही घंटों के दौरान उद्दीपनशील अमीनो अम्लों को रोकने वाली अथवा मुक्त मूलकों की सफाई करने वाली औषधियाँ दी जाएँ तो होने वाली क्षति में भारी गिरावट आ जाएगी।

4. बाल्यावस्था की व्याधियों के लिए संयुक्त रूप में वैक्सीन

स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी मेडीकल सेंटर, यू० एस० ए० के **एनन एर्विन** तथा उनके सहयोगी यह निर्धारित करने में लगे हैं कि क्या खसरा (Measles), कनफेड़ (Mumps) तथा रुबेला (rubella), से संबंधित वैक्सीन को संयुक्त रूप से दिया जा सकता है।

यह अध्ययन 1 से 6 वर्ष की आयु वाले लगभग 50 बच्चों पर किया जा रहा है।

एर्विन के अनुसार लगभग 7000 अमेरिकी बच्चों पर पहले ही छोटी माता (Chicken pox) (Varicella) की वैक्सीन का परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा चुका है। अब यह निर्धारित करने के लिये अध्ययन किये जा रहे हैं कि यह वैक्सीन प्रभावशाली है तथा इसको बच्चों में होने वाले अन्य तीन रगों के लिये दी जाने वाली वैक्सीन के साथ दिये जाने पर ज्वर तथा पित्तिका (Fever and rash) जैसे लक्षण उभर कर न आयें। कनफेड़, खसरा, रुबेला तथा छोटी माता के लिए संयुक्त रूप से वैक्सीन 500 अमेरिकी बच्चों को पहले ही दी जा चुकी है।

संयुक्त रूप से वैक्सीन देने में कई लाभ हैं क्योंकि इस प्रकार बच्चों में लगाए जाने वाले इंजेक्शनों में कमी लाई जा सकती है, जिससे माता-पिता के लिये तो सुविधा रहेगी ही साथ ही आयुर्विज्ञानीय संरक्षण (Medical Care) देने वालों के लिए भी संरोपण (Inoculation) की प्रक्रिया सुगम हो जाएगी।

वर्तमान अध्ययन के अन्तर्गत् बच्चों को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाएगा। एक वर्ग के बच्चों को चारों व्याधियों (Maladies) के लिए वैक्सीन एक बांह में तथा कूटभेषज (Placebo), एक निष्क्रिय पदार्थ, दूसरी बांह में दिया जाएगा। दूसरे वर्ग के बच्चों में छोटी-माता के लिए

वैक्सीन अन्य तीन व्याधियों के लिए दिये गये इंजेक्शन वाली बांह से उलटी बांह में दी जाएगी। संभावित उतर - प्रभावों के अवलोकन के लिए बच्चों को मॉनीटर किया जाएगा। सभी प्रतिभागियों को तीन बार स्टैनफोर्ड आने की आवश्यकता होगी।

इस अध्ययन के अन्तर्गत् उन बच्चों को नहीं सम्मिलित किया जाएगा जिन्हें या तो कनफेड, खसरा, तथा रुबेला के लिए पहले ही टीका लगाया जा चुका है, या जिन्हें कनफेड़, खसरा, रुबेला हो चुका है। नियोमायसिन के लिए संवेदनशील अथवा अंडों के प्रति बहुत अधिक एलर्जी रखने वाले बच्चे भी इसके योग्य नहीं है।

5. संदेहयुक्त हृदयाघात के लिए विद्युत-चुम्बकीय उपचार

उत्तरी आयरलैण्ड में अल्सटर विश्वविद्यालय के प्रो० **जॉन एण्डरसन** के अधीन चिकित्सीय वैज्ञानिकों की एक टीम ने हृदय रोगों (जिनके कारण हृदयाघात हो सकता है) से पीड़ित रोगियों के उपचार के लिए एक नवीन वैद्युत तकनीक विकसित की है जो अंतरिक्ष युग प्रौद्यौगिकी की एक उपशाखा है। मूलरूप से इस तकनीक के अन्तर्गत 64 इलैक्ट्रोडों से युक्त प्लास्टिक की एक पतली चादर होती है जिसे रोगी की छाती पर लगा दिया जाता है। इसके आ जाने से शरीर के विभिन्न भागों पर अनेक इलैक्ट्रोडों को लगाने वाली पीड़ादायक पारम्परिक विधि की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रो० एण्डरसन जब 70 के दशक में उत्तरी आयरलैण्ड में रायल विक्टोरिया हस्पताल के **प्रो० फ्रैंक पैन्ट्रिज** के साथ कार्य कर रहे थे तभी उन्हें हृदय रोगों के लिए एक नवीन इलैक्ट्रोड तकनीक का विकास करने का बोध हुआ। उस समय उन्होंने हृदयाघात के पश्चात् उपचार के लिए एक हल्के और चलिष्णु वितन्तु विकम्पनित्र (डिफाइब्रिलेटर) का विकास किया। अभी विकसित हुई इस नई तकनीक से डॉक्टर सन्निकट हृदयाघात का पूर्वानुमान सही रूप में लगा सकते हैं।

इलैक्ट्रोडों की प्लास्टिक वाली चादर आयरलैण्ड के जूनों अंतरिक्ष कार्यक्रम का एक उत्पाद है। इस कार्यक्रम के लिए अल्सटर विश्वविद्यालय सहयोग देता है। इस चादर को एक मॉनीटर से जोड़ दिया जाता है। इलैक्ट्रोडों से प्राप्त होने वाले संकेतों को मल्टीप्लेक्स करके मॉनीटर स्क्रीन पर दर्शाया जाता है और उसके बाद प्रिंट निकाल लिये जाते हैं। स्क्रीन पर प्रदर्शित सूचना मैप से मिलम-जुलती होती है जिससे शल्यचिकित्सक हृदय की क्षति का अन्दाज़ा लगा सकते हैं और रोगी को दी गई क्लॉट बस्टिंग औषधि के प्रभाव को माप सकते हैं।

अल्सटर के कार्यकर्त्ताओं ने हृदय के मुख्य पम्प करने वाले चैंबर निलय की उसी स्थान पर गति चालन की एक नई विधि भी विकसित की है। इसके लिए रोगी के गले से नीचे एक लम्बी नली को हृदय के समीप से ले जाया जाता है ताकि हृदय स्पन्द को नियमित रखने के लिए इसमें विद्युत् आवेश दिया जा सके।

प्रो० एण्डरसन ने स्पष्ट किया कि यह नई इलैक्ट्रोड तकनीक हृदय रोगों के नैदानिक उपचार के लिए एक आमूल प्रगति है। इससे हृदयरोगी हस्पताल में नालशलाका डालकर किये जाने वाले संवेदनाहारी उपचार की प्रतीक्षा किये बिना तुरंत उपचार प्राप्त कर सकते हैं।

आजकल यह तकनीक रॉयल विक्टोरिया हस्पताल तथा कुछ कार्डियकऐम्बुलैंसों में गहन परीक्षणों के अधीन है। परीक्षण सफल रहे हैं। शीघ्र ही उत्तरी आयरलैण्ड में नई तकनीक से संबंधित उपकरणों का उत्पादन प्रारंभ होने की आशा की जाती है।

6. रेलगाड़ियों में भी ब्लैक बॉक्स लगेंगे

"ब्लैक बॉक्स" का नाम सुनते ही सभी का ध्यान वायुयानों की ओर चला जाता है। यह इसलिए कि "ब्लैक बाक्स" वायुयानों में ही लगे होते हैं और घटित हवाई दुर्घटना के संबंध में महत्वपूर्ण सुराग तथा अन्य जानकारी उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी होते हैं। पर शायद यह किसी ने भी न सोचा होगा कि "ब्लैक बॉक्स" का संबंध रेलगाड़ियों से भी हो सकता है जो कि परिवहन का सबसे सुरक्षित साधन है। रेल परिवहन में तीव्र गति में हुए विकास के कारण ब्रिटेन में रेलगाड़ियों में भी इसी प्रकार के "ब्लैक बॉक्स" लगाने की

[शेष पृष्ठ 20 पर]

Society of Pilgrimage Studies

4A / 2 / 1 Muirabad, Allahabad, UP 211002, India

President : Dr. Rana P. B. Singh *Secretary* : Dr. D. P. Dubey

Preamble

- Pilgrimage to sacred places is an ancient and continuing tradition in all the cultures of the world. The various forms and structures involved therein form a unique faithscape where various dimensions of faith meet. Pilgrimage is a process, fluid and changing phenomenon, spontaneous, initially unstructured and outside the bounds of religious orthodoxy. The ecological mysteries and invisible revelations related to man's cosmic integrity may be visioned and experienced through the pilgrimage system. There exist strong linkage among faith system, pilgrimage and tourism—all moving to unravel the mysteries and powers of the earth-places.

Plan

- The SPS, established in 1989, aims to promote the overall perspectives and dimensions of pilgrimage institution in the context of inter-disciplinary approach, preservation and conservation of pilgrimage centres and monuments, planning of sacred places to make them better for pilgrimage without disturbing the religious glory, checking the human and environmental pollutions at sacred places through mass awareness campaigns, and finally revitalizing the deeply involved values at sacred places for attracting more people in search of revelation and peace.

Theme

- The SPS is interested o support and encourage any aspect of study like pilgrimage studies, conceptual frame, cosmic purview and sacred ecology, historical outlook, travel genre, typology and hierarchy of sacred places, sacred time, sacred rituals, sacred functionaries, sacred organisations and systems, and heritage preservation.

Function

- The SPS functions around two broad activities ; (a) organisation of international conference and, (b) publication of **Bulletin**. The first international conference on "*Pilgrimage Traditions*" was organised on Oct. 14-16, 1990, at Vrindavan, India. The second conference on "*Pilgrimage Tourism and Conservation of Cultural Heritage*" was organised on January 21-23, 1995 at Allahabad India. The third conference on "*Cultural Heritage of Allahabad*" was held on February 3-5, 1996 at Allahabad. Based on invited papers and presentations in the conferences, the **Pilgrimage Studies** series is published, which includes *Kumbhaparva Prayāga* (1989), *Pilgrimage Studies : Text and Context* (1990), and *Pilgrimage Studies : Sacred Places, Sacred Traditions* (1995), and *Triveni : Essays on the Cultural Heritage of Allahabad* (1996).

ISSN : 0373 – 1200
विज्ञान
काउंसिल ऑफ साइंटिफिक
एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली
के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
मई-जून 1997
मूल्य : 7 रु०
विज्ञान
विज्ञान परिषद्
प्रयाग
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 : विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

मई-जून 1997 : वर्ष 83 अंक 2-3

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

इस अंक का मूल्य 7 रु०

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक	*सम्पादक*	*मुद्रक*	*सम्पर्क*
डॉ० शिवगोपाल मिश्र	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	अरुण राय	विज्ञान परिषद्
प्रधानमंत्री	सहायक संपादक	कम्प्यूटर कम्पोजर	महर्षि दयानन्द मार्ग
विज्ञान परिषद् प्रयाग	डॉ० दिनेश मणि	7 ए, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद	इलाहाबाद

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

पिछले दिनों एक बार फिर ताजमहल, क्लोनिंग और प्लेग अखबार की सुर्खियों में रहे। इसलिए 'विज्ञान' के इस मई-जून संयुक्तांक में आपसे इन्हीं विषयों पर बातचीत करनी है।

ताजमहल

शाहजहाँ और मुमताज महल के प्रेम का प्रतीक , संसार के 7 आश्चर्यों में से एक, प्रसिद्ध कलास्मारक, पत्र-पत्रिकाओं में विशेष चर्चित रहा। इसके संगमरमरी बदन के पीले पड़ने और दरारें दिखने का कारण मथुरा तेल शोधक कारखाने के अतिरिक्त सैंकड़ों कल-कारखानों से निकली विषैली गैसें हैं। इस बार विवाद का एक और कारण था अमेरिकी संगीतकार यानी की ताजमहल की पृष्ठभूमि में आयोजित 'कंसर्ट', कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि विदेशी संगीत के शोर से ताजमहल को खतरा है। वैसे यह दूसरी बात है कि 90,00000 (लब्बे लाख) रुपयों की राशि ताजमहल के रख-रखाव के लिए ही मिलनी है।

ताजमहल को लेकर पर्यावरण विज्ञानी पिछले लगभग दो दशकों से यह बात बल देकर कहते आये हैं कि ताजमहल प्रदूषण की चपेट में आ चुका है और इसके कैंसर का उपचार अविलम्ब होना चाहिए।

सरकार की ओर से अनेक कानून इसकी रक्षा के लिए बनाये गए हैं किन्तु कानून तो तब तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक कि उनका पालन ईमानदारी से न किया जाये। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि इस कला स्मारक के चारों ओर वृक्षारोपण हो, कल-कारखानों से निकलने वाली गैसों को कम करने के लिए उपकरण लगाये जायें और पर्यटकों की संख्या को सीमित किया जाये। इसमें दो राय नहीं कि पर्यटकों की अत्यधिक संख्या से प्रदूषण फैलता है। इस संबंध में एक और बात। पर्यावरण विज्ञानियों का भी दायित्व है कि ताजमहल को खतरे की बात करते समय जो भी कहें वह विज्ञान सम्मत होना चाहिए।

महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर में 'बीबी का मकबरा', जो ताजमहल की नकल है, भी प्रदूषण की चपेट में आने के कारण चर्चित रहा। वैसे इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि देश के अनेक कला स्मारक और ऐतिहासिक महत्व के भवनों को प्रदूषण के कारण खतरा उत्पन्न हो गया है। ताजमहल तो मात्र प्रतीक है। सभी कला स्मारकों की सुरक्षा आवश्यक है।

क्लोनिंग

सात महीने की नन्हीं डाली नामक भेड़ सारे संसार में चर्चा का विषय बनी हुई है। इसका एकमात्र कारण यह है कि यह संसार की पहली ऐसी स्तनपायी है जो जेनेटिक इंजीनियरी का कमाल है। यानी यह 'क्लोन' है। एक 'क्लोन' ऐसा जीव है जिसे एक ही 'पेरेन्ट' (माता अथवा पिता) द्वारा अलैंगिक विधि से उत्पन्न किया जाता है। इसलिए 'क्लोन' की विशेषता यह है कि वह शारीरिक रूप से माता अथवा पिता के समान तो होता ही है आनुवंशिक रूप से भी समान होता है। इसके विपरीत लैंगिक विधि से उत्पन्न जीव

में माता-पिता के आधे-आधे गुण आते हैं। क्लोनिंग विधि उद्यान विज्ञानियों के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय रही है जहाँ एक छोटी-सी टहनी (Twig) से पूरा वृक्ष तैयार कर लेते हैं। वास्तव में क्लोनिंग की व्युत्पत्ति यूनानी (ग्रीक) भाषा के शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'ट्विग'(Twig)।

वैसे यह विधि 1950 से ही चर्चित रही है क्योंकि तब से लेकर अब तक इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों की अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ रही हैं। किन्तु इस बार एक स्तनपायी के सफलतापूर्वक विकसित हो जाने से इस क्षेत्र में हो रहा अनुसंधान विवाद के घेरे में आ गया है। अब वैज्ञानिकों को ऐसा लगने लगा है कि मानव क्लोन बनाने में भी अंततः सफलता मिल ही जायेगी। इससे अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। क्या महिलायें बिना पुरुषों की सहायता से संतानें पैदा करने लगेंगी? क्या इन संतानों से माता या पिता का या इनका माता अथवा पिता से भावनात्मक लगाव होगा? इनके प्रति इनके माता अथवा पिता का इनके पालन-पोषण और शिक्षा-दिक्षा तथा देख-रेख के लिए किस प्रकार का दायित्व होगा? ऐसे और भी बहुत से प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना आसान नहीं है। इसलिए मानव क्लोन तैयार करने संबंधी शोध पर अविलम्ब प्रतिबंध लगा देना चाहिए। क्या हमारे समाज में ऐसे ही कुछ कम समस्यायें हैं? मानव क्लोन तैयार करने का मतलब है 'आ बैल मुझे मार'।

प्लेग

भारत के सूरत शहर में लगभग 2 वर्ष पूर्व जब प्लेग फैला तो एकाएक पता चला कि सूरत शहर भारत के सबसे गंदे शहरों में से एक था। किन्तु पिछले दिनों मिले समाचार चौंकाने वाले हैं। इन दिनों सबसे गंदे शहरों में दिल्ली का नाम सबसे ऊपर आता है। इसके अतिरिक्त बड़ौदा, कानपुर, वाराणसी और आगरा भी देश के सर्वाधिक गंदे शहरों में हैं। कलकत्ता की भी हालत कुछ कम खराब नहीं। कूड़े-कचरे की सफाई की उचित व्यवस्था न होने के कारण इन शहरों में महामारी फैलने का खतरा बना हुआ है।

किन्तु इस बीच एक अच्छी खबर यह है कि 2 वर्ष पूर्व जो सूरत शहर सबसे गंदा शहर था, आज वह सबसे साफ-सुथरा शहर है। यह चमत्कार हुआ कैसे? चमत्कार का कारण हैं म्यूनिसिपल कमिश्नर एस० आर० राव।

श्री राव का निश्चित मत है कि परिवर्तन लाया जा सकता है। श्री राव फाइलों में उलझ कर समय गंवाने की जगह घूम-घूम कर अन्य लोगों को भी कार्य के प्रति सजग और प्रोत्साहित करते रहते हैं। उन्होंने नियम तोड़ने वाले नागरिकों के लिए कुछ आर्थिक दण्ड की व्यवस्था कर रखी है जिसे वे 'एडमिनिस्ट्रेटिव चार्जेज' का नाम देते हैं। इस प्रकार सूरत म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन ने 18 लाख रुपये एकत्र कर लिए हैं। एक दूसरी उल्लेखनीय बात है सूरत म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन का अपने कार्य के प्रति ईमानदार होना और तीसरी बात यह कि लोगों को कचरे से होने वाली हानियों को समझा देना। घरों के कूड़े-कचरे के निपटान में ढिलाई बरतने वालों को 18 रुपये का दण्ड और किसी उद्योग के लिए 1,50,000 रुपयों तक के दण्ड का प्रावधान है। लोगों को इस बात के लिए भी शिक्षित कर दिया गया है, कि वे कार्बनिक और अकार्बनिक कूड़े-कचरे को प्रारंभ में ही अलग-अलग रखें ताकि उनके निपटान में सुविधा हो। श्री राव आगे बताते हैं कि कोई कारण नहीं कि अन्य शहरों में भी सूरत का उदाहरण न दोहराया जा सके। फिर अपने पर्यावरण को साफ़-सुथरा रखना क्या संभव नहीं? शत-प्रतिशत संभव है। बस, आवश्यकता है दृढ़ संकल्प और पक्के इरादे की।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ■■■

हमने ही दिया है अपने विनाश को निमंत्रण

❑ हरिश्चंद्र व्यास

डी-753, सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

कुदरत ने एक संसार का ख्वाब किया। उजली धूप और शीतल चाँदनी का संसार, फूलों की सुगंध और फलों की मिठास का संसार, आसमान में परवाज करने वाले पंछियों और पानी में क्रीड़ा करने वाले जलचरों का संसार, शीतल जल की नदियों, उज्ज्वल हिमखण्डों, वृक्षों से आच्छादित वनों और झूमती फसलों का संसार।

मनुष्य ने भी एक सामानान्तर संसार का रचाव किया। धूल-धूसर और धुंए का संसार, कीटनाशकों के जहर से पोषित फ़सलों और कारबाइट से पके फलों का संसार, बाढ़, अकाल और कर्णभेदी शोर का संसार, रासायनिक द्रव्यों, विषाक्त तत्वों और कूड़े-कचरे से दूषित नदियों का संसार, एसिड और कार्बन डाइऑक्साइड से भरे वायु मंडल का संसार, नंगे पहाड़ों, हरियाली से विहीन ज़ंगलों और पेड़ों के ठूठों का संसार, पशु-पक्षियों की प्रजातियों के लुप्त होने और दुर्बल छीण एवं अर्धपोषित शिशुओं, पीले-पीले चेहरों का संसार। कुदरत अभी भी ओढर दानी की तरह सृष्टि को नवाजना चाहती है पर इंसान अभी भी अपने विनाश के प्रति बेखबर है। 'रोम जल रहा है और नीरो बांसुरी बजा रहा है।'

यह है वह पृष्ठभूमि जिसके आधार पर हमें नए और उजले रंग लेकर नई तुलिका से फिर से नई-नई रेखाकृतियों का निर्माण करना है, नए-नए चित्र उभारने हैं तथा नव विकास की दिशा में आगे बढ़ना है। कुदरत को हमने प्रदूषित कर दिया और हम ही उस प्रदूषण को रोक सकते हैं।

बायोगैस और उन्नत चूल्हों से घर को धुंए से मुक्तकिया जा सकता है। तभी खत्म होगा गृहणियों पर होने वाला यह घरेलू अत्याचार। कारखानों को शहरों और घनी आबादी से काफी दूर स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि देश की कुल आबादी का 26 प्रतिशत शहरी आबादी है जो अधिकांश झुग्गी झोंपड़ियों में रहते हैं। यह ग्रामीण उद्योग रोटी-रोजी के लिए नगर में आए और प्रदूषण के जनक और शिकार दोनों बन ही गए।

वाहनों के धुंए को नियंत्रित करने के अनेक उपाय हैं जैसे इंजन की बराबर सफाई करना, सही ईधन का प्रयोग करना तथा धुंआ फैलाने वाली नलिकाओं व साइलैंसरों आदि की बराबर सफाई करते रहना आदि। आस-पास के क्षेत्रों में वृक्षारोपण के द्वारा भी वायुमंडल के विकार को दूर किया जा सकता है। भाप के इंजनों के दिन तो अब विदाई वेला में हैं। यह हमारे लिए संतोष की बात है। वैसे कुदरत अपने स्तर पर भी वायुमण्डल को शुद्ध रखती है पर हम ही जब हवा को हौआ बनाने पर तुले हैं तो कुदरत क्या कर सकती है? सूर्य से आने वाली अल्ट्रावायलट किरणें वायु में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट करती हैं, वर्षा का पानी हवा की मैल को धो देता है, हरे भरे पेड़ पौधे कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करके बदले में हमें ऑक्सीजन देते रहते हैं ताकि वायुमण्डल शुद्ध रहे। वायुमण्डल अशुद्धि से केवल मनुष्य पर ही नहीं बल्कि भवनों, मूल्यवान रत्नों कपड़ों एवं धातुओं को भी नुकसान पहुँच रहे हैं।

अब जरा भूमि की बात करें। ज़मीन का अपना धर्म है। वह शील, संयम और स्नेह के द्वारा माता की तरह हमारा पोषण करती है। इंसान इसी मिट्टी की उपज है, इसी मिट्टी से जीवन पाता है और इसी मिट्टी में मिल जाता है। ऐसे में उसे माटी की मर्यादा को ध्यान में रखना होगा। मृदा का शील भंग होना इंसान के लिए खतरे की निशानी है। मिट्टी की साख को बचाने के लिए, इसे प्रदूषण-मुक्त रखने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं।

मिट्टी को थामने के लिए पेड़ों की ज़रूरत होती है। पेड़ होंगे तो बाढ़ या तूफ़ान से उपजाऊ मिट्टी बह कर या उड़ कर इधर उधर नहीं जा सकेगी, फिर जब अमृत वर्षा होगी तो धरती की कोख सोना उगलेगी। फ़सलों के लिए हानिकारक कीट जगत् का नाश करना आवश्यक है पर जिस तेजी के साथ हम रासायनिक खादों और विषाक्त कीट-नाशक औषधियों का अंधाधुंध प्रयोग कर रहे हैं वह फ़सलों को ज़हरीला बनाता जा रहा है। ज़मीन बंजर और बांझ बनती जा रही है। भारतीय किसान ने शताब्दियों तक फ़सलों को कीड़ों से बचाया, पर फिर भी धरती की माटी को ज़हरीला नहीं बनाया। संतुलित खाद, उचित मात्रा में सिंचाई, फ़सलों का शोधन, गोबर की खाद का उपयोग आदि अनेक विधियां थीं जिनसे मृदा प्रदूषित नहीं होती थी। हमें फिर से वही उपाय करने होंगे। कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों से मृदा की रक्षा करनी होगी। गंदी नालियों, बच्चों के मल-मूत्र वाले खुले स्थलों, मच्छरों के प्रकोपों, कीचड़ सनी गलियों और हर स्थान को मूत्रालय बनाने वाली प्रवृत्तियों को रोकना होगा। ज़मीन को दलदली और क्षारीय होने से बचाना होगा। मिट्टी की लगातार जांच द्वारा उसका उपचार करना होगा।

जल है तो जीवन है- यदि इस 'जीवन' के साथ ही खिलवाड़ होने लगे तो फिर क्या बचेगा? आज दुनिया में 25-30 हज़ार लोग प्रतिदिन प्रदूषित जल के उपयोग से मर रहे हैं। भारत में जितनी बीमारियाँ होती है उसमें से 75 प्रतिशत प्रदूषित जल के उपयोग के कारण होती है। पीलिया, मोतीझरा, हैजा, अतिसार एवं पेचिश जैसी जानलेवा बीमारियों के होने का प्रमुख कारण है देश के 70 प्रतिशत जल स्रोत प्रदूषित हैं। घर में पानी को छानने, आवश्यक हो तो उबाल के पीने, स्वच्छ पात्रों में रखने, गंदे हाथों से उसे बचाने और पानी को खुला न रखने जैसी बातों से सफ़ाई की जो परिक्रमा शुरू होती है, वह कुओं, तालाबों, बावड़ियों और सरिताओं को शुद्ध रखने तक बराबर चलती रहती है। जल प्रदूषण को रोकने के लिए अनेक कारण हैं, पर कानूनों की पढ़ाई से जल की स्वत: तो सफाई नहीं हो जाती। नदियों में कूड़े-कचरे, अपशिष्ट पदार्थ, अधजले शव और दुनिया भर की गंदगी डालने की जो आदत हमें पड़ गई है उसमें परिष्कार आवश्यक है क्योंकि नदियाँ हमें ज़िन्दगी देती है और हमें असमय की मृत्यु से बचा कर रखती हैं। कुँओं के मुख को ढक कर रखना, प्लेटफार्म बनाना, तालाबों में जानवरों के अबाध प्रवेश को रोकना, जलस्रोतों के पास गंदगी नहीं फैलाना, कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों को निष्कासन से पहले दोष रहित कर देना, मृतकों के शवों को नदियों में बहाने की वर्जना करना, ऑक्सीकरण करते रहना, ब्लीचिंग पाउडर आदि का प्रयोग करना। यह कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनसे जल को प्रदूषण से बचाया जा सकता है। जल भी शुद्ध हो और मन भी शुद्ध हो तो विनाश तो अपने आप भागता नज़र आएगा।

ईश्वर ने जल को कल-कल, हवा को सर-सर, मछलियों को छप-छप और पक्षियों को कलरव किया। शोर कहीं पर भी नहीं था इसमें। इंसान ने भी संगीत की स्वर लहरियाँ बिखेरीं, धीमी, स्पष्ट और स्नेहपूर्ण वाणी से वातावरण में मिठास घोली तथा प्रकृति के साथ शांति की आरती उतारी। पता नहीं ये कर्कशता कब बीच में आ टपकी। आपसी झगड़े, हल्ला-गुल्ला, चिल्लाने और चीखने की ध्वनियाँ, लाउडस्पीकरों की कर्णभेदक आवाज़ें, रेल के इंजनों की सीटियाँ तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण अधिक से अधिक पसरती ध्वनियाँ इंसान और कुदरत दोनों की शांति को भंग कर रही हैं। तरह-तरह की बीमारियाँ जन्म ले रहीं हैं। आवाज़ों के दंगल ने जीना हराम कर दिया है। श्रवण तंत्र गड़बड़ा रहे हैं। शरीर पर प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं और स्नायुगत रोग सामने आ रहे हैं।

शुरू करना होगा घर में ही 'ओम शांति' के सिद्धांत से। घर-घर में शांति हुई तो डगर-डगर और नगर-नगर शांति

की शुरूआत हो सकती है। कपड़े धोने व सुखाने की मशीनें, तेज़ आवाज़ वाले बिजली के उपकरण, रेडियो और टेलीविजन की तेज आवाज़ें हम चाहें तो कम कर सकते हैं। साथ ही साथ अधिक शोरगुल के क्षेत्रों में कमरों को ध्वनिरोधी निर्मित करवाना वंछित है। बहुमंज़िली मकानों की निचली मंज़िल की छत तथा ऊपरी मंज़िल के फर्श पर ध्वनि अवरोधी पदार्थों का लेप करने से ध्वनि अवशोषित की जा सकती है। शहरों के भीतरी भागों में भारी वाहनों पर रोक, परीक्षा के दिनों में ध्वनि विस्तारकों पर प्रतिबंध, धर्म स्थलों, मेलों सभाओं आदि में धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों पर शोर कम करना, कम समय के लिए ध्वनि विस्तारकों का प्रयोग, कारखानों की मशीनी गड़गड़ाहट को रोकने हेतु ध्वनि शमनयंत्रों का उपयोग,मशीनों की नियमित जांच, साइलेंसरों की सफाई तथा वृक्षारोपण पर जोर देते रहने से शोर को अंकुश में रखा जा सकता है और महाशोर के प्रदूषण से वातावरण को बचाया जा सकता है। इसके लिए प्रत्येक नागरिक का नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व है कि आप अपने उपकरणों का उपयोग ऐसे ढंग से करें जिससे न्यूनतम ध्वनि उत्पन्न हो। यदि हमें शोर कम करने हेतु सफल प्रयत्न करने हों तो महिलाओं की उपस्थिति वांछित है क्योंकि महिलाओं का ध्वनि अवशोषण गुणांक पुरुषों की तुलना में अधिक होता है।

हमें वैकल्पिक ईंधन के प्रयोग के लिए अभ्यस्त होना होगा। बायोगैस शक्ति और सौर ऊर्जा वातावरण को शुद्ध रखने में हमारी सबसे बड़ी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। ग्रीन हाऊस गैसों ने आज जो तांडव मचा रखा है उस पर सहज ही नियंत्रण किया जा सकता है। यह तभी होगा जब हम ऊर्जा के पारंपरिक साधनों पर जोर दें। सूर्यऊर्जा, पवन ऊर्जा और जल ऊर्जा कभी नहीं चुकतीं जबकि कोयले, पैट्रोल व गैसों आदि की ऊर्जाएँ ऐसी हैं जिनके बारे में दो शताब्दियों के बाद शायद किताबों में ही जानकारी मिले। ज़मीन और जल तो इनकी उपज के मामले में बांझ ही हो जाएँगे। सौर, पवन, समुद्री और जलधारा की ऊर्जाओं ने विकास के नए-नए द्वार हमारे लिए खोले हैं। हम उनमें प्रवेश करके देखें तो सही कितना सुकून मिलता है वहाँ। हम लगातार नाभिकीय शस्त्रों, परमाणुविकीरणों और गैसों के महाभयंकर दानवों से भेंट करने को आतुर हैं। यदि ऐसा है तो दो चार शाताब्दियों के बाद इतिहास लिखेगा कि बीसवीं शताब्दी के इंसान वास्तव में पगला गए थे। कोई विवेक नहीं था उनमें, अपने विनाश से बेखबर थे वे। इस विपरीत टिप्पणी से बचने के लिए और भावी सुखद संसार की रचना के लिए हमें कृत-संकल्प होकर आगे आना होगा तथा पाठ्य-पुस्तकों, पाठ्य चर्चाओं, सभाओं-सम्मेलनों एवं वार्तालापों के आधार पर नई पीढ़ी को पर्यावरण रक्षा के लिए शिक्षित करना होगा तभी हमारा बचाव संभव है। वन्य जीव-जन्तुओं तथा जलचरों के प्रति हमारा व्यवहार बदलाव चाहता है पर हम जड़ आदतों से जकड़े हुए हैं। परिणाम यह हुआ है कि प्रतिवर्ष स्तनधारियों, पक्षियों, मछलियों एवं अन्य जलचरों तथा कीट पतंगों की प्रजातियाँ समाप्त हो रही हैं। इधर अभ्यारण्य पसर रहे हैं उधर इंसान की क्षुधा भी बढ़ती जा रही है, केवल पेट की क्षुधा नहीं, मन की क्षुधा भी। मन की क्षुधा पेट की क्षुधा से ज्यादा खतरनाक होती है। मन को श्रृंगार चाहिए। सजावट चाहिए और शोभा चाहिए। तभी तो सीगों के लिए गैंडों, दांत के लिए हाथियों, फर के लिए गिलहरियों, लोमड़ियों और खरगोशों तथा चर्म के लिए हिरणों व चीतों आदि की हत्याएँ होती हैं। समुद्र के पेट को खगोल करके रख दिया है हमने। तन और मन की इस क्षुधा पर हमें आवश्य अंकुश लगाना होगा। सरकार का अपना धर्म है वह उसे निभा रही है, कई जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों के शिकार पर प्रतिबंध लगाया गया है, जगह-जगह अभ्यारण्य बनाए गए हैं, जीव-जन्तुओं की प्रजातिओं को नष्ट होने से बचाने के लिए जल शुद्धि अभियान, वृक्षारोपण अभियान आदि शुरू किए गए हैं लेकिन जब तक जन-जन इस आवश्यकता को महसूस नहीं करेगा कि वन्यप्राणियों का बचाव वनों के बचाव के लिए भी आवश्यक है और वनों का बचाव हम सबके बचाव की आधारशिला है तब तक केवल सरकार के भरोसे परिवर्तन नहीं आ सकेगा। नई पीढ़ी को इसके प्रति भी सचेत करना जरूरी है।

कैसे करेंगे हम यह काम? गांव-गांव में चेतना की लहर फैलानी होगी। प्रदर्शनियों, स्लाइडों, चलचित्रों, औपचारिक एवं अनौपचारिक बैठकों तथा प्रसार कार्यकमों के माध्यम से जनता को जागृत करना होगा। पूरा दूर संचार तंत्र, पूरा

समाचार पत्र जगत् और समूचा अध्यापन समाज इस चेतना से जुड़ेगा तभी परिवर्तन संभव होगा। महिलाओं और युवकों के संगठनों को आगे आना होगा। कुटीर उद्योग व खेती के सही तरीकों पर बल देना होगा। सामाजिक वानिकी के कार्यक्रमों को लागू करना होगा। बेतहाशा बढ़ने वाली जनसंख्या पर रोक लगाना आवश्यक है। इसके साथ ही व्यकतिगत रूप से साफ़-सफ़ाई के मूल्यों और मापदंडों में आमूलचूल सुधार व विकास वांछित हैं।

इस शताब्दी के शुरू में हम 23 करोड़ थे, आज हम लगभग 92 करोड़ हैं। एक शताब्दी के पलटने से पहले हम चार गुना वृद्धि कर चुके हैं। बीसवीं शताब्दी के अंत में यदि भारत की जनसंख्या 100 करोड़ हुई तो कल्पना कीजिए कि चार गुना वृद्धि के आधार पर 21वीं शताब्दी के अंत में क्या हम 400 करोड़ नहीं हो जाएंगे? क्या धरती तब भी इस भार को सहन कर सकेगी। समय रहते इस विषय पर गंभीरता से नि:स्वार्थ होकर विचार करना होगा क्योंकि पर्यावरण असंतुलन का कारण स्वार्थमय मनोवृत्ति से है अत: नि:स्वार्थ बनकर ही प्रदूषण के भूत से छुटकारा पाया जा सकता है तथा पर्यावरण चेतना फैलाने के लिए मानवीय और प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों में परस्पर सहसंबंधों की मौलिक जानकारी में सुधार करने का वैज्ञानिक प्रयास अपेक्षित हैं। सीमित परिवार की चेतना भी फैलानी होगी। पर्यावरण प्रदूषण मानव जाति के लिए खतरे की संकेतिका है। यदि अब भी सही दिशा में ठोस उपाय किए जाएँ तो आने वाली विभीषिका को टाला जा सकता है।

■ ■ ■

हमारी प्रदूषित नदियां

❑ जावेद अख्तर खान

376/33 शमशेर नगर, नई बस्ती (लखीमपुर)
जिला लखीमपुर खीरी-262701 (उ० प्र०)

यदि पवित्रता का प्रश्न किया जाए तो संस्कारी व्यक्ति, विशेष रूप से हिन्दू, गंगा को ही सबसे पवित्र नदी मानते हैं। गंगा के बाद यमुना को पवित्र माना जाता है। यदि उनके अनुसार गंगा में नहाने से सारे पाप धुल जाते हैं तो यमुना में भी स्नान करने से पाप के कुछ अंश तो धुल ही जाते हैं। पर क्या पवित्र यमुना आज उतनी पवित्र व शुद्ध हैं जितनी पहले थी? इसका एक ही उत्तर है नहीं। यदि हमें यह मालूम हो कि अकेले दिल्ली में ही 24 घण्टे में लगभग 3,50,000 किलो मल-मूत्र और गंदा पानी यमुना में मिलता है तो उस समय इसका उत्तर हम निश्चय पूर्वक कहेंगे, "कदापि नहीं"। यह सीवेज की वह मात्रा है जो बिना उपचार किये ही यानि बिना पानी की साफ़-सफ़ाई किये ही यमुना में मिलती है।

यदि आपको कभी झेलम नदी में नौका-बिहार करने का अवसर प्राप्त हुआ हो और आप श्रीनगर होते हुए गुजरे हों तो निश्चय ही आपको यह प्रतीत हुआ होगा कि आप नदी में नहीं वरन एक " सीवेज" में नौका-बिहार कर रहें हैं। श्रीनगर का लगभग 57,000 किलो लीटर गंदा पानी झेलम नदी में गिराया जाता है।

बम्बई के माहिम क्रीक के काले, धीरे बहते हुए, पानी में आज से लगभग 30 वर्ष पहले मसल और ओएस्टर जीव बहुतायत से पाये जाते थे। पर आज वहां केवल वार्नेकल ही समुद्री जीवों का एक मात्र प्रतिनिधि रह गया है।

यह दुर्दशा केवल दिल्ली, बम्बई और श्रीनगर जैसे शहरों की ही नहीं। एक रिपोर्ट के अनुसार देश के एक लाख से अधिक आबादी वाले 142 शहरों में से केवल 10 में मल-मूत्र और अन्य गन्दगी को ठिकाने लगाने की समुचित व्यवस्था है। शेष नदियों के लिए ऐसी कोई उपचार-व्यवस्था नहीं है। परिणामस्वरूप लगभग 92 करोड़ लोगों के सीवेज के केवल 38 प्रतिशत भाग का ही उपचार होता है। निश्चय ही बाकी नगरों के सीवेज को ऐसे ही छोड़ दिया जाता है। छोटे शहरों और गाँवों की हालत तो और भी बदतर है। लोग उन्हीं नदियों का पानी पीते हैं, उनमें ही नहाते-धोते, कपड़े और बर्तन साफ़ करते हैं और उसी में मल-मूत्र प्रवाहित भी करते हैं, और वह भी बिना किसी उपचार के ।

कृषि प्रधान क्षेत्रों में हमारी नदियों के पानी में, खेतों से आये उर्वरकों और कीटनाशियों की मात्र भी काफी होती है। यह भी गम्भीर समस्या उत्पन्न कर देती है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान अनुसंधान परिषद् के अध्ययनों के अनुसार हम भारतीयों के शरीर में डी० डी० टी० की काफी मात्रा उपलब्ध है।

हमारे देश की 85 प्रतिशत नदियों में प्रदूषण घरों की गंदगी और मल-मूत्र के फलस्वरूप है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि उनमें बहुत बड़ी मात्रा में औद्योगिक व्यर्थ, जिसमें आमतौर से अत्यन्त विषैले पदार्थ होते हैं, भी मिलते हैं। मध्य प्रदेश के कागज़ मिल के व्यर्थों से प्रदूषित सोन नदी के पानी से अनेक गाँव के लोगों को चर्मरोग हो गये थे और

पशुओं की भी मृत्यु हो गई थी। आज से लगभग डेढ़ दशक वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के एक मद्य कारखाने से निकलने वाले व्यर्थ पदार्थों को प्रवरा नदी में मिला दिया गया था जिसके फलस्वरूप 16 किमी भाग में हज़ारों मछलियाँ मर गयीं थीं।

हमारी प्रदूषित नदियों को साफ़ करने का काम अत्यन विशाल है। यदि इसी प्रकार से हमारी नदियाँ प्रदूषित होती रहीं तो वह दिन दूर नहीं कि गंदी नालियाँ हमारा खाद्य-उत्पादन कम कर देंगी, बीमारियाँ फैलाएंगी, महामारियाँ उत्पन्न करेंगी और अंततोगत्वा सम्पूर्ण राष्ट्र को मृत्यु की ओर तेज़ी से ले जाएंगी।

ज़ल का शोधन आवश्यक

विचित्र प्रतीत होते हुए भी एक कटु सत्य है कि प्रकृति में कहीं भी एकदम शुद्ध जल उपलब्ध नहीं है। यदि किसी जलाशय में चिड़ियों की बीट भी गिर जाती है तो वह अशुद्ध हो जाता है। इसीलिए पेय जल सप्लाई करने से पहले जलाशयों और नदियों के पानी को उपचारित अवश्य किया जाता है। निश्चय ही उपचार का स्तर पानी में उपस्थित अशुद्धियों की किस्म और मात्रा पर निर्भर करती है। जीवाणु वैज्ञानिक पानी के प्रदूषण को मापने के लिए कोलीफार्म संख्या का उपयोग करते हैं। कोलीफार्म एक हानिरहित **बैक्टीरिया** है जो सामान्यत: सब प्रकार के मानव सीवेज में उपस्थित रहता है। प्रदूषण मापने के लिए पानी की एक निश्चित मात्रा में इनकी संख्या ज्ञात की जाती है। पानी में **कोलीफार्म** की उपस्थिति आसानी से ज्ञात की जा सकती है, पर रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीवों का पता लगाना अत्यन्त कठिन और अनेक बार तो असम्भव ही होता है। इसीलिये आमतौर से यह मान लिया जाता है कि वे सभी जल, जिनके 100 घन सेमी० में एक भी **कोलीफार्म** उपस्थित नहीं होता है, रोगजन्य सूक्ष्मजीवों से मुक्त होते हैं। यह ही पेय जल की शुद्धता का मानक माना जाता है।

प्रदूषण पर अंकुश के प्रयत्न

केन्द्रीय जल प्रदूषण रोकथाम बोर्ड (सेन्ट्रल बोर्ड फॉर द प्रिवेन्शन एण्ड कण्ट्रोल ऑव वाटर पॉल्यूशन) द्वारा किये

नदियों के प्रदूषण सम्बन्धी अध्ययनों के अनुसार वहाँ की नदियाँ काफी हद तक प्रदूषित हो चुकी हैं। इन अध्ययनों के लिए छ: नदियाँ- साबरमती, भीमा, नर्मदा, ताप्ती, वैनगंगा और गोदावरी चुनी गई थीं। साबरमती का अध्ययन अहमदाबाद के, नर्मदा का गुरदेश्वर के, भीमा का तकल के, ताप्ती का बुरहानपुर के , वैनगंगा का अष्ठी के और गोदावरी का घलेगाँव के निकट किया गया। उक्त नदियोंमें साबरमती सबसे अधिक प्रदूषित पायी गयी जिसकी जैवरासायनिक ऑक्सीजन आवश्यकता (बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमाण्ड BOD) 67 मिग्रा० प्रति ली० पाई गई। इसके बाद सबसे अधिक प्रदूषित नदियों का क्रम ताप्ती, भीमा वैनगंगा, गोदावरी और नर्मदा का रहा।

प्रदूषण की जाँच करने और उस पर अंकुश रखने के लिये उक्त बोर्ड ने तीन चरणों में अध्ययन करने की एक योजना बनाई है। पहले चरण के अन्तर्गत 40 केन्द्र (जिनमें 10 भूजल केन्द्र भी शामिल हैं) कार्य कर रहें हैं, दूसरे चरण में 80 केन्द्र मुख्य रूप से गंगा-यमुना के दोआब में केन्द्र शासित प्रदेशों में से बहने वाली नदियों का अध्ययन कर रहे हैं। इनमें से 45 केन्द्र गंगा नदी प्रणाली का और 16 केन्द्र यमुना का अध्ययन कर रहे हैं। तीसरे चरण में भविष्य में, 120 केन्द्र स्थापित किये जाएँगे। इनमें से पहले दो चरणों में स्थापित किये गये केन्द्र जनवरी 1980 से कार्य कर रहे हैं।

इन केन्द्रों द्वारा किये गये अध्ययनों के अनुसार गंगा की कुल 2035 किमी लम्बाई में से केवल 480किमी (लगभग) 23.5% ही प्रदूषित है। पर यमुना की कुल लम्बाई 1014 किमी में से लगभग 482 किमी (48%) भाग दूषित है।

गंगा का पानी कन्नौज, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना और कलकत्ता के निकट अपेक्षाकृत अधिक प्रदूषित है। इसका मुख्य कारण इन शहरों का सीवेज है जिसका बड़ा भाग विना उपचार के अथवा आंशिक उपचार के बाद गंगा में मिला दिया जाता है।

जहाँ तक यमुना का प्रश्न है तो दिल्ली शहर की गंदगी उसे इस हद तक गंदा कर देती है कि उसका पानी मथुरा तक

पहुँचने पर ही शुद्ध हो पाता है। पर मथुरा में फिर उसके बाद आगरा में भारी मात्रा में सीवेज मिल जाता है। अपनी प्राकृतिक स्वच्छन-क्षमता से वह अपने पानी को इटावा पहुँचने तक ही शुद्ध कर पाती है। यहाँ उसे चम्बल मिलती है और किस बड़े शहर की गंदगी के न मिलने से वह इलाहाबाद तक शुद्ध रही आती है।

प्रदूषण नई घटना

कुछ लोगों के मन में यह शंका उठ सकती है कि जानवरों एवं मनुष्यों के मल-मूत्र, उनके मृत शरीर, सड़ते हुए पौधे और अन्य अनेक प्रकार की गंदगी तो हमारे नदी-नालों में हज़ारों-लाखों वर्षों से मिलती रही है। जब से मनुष्य ने नदियों के किनारे गाँव और शहर बसाने शुरू किये थे, तभी से नदियों में घरों का कूड़ा-करकट मिलता रहा है। इसके बावजूद भी नदियाँ प्रदूषित नहीं हुईं। तब पिछले ही कुछ वर्षों में ऐसा क्या हुआ है कि हमारी नदियों का प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है?

पहले यह देखें कि आखिर हज़ारों वर्षों से निरन्तर जावनरों एवं मनुष्यों का मल-मूत्र आद ढोते रहने के बाद नदियाँ दूषित नहीं हुई हैं तो इसका कारण प्रकृति की अनूठी व्यवस्था है जिससे नदियाँ स्वयं ही अपनी गंदगी से छुटकारा पा लेती हैं। नदी-नालों में रहने वाले **बैक्टीरिया** ही इस गंदगी से छुटकारा दिलाते हैं। इनमें से कुछ वायुजीवी होते हैं जो ऑक्सीजन की उपस्थिति में जीवित रह पाते हैं और अवायुजीवी ऑक्सीजन में जीवित नहीं रहते हैं। वायुजीवी नदियों की सतह पर रहते हैं और अवायुजीवी तली में। अवायुजीवी उस ठोस गंदगी को निकालने लगते हैं जो भारी होने के कारण तली में बैठ जाती है जबकि वायुजीवी पानी में घुलनशील अथवा निलम्बित गंदगी को खाते हैं। **बैक्टीरिया** के शरीर में जाकर गंदगी जटिल कार्बनिक यौगिकों से सरल अकार्बनिक पदार्थों में बदल जाती है। ये अकार्बनिक पदार्थ स्थाई यौगिक होते हैं और बैक्टीरिया के शरीर से बाहर निकलने के बाद विघटित नहीं होते। यदि सीवेज में रोग उत्पन्न करने वाले सूक्ष्मजीव मौजूद होते हैं ते इन्हीं क्रियाओं के दौरान नदी-नालों में रहने वाले जलीय प्रोटोज़ोआ उन्हें विघटित कर देते हैं।

वायुजीवी **बैक्टीरिया** गंदगी को खाते-खाते अपनी वंशवृद्धि भी कर सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप पानी में घुली ऑक्सीजन को भी समाप्त करते जाते हैं। इससे ऑक्सीजन की मात्रा कम होती जाती है पर एक स्वच्छ नदी बहते हुए पत्थरों से उलझते समय तथा ऊपर से नीचे गिरने के दौरान वायुमण्डल से पुन: ऑक्सीजन ग्रहण करती जाती हैं। साथ में नदीं में निवास करने वाले सूक्ष्म पौधे, शैवाल प्रकाशसंश्लेषण के अंतर्गत ऑक्सीजन मुक्त करते हैं। इस ऑक्सीजन से भी वायुजीवी **बैक्टीरिया** अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं और बदले में शैवालों को पोषक पदार्थों के रूप में वे अकार्वनिक यौगिक प्रदान करते हैं जो वे गंदगी को विघटित करके बनाते हैं। शैवाल इन यौगिकों को जटिल कार्बनिक यौगिकों में बदल देते हैं। इस प्रकार भोज्य पदार्थों से गदंगी और पुन: गंदगी से भोज्य पदार्थ का एक अटूट चक्र चलता रहता है।

जब नदियों में गंदगी कम होती है तो वायुजीवी बैक्टीरिया को पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिल पाता इसीलिए उनकी संख्या भी कम हो जाती है। परिणामस्वरूप उनकी ऑक्सीजन आवश्कता भी कम हो जाती है। इस प्रकार एक स्वच्छ नदी में बैक्टीरिया अपेक्षाकृत कम संख्या में होते हैं और उसके पानी में घुली ऑक्सीज प्रर्याप्त होती है। इस प्रकार नदी नयी गंदगी का भार उठाने में सक्षम हो जाती है।

उक्त स्वचालित प्रक्रियाओं के फलस्वरूप नदियाँ गन्दगी की बड़ी मात्रा को बिना किसी हानि के "पचा" जाती हैं। पर गन्दगी को पचाने की एक सीमा होती है। उस सीमा का अतिक्रमण होने पर उक्त क्रियाओं से भी गंदगी से पूरी तरह निपटारा नहीं हो पाता । होता यह है कि गंदगी की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाने से वायुजीवी **बैक्टीरिया** में भी अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इससे उनकी ऑक्सीजन आवश्यकता भी बढ़ जाती है । पानी में घुली ऑक्सीजन इतनी तेज़ी से खर्च होने लगती है कि उसकी पूर्ति वायुमण्डल या शैवालों से नहीं हो पाती है। फलस्वरूप पानी में ऑक्सीजन की मात्रा घटने लगती है। इससे अवायुजीवी बैक्टीरिया और बैक्टीरिया भक्षी प्रोटोज़ोआ की संख्या कम

हो जाता है। उस स्थिति में नदी में निवास करने वाले अवायुजीवी बैक्टीरिया के झुण्ड सतह पर हमला कर देते हैं। पानी में घुली ऑक्सीजन समाप्त हो चुकी होती है पर खाद बड़ी मात्रा में मौजूद रहती है अत: ये अवायुजीवी बैक्टीरया बड़ी तेजी से पनपते हैं और शीघ्र ही ये पानी में अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। गंदगी के भक्षण के दौरान वे पानी से हाइड्रोजन मुक्त करते हैं। मल से गंधक तथा उन्हें संयुक्त करके दुर्गन्धमय हाइड्रोजनसल्फ़ाइड के कारण ही गंदी नालियों से बू आती है।

जब पानी में निलम्बित गंदगी की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है तब सूर्य का प्रकाश नदी की तली में नहीं पहुँच पाता। इस स्थिति में जलीय शैवाल भी नष्ट हो जाते हैं। पर्याप्त मात्रा में खाद्य और ऑक्सीजन न मिलने से पानी में मछलियाँ पनप नहीं पातीं और धीरे-धीरे मरने लगती हैं।

सीवेज उपचार

सीवेज को उपचारित करने के लिए स्वास्थ्य इंजीनियर प्राकृतिक शुद्धिकरण को ही अपनाकर बस, उस प्रक्रम को त्वरित कर देते हैं। सबसे पहले सीवेज के ठोस पदार्थ, स्लज को नीचे बैठा दिया जाता है। फिर उसे वायुरुद्ध टैंकों में 40 दिन तक रखा जाता है। इस दौरान बैक्टीरिया ठोस पदार्थों का उसी प्रकार भक्षण कर लेते हैं जिस प्रकार वे तली में करते हैं। भक्षण के दौरान जो गैस उत्पन्न होती है उसे कभी -कभी पम्प आदि चलाने हेतु या आसपास के क्षेत्रों में ईंधन गैस के रूप में प्रयुक्त कर लिया जाता है। अंत में जो स्लज बचता है उसे खाद के रूप में बेंच लिया जाता है। और शुद्ध किये गये पानी को नदी आदि में मिला दिया जाता है। दिल्ली में "ओखला के खाद" के रूप में बिकने वाली खाद यही स्लज है।

उक्त प्रक्रम में ठोस को तली में बिठाने से कुल सीवेज का 35 प्रतिशत शुद्ध हो जाता है। सीवेज के घुलनशील और निलम्बित भाग को खुले टैंकों में रखने पर, जहाँ वह ऑक्सीजन के सम्पर्क में आता है, सीवेज का और 50 प्रतिशत शुद्धिकरण हो जाता है। इन टैंकों में सीवेज पर बैक्टीरिया और प्रोटोज़ोआ आक्रमण कर उसका शोधन करते हैं।

सीवेज के 99 प्रतिशत शुद्धिकरण के लिए इस उपचारित सीवेज को रेत में से छाना जाता है। पर सीवेज का इस हद तक शोधन केवल कुछ शहरों में संभव हो सका है।

हमारे देश में नदियों की बढ़ती गंदगी को न रोक पाने का एक और कारण यह भी है कि बरसों तक सरकार और काफी हद तक जनता का भी ध्यान शहरों एवं गाँवों की जल आपूर्ति पर ही केन्द्रित रहा, उन्होंने सीवेज-उपचार की ओर ध्यान ही नहीं दिया। केन्द्रीय जल प्रदूषण रोकथाम बोर्ड के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० निलय चौधरी का कहना है "सैनीटेशन के लिए निर्धारित राशि को जलापूर्ति को बढ़ावा देने के लिए खर्च किया जाता रहा है। कलकत्ता शहर में तो ऐसा वर्षों तक ही किया जाता रहा है। पर अब इस अदूरदर्शी नीति के खतरों के प्रति हम सजग हो रहें हैं।" अतएव हमें इस दिशा में अविलम्ब प्रभावी कदम उठाने होंगे।

■ ■ ■

वन्य जीवों को बचाना होगा

❑ डॉ० एम० के० मजूमदार

डी-753, सरस्वती विहार
दिल्ली- 110034

वन्य जीवों की हत्या कोई नई बात नहीं है। कोई उन्हें खाल के लिए, कोई मुंह के स्वाद के लिए, कोई बहादुरी के लिए तो कोई शौक के लिए मारता है। एक ज़माना ऐसा भी था जब खूंखार जानवरों (बाघ, शेर, चीता आदि) का शिकार करने वालों को अनेक पुरस्कार दिए जाते थे।

वन्य जीवों की रक्षा के लिए आज़ादी के पांच वर्ष बाद 1952 में वन्य जीव सुरक्षा कमेटी बनाई गई। पर यह कमेटी वन्य जीवों की सुरक्षा करने में नाकामयाब रही। इसके बीस वर्ष बाद सन् 1972 में वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम बना कर पूरे देश में लागू किया गया। यह अधिनियम आज भी जारी है। इसके अन्तर्गत वन्य प्राणियों को पकड़ना, मारना, जाल में फंसाना या ऐसे कार्य करने की कोशिश दण्डनीय अपराध घोषित किए गए। इसके बावजूद पूरे देश में वन्य जीवों की हत्याओं का सिलसिला अभी तक अबाध गति से चल रहा है।

पिछले कुछ दशकों से विदेशों में वन्य जीवों के खाल, हड्डी, बाल, नाखून, सींग, मांस आदि अन्य अंगों की काफी मांग हुई है। अधिक रुपए कमाने के लिए वन्य जीवों की हत्या कर उनके अंगों को तस्करी द्वारा विदेश भेजने का धंधा काफी बढ़ गया है। कुछ वर्ष पूर्व मध्य प्रदेश के बालाघाट, सिवनी, मण्डला, जबलपुर, छिंदवाड़ा, देवास, कान्हा आदि क्षेत्रों में वन्य जीवों की हत्या के अनेक मामले प्रकाश में आए। जबलपुर में एक घर से वन्य जीवों के खाल बरामद किए गए। बालाघाट में एक घर पर छापा मार कर शेर, चीतल, सांभर के अनेक चमड़े जब्त किये गए। सिवनी के पास 8 शेर, 3 सांभर, 3 अजगर की खालें, सांभर व हिरन के सींग जब्त किए गए।

नई दिल्ली में 1983 में एक तस्कर के यहाँ छापा मार कर विभिन्न वन्य जीवों की 40,461 खालें बरामद की गई थीं। नई दिल्ली में ही 1988 में एक तस्कर के यहाँसे 25 हजार सियार, 24 हजार सांपों की खालों के अलावा गीदड़, जंगली बिल्ली, तेंदुए, शेर, लोमड़ी, भेड़िया आदि जीवों की तीन हज़ार से अधिक खालें बरामद की गई थीं। 21 जुलाई 1992 को नई दिल्ली के इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर एक विदेशी के पास से 1898 सांपों की खालें बरामद की गई। वर्ष, 1989 से जुलाई 1992 तक 30 हज़ार सांपों की खालें विभिन्न स्थानों पर पकड़ी गईं। यह आंकड़े बताते हैं कि देश में कितनी अधिक संख्या में वन्य प्राणियों की हत्याओं का सिलसिला जारी है।

विश्व में अफ्रीका के बाद भारत में सबसे अधिक जीव-जन्तु पाये जाते हैं। विश्व में पाये जाने वाले 15 लाख जीव-जन्तुओं की जातियों में से लगभग 75,000 प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। वन्य प्राणी अधिनियम 1972 की अनुसूची (1) में 133 दुर्लभ जीव-जन्तुओं की एक लम्बी सूची है जिनका अस्तित्व खतरे में बताया गया है। इसमें 41 पक्षी, 70 स्तनपायी, 2 सरीसृप (रेंगने वाले) व उभयचरों की प्रजातियाँ हैं।

भारत सरकार ने इन प्रजातियों की सुरक्षा के लिए 68 राष्ट्रीय उद्यान और 367 अभयारण्य, बनाए हैं जहाँ दुर्लभ

जीव-जन्तु सुरक्षित हैं। अप्रैल 1975 में विश्व प्राणी कोष तथा इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑव नेचर एण्ड नेच्युरल रिसोर्सेस की सहायता से वनों में बाघ की सुरक्षा के लिए 'टाइगर प्रोजेक्ट' की योजना बनाई गई। आज देश के विभिन्न राज्यों में 19 टाइगर प्रोजेक्ट द्वारा बाघों की सुरक्षा की जा रही है।

हाथियों की सुरक्षा के लिए पर्यावरण व वन मन्त्रालय द्वारा 1990 में हाथी परियोजना बनाई गई। देश के 12 प्रांतों में 11 क्षेत्रों में बांट कर हाथी परियोजना शुरू की गई। हाथी परियोजना के साथ-साथ स्टियरिंग कमेटी ऑव प्रोजेक्ट एलीफेंट कमेटी भी बनाई गई है जिसमें हाथी विशेषज्ञ, सरकारी अधिकारी व राज्यों के मुख्य वन्य प्रतिपालकों को शामिल किया गया है जो इस परियोजना को चलाने के लिए मार्गदर्शन करते हैं। इनके अलावा गेंडा परियोजना, मगरमच्छ परियोजना आदि परियोजनाएँ भी कार्य कर रही हैं। विश्व प्राणी कोष, जीव मण्डल संरक्षण कार्यक्रम, यूनेस्को द्वारा विश्व स्तर पर मानव और जीव मण्डल नामक एक कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है तथा प्रत्येक वर्ष एक से आठ अक्टूबर तक वन्य प्राणी सुरक्षा सप्ताह भी मनाया जाता है।

वन्य प्राणियों के संसार को नष्ट होने से बचाने के लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं वह सराहनीय कहे जा सकते हैं पर सुखद नहीं। वन्य प्राणी अधिनियम 1972 की अनुसूची (1) या (2) के भाग 2 उल्लेखनीय वन्य प्राणियों एवं राष्ट्रीय उद्यान वन्य प्राणी विहारों में आखेट संबंधी अपराध वाले किसी भी अपराधी को कम से कम छः महीने से ज्यादा से ज्यादा छः वर्ष तक कारावास और कम से कम 500 रुपए के दण्ड का प्रावधान है। अपराध दोहराने पर अपराधी को 1 वर्ष का कारावास और 1000 रुपए तक का जुर्माना देना होगा। चमड़े से बनाई गई वस्तुओं का धंधा करने वालों को एक से सात वर्षों का कारावास और कम से कम 5000 रुपए का जुर्माने की सजा रखी गई है। देखा जाए तो यह सजा व जुर्माना पर्याप्त नहीं है। आज एक बाघ की खाल (अस्थि पंजर सहित) की लगभग 30 लाख रुपये कीमत आंकी गई है। ऐसे में तस्कर को मामूली सजा व जुर्माने का भय नहीं है। इसलिए वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम 1972 पर पुर्नविचार करना जरूरी है।

सन् 1972 से वन्य प्राणियों के चमड़े से निर्मित वस्तुओं के बनाने व बेचने पर रोक लगा दी गई थी। इसके बावजूद आज भी दिल्ली में ऐसे अनेक फर्म हैं जो वन्य जीवों की खाल व अन्य अवयवों से निर्मित चीजों को पुराने स्टाक के नाम पर बेच रही हैं। यह हमारे लचर कानून का नमूना है। वन्यप्राणी संरक्षण अधिनियम पर नए सिरे से सोचना होगा। वन्य प्राणी संरक्षण कार्यक्रम पूरी ईमानदारी से लागू करना होगा। वन्य प्राणी संरक्षण के लिए अन्य कई मुद्दों पर भी विचार करना होगा।

वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए वर्ष का एक सप्ताह काफी नहीं है। एक से आठ अक्टूबर तक वन्य प्राणियों के प्रति प्रेम व लगाव जगाने के लिए देश भर में विभिन्न कार्यक्रम किए जाते हैं। ऐसे कार्यक्रम वर्ष भर आयोजित करते रहना होगा जो सिर्फ बड़े शहरों तक सीमित न रहें। ग्रामीणों को भी इनमें शामिल करना होगा। पर्यावरण संतुलन के लिए वन्य प्राणियों का रहना आवश्यक है, रेडियो व टीवी पर वन्य जीवों से संबंधित कार्यक्रमों द्वारा नियमित प्रसारित करना होगा। यह सभी कार्यक्रम हिन्दी व क्षेत्रीय भाषाओं में होने चाहिए जिससे ग्रामीण लोग भी समझ सकें।

वन्य जीवों की हत्या करने वाले गिरोह की सूचना देने वाले या भंडाफोड़ करने वाले को पुरस्कृत किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय उद्यान के आस-पास बसने वाले ग्रामीण आदिवासियों व बेरोजगारों को रोजगार उपलबध कराये जाने चाहिए जिससे उन्हें अन्य प्राणियों की हत्या जैसे कार्य न करने पड़ें। प्राकृतिक विरासत को कायम रखने के लिए हमें शीघ्र ही वन्यप्राणियों के अवैध शिकार को रोकना होगा वर्ना दुर्लभ प्राणियों की प्रजातियाँ मात्र किताबों व कैलेन्डरों तक सीमित रह जाएंगी।

■■■

खरपतवार से गैस बनाने का नया बायोगैस संयंत्र

❑ डॉ० सुधीरेंद्र शर्मा

ऊर्जा पर्यावरण समूह
एच-12 ओल्ड डबल स्टोरी,
लाजपत नगर-4, नई दिल्ली-110 024

गोबर से गैस निकालने की तकनीक तो लगभग एक दशक पुरानी है परन्तु बायोगैस संयंत्र लगवाने का काम व्यापक तौर से लगभग 17 वर्ष पहले राष्ट्रीय बायोगैस कार्यक्रम के लागू होने के साथ ही शुरू हुआ हालांकि देश में लगभग 2 करोड़ संयंत्र लगने की संभावना है लेकिन लगे हैं केवल 10 लाख। सरकार द्वारा पूर्णरूप से अनुदान लगभग पन्द्रह वर्ष चला और वर्तमान में लगभग 50 प्रतिशत अनुदान दिया जा रहा है- इस पर भी बायोगैस संयंत्र लगवाने में कोई तेज़ी आई हो ऐसा लगता नहीं है। वास्तव में सब्सिडी में कटौती का मुख्य कारण कार्यक्रम की धीमी प्रगति थी। तकनीकी खमियां व गांव-देहात में मिस्त्री का न होना इस कार्यक्रम की धीमी प्रगति के मुख्य कारण बताये गये। अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि क्योंकि कार्यक्रम पूर्णरूप से सरकारी एजेंसियों के ही हाथ था इसिलए संयंत्र बने कागजों पर और वास्तव में शायद बहुत कम। आरोपों और प्रतिआरोपों को अनदेखा भी करें तो कुल मिलाकर गोबर गैस से ग्रामीण ऊर्जा समस्या का समाधान हुआ हो ऐसा लगा नहीं।

क्या गोबर गैस, जिसे बाद में बायोगैस के नाम से ज्यादा जाना गया, में केवल गोबर का इस्तेमाल ही कार्यक्रम की धीमी प्रगति का कारण था? कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यदि संयंत्रों में गोबर के स्थान पर खेत का कूड़ा भी डाला जा सकता तो शायद लोग इसे ज्यादा अपना पाते। मुद्दा विचार करने योग्य है भी और था भी, लेकिन इस ओर कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये।

कोई तीन वर्ष पहले, हरियाणा में रिवाड़ी से लगभग 10-12 किलोमीटर दूर एक गांव में खरपतवार से गैस निकालने का एक प्रयोग शुरू किया गया। खोरी सेंटर के नाम से जाने वाली इस संस्था ने जमीन में गड्ढा खोदकर उसे पालीथीन शीट से ढककर एक सस्ता व टिकाऊ संयंत्र बना डाला। इसमें सभी प्रकार के खरपतवार डाले गये और साथ में डाला गया थोड़ा-सा गोबर। सातवें दिन पालीथीन की शीट गुब्बारे की तरह फूल गई और चूल्हें में ज्वलनशील गैस आने लग गई।

जितना आसानी से यहाँ लिखा गया है उतनी आसानी से तो गैस नहीं बनी। गडढे से पानी का रिसना, पालीथीन से गैस का लीक होना इत्यादि कुछ ऐसी समस्याएँ रहीं जिनको निपटाने में खोरी सेंटर के कार्यकर्ताओं को कई महीने लग गये। लेकिन जब सफलता हाथ लगी तो कुछ ऐसी कि गड्ढे से आज तक बे-रोक-टोक गैस मिल रही है।

कई आकार के गड्ढे बनाये गये और उनमें तरह-तरह के खरपतवारों का मिश्रण काटकर डाल दिया गया। किसी में कुछ गैस कम रही होगी तो किसी में कुछ ज्यादा। बहरहाल हर गड्ढे से गैस निकली जरूर। बथुआ, खरतुआ, प्याज इत्यादि का जोर रहा खोरी सेंटर में बनाये इन संयंत्रों में। इस

बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया कि खरपतवार की कमी के कारण गैस न मिलने की शिकायत न हो। सर्दियों में सरसों के अवशेष काफी कारगर रहे। खोरी सेंटर के निकट के एक गांव के किसान ने तो मूली की बची हुई फसल गड्ढे में डालकर खूब गैस ली। उस किसान का यह मानना रहा कि जब 'मूली' हमारे पेट में गैस पैदा कर सकती है तो गड्ढे में उसे क्या एतराज़ हो सकता है। साधारण बायोगैस संयंत्र में तो हर रोज एक नियमित समय में गोबर डालना होता है, शायद इस नियम का पालन न करने के कारण भी कई संयंत्र काम नहीं करते हैं, जबकि इस नये संयंत्र में एक बार डाली हुई खरपतवार से लगभग छः माह गैस मिल जाती है।

इस तरह के अध्ययन देश के चार अन्य क्षेत्रों में विभिन्न खरपतवारों पर भी किये गये। कम तापमान वाले क्षेत्र हिमाचल में, गुजरात के आदिवासी क्षेत्र में, राजस्थान के तपते रेगिस्तान में तथा केरल के तट पर भी इस तरह के संयंत्र लगा कर विभिन्न प्रकार की जलवायु, तापमान व खरपतवार का असर देखा गया- गैस निकलने पर। कुल मिलाकर सभी जगह पर संयंत्र बखूबी चले और गैस भी खूब मिली।

अभी तक खोरी सेंटर के वैज्ञानिक इस तकनीक को गांव-देहात में ले जाने के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं हैं। संस्थान के निदेशक श्री सुन्दरलाल का मानना है कि अभी प्रयोगों व सामग्री को कुछ देर और पक्का करके देखना होगा नहीं तो साधरण बायोगैस वाला हाल ही होगा। आकार भी तय करना है, परिवार के सदस्यों व गैस की आवश्यकतानुसार। खरपतवार कितनी व कब डाली जाए की जानकारी स्पष्ट रूप से किसान को देनी होगी तभी जाकर इस प्रकार का संयंत्र गांव में सफल हो पायेगा।

कीमत भी कोई ज्यादा नहीं है- बस, पालीथीन शीट की ही मुख्य कीमत है। कुल मिलाकर एक बड़े गुड्ढे में पांच से छः हज़ार का खर्च आता है- लेकिन इससे बिजली की मोटर चलाने जितनी गैस मिलने की भी पूरी संभावना रहती है। सबसे बड़ा फायदा यह है कि यदि जगह बदलनी हो तो दूसरी जगह गड्ढा खोद लिया। यदि पारिवारिक झगड़े या बटवारे के कारण भी स्थान बदलना हो तो बस दूसरी जगह गड्ढा ही तो खोदना है। साधारण संयंत्र में यह कमी रहती है- एक जगह लगा दिया तो बस लग गया। साधारण संयंत्र को कभी बीच में बंद किया तो हो गया हमेशा के लिए बंद। नये संयंत्र को जब चाहे चलाओ जब चाहे बंद करो। है न मज़े की बात।

कई स्थानों पर तो गांव का एक बड़ा संयंत्र 5-6 परिवारों को गैस मुहैया करवा सकता है, एक निश्चित दर पर ऐसी संभावनाओं का भी पता लगाया जा रहा है। कुल मिलाकर अनेक संभावनाओं से ओत-प्रोत नया संयंत्र आशा जगाता है एक नई तकनीक के बारे में जो गांवों में खेतों के व्यर्थ व खरपतवारों के प्रकोप से तो बचाने का कार्य करेगा ही। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें या लिखे:

निदेशक, खोरी सेंटर,

खोरी-123101 (महेन्द्रगढ़), हरियाणा।

■ ■ ■

नीम : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

❑ एन० के० बौहरा

प्लाट नं० 389, गली नं० 1,
मिल्कमेन कॉलोनी, पाल रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

नीम जिसका वैज्ञानिकनाम **एजाडिरेक्टा इंडिका है,** (महोगनी) मीलिएसी कुल का वृक्ष है। बारहों महीने हरा-भरा रहने वाला वृक्ष संसार के विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। इसे पाकिस्तान में निम्मी, बर्मा में टेभारका, श्रीलंका में कोहोम्बा, थाइलैण्ड में सदाऊ इंडिया, क्वीनिन एवं डाऊ के नाम से, इंडोनेशिया में इम्बा, मिण्डी, मिम्बों या इनटेरेन, मलेशिया में माम्बु, ईरान में आजाद दरखत ए हिन्द, पूर्तगाल में मारगोसा, संयुक राज्य अमेरिका में इंडियन लीलेक या नीम, जर्मनी में इडिशर जेडरेक या इडिशर फ्लाईडर, लेटिन अमेरिका में निम, एवं यमन में मेराईरोह के नाम से जाना जाता है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में भी इसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। अँग्रेजी में इसे मारगोसा, गुजराती में निम्बार्डो, कन्नड़ में आरिष्ट्रा नीम्बा, तेलगू में वीप्पाचेटू एवं हिन्दी में नीम के नाम जाना जाता है।

भारतीय संस्कृति में नीम हमेशा एक पूजनीय वृक्ष रहा है। ऐसा माना जाता है कि जब अमृत स्वर्ग ले जाया जा रहा था, तब कुछ बूंदें इस वृक्ष पर पड़ गई थीं। हमेशा नये शक संवत वर्ष में इसकी पत्तियाँ हिन्दू खाते हैं, इसके पीछे उनकी मान्यता थी कि यह हमेशा सभी बीमारियों से रक्षा करता है।

नीम में पुष्पन मार्च से मई के मध्य होता है तथा इसके फल मई से जुलाई के मध्य परिपक्व हो जाते हैं। यह करीब-करीब पूरे भारतवर्ष में पाया जाने वाला मध्यम ऊँचाई का वृक्ष है। इसे बीजों द्वारा या कलम रोपण दोनों प्रकार से लगाया जा सकता है, परन्तु कलम रोपण अधिक सफल रहता है। यह सूखी, पथरीली, रेतीली, उथली, गहरी या चिकनी सभी प्रकार की भूमि में उग सकता है। इसके अतिरिक्त नीम क्षारयुक्त भूमि (pH=5तक) में भी पैद हो सकता है। यह 0 डिग्री से 45 डिग्री सेल्सियस तक तापक्रम सहन कर सकता है।

नीम के सामान्य उपयोग

नीम का उपयोग कई सदियों से जनसामान्य द्वारा किया जा रहा है। नीम की लकड़ी को ईंधन के रूप में, इसकी हरी एवं पतली शाखा को दांतुन के रूप में, नीम के पत्तों का धुंआ मच्छरों को भगाने के लिए भी किया जाता है। अनाज एवं चारोली की कीटों से रक्षा के लिए गोदामों एवं अन्य संग्रह पात्रों में नीम के पत्तों का उपयोग किया जाता है। नीम की गोंद को दवा के रूप में उपयोग में लिया जाता है। नीम के फल से बीज निकालने के बाद जो गूदा बचता है, उसे सड़ाकर उसमें में से मीथेन गैस तैयार की जाती है, जिसका ईधन के रूप में उपयोग होता है।

नीम के बीजों में करीब 40 प्रतिशत तेल होता है। यह तेल दिए जलाने में, साबुन बनाने में, दवाइयाँ बनाने में, कीटनाशक रसायन बनाने में एवं मशीनों की आइलिंग करने

के काम आता है। इसकी खली (CAKE) को खाद के रूप में, जानवरों को उत्तम चारे के रूप में एवं एक कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। नीम की छाल में टेनिन नामक तत्व पाया जाता है, जिसका उपयोग चमड़ा पकाने में किया जाता है। नीम की लकड़ी बहुत सरल, मजबूत एवं टिकाऊ होती है, इस पर कीट नहीं लगते हैं इस कारण इसकी लकड़ी का उपयोग मकान, फर्नीचर एवं खेती के औजार बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त नीम के पत्तों एवं बीजों में एक चमत्कारी रसायन "ऐजाडिरेक्टीन" पाया जाता है, जिसके कई उपयोग हैं। नीम का उपयोग कवकनाशी एवं कीटनाशी के रूप में भी किया जाता है।

व्यापिरक महत्व

भारतीय कृषि अनुसंदान संस्थान (IARI) ने सर्वप्रथम 1960 में पता लगाया कि नीम में कई प्रकार के रसायन पाये जाते हैं, जो बहुपयोगी हैं। ऐजाडिरेक्टीन की खोज एवं उसके बाद भी विभिन्न रसायनों की खोज एवं उपयोगिता ज्ञात होने के बाद भारत में एवं विदेशों में नीम का व्यापरिक महत्व बढ़ गया तथा आज नीम के कई व्यावसायिक रूप नीम पेस्ट, नीम साबुन, नीम तेल, नीम कीटनाशक आदि बाजारों में उपलब्ध हैं। भारत में कई कम्पनियों ने विभिन्न नामों से नीम के कीटनाशक बनाये, इनमें ऐजाडिट, बीजोसाल, फील्ड मार्शल, मारगोसाइड-सी, मारगोसाइड-ओ, नीमासोल, नीमगोल्ड, नीमगार्ड, नीमहिट एवं हाल ही में उत्पादित नीमता 2100 प्रमुख हैं।

नीम के आधुनिक उपयोग

नीम के कई आधुनिक उपयोग ज्ञात हो चुके हैं, इनमें प्रमुख है:-

(क) चोधास रोग के उपचार में : यह रोग एक परजीवी **ट्रिपनोसोमा कूजी** द्वारा फैलता है, जो परजीवी द्वारा रक्त चूसने के समय रोगाणु शरीर में छोड़ देता है, जो फेफड़ों एवं हृदय को हानि पहुँचाते हैं। इसके उपचार में नीम में पाया जाने वाला "एजाडिरेक्टीन" रसायन उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(ख) मलेरिया के उपचार में : भारतीय आयुर्वेदिक संहिता में चरक एवं सुश्रुत ने नीम की उपयोगिता बताई थी। वर्तमान में यह सिद्ध हो चुका है कि नीम "कुनैन" से भी अधिक शक्तिशाली है। या गुण इसमें पाये जाने वाले "गिडुनिन" नामक रसायन के कारण होता है। आधुनिक युग में मच्छरों पर कुनैन का प्रभाव कम हो रहा है तथा यह औषधि इस दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है।

(ग) माईकोटॉक्सिन उत्पन्न करने की दर कम करने में: कुछ हानिकारक कवक जैसे **एसपरजिलस फ्लेक्स** तथा अन्य संग्रहित खाद्य पदार्थों में कवक विष उत्पन्न करते हैं। विभिन्न आधुनिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि नीम का विलयन इन कवकों की वृद्धि दर को नियंत्रित करता है तथा साथ ही इनके द्वारा कवक विष उत्पन्न करने की दर को भी कम करता है।

पेटेंट विवाद

अमेरिका की कृषि जैविक तकनीकी समाचार पत्रिका "एग्रो बायोटेक्नोलोजी न्यूज" ने एक समाचार प्रकाशित किया कि एक अमेरिकी **रोबर्ट** (टोनी) **लार्सन** ने नीम के पेड़ के जैव कीटनाशक गुण पेटेन्ट करा लिया है। इसके अनुसार कीटनाशक उत्पाद बनाने का लाइसेन्स फ़्लोरिडा (अमेरिका) की डब्ल्यू० आर० ग्रेस कम्पनी को दिया गया है। यह कम्पनी पी० जे० मार्गो प्रा० लिमिटेड, जो एक भारतीय कम्पनी है, के साथ भागीदारी में भारत के कर्नाटक के तुमकूर ज़िले में कारखाना लगा रही है, जहाँ शुरू में 20 टन निम्बोली प्रतिदिन तैयार होगी जो अमेरिका को निर्यात करेगी।

इस समाचार से भारत के राष्ट्रीय वृक्ष नीम के उपयोग के विषय पर विवाद छिड़ गया। अगर इस पेटेन्ट कानून को सुपर 301 द्वारा भारत पर थोपा गया तो इसका सीधा अर्थ होगा कि भारतीयों को अपने ही देश के नीम के वृक्षों का उपयोग करने हेतु अमेरिका की इजाजत लेनी पड़ेगी। इसका उपयोग करने हेतु हमें अमेरिका को रायल्टी भी देनी पड़ सकती है। इस प्रकार भारत के लोग जो आदिकाल से ही नीम का उपयोग करते आ रहे हैं तथा भारत के ठेठ ग्रामीण इलाकों में भी सदियों से जिस वृक्ष का उपयोग हो रहा है, उससे वे वंचित हो जायेंगे। इस प्रकार ये भारत की

स्वाधीनता पर सीधा आक्रमण होगा। अभी हॉल ही में अमेरिकी पेटेन्ट विभाग ने भारत के विरोध को रद्द कर दिया है। भारत की कौंसिल ऑव सांइटिफिक एण्ड इंडस्ट्रीयल रिसर्च (CSIR) ने इस बारे में बहुत ही हल्के स्तर पर प्रयास किया जिससे यह विरोध रद्द हो गया है। अब अमेरिका ने 'हल्दी' पर भी पेटेन्ट करवा लिया है। इस प्रकार वह दिन दूर नहीं है जब कभी भारतीय परम्परागत औषधियों का पेटेन्ट अमेरिका के पास होगा तथा चरक संहिता व अन्य भारतीय साहित्यों में वर्णित तथा कई वर्षों से भारतीयों द्वारा उपयोग में ली जा रही इन मूल्यवान पादप औषधियों के उपयोग के लिए अमेरिका से स्वीकृति लेनी होगी, साथ ही उसके लिए भुगतान भी करना होगा।

वर्तमान में भारत में नीम के महत्व को जानने के पश्चात् लोगों में इस वृक्ष के प्रति जागरूकता पैदा हो रही है तथा देश में विभिन्न स्थानों पर नीम के बारे में कार्यशालाएँ आयोजित की जा रही हैं। इस दिशा में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् ने उल्लेखनीय कार्य किया है। नीम की उपयोगिता एवं महत्व को मद्देनजर रखते हुए एक राष्ट्रीय गोष्ठी (नीम पर) भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् द्वारा 5 जनवरी 1996 को आयोजित की गई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्री श्री राजेश पायलट ने किया। इस सेमिनार में मुख्यत: नीम के महत्व, उसको राष्ट्रीय वृक्ष घोषित करने, नीम के उत्पादों के रसायन, नीम के पेटेन्ट सम्बन्धी प्रस्तावों एवं उसका भारतीय उद्योग पर प्रभाव, नीम का कृषि वनिकी एवं गाँवों की आर्थिक उन्नति में उपयोग करने तथा नीम के विभिन्न उपयोगों एवं अन्य सम्बन्धित प्रस्तावों पर चर्चा की गई तथा नीम पर किये जा रहे विभिन्न अनुसंधनों पर पत्र-वाचन भी किये गये।

वर्तमान युग में नीम के महत्व को जानकर भारतवासियों को इसका अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए। एवं इसे राष्ट्रीय वृक्ष घोषित कर तथा अमेरिकी पेटेन्ट कानूनों का कड़ा विरोध कर इस 'कल्पतरु' की, जो भारतीय संस्कृति का सदियों से साथी रहा है, की रक्षा करने का संकल्प करना चाहिए। फारसी में नीम को आज़ाद दख्त ए हिन्द अर्थात् भारत का आज़ाद वृक्ष कहा गया है। अब यह भारतीयों पर है कि वे इसकी आज़ादी की रक्षा करें अथवा अमेरिका के हाथों में इसे जाने दें।

■ ■ ■

जैव-विविधता संरक्षण
जड़ी-बूटियों और पेड़-पौधों का संरक्षण आवश्यक है

❑ दर्शनानन्द

अवकाशप्राप्त उपनिदेशक, उद्यान, इलाहाबाद मंडल
सी-67, गुरू तेग़ बहादुर नगर
करेली हाउसिंग स्कीम, इलाहाबाद-211016 (उ० प्र०)

जिस धरती पर मानव जाति निवास कर रही है उसी धरती पर विविध जीवधारी भी निवास कर रहे हैं। इन जीवधारियों में अनेक जाति के पशु, पक्षी, सूक्ष्मजीव, पेड़-पौधे तथा अन्य सभी जीव सम्मिलित हैं। इसमें दो राय नहीं कि ये समस्त जीवधारी एक दूसरे पर निर्भर हैं। प्रकृति इन्हीं जीवधारियों के परस्पर संगठन से पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रहती है, परन्तु इस संगठन में यदि तनिक भी छेड़-छाड़ हो जाता है तो यह संतुलन बिगड़ जाता है।

अनुमान लगाया जाता है कि इस धरती पर लगभग 3-4 करोड़ जीव-धारी निवास कर रहे हैं, जिनमें अभी तक केवल लगभग 15 लाख जीवधारी पहचाने जा सके हैं। ये जीवधारी जलवायु स्थिरीकरण, अच्छी वर्षा, खेती, बागवानी व उद्योग-धन्धों के अवसर प्रदान करने तथा भोज्य सामग्रियाँ उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। पुन: ये भूमि-संरक्षण, बाढ़-नियंत्रण तथा सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक दृष्टिकोण से भी उपयोगी रहते हैं।

इनके अतिरिक्त जीवधारियों की जो जातियाँ अभी तक पहचानी नहीं जा सकीं, वे भी कितनी उपयोगी होंगी, पारिस्थितिकीय संतुलन और स्वच्छ पर्यावरण बनाए रखने में क्या भूमिका निभा रही होंगी, इसका अनुमान भी भली-भांति लगाया जा सकता है। परन्तु मानव अपने स्वार्थ-सिद्धि में इतना लीन हो जाता है कि वह इन जीव धारियों के साथ खिलवाड़ करता रहता है। अन्धाधुन्ध वनों की कटानें होती जा रही हैं। इसी कारण वन-क्षेत्र दिन प्रति दिन कम होते जा रहे हैं। अपने देश में जहाँ कुल भू-भाग का वनों के अन्तर्गत 33% क्षेत्र होना चाहिए, वहाँ केवल 10% भाग में ही स्वस्थ वन हैं। वनों की कटान से ही पशु-पक्षियों व पेड़-पौधों की विभिन्न जातियां लुप्त होती जा रही हैं, भू-क्षरण होते जा रहे हैं, भूमि बंजर होती जा रही है, जलवायु में परिवर्तन आता जा रहा है और धरती गर्म होती जा रही है। इनके अतिरिक्त दुर्लभ फलों की जातियों के बागों को कटवा कर आवासीय कॉलोनियाँ बनाई जा रही हैं। जनसंख्या वेग के साथ बढ़ती जा रही है। इसी के साथ तम्बाकू चबाने और बीड़ी-सिगरेट पीने वालों की संख्या भी तेज़ी के साथ बढ़ रही है। पृथ्वी पर असंख्य वाहनों का भार तथा कारखानों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती ही चली जा रही है।

उपर्युक्त समस्त कृतियाँ पारिस्थितिकीय संतुलन को असन्तुलित करती जा रही हैं, जो पर्यावरण में प्रदूषण को जन्म दे रही हैं। वाहनों, कारखानों और बीड़ी-सिगरेट के धुंओं और वायुमण्डल की कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, निकोटीन, टार, सीसा, मीथेन व कार्बन डाइऑक्साइड जैसी विषैली व जानलेवा गैसें व पदार्थों के

कण मनुष्य जबरन अपनी सांस के साथ खींचता चला जा रहा है। इस प्रकार मनुष्य कैन्सर, ब्रांकाइटिस व हृदय सम्बन्धी जानलेवा रोगों का शिकार होता चला जा रहा है।

अत: जैव विविधता का संरक्षण करना प्रत्येक दशा में अनिवार्य हो जाता है। वृक्ष व पेड़ पौधे इन जीवधारियों के मुख्य घटक हैं, जो पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में विशेष भूमिका अदा करते हैं। इनमें बहुत सी जड़ी-बूटियाँ व पेड़-पौधे अन्य उपयोगिताओं के साथ-साथ औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। इन सब का संरक्षण करने के पूर्व इनकी उपयोगिताओं की विस्तृत जानकारियों का रहना भी परम आवश्यक है।

(1) **सर्पगंधा** (*Rauvolfia serpentina*- **Apocynaceae**) : सर्पगंधा एक बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। हिमालय के निचले क्षेत्रों, नेपाल, भूटान, सिक्किम, असम, पूर्वी व पश्चिमी घाट तथा अण्डमान में इसके पौधे बहुतायत से उगते हुए पाए जाते हैं। सर्पगंधा की जड़ें सुखा कर औषधि के रूप में प्रयोग की जाती हैं। यह औषधि मिरगी, पागलपन, अनिद्रा तथा मानसिक रोगों में उपयोगी होती है। इस पौधे की जड़ों का सत आंतों के रोग, हैजा व ज्वर में लाभकर होता है। बच्चा पैदा होने की स्थिति में सर्पगंधा प्रयोग करने से गर्भवती महिलाओं के गर्भाशय की सिकुड़ने कम हो जाती हैं, जिससे आराम मिलता है। यह एक दर्द निवारक औषधि भी है।

2. **घीकार** (*Aloe barbadensis/A.vera* **Liliaceae**) घीकार एक झाड़ीदार पौधा है जिसमें लम्बी-लम्बी नोकीली और गूदेदार पत्तियाँ होती हैं। इनकी गूदेदार पत्तियों में एक लिबलिबा पदार्थ होता है जो पत्तियों के फाड़ने पर निकलता है। इसे शरीर के जले भाग पर और सिर दर्द में माथे पर रखने से आराम मिलता है। यह पौधा लावणीय भूमि में तथा समुद्र तट पर सफलता पूर्वक वृद्धि करता है तथा भूमिसंरक्षण में भी सहायक होता है। यह लिबलिबा पदार्थ दस्तावर भी होता है।

3. **मदार या आक** (*Calotropis gigantea* **Asclepiadaceae**) —यह एक बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। कभी-कभी यह झाड़ीनुमा भी हो जाता है। यह पूरे भारतवर्ष में उगता है। इसकी जड़ की छाल पेचिश, कफ़ निकालने के लिए, उल्टी कराने तथा चर्म रोग में प्रयोग की जाती है। आक की पत्तियों का अर्क ज्वर-नाशक होता है। इसके फूलों का चूर्ण खांसी, जुकाम और दमा के रोगों में प्रयोग करते हैं। मदार के तने और शाखों की छाल के रेशे मछली फंसाने वाले जाल बनाने तथा रस्सी बटने के लिए प्रयोग में लाते हैं। मदार के फल में निकले हुए रूई के समान रेशे तकिया तथा गद्दे भरने के काम आते हैं। कहते हैं कि मदार का दूध यदि पैर के अंगूठे के नाखून पर लगा दिया जाय तो दुखती आंख को आराम मिलता है।

आक वंश का ही एक अन्य जाति का पौधों 'सफेद आक' (*Calotropis procera*) भी होता है, जो इसी प्रकार औषधीय महत्व का होता है।

4. **गुर्च** (*Tinospora tomentosa, T. sinensis, T. malabarica*-Menispermaceae) यह एक लता हो ती है जिसके पौधे अन्डमान और भारत के उष्ण कटिबंधीय इलाकों में उगते हुए पाए जाते हैं। इसकी लता की जड़े ज्वर में तथा डंठलें और पत्तियाँ गठिया, घावों और बवासीर के विनारण में सहायक होती हैं।

5. **आइशर मूल** (*Aristolochia indica* **Aristolochiaceae**)—यह पौधा एक लता के रूप में पर्वतों के निचले और मैदानी भागों में भी पाया जाता है। इसकी डंठलें सुखा कर औषधि तैयार करते हैं, जो ज्वर, अजीर्ण तथा बच्चे के उदर रोगों में उपयोगी होती है।

6. **मुलैठी** (*Glycyrrhiza glabra*- **Fabaceae**) एक बहुवर्षीय शाकीय पौधा, जो जम्मू, कश्मीर, दक्षिणी भारत और पंजाब में उगता हुआ पाया जाता है। इसकी जड़ का सत पुष्ई व खांसी और गले की खराश की तथा रेचक औषधियों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। उदर घावों में भी मुलेठी बड़ी उपयोगी होती है। इसके सत का प्रयोग टॉफी, चाकलेट व कैन्डी निर्माण करने में भी किया जाता है।

7. **पीपर या पीपलामूल** (*Piper lengum*- **Piperaceae**) —पीपर के पौधे लता के रूप में वृद्धि करते

हैं, जो तमिलनाडु, कर्नाटक और पश्चिमी घाटों में अधिक पाए जाते हैं। इसके छोटे-छोटे फल खाँसी व ज्वर में उपयोगी होते हैं। ये सुंगधित मसाले के रूप में भी प्रयोग किये जाते हैं।

8. **बनफशा** (*Viola odorata*-**Violaceae**)— बनफशा आमतौर से गुलबनफशा के नाम से जाना जाता है। यह एक शाकीय पौधा है जो कमीर में उगता है। इसके फूल को पित्त तथा फेफड़े की शिकायतों में प्रयोग करने पर आराम मिलता है। यह खून भी साफ करता है। ताजे पुष्पित पौधे होमिओपैथी में आँख, कान और चर्म रोगों की औषधियों का निर्माण करने में प्रयोग किए जाते हैं। अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियाँ बनाने में भी बनफशे का महत्वपूर्ण योगदान है बनफशे के ही वंश की एक और जाति है (*Viola patrini*), जिसके पौधे हिमालय पर्वत तथा पूर्वी व पश्चिमी घटों पर उगते हुए पाए जाते हैं। इस पौधे तथा इसके फूल का प्रयोग फोड़े, नासूर तथा खांसी व जुकाम के उपचार में किया जाता है। चीन में इस शाकीय पौधे का प्रयोग कैन्सर के उपचार में किया जाता है।

9. **कपूर** (*Cinnamomum comphora*-**Lauraceae**) — कपूर के वृक्ष की लकड़ी से तेल निकाला जाता है। इसी तेल से कपूर निर्माण किया जाता है। कपूर शरीर के सूजन तथा गठिया व मोच आदि के दर्द को दूर करने में सहायक होता है। यह संग्रहड़ी (डायरिया), वमन और हृदय सम्बन्धी रोगों में भी उपयोगी रहता है। कपूर के वंश की ही अन्य कई एक जातियाँ भी हैं जिनके वृक्ष बड़े उपयोगी होते हैं और हिमालय पर्वत, सिक्किम, भूटान, असम, मणिपुर, मेघालय व अन्डमान में उगते हुए पाए जाते हैं।

कपूर बनाने के लिए एक शाकीय पौधा भी होता है जिसे कपूर-तुलसी (*Ocimum kilimandscharicum* **Labiatae/Lamiaceae**) कहते हैं। इसकी पत्तियों से कपूर निकालते हैं। कपूर-तुलसी के पौधे केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक व पश्चिमी घाट तथा देहरादून में मिलते हैं।

10. **दालचीनी** (*Cinnamomum zeylanicum*-**Lauraceae**)— दालचीनी के वृक्ष भारत के पश्चिमी घाटों के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों व केरल में अधिक पाए जाते हैं। दालचीनी वास्तव में इसके वृक्ष की सुखाई हुई छाल होती है, जो बड़ी ही सुगंधित होती है। यह गर्म मसाले का एक महत्वपूर्ण घटक है। चिकित्सीय दृष्टिकोण से दालचीनी का उपयोग वमन एवं मतली को रोकने में किया जाता है। यह उत्तेजक, वातनाशक और मल बांधने वाला भी होता है। इसकी पत्तियाँ भी सुंगधित होती हैं। दालचीनी के तेल से सुगंध तैयार करते हैं।

11. **तेजापत** (*Cinnamonnm tamala*-**Lauraceae**)— तेजपात का वृक्ष छोटा होता है, जो हिमालय पर्वत के निचले भागों तथा खासी और जैन्तिया की पहाड़ियों पर उगते हैं। इसकी पत्तियाँ सुगंधित होती हैं, जिन्हें सुखा कर सब्ज़ी व अन्य भोज्य सामग्रियों को महकाने में प्रयोग करते हैं। तेजपात वातनाशक भी होता है। यह संग्रहणी के उपचार में भी प्रयोग किया जाता है।

12. **काली मिर्च या गोल मिर्च** (*Piper nigrum*-**Piperaceae**) काली मिर्च की लताएं पश्चिमी घाट, महाराष्ट्र, असम, केरल और कर्नाटक में उगाई जाती हैं। यह एक महत्वपूर्ण उपयोगी गर्म मसाला है। यह वातनाशक, उत्तेजक और उदर-पीड़ा नाशक होता है।

13. **लौंग**- (*Syzigium aromaticum*- **Myrtaceae**) लौंग जामुन और अमरूद के कुल का एक उपयोगी वृक्ष है, जो केरल और तमिलनाडु में अधिकतर उगता है। इसके फूल की कलियाँ सुखा कर लौंग बनाई जाती है जो गर्म मसाले का एक महत्वपूर्ण भाग है। लौंग उत्तेजक और वातनाशक होता है। वायु से पेट फूल जाने में भी लौंग बड़ी उपयोगी रहती है। लौंग का उपयोग मिठाइयों, अन्य खाद्य सामग्रियों तथा अचार आदि को भी सुगंधित व स्वादिष्ट करने की दृष्टि से किया जाता है।

14. **हींग**- (*Ferula assafoetida*-**Umbelliferae Apiaceae**) हींग एक बहुवर्षीय शाकीय पौधा है जो कश्मीर और पंजाब में पाया जाता है। इसकी जड़ों से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो हींग कहलाता है। हींग भोज्य पदार्थों को सुगन्धित करने में प्रयोग किया जाता है। हींग में अनेक

औषधीय गुण होते हैं। दमा, कुकरखांसी,पेट फूलने तथा उदर पीड़ा के उपचार में हींग का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। बच्चों के लिए निमोनिया और ब्रांकाइटिस के रोगों में हींग बड़ा ही उपयोगी रहता है। यह शरीर की मांसपेशियों की ऐंठन व जकड़न दूर करने वाला तथा नसों की उत्तेजना में भी उपयोगी उपचारक है। हींग कफ-नाशक भी होता है।

हींग की ही एक और जाति होती है (*Narthrex assafoetida /Ferula narthrex*) जो इसी प्रकार उपयोगी होती है तथा अजीर्ण और हैजा में भी उपयोगी होती है।

15. सतावर या सतमूली (*Asparagus racemosus*-**Liliaceae**) एक आरोही व बहुवर्षीय पौधा। यह देश के समस्त उष्ण तथा उपोष्ण भागों में उगता है। सतावर की मांसल जड़ें संग्रहणी के उपचार तथा मूत्र त्यागने की शक्ति बढ़ाने में उपयोगी होती हैं। यह कामोत्तेजक भी होती है। पशुओं के रोगों में भी सतावर की जड़े आराम पहुँचाती हैं।

16. सफेद मूसली (*Asparagus adscendens*-**Liliaceae**)— इसका पौधा पश्चिमी हिमालय और पंजाब में पाया जाता है। इसकी जड़ें संग्रहणी और पेचिश के उपचार में प्रयोग होती हैं।

17. अजवाइन (*Carum copticum, Trachyspermum copticum, T. ammi*- **Umbelliferae/ Apiaceae**) अजवाइन एक शाकीय वार्षिक पौधा है जिसमें अत्यधिक औषधीय गुण होते हैं। इसकी पैदावार उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश में खूब होती है। अजवाइन के दानों का सत्त गले की खराश और घाव तथा ब्रांकाइटिस के उपचार में बड़ी उपयोगी होती है। अजवाइन वातनाशक होता है। इसके प्रयोग से उदर पीड़ा में आराम मिलता है तथा पेट के केंचुए भी निकल जाते हैं। अजवाइन से पुष्ट्ई बनाते हैं। इसे खांसी और दमा की औषधियों में भी मिलाते हैं। अजवाइन फफूंदनाशक भी होता है। इसका तेल वातनाशक, सड़न रोकने वाला और कीटाणुनाशक होता है। अजवाइन एक उत्तम मसाला भी है।

18. स्याह जीरा या शिया जीरा (*Carum carvi*-**Umbelliferae/Apiaceae**) एक शाकीय पौदा है जो उत्तरी हिमालय में उगता हुआ पाया जाता है। यह गढ़वाल, कश्मीर, कुमाऊं, बंगाल, आंध्रप्रदेश, बिहार व उड़ीसा में भी पैदा होता है। मसाले के अतिरिक्त इसके दाने उदर पीड़ा व मतली शांत करने में प्रयोग होते हैं। यह वातनाशक भी होता है।

19. सौफ -(*Foeniculum vulgare F.officinale Anethumfoemiculum*-**Umbelliferae/Apiaceae**)— सौंफ के दाने पाचक होते हैं। भोजन के बाद सौंफ के दाने चबाना हितकर होता है। इसके दाने बारीक पीस कर दूध के साथ सेवन करने से महिलाओं का दूध बढ़ता है। इसका प्रभाव ठंडा होता है। अतः इसे ठंडई बनाने में प्रयोग करते हैं। यह वातनाशक होता है। सौंफ का तेल विभिन्न औषधियाँ बनाने में प्रयोग करते हैं। सौफ की पत्तियाँ शरीर की ऐंठन व मरोड़ तथा गठिया व उदर रोगों की उपचारक होती हैं। यह एक बढ़िया मसाला भी है।

20. जायफल, जावित्री (*Myristica fragrans* **Myristicaceae**)— जायफल का वृक्ष नीलगिरि की पहाड़ियों, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में उगते हुए पाए जाते हैं। जायफल वातनाशक मल बांधने वाला और कामोत्तेजक होता है। मलेरिया, पेचिश, उदर पीड़ा व गठिया में तथा मतली व उल्टी आने पर जायफल एक उत्तम औषधि है। जायफल की पत्तियों से निकाला गया तेल खरपतवारों के लिए हानिकारक होता है। इसके फल के भीतर से पपड़ीनुमा पदार्थ निकलता है जिसे जावित्री कहते हैं। जायफल और जावित्री महत्वपूर्ण सुंगधित मसाले भी हैं। इसका उपयोग खाद्य सामग्रियों को सुगंधित करने में भी किया जाता है।

21. इसफगोल-(*Plantago ovata*- **Plantaginaceae**) इसफगोल एकवर्षीय शाकीय पौधा है जिसकी पैदावार गुजरात, महाराष्ट्र राजस्थान और पंजाब में ली जाती है। इसके दाने और भूसी पेचिश तथा कब्ज़ के उपचार में पूर्ण औषधि का कार्य करते हैं। पेशाब उतारने के लिए भी यह एक उपयोगी औषधि है।

22. गूगुल या गूगुल धूप-(*Ailanthus triphysa, A. malabarica*- **Simaroubaceae**) गूगुल के वृक्ष पश्चिमी घाट और श्रीलंका में पाए जाते हैं। वृक्ष की छाल से एक किस्म का गोंद निकलता है जो गूगुल कहलाता है। कक्षों में तथा धार्मिक व अन्य अवसरों पर वातावरण को सुगंधित व शुद्ध करने के लिए गूगुल सुलगाए जाते हैं। गूगुल पेचिश रोकने में सहायक होता है। इसके वृक्ष की लकड़ी से दियासलाई की तीलियाँ और पैकिंग के डिब्बे बनाते हैं।

23. पोदीना (*Mentha arvensis*-**Labiatae/Lamiceae**) बहुवर्षीय शाकीय सुंगधित पौधा पश्चिमी हिमालय, गढ़वाल कुमाऊ, कश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश व अन्य स्थानों पर भी पैदा होता है। पोदीने का तेल औषधियां निर्माण करने में प्रयोग करते हैं। यह वातनाशक और ठंडक पहुंचाने वाला होता है।

24. पिपरमेन्ट या विलायती पोदीना-(*Mentha piperita*- **Labiatae/Lamiaceae**) सुंगधित पत्तियों वाला एक शाकीय पौधा है। इसका उत्पादन पंजाब, कश्मीर उत्तर-प्रदेश और महाराष्ट्र में होता है। पत्तियों से तेल निकाला जाता है, जो वातनाशक होता है। यह मतली, उल्टी व ज्वर के उपचार में भी प्रयोग किया जाता है। इसे मलहम में मिला कर सिर दर्द, गठिया के दर्द और जुकाम के उपचार में प्रयोग करते हैं। पिपरमेन्ट का तेल मिला कर जुकाम की गोलियां और सूंघनी भी बनाते हैं।

25. तुलसी(*Ocimum sanctum, O.basilieum*- **Labiatae/Lamiaceae**) एक बहुवर्षीय शाकीय/ झाड़ीनुमा पौधा है। इसकी पत्तियों की सुंगध वायुमण्डल को स्वच्छ रखती है। इसमें मच्छरों व अन्य विषैले कीट नष्ट करने की शक्ति होती है। तुलसी की पत्तियों व बीज में अनेक औषधीय गुण होते हैं। साधारण तुलसी के अतिरिक्त तुलसी की अन्य कई जातियाँ होती है, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

1. श्यामा तुलसी या काली तुलसी
(*Ocimum americanum, O. canum*)

2. रामा तुलसी (*O. gratissimum*)

3. वन तुलसी (*O. basilicum*), इनमें श्यामा तुलसी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

26. हल्दी(*Curcuma longa*- **Zingiberaceae**) एक मौसमी शाकीय पौधा है। इसकी कंदें महत्वपूर्ण मसाले के रूप में प्रयोग होती हैं। हल्दी की कंद दर्दनिवारक होती है। इसके अतिरिक्त हल्दी में अनेक औषधीय गुण होते हैं।

27. आमा हल्दी(*Curcuma amada*- **Zingiberaceae**)— यह भी हल्दी के ही कुल का औषधीय पौधा है।

28. कूचर अथवा जंगली हल्दी-(*Curcuma zedvaria, C. zerumbet, C. aromatica*-**Zingiberaceae**) हल्दी के ही परिवार का औषधीय शाकीय पौधा है। इसकी कंदों का प्रभाव ठंडा होता है।

29. अदरक(*Zingber officinale*-**Zingiberaceae**) इसकी कंदें खांसी, जुकाम में बड़ी उपयोगी होती हैं।

30. जीरा(*Cuminum cyminum*-**Umbelliferae**) एक महत्वपूर्ण मसाला है। यह पाचक होता है। इसका पौधा शाकीय होता है तथा इसकी फ़सल रबी में ली जाती है। मेहसना (गुजरात) में जीरे की पैदावर अधिक होती है।

31. मेथी(*Trigonella faenumgraecum*- **Papilionaceae**) रबी का महत्वपूर्ण मसाला है। इसका पौधा शाकीय होता है। मेथी के दाने औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं।

32. प्याज (*Alliamcepa*-**Liliaceae/Alliaceae**) की कंदें सब्ज़ी व मसाला के रूप में प्रयोग होने के अतिरिक्त लू से बचाव, पुल्टिस बांधने तथा हैजा के रोंग में विशेष रूप से उपयोगी रहती हैं।

33. लहसुन(*Allium sativum*-**Liliaceae**)— यह भी प्याज़ के ही परिवार का महत्वपूर्ण मसाला है, जिसकी फ़सल रबी में ली जाती है। वायु विकार में लहसुन के जवे ग्रहण करना अत्यन्त उपयोगी रहता है।

34. बड़ी इलायची(*Amomum aromaticum, A. subulatum*-**Zingiberaceae**)— इसकी पत्तियाँ पड़ी सुंगधित व शोभाकार होती हैं। भोज्य सामग्रियों को सुगंधित करने तथा गर्म मसाला में बड़ी इलायची का विशेष योगदान रहता है। इसके दानों से सुगंधित तेल निकालते है, जो औषधीय गुणों से भरपूर होता है।

35. छोटी इलायची-(*Elettaria cardamomum Cardrmomum officinale*-**Zingiberaeeae**) छोटी इलायची भी बड़ी इलायची के ही परिवार का सदस्य है।

36. हाड़जोड़(*Vitis quadrangularis, Cissus quadrangularis*- **Vitaceae**) एक बहुवर्षीय लता है। इसकी मांसल डंठलों को पीसकर चोट लगने के स्थान पर लगाने से आराम मिलता है। इसकी मांसल डंठलें चार कोने वाली तथा बड़ी शोभाकार होती हैं।

37. चिरायता (*Enicostema hyssopifollium, Genetiana verticaillata* -**Genetianaceae**) एक औषधीय पौधा है। इसका काढ़ा, यद्यपि अत्यंत कड़वा होता है, ज्वर में बड़ा उपयोगी रहता है।

38. तुखमलंगा- इसका पौधा भी उपयोगी होता है। विशेष रूप से इसके बीज फोड़े के उपचार में प्रयोग में लाए जाते हैं।

39. चमसुर-(*Lepidium sativum*-**Cruciferae/ Brassicaceae**) यह एक मौसमी शाकीय पौधा है। इसकी पत्तिया और लसीले बीज औषधीय गुणों वाले होते हैं।

40. गेंदा-(*Tagetes erecta, T. patula*- **Compasitae/ Asteraceae**) इसके पुष्प व इसकी पत्तियाँ सुंगधित होती है। इसका प्रयोग जुकाम, गठिया, ब्रांकाइटिस व कान के दर्द में होता है। पुष्पों से सुंगधियां तैयार की जाती हैं।

41. अडूस-(*Justicia adhatooda/Adhatoda vassica* **Acanthaceae**) झाड़ीनुमा बहुवर्षीय औषधीय पौधा है। इसी परिवार का नीली नरगंडी (*Justicia gendarussa/ Gendarussa vulgaris*) भी शाकीय बहुवर्षीय पौधा है। पौधे दन्त रोग, खांसी व कफ़ तथा ज्वरनाशक होते हैं। गठिया में भी इन्हें औषधि के रूप में प्रयोग करते हैं। अडूस की पत्तियों में केला और आम पकाते हैं।

42. पथरचटा-(*Bryophyllum indica*- **Crassulaceae**) यह एक शकीय बहुवर्षीय पौधा है। इसकी मांसल पत्तियाँ चोट लगने तथा घाव व फोड़े पर बांधने से राहत मिलती है।

43. नीम (*Melia azadirachta/Azadirachta indica*- **Meliaceae**)— इसका वृक्ष अत्यन्त छायादार व शीतल होता है। पर्यावरण को स्वच्छ रखने में नीम के वृक्ष का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। नीम की पत्तियाँ, छाल, बीज व नीम का तेल-ये सभी अनेक औषधियों एवं कीटनाशकों के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। नीम की खली एक उत्तम जैविक खाद है। नीम की खली का प्रयोग करने से फसल को पौष्टिक तत्व प्रदान करने के अतिरिक्त यह दीमक के प्रकोप से भी छुटकारा दिलवाता है। नीम के पुष्प भी सुगंधित होते हैं।

44. अंजीर(*Ficus carica*- **Moraceae**)— इसका दूध शरीर पर निकले हुए मसा के उपचार में उपयोगी रहता है। यह पौष्टिक भी होता है। इसे सुखा कर भी रखते हैं, जिसमें अनेक औषधीय गुण होते हैं।

45. गूलर(*Ficus glomerata*-**Moraeeae**) इसका सेवन करने से आंखों की ज्योति बनी रहती है। इसका वृक्ष छायादार होता है। गूलर की पत्तियाँ पशुओं के लिए स्वादिष्ट चारा होती हैं।

46. सहजन, सहजना, मुनगा(*Moringa oleifera, M. pterygosperma, Guilandina moringa*- **Moringaceae**) इसकी अनन्य औषधीय व अन्य उपयोगिताओं के अतिरिक्त इसके बीज पेयजल शुद्ध करने में उपयोगी रहते हैं।

47. लसोड़ा गोंडी-(*Cordia dichotoma, C. obliqua, C. tomentosa, C. grandis, C. wallichii, C. myxa*-**Ehretiaceae**)—इसकी पत्तियाँ खांसी , जुकाम के निवारण में उपयोगी होती हैं। लसोड़े की जड़ और इसके फल

कफ़नाशक और मूत्र प्रणाली को ठीक रखने में सहायक होते हैं।

48. जामुन(*Syzygium cumini, Myrtus cumini, Eugenia jambolana*-**Myrtaceae**)— इसका बीज मधुमेह का निवारण करने में उपयोगी रहता है। इसके बीज व छाल का काढ़ा पेचिश व डायरिया में तथा जामुन का सिरका उदर रोगों में रामबाण का कार्य करता है।

49. बेल, बिल्व, श्रीफल(*Aegle marmelos* - **Rutaceae**) इसका फल ताजा खाने तथा शर्बत व मुरब्बा निर्माण में प्रयोग होता है। यह डायरिया और पुरानी पेचिश में अत्यन्त उपयोगी रहता है। बेल का फल एक उत्तम रेचक है।

50. महुवा(*Madhuca indica, M. latifolia, Bassia latifolia*-**Sapotaceae**)—इसके फल खांसी और कंठ के सूजन में प्रयोग किए जाते हैं। इसकी छाल का काढ़ा मसूढ़ों से खून निकलने तथा नासूर जैसे रोगों की चिकित्सा में उपयोगी रहता है।

51. आँवला(*Emblica officinalis, Phyllanthus emblica*- **Euphorbiaceae**)—यह एक पौष्टिक फल है। ताज़ा आँवला रेचक होता है। यह मूत्र-प्रणाली को भी ठीक रखता है। जिगर के लिए आँवला एक उत्तम पुष्टई है। सुखाए आंवले भी डायरिया और पेचिश में उपयोगी रहते हैं। यह विटामिन-सी की उपलब्धता में अत्यंत प्रचुर रहता है। (600 मिलीग्राम विटामिन-सी प्रति 100ग्राम गूदा)। विख्यात औषधि एवं पुष्टई च्यवनप्राश का निर्माण आंवले से ही किया जाता है। त्रिफला के निर्माण में हरड़ व बेहड़ा के अतिरिक्त आँवले की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ताज़ा आवंला खाने से दांत मज़बूत रहते हैं।

52. अमरूद(*Psidium guava*-**Myrtaceae**)— यह स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल होने के अतिरिक्त एक उत्तम औषधि भी है। अनेक रोगों, विशेषत: कब्ज़ के निवारण में अमरूद अत्यन्त सहायक रहता है। विटामिन-सी की प्रचुरता में आंवला के बाद अमरूद की ही गणना की जाती है।

53. पपीता(*Carica papaya*-**Caricaceae**)— पेट साफ़ रखने की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण फल है। विटामिन-ए में प्रचुर होने के कारण इसके सेवन में रतौधी एवं अंधापन पास नहीं आने पाता। कच्चा पपीता पीलिया रोग में बड़ा ही लाभकारी सिद्ध होता है।

54. केला(*Musa sapietum, M. poradisiaca*-**Musaceae**)— बच्चों के लिए यह एक उत्तम पुष्टई है। यह दस्त, पेचिश, डायरिया, गठिया एवं उदर रोगों में अत्यंत उपयोगी रहता है।

55. आम(*Mangifera indica*- **Anacardiaceae**)— इसका फल कम औषधीय नहीं होता। लू लगने पर या लू से बचाव के लिए आम का पना ही औषधि का कार्य करता है। विटामिन-ए की प्रचुरता में भी पका आम अग्रणी है। आम के सेवन से हृदय दौर्बल्य, गठिया के दर्द, निद्रा में भ्रमण करना, पेट में कृमि तथा अन्य उदर रोगों में राहत मिलती है। आम के वृक्ष की घनी छाया में पथिक विश्राम करते हैं।

56. कागज़ी नीबू(*Citrus aurantifolia*-**Rutaceae**)— इसका रस स्वयं एक औषधि है। इसके छिलके से निकाले गए तेल से भी औषधि निर्माण करते हैं। केवल नमक के साथ बनाया गया कागज़ी नीबू का अचार स्वस्थ व्यक्तियों के अतिरिक्त रोगियों के लिये भी उपयोगी रहता है। इसके वृक्ष की पत्तियाँ और पुष्प दोनों ही सुगंधित होती हैं तथा फरवरी-मार्च में फूल खिलने पर आस-पास का वातावरण गमक उठता है।

57. अनार(*Punica granatum*-**Punicaceae**)— इसका छिलका डायरिया और पेचिश के उपचार में सहायक रहता है। अनार तथा अंगूर (Vitisinifera-**Vitaceae**) शक्ति एवं ताज़गी प्रदान करते हैं।

■ ■ ■

जनसंख्या वृद्धि ने बिगाड़ दिए सारे समीकरण

❑ हरिश्चंद्र व्यास

डी-753 , सरस्वती विहार, दिल्ली- 1100 34

सन् 1991 के जनसंख्या आकलन के अनुसार भारत की आबादी 84 करोड़ 36 लाख 30 हज़ार 861 मानी गई थी।

सन् 1996 में यह स्थिति काफी बदल चुकी थी। जिस देश में प्रति मिनट 49 बच्चे आबादी में जुड़ते रहते हों वहाँ 90 करोड़ की संख्या पार हो जाना आश्चर्य जनक नहीं। दिसंबर 1992 में भारत की अनुमानित जनसंख्या 87 करोड़ 36 लाख 62 हज़ार 705 हो चुकी थी।

भारत में एक कैलेंडर के बदलने का अर्थ होता है एक आस्ट्रोलिया के बराबर जनसंख्या का आबादी में जुड़ जाना। दस वर्ष में हम समूचे यूरोप के बराबर आबादी बढ़ा लेते हैं। परिवार कल्याण अभियान के सारे प्रयत्नों के बावजूद जन्म दर की रफ्तार इतनी तेज है कि चीन भी शायद ज्यादा समय तक हमसे आगे नहीं रह सके। यदि जनसंख्या वृद्धि की हमारी रफ्तार यही बनी रही तो शताब्दी के अंत तक हम एक सौ करोड़ का आंकड़ा पार कर जाएंगे और सन् 2040 में हमारी जनसंख्या होगी लगभग दो अरब।

बिगड़ते अनुपात की सचाई

जनसंख्या की आदर्श स्थिति वह होती है जहाँ नर और नारी का अनुपात बराबर हो। भारत में पुरुषों और महिलाओं का पारस्परिक अनुपात निरंतर बिगड़ रहा है। 1971 में यह एक हजार पुरुषों के पीछे 972 स्त्रियाँ थी, जबकि 1981 में घटकर 934 हो गया। 1991 में यह और अधिक घटकर मात्र 929 रह गया है। जाहिर है कि महिलाओं की घटती जनसंख्या के पीछे कुपोषण, काम की कठोर स्थितियाँ, थोपा गया मातृत्व, स्वास्थ्य की प्रतिकूल स्थितियाँ और बढ़ती मृत्युदर मुख्य कारण हैं।

उत्तर प्रदेश भारत का सबसे बड़ा राज्य है। विश्व के छः देशों के बाद जनसंख्या में उत्तर प्रदेश का स्थान आता है। यानि आबादी में केवल छः देश ही उत्तर प्रदेश से बड़े हैं। ये देश हैं चीन, ब्राजील, इंडोनेशिया, जापान, अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ। जिस देश का एक राज्य ही बाकी विश्व के 150 से अधिक देशों से भी ज्यादा आबादी वाला हो, उस देश की बढ़ती जनसंख्या का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पिछले दशक के कुछ आंकड़े विस्मय में डाल देने वाले हैं। प्राय: माना जाता है कि गांव सिकुड़ रहे हैं और शहर फैल रहे हैं। अर्थात् गाँवों के लोग काम की खोज में शहरों में आ रहे हैं और सन् 1981 से 1991 के बीच शहरी जनसंख्या वृद्धि का लगभग 10 प्रतिशत कम हो जाना आश्चर्यजनक है। इसका क्या आशय हो सकता है? यही न कि गांव से शहरों की ओर पलायन पूर्वापेक्षा कम हो रहा है। 1971 से

1981 के बीच शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर 46.14 थी जबकि 1981-91 के मध्य यह घटकर 36.19 रह गई। किंतु इस बीच शहरों और कस्बों की संख्या बढ़ती रही। 1971 में भारत में कुल 3126 शहर और कस्बे थे। 1981 में इनकी संख्या 4029 तथा 1991 में 4689 हो गई। इस प्रकार देश की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा (25.72 प्रतिशत) शहरों में रह रहा है।

मोटे तौर पर गाँवों का संकुचन हो रहा है। इस संकुचन की रफ्तार भले ही थोड़ी कम हुई हो पर शहरों में गंदी बस्तियों और झुग्गी-झोपड़ियों का उदय इसी की देन है। खुली जगहों पर लगातार अतिक्रमण होते रहने और गंदगी के फैलते रहने से शहर बीमार होते जा रहे हैं। प्राकृतिक संपदा का बराबर हनन होने से पर्यावरण का विघटन हो रहा है।

1981 से 1991 के दशक में शहरी वृद्धि दर भले ही आश्वस्त करने वाली हो पर हम यह नहीं भूल सकते कि गत 40 वर्षों में शहरी आबादी 5 करोड़ 20 लाख से बढ़कर 21 करोड़ 72 लाख हो चुकी है। अब शहरी और ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात क्रमश: 25.7 तथा 74.3 है जबकि कुछ वर्षों से पहले यह 20 तथा 80 था।

गांवों से शहरों की ओर पलायन तो देश का भीतरी मामला है, गरीबी, शासकीय अत्याचार तथा मजदूरी के अवसरों के कारण एक देश के नागरिक बहुत बड़ी संख्या में किसी अन्य देश में जाने और रहने के लिए मजबूर होते रहते हैं। इसके कई प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। बंगलादेश के निवासियों का भारत में, मैक्सिकन लोगों का अमेरिका में, मोरक्कोवासियों का फ्रांस में तथा तमिलों का श्रीलंका में देशांतरण आज की ज्वलंत समस्या बन चुका है। इससे देश की जनसंख्या का गड़बड़ा जाना स्वाभाविक है।

भारत का आंतरिक देशांतरण भी समस्यामूलक ही है। उत्तर-प्रदेश, बिहार, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश व मध्य प्रदेश भेजने वाले तथा महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल उड़ीसा, पंजाब, हरियाणा व कर्नाटक ग्रहण करने वाले राज्य हैं।

जनसंख्या बढ़ रही है। 1971 में 54 करोड़ 82 लाख, 1981 में 68 करोड़ 25 लाख तथा 1991 में 84 करोड़ 39 लाख की जनसख्या यही बताती है कि इस बढ़ोतरी के दूरगामी परिणाम होंगे। जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने के उपायों के चलते जहाँ 1971-81 में वृद्धि दर 2.22 थी वह 1991 में घटकर 2.11 रह गई। लेकिन यह कमी इतनी थोड़ी है कि इसका कोई खास महत्व नहीं है। अपेक्षित तो यह था कि 1985 तक जनसंख्या वृद्धि दर 1.90 तथा 1990 तक 1.66 हो जाए पर 1990 के अंत में भी यह 2.11 ही बनी रही।

बढ़ती जनसंख्या का पहला दुष्परिणाम प्राकृतिक परिवेश को भुगतना पड़ता है। स्वतंत्रता के पश्चात् वनों के क्षेत्रफल में जिस तेजी से कमी आती जा रही है वह हम सबके लिए चिंता का विषय है। गत 30 वर्षों से कृषि योग्य बंजर भूमि तथा विविध वृक्ष प्रजातियों एवं बागों के लिए सुरक्षित भूमि में 230 हेक्टेयर की कमी आई है। ये दोनों क्षेत्र प्राय: ग्रामीण वन थे। इस तरह आरक्षित वन क्षेत्र वन विहीन होते चले गये और 230 हेक्टेयर ग्रामीण वनों का विनाश पूरे देश के पर्यावरण के लिए एक गंभीर चुनौती बन गया है। यह सब क्यों हुआ? इसका प्रमुख कारण बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए कृषि भूमि का विस्तार करना था। गत तीन दशकों में कृषि भूमि में 250 लाख हेक्टेयर की वृद्धि हुई। 1950 में हमारे पास। 180 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि उपलब्ध थी जो आज बढ़कर 1430 लाख हेक्टेयर हो चुकी है। यह वृद्धि ग्रामीण वनों की कीमत पर हुई है। उत्तर प्रदेश के हिमालय पहाड़ी क्षेत्र का 6 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र आज वनविहीन है। इस त्रासदी के बाद भी यदि हमारी आंखे नहीं खुलीं तो इसका अर्थ होगा कि हम अपने भविष्य के प्रति नितांत उदासीन हैं। यह स्थिति केवल भारत की ही हो ऐसी बात नहीं है। समूचे संसार में वनों का तेजी से विनाश हो रहा है। औद्योगिक सभ्यता और आर्थिक विकास की चपेट में उष्णकटिबंधीय वनों की तबाही आज विश्वव्यापी चिंता का विषय है। योरोप में रोमन साम्राज्य के समय के 70 प्रतिशत वन आज लुप्त हो चुके हैं। अमेरिका में सत्रहवीं शताब्दी में जहाँ 32 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन थे वे आज दो लाख बीस हज़ार वर्ग किलोमीटर में सिमट चुके हैं। वाहनों और कारखानों के धुँए तथा तेजाबी वर्षा आदि ने मिलकर यूरोप के 25 देशों के 70 हज़ार वर्ग किलोमीटर वनों का सफ़ाया किया है। उष्णकटिबंधीय सघन वन प्रति

वर्ष एक करोड़ हेक्टेयर की वार्षिक दर से विलुप्त होते जा रहे हैं।

भोगवादी सभ्यता हमें हवाई जहाज़, वाहन, रेफ्रिजेरेटर, टी०वी०, कपड़े धोने की मशीन और डिब्बा बंद खाना आदि चीजें तो दे सकती है, पर यदि ये सभी चीजें उपजाऊ मिट्टी, स्वच्छ पेयजल, ताजा हवा और उत्तम जलवायु की बलि चढ़ाकर मिलें तो हमें इसका चुनाव करने से पहले दो-चार बार गंभीरता से सोचना होगा।

भौतिक और भोगवादी संस्कृति के कारण आज बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ वन काटने में लगी हैं। उत्पादन तेजी से बढ़ रहा है पर वन घटते जा रहे हैं। थाईलैंड और फिलीपीन जैसे देश जो कभी प्रमुख लकड़ी निर्यातक देशों में अग्रणी थे, वनों के विनाश के कारण आज बाढ़, सूखे और पारिस्थितिकी की तबाही के शिकार हैं। यह विचारणीय है कि क्या हमारे वन हमारे लिए केवल कच्चे माल के संसाधन मात्र हैं, क्या ये केवल लकड़ी की भूख मिटाने वाले क्षेत्र भर हैं, या क्या ये कार्बन डाइऑक्साइड का शोषण करके प्राणवायु ऑक्सीजन देने वाले अमृत क्षेत्र हैं?

विश्व बैंक की 1989 की रिपोर्ट के अनुसार निम्न आय वर्ग के 42 देशों की प्रतिव्यक्ति वार्षिक आय 48 डॉलर से भी कम है और भारत इन देशों में इक्कीसवें स्थान पर है। इन 42 देशों में विश्व के 282 करोड़ लोग रहते हैं, 53 देश मध्यम आय वर्ग के हैं यानी जहाँ प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 6,000 डॉलर है। इससे अधिक प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय वाले देश मात्र 25 हैं जिनकी औसत आय 6,000 हज़ार डॉलर से अधिक है।

निम्न आय वर्ग के देशों में जनसंख्या बढ़ रही है, गरीबी बढ़ रही है, विपदाएँ बढ़ रही हैं और असमानता बढ़ रही है। ऐसे देश विश्व की जनसंख्या के 61 प्रतिशतभाग का प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन इनके पास विश्व की समूची आय (जी डी पी) का मात्र पांच प्रतिशत भाग है। इतनी विराट असमानता का आधार है जनसंख्या का विस्फोट।

सन् 1987 में भारत की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय मात्र 300 डॉलर थी। हमसे तो पाकिस्तान भी आगे था, श्रीलंका भी आगे था और इंडोनेशिया भी आगे था। इन देशों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय क्रमश: 350 डॉलर, 400 डॉलर तथा 450 डॉलर थी।

कृषि विकास की हमारी गति बहुत धीमी है। चीन में 1980-1987 में कृषि विकास की गति 7.4 थी जबकि इसी अवधि में भारत की विकास गति मात्र 2.8 ही थी। शायद यही कारण है कि चीन अपनी एक अरब 16 करोड़ जनसंख्या का भरण-पोषण अपने ही भरोसे कर रहा है।

युनीसेफ के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में दस प्रतिशत बच्चे अपनी पहली वर्षगांठ मानने से पूर्व काल के गाल में समा जाते हैं। इनकी संख्या है 23 लाख। भारत में शिशु मृत्यु दर 1,000 के पीछे 114 है और जो जीवित बच जाते हैं उनका भविष्य भी क्या है? उनमें से 75 प्रतिशत कुपोषण का शिकार रहते हैं।

अनाज के भंडार भरे भी हों तो भी कुपोषण की समस्या सामने आ सकती है। अनाज बाज़ार में आते ही लाभ कमाने वाले लोग इसे अपने कब्ज़े में करके दामों में वृद्धि कर देते हैं। पेट का एक सत्य और जेब का सत्य मिलकर लाचारी का ताना-बाना बुनते हैं और फिर शुरू होती है कुपोषण की कहानी। जिसके पास खरीद की शक्ति है, वही तो उसे खरीदेगा। बाकी तो जिन्दगी को धक्का ही देंगे।

भारत में पिछले वर्ष साढ़े सत्रह करोड़ टन अनाज पैदा हुआ था। लेकिन यह बात हमेशा के लिए सत्य नहीं। जहाँ खेती मौसम के मिजाज पर निर्भर हो और जहाँ तेज़ी से वन विनाश होता जा रहा हो वहाँ जाने किस वर्ष उपज किस सीमा तक घट जाए। साढे सत्रह करोड़ टन का मतलब है लगभग 87 करोड़ लोगों को प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष दो वर्ष दो क्विंटल अनाज की उपलब्धि यानि प्रति माह लगभग साढ़े सोलह किलो ग्राम और प्रतिदिन यही कोई आधा किलो ग्राम से ज़्यादा अनाज।

भारत गांवों का देश है। बढ़ती जनसंख्या ने गांवों में भी आवास की भीषण समस्या खड़ी कर दी है। भारत के गांवों में लगभग 11 करोड़ परिवार हैं। पांचवी योजना के प्रारम्भ में ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग नौ करोड़ मकान थे जिनमें

1.8 करोड़ जर्जर-सी हालत में थे। उसके बाद दो पंचवर्षीय योजनाएँ और निकल चुकी हैं, जनसंख्या भी बढ़ती रही है और मकानों की समस्या भीषण होती जा रही है।

ग्रामीण क्षेत्रों में एक करोड़ मकान बनाने के लिए 50,000 करोड़ ईटें, कई टन सीमेंट और ईटों को पकाने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में ईंधन चाहिए। मकानों की अखरने वाली कमी इतनी अधिक कि नई शताब्दी के आते -आते ग्रामीण क्षेत्रों में तीन करोड़ मकानों की आवश्यकता होगी, यानी 15 करोड़ व्यक्ति बिना छत के गुजर-बसर कर रहे होंगे।

शहरों में लाखों की तादाद में उभरने वाली झुग्गी झोपड़ियाँ, बिना प्रकाश के गन्दे और कच्चे भवन, सीलन और बदबूदार निवास स्थान इन्सान के स्वास्थ्य के लिए खतरा हैं,पर लाचारी और गरीबी की मार से ग्रस्त व्यक्तियों को ऐसे स्थानों में रहने के लिए विवश होना पड़ता है।

बढ़ती जनसंख्या और बीमारियों के प्रकोप ने हमारी चिकित्सा-सेवा की अपर्याप्तता को स्पष्ट रूप से रेखांकित कर दिया है। 1984 के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 45.174 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में एक अच्छा अस्पताल था। इस दृष्टि से आकलन करें तो कह सकते हैं कि एक लाख आठ सौ छियासठ व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल था यानी एक बिस्तर 1447 व्यक्तियों के उपयोग के लिए था। जाहिर है कि जनसंख्या का फैलाव चिकित्सा-सेवाओं पर दबाव डाले विना नहीं रहता।

रोग और गरीबी का चोली-दामन का रिश्ता है। जहाँ कुपोषण हो, स्त्रियों को छोटी उम्र में मातृत्व का भार ढोना होता हो, थका हारा बुढ़ापा असाध्य रोगों से ग्रस्त हो, मृत्युदर उम्र का हिसाब नहीं रखती हो, उस देश में चिकित्सा-सेवाओं का मुकम्मल होना जरूरी है। पर क्या किया जाए? सत्तासी करोड़ लोगों के लिए चिकित्सालयों और औषधियों की व्यवस्था करना भी तो अपने आप में एक समस्या है। 1947 की तुलना 1987 में भारत 81,000 उपकेन्द्र तथा 11,000 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र अधिक थे, पर उसी अनुपात में देखें तो जनसंख्या में लगभग ढाई गुना वृद्धि हो चुकी थी।

भारत में चेचक को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया, टी० बी० पर आंशिक विजय प्राप्त कर ली गई , पर कैंसर, कोढ़, मलेरिया, एड्स आदि अनेक बीमारियाँ आज भी हमारे वश में नहीं आ रही है। यदि पर्यावरण सुरक्षा पर ध्यान दिया जाए। हवा, पानी और अनाज शुद्ध मिले और प्रदूषण रोक दिया जाए, तो बीमारियाँ हो ही नहीं सकतीं, लेकिन इस यदि का जवाब क्या है? यही सोचने की बात है। जनसंख्या की वृद्धि और पर्यावरण असंतुलन के और भी कई परिणाम हैं। दोनों के बीच सही तालमेल नहीं होने के कारण ही भारत में लगभग एक तिहाई से भी ज्यादा जनसंख्या गरीबी में जीवनयापन कर रही है। पटरियों पर सोने वालों की संख्या दिनों दिन बढ़ती चली जा रही है। प्रति महिला शिशु जन्म दर 4.3 है।

लगभग आधी जनसंख्या अशिक्षित है। शहरी आबादी जो 1951 में 6 करोड़ 20 लाख थी, 1981 में बढ़कर 21 करोड़ 72 लाख हो चुकी है। जन्मदर एक हज़ार के पीछे 30 से भी अधिक है जबकि थाईलैण्ड में यह 22 तथा इडोनेशिया में 26 प्रति हज़ार है।

देश में लगभग 12 लाख टन खाद्य तेल की कमी है। 63 लाख टन की आवश्यकता के मुकबले में मात्र 50 से 51 लाख टन खाद्य तेल ही उपलब्ध है।

■ ■ ■

कैसे हुई थी जीवन की शुरुआत

❑ राजीव

पहले-पहल बार जब एन्टन वॉन लुविनहॉक ने सूक्ष्मदर्शी की सहायता से अनेक सूक्ष्मजीवों को देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न था। छोटी-छोटी कोशिकाओं से वने सूक्ष्मजीवों ने विज्ञान की एक नयी धारा को ही जन्म दे दिया। धीरे-धीरे कोशिकाओं के रहस्य खुलते गये। वैज्ञानिकों ने दावा किया कि कोशिका जीवन की इकाई है और कोशिका के सभी रहस्य सुलझ जायं तो हम जान जाएंगे कि जीवन क्या है और इसकी शुरुआत कैसे हुई ?

इसके बाद उनमें होड़ लग गयी और अंतत: वैज्ञानिकों ने यह जान ही लिया कि कोशिकाओं के नाभिक में स्थित डी एन ए (डी ऑक्सी राइबोस न्यूक्लिक एसिड) और आर एन ए (राइबोस न्यूक्लिक एसिड) पदार्थ हैं, जो जीवन के लिए परमावश्यक हैं।

इस नतीजे पर पहुँचकर एक बार फिर वैज्ञानिक उसी सवाल में उलझ गये जो इस सृष्टि जितना आदिम और हर सुबह जितना नूतन है। आखिर हम कौन हैं और पृथ्वी पर पाये जाने वाले धूलकणों से भी अति सूक्ष्म धागे जैसी डी एन ए की संरचनाओं से कैसे वने?

इन्हीं सवालों के जवाव ढूंढ़ने में लगे वैज्ञानिकों ने एक चमत्कार अप्रैल1993 में देखा। कैलिफोर्निया के लाजोला के स्क्रिप्स रिसर्च इंस्टीयूट की प्रयोगशाला में ये वैज्ञानिक एक परखनली में कार्वनिक पदार्थ लेकर कुछ प्रयोग कर रहे थे। अचानक इसमें एक ऐसा कण गिर गया जो परंपरागत रूप से जीवित तो नहीं ही था परखनली में गिरने के साथ ही आर० एन० ए० के इस संश्लेषित कण ने अपनी आश्चर्यजनक क्षमताओं का परिचय दिया जिसने वैज्ञानिकों को भी अचंभे में डाल दिया। परखनली में गिरने के एक घंटे बाद ही इसने कार्वनिक पदार्थ पर कब्ज़ा जगाकर अपनी प्राकृतियाँ बनाना शुरू कर दिया था। थोड़े ही समय में उसने अपनी असंख्य प्रतिकृतियाँ वना डालीं। जल्द ही इन प्रतिकृतियों ने अपना विकास करना शुरू कर दिया और इसने उन सभी क्रियाओं को करना शुरू कर दिया जो जीवित कोशिकाओं द्वारा की जाती हैं। वैज्ञानिक मूक दर्शकों की तरह इस घटना को अपने सामने होते देख रहे थे और सवके मन में एक ही प्रश्न गूंज रहा था- क्या जीवन की शुरुआत भी ऐसे ही हुई होगी?

हाल में मिले प्रमाणों से ऐसा लगता है कि जीवन धीरे-धीरे विकसित नहीं हुआ बल्कि यह एकदम भरभरा कर पृथ्वी पर फैल गया। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पुराजीवविज्ञानी जे० विलियम स्काफ ने सूक्ष्मजीवों की एक कॉलोनी के जीवाश्म का 3.5 अरब वर्ष पुरानी चट्टानों के बीच पता लगाया है। अनेक प्रमाणों के साथ इससे यह पता चलता है कि पृथ्वी के निर्माण के एक अरब वर्ष में ही पृथ्वी पर जीवन फैल चुका था। यह धारणा अब समाप्त हो गयी है कि जीवन शांत और आसान हालातों में शुरू हुआ। जब पृथ्वी पर चारों ओर ज्वालामुखी फट रहे थे और आकाश से धूमकेतुओं और उल्काओं की वर्षा हो रही थी, वास्तव में अंतरिक्ष से पृथ्वी पर गिरने वाले पिण्डों में से किसी में जीवन के लिए आवश्यक कच्चा पदार्थ था। पृथ्वी पर पहले-पहल जीवित प्राणी का उद्भव करने वाली शक्तियाँ इतनी मज़बूत थीं कि यहाँ फैलने से पहले जीवन ने एक नहीं बल्कि अनेक बार अपनी शुरुआत की।

मानव मन की कल्पनाओं में अनेक अबूझी पहेलियों में जीवन कैसे शुरू हुआ, यही प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। (ब्रह्माण्ड के निर्माण की शुरुआत करने वाले महविस्फोट के अलावा)। इस विषय पर मिलने वाली वैज्ञानिक जानकारियाँ हमारी सभ्यता की शुरुआत से ही मिलती रही हैं। मिस्रवासासियों का मानना था कि बाढ़ के बाद इकट्ठा हुई गाद से मेंढकों और टोड का जन्म होता है जबकि ग्रीक दार्शनिक अरस्तू का मानना था कि कीट और कृमियों का जन्म ओस की बूंदों, चूहों का जन्म गीली भूमि और ईल और मछलियाँ रेत और कीचड़ से जन्म लेती हैं। 19वीं शताब्दी में ऐसा माना जाता था कि विद्युत्धारा निर्जीव पदार्थों को भी चला सकती थी।

जीवन की शुरुआत का वैज्ञानिक तौर पर युक्तिसंगत उत्तर चार्ल्स डार्विन ने पहली बार दिया। 1871 में लिखे एक परचे में डार्विन ने सुझाव दिया कि जीवन एक छोटे गर्म तालाब में शुरू हुआ जहाँ कार्बनिक पदार्थों द्वारा करोड़ों साल बाद किसी तरह पहला बेहद सामान्य ईव पैदा हुआ। इस विचार को भारी समर्थन मिला और लोगों ने यह मानकर कि यह तालाब सागर रहा होगा, पता लगाना शुरू कर दिया कि जीवन के कण कहाँ से आये होंगे।

1953 में शिकागो विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी स्टैनली मिलर ने जीवन का पहला स्वीकार्य प्रायोगिक प्रमाण सामने रखा। उसने एक कांच के जार में पृथ्वी की बेहद शुरुआती दौर का एक बेहद छोटा मॉडल बनाया, इसमें सागर के लिए जल और वातावरण का निर्माण करने वाली अमोनिया, मीथेन और हाइड्रोजन जैसी गैसें थीं। इसके अलावा मौसम को दिखाने के लिए इसमें बिजली आदि भी थी। एक सप्ताह बाद जार में मिलर को कार्बनिक पदार्थों का एक लसीला पिण्ड मिला, जिसमें अमीनो अम्ल बड़ी मात्रा में शामिल था। अमीनो अम्ल ही कोशिकाओं के मुख्य घटक हैं, जिससे उनका निर्माण होता है। इसके बाद यह प्रयोग यहीं समाप्त हो गया।

इसी बीच, समय-समय पर मिले बेहद पुराने जीवाश्मों के अध्ययन के बाद यह तथ्य सामने आया है कि जीवन उस तरह भी पैदा नहीं हुआ था जैसे डार्विन का मानना था। शायद उनमें सबसे अधिक विषमता उन जीवों ने पैदा कर दी है जो सागर के गर्म झरनों में पाये जाते हैं। इसके चलते कुछ वैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि 'जीवन किसी गुनगुने ताल में नहीं बल्कि खौलते हुए प्रेशर कुकर जैसे हालात में शुरू हुआ था।'

भले ही वैज्ञानिकों ने जीवन की शुरुआत के संदर्भ में कितने ही मत दिये हों लेकिन वैज्ञानिकों में आज भी मतैक्य नहीं है। जीवन की शुरुआत के बारे में वर्तमान मत एक बेहद जटिल कहानी है जिसमें अनेक प्रमाणिक तथ्य हैं और बीच-बीच में अनेक टूटी हुई कड़ियाँ हैं, जिन्हें जोड़ने वाली घटनाओं में से कोई कमी नहीं है। यह कहानी कुछ इस तरह है-

एक बार की बात है...

आज से 4-6अरब साल पहले हमारे सौर मंडल ने गैस और धूल के गर्म बादलों के बीच जन्म लिया। पहले छोटे-छोटे पिण्ड बने, जो ग्रह बनाने के लिए एक दूसरे में समाहित हो गये। इन पिण्डों की आपसी टक्करों से पैदा हुई ऊर्जा ने पृथ्वी को एक पिघली हुई गेंद में बदल दिया। इस घटना के लगभग एक अरब वर्ष तक पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अपने पास के सभी आकाशीय कचरे को अपनी ओर खींचता रहा। इस बीच अंतरिक्ष में भटक रहे ठण्डे धूमकेतु इस पर गिरते रहे और उल्का पिण्ड इस पर बमों की तरह धमाके करते रहे।

इनमें से कुछ उल्काओं का आकार आज के विशालकाय पर्वतों से भी बड़ा रहा होगा और इनके गिरने से इतनी गर्मी पैदा हुई होगी जिसने चट्टानों को पिघला कर समुद्र को उबाल दिया होगा। इससे वातावरण में धुआं फैल गया होगा और इन सब घटनाओं ने सब तरह के जीवन की संभावना को क्षीण कर दिया होगा।

इसके बावजूद एक अरब वर्ष बाद जब सौर-तंत्र लगभग साफ़ हो चुका था और उल्काओं आदि का गिरना कम हो गया, जीवन ने तब फलना-फूलना शुरू किया था। वैज्ञानिकों नें 3.5 अरब वर्ष पूर्व की पश्चिमी आस्ट्रेलिया की कुछ चट्टानों में अलग-अलग किस्म के सूक्ष्मजीवों का पता

लगाया है। इनमें से अनेक जीवाश्म आज विश्वभर में फैले नील-हरित शैवाल जैसे हैं। ग्रीनलैंड में इससे भी पुरानी चट्टानें मिली हैं जो यह सिद्ध करती हैं, जीवन इससे भी कहीं पहले शुरू हो चुका था। शायद आज से 3.8 अरब वर्ष पहले।

उद्‌भव का केंद्र

पृथ्वी पर व कौन सी जगह रही होगी जहाँ जीवन रूपी कली चटखी होगी और जो आज भी उल्कापिंडों की कोपदृष्टि से एकदम सुरक्षित होगी? इसका उत्तर पाने के लिए वैज्ञानिक समुद्र के बने चिमनी जैसी अनोखी और रहस्यमयी संरचनाओं को देख रहे हैं। ये संरचनाएँ पिघली हुई चट्टानों के ऐसे भूमिगत छेद हैं जिन्हें गर्मजल छिद्र कहते हैं। इन छिद्रों के कारण समुद्र के तल के भीतर ही गीजर बन जाते हैं। 15 वर्ष पूर्व जब वैज्ञानिकों ने इस अनोखे वातावरण का अध्ययन करने के लिए पनडुब्बियों का इस्तेमाल किया तो वे उबलते हुए पानी के बावजूद वहाँ फलफूल रहे जीवन को देखकर दंग रह गये। इनमें विशाल टयूब वर्म (नली कृमि) और अंधे झींगे थे। इसके अलावा इन छिद्रों के चारों ओर सल्फर खाने वाले अनेक सूक्ष्मजीव मिले। ऐसा माना जाता है कि इन्हीं सूक्ष्मजीवों में जीवन के पहले-पहल के जीवन-चिह्न थे।

क्या उबलते हुए ऐसे ही स्थान पर जीवन की शुरुआत हुई होगी? अधिकांश का तो ऐसा ही मानना है कि जितना ज़्यादा वातावरण गर्म होगा, उतना ही अधिक वहाँ पाये जाने वाले जीवों को पोषक तत्व मिलेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी भी वैज्ञानिक ने 112 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक तापमान में सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति नहीं पायी है।

ऐसा माना जाता है कि जीवन समुद्री सतह के निकट शुरू हुआ और तल की ओर चला गया। वहाँ रहकर उन्होंने आसानी से बाहर धरती पर होने वाले तमाम परिवर्तनों को आसानी से पार कर लिया।

जीवन के घटक

आज से 40 वर्ष पहले ही अपने प्रयोग में स्टेनली मिलर ने यह सुझाव दिया था कि वातावरण में उपस्थित गैसों के अवयवों का आसानी से निर्माण किया जा सकता है। मिलर के प्रयोग ने समय की विद्यमान अवधारणा को ही पुष्ट किया है अर्थात् पृथ्वी धूल और गैस के बादलों के गुरुत्वाकर्षण द्वारा इकट्ठा होने के कारण बनी। इस मॉडल के अनुसार शुरुआत में पृथ्वी की अंदरूनी परतें बहुत बाद तक आग नहीं पकड़ती थीं। इसलिए पृथ्वी पर पाया जाने वाला लोहा गलकर पृथ्वी के केन्द्र में एकदम नहीं चला गया बल्कि इस प्रक्रिया में लाखों-करोड़ों साल लगे।

लेकिन इसमें विशेषता क्या है? वास्तव में लोहा ही वह धातु है जो ऑक्सीजन को लेकर उसे कार्बन के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड बनने से रोकता है। इसके बजाय कार्बन और नाइट्रोजन गैस उस समय बार-बार फटने वाले ज्वालामुखियों से निकली होगी और वह हाइड्रोजन के साथ मिल गयी होगी। इसके फलस्वरूप मीथेन और अमोनिया जैसी गैसें बनी होंगी।

यह पृथ्वी की एक सुन्दर तस्वीर थी लेकिन दुर्भाग्यवश शायद यह गलत थी। ऐसा विश्वास किया जाता था कि पृथ्वी पर उल्कापिंडों के गिरने से सारा लोहा पिघलकर धरती की अंदरूनी चट्टानों में चला गया। इसलिए शुरुआती दौर का वातावरण कार्बन डाइऑक्साइड से पटा पड़ा होगा और इसकी उपस्थिति में कार्बनिक पदार्थ बेहद मुश्किल से पैदा हुए होंगे।

तब फिर आखिर जीवन के घटक कहां से आये? अनेक वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर समय-समय पर गिरने वाले धूमकेतुओं और उल्कापिंडों से जीवन धरती पर आया। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी **डेविड डीमर** ने उल्कापिंडों से ऐसे रासायनिक पदार्थों को निकाला है जो कोशिका जैसा झिल्ली बना सकते हैं। इसके अलावा डीमर ने एक **पीले पिगमेंट** (रंजक) को भी प्राप्त किया है जो प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त कर सकता है। डीमर का मानना है कि **यह क्लोरोफिल का भी पूर्वज है।**

एक अन्य विचार के अनुसार भी वे बड़ी संख्या में धरती पर रोज बारिश की बूंदों की तरह गिरते रहते हैं और उनका भार एक गेंद जितने उल्कापिंड की तुलना में

1,00,000 गुना अधिक होता है। इसी तरह संभव है कि धूमकेतु जो कार्बन की अधिकता के कारण काले होते हैं, अपने साथ कभी जीवन के कणों को ले आये हों। जीवन की शुरुआत में धूमकेतु ने कोई भूमिका निभाई होगी, यह कोई नहीं जानता क्योंकि धूमकेतुओं की रासायनिक संरचना के बारे में आज भी कोई निश्चित जानकारी नहीं है।

इसके अलावा एक और भी संभावना हो सकती है। संभव है कि धरती पर आ पहुँचने वाले किसी बड़े पिण्ड ने पृथ्वी के वातावरण में बदलाव ला दिया हो। उदाहरण के लिए यदि लोहे से भरा एक उल्का पिण्ड धरती के गर्भ में समा जाए तो उपस्थित लोहा बाद में वातावरण के साथ अवश्य क्रिया कर जीवन के लिए आवश्यक गैसों को पैदा कर सकता है।

रासायनिक प्रयोगशाला

जीवन चाहे कैसे भी शुरू हुआ हो लेकिन प्रकृति ने इसके सभी घटकों को एक साथ कैसे मिलाया, यह भी अपने आप में कम अद्भुत् नहीं है। एक संभावना यह है कि समुद्र के बुलबुलों ने छोटे-छोटे रासायनिक रिएक्टरों का काम किया। बुलबुले "एम्पीफिलिक" होते हैं। किसी भी समुद्र की 5 प्रतिशत सतह झाग से ढंकी रहती है। इसके अलावा बुलबुले जीवन के लिए आवश्यक अनेक साधनों को इकट्ठा कर उन्हें सघन बनाते रहते हैं। इसमें तांबें, चांदी तथा फॉस्फेट के लवण शामिल हैं। जब बुलबुले फूटते हैं तो वो इकट्ठा किये हुए इन रासायनों को वातावरण में बिखेर देते हैं, जहाँ संसार की सबसे आश्चर्यजनक घटनाएँ घटती हैं। लेकिन वर्जिनिया के जार्ज मेसन विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी **हेरल्ड मोरोविट्ज** सरीखे वैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन बुलबुले से न होकर प्रयोगशाला जैसी परिस्थितियों में शुरू हुआ। वे जीवन की शुरुआत "एम्पीफिल्स" नामक कणों से मानते हैं। ये कण अपने एक किनारे से पानी से आकर्षित तथा दूसरे से पानी से प्रतिकर्षित होते हैं।

शुरुआती दौर में बने समुद्र में डूबते-उतराते हुए पानी को प्रतिकर्षित करने वाला सिरा मुड़ता चला गया होगा और इस प्रकार इसने एक गोले की शक्ल अख्तियार कर ली होगी। इन गोलों में जीवन के लिए आवश्यक रासायनिक क्रियाएँ शुरू हुई होगीं और इस तरह आरम्भिक कोशिकाओं का निर्माण हुआ होगा। मोरोविट्ज का कहना है कि एक बार इन पिण्डों के निर्माण का अर्थ ही जीवन की शुरुआत है।

एक अन्य प्रयोग में वैज्ञानिकों ने आर एन ए के अरबों-खरबों धागे जैसी संरचनाओं को परखनली में विकसित किया। इनमें पांच दर्जन ऐसी संरचनाएँ थीं जो परखनली में पहले से उपास्थित आर एन ए संरचनाओं से जा मिलीं। इस प्रकिया को " एमपीफिलिक " कहते हैं, जो जीवाणु जैसे एककोशिकीय प्राणी को मनुष्य जैसे बहुकोशिकीय प्राणी में बदलने के लिए आवश्यक है।

इस समय अनेक वैज्ञानिक अपनी परखनलियों में आर एन ए लेकर उसे विकसित कर प्रोटीन बनाने के प्रयास में हैं। यदि यह संभव हो गया तो वैज्ञानिक परखनली में जीवन की उत्पत्ति कर लेंगे। हालांकि वैज्ञानिकों ने इसदिशा में जो कुछ किया है कि वह थोड़ा होते हुए भी कम नहीं है।

■ ■ ■

('राष्ट्रीय सहारा', 8 नवम्बर 1994 से साभार)

जहाँ से शुरू हुई ज़िंदगी

❑ वाई० एस० गिल

हाल ही में वैज्ञानिकों द्वारा धनु राशि में सेगिटारियस बी-2 तारकीय धूल के बादलों (नेबुला) के बीच 'ग्लाइसिन' नामक जीवन के अणु की जो खोज हुई है उसने जीवन की उत्पत्ति के चिरंतन प्रश्न पर बहस को एक बार फिर ज़िन्दा कर दिया है। ग्लाइसिन 10 अणुओं से बना एक प्रकार का एमीनो एसिड है। 20 तरह के ऐसे एमीनो एसिडों से ही जैविक कोशिकाओं का निर्माण होता है। ग्लाइसिन इनमें सबसे सूक्ष्म हैं।

अब तक हमें उल्का पिण्डों, चाँद की चट्टानों और धूमकेतुओं में एमीनों एसिड के होने का पता चला था। पिछले साल मशहूर खगोल भौतिक वैज्ञानिक **कार्ल सागां** ने शनि के विशाल चन्द्रमा टाइटन में भी जीवन के अणुओं के होने की सम्भावना व्यक्त की । इन तथ्यों से यह लगता है कि जीवन सिर्फ धरती को मिला हुआ वरदान नहीं बल्कि सम्भवतः ग्रह-तारों की दुनिया में भी वह मौजूद है।

जीवन की शुरुआत पर बहस उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव सभ्यता। मिथकीय और परम्परावादी सोच यह रही है किसी अलौकिक शक्ति ने जीवन की रचना की। पर प्रख्यात जीव-वैज्ञानिक **चार्ल्स डार्विन** ने सबसे पहले सुझाया कि जीवन की शुरुआत आदिम धरती पर जैविक रसायनों के घोल वाले "छोटे से गर्म ताल" में हुई होगी। तब से इस प्रश्न पर अनेक सिद्धान्त सामने आए और आज भी यह सिलसिला जारी है।

1922 में ही विख्यात रूसी जैव रसायन वैज्ञानिक **आलेक्सांद्र ओपारिन** ने जैविक पदार्थों के आद्य घोल में प्रथम जीव की उत्पत्ति का एक विस्तृत सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उनके अनुसार जीवन एक अव्वल दर्जे का संरचनात्मक और क्रियात्मक संगठन है, जिसकी रचना रासायनिक ढंग से हुई होगी।

पर 1953 में शिकागो विश्वविद्यालय के विज्ञान स्नातक **स्टेनली मिलर** ने तो एक कमाल ही कर दिखाया। मिलर ने दो फ्लास्क लेकर उन्हें शीशे की नलियों से जोड़ दिया। छोटे फ्लास्क के लगभग आधे में पानी भरा और बड़े में आद्य धरती के वातावरण में पायी जाने वाली हाइड्रोजन, मीथेन, अमोनिया गैस और पानी का वाष्प। पृथ्वी की शुरुआती अवस्था में लगातार कड़कने वाली बिजली की तरह ही मिलर ने भी गैस वाले फ्लास्क में सात दिनों तक उच्च वोल्टेज की बिजली की चिनगारियाँ चमकाई और पाया कि फ्लास्क का पानी जैविक रसायनों के गाढ़े गोल में बदल चुका है। इस घोल में जैविक कोशिका के मुख्य अवयव एक जटिल प्रक्रिया द्वारा प्रोटीन को बनाने वाले एमीनों एसिड बड़ी मात्रा में मौजूद थे।

वैज्ञानिकों ने समझा कि उन्होंने धरती के सबसे बड़े रहस्य से पर्दा उठा दिया है। लेकिन बात इतनी आसान नहीं थी। एमीनो एसिड तो बन गया पर उससे प्रोटीन बनाना 'टेढ़ी खीर' साबित हुई।

तबसे जैव-रसायन, समुद्र विज्ञान और खगोलशास्त्र जैसी विज्ञान की अलग-अलग शाखाओं के विशेषज्ञों ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बंध में कई सिद्धान्त दिये हैं। इस बीच धरती के शैशव काल और अन्य तारों के गिर्द पैदा होने

वाले ग्रहों के बारे में मिली नई जानकारियों ने मिलर की अवधारणा पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। अब वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि शुरू से ही धरती की आबो-हवा में ऑक्सीजन काफी मात्रा में मौजूद रही है और ऑक्सीजन की उपस्थिति में एमीनो एसिड का बनना बहुत ही कठिन है। फिर जीवन की शुरुआत कैसे हुई?

कुछ वैज्ञानिकों की राय में जीवन के बीज टूटते तारों और धूमकेतुओं के साथ धरती पर आए होंगे। पर ज्यादातर वैज्ञानिक धरती पर ही किसी और स्थति में जीवन की उत्पत्ति की बात करते हैं।

इस सम्बन्ध में हमारे ग्रह की अथाह गहराइयों के गर्म माहौल में डेरा जमाने वाले अजीब किस्म के जीवाणुओं को भी वैज्ञानिक काफी महत्व दे रहे हैं। ऐसे जीवाणु उबलते पानी में भी फलते-फूलते हैं और सम्भवत: 370 डिग्री सेन्टीग्रेट तक के तापमान में भुन कर भी कुछ क्षणों के लिए ज़िन्दा रह सकते हैं। ये दूसरे जीवों की तरह सूर्य से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में ऊर्जा ग्रहण नहीं करते , बल्कि पृथ्वी के भीतर के पिछले हुए मैग्मागन्धक के यौगिक मीथेन और दूसरे ऊर्जा से भरपूर रसायनों के सहारे ज़िन्दा रहते हैं। गहरे समुद्र के नीचे फूटने वाले गर्म जल के फब्बारों के गिर्द पाये जाने वाले ये जीवाणु शायद धरती के सबसे प्राचीन जीव का रूप हैं।

अधिकतर वैज्ञानिक अब यह समझते हैं कि पृथ्वी के ऐसे किसी गर्म माहौल में ही जीवन की शुरुआत हुई होगी। समुद्र के तल की दरार और उसमें से निकलते फुहारों का तापक्रम 1300 डिग्री से लेकर 40 डिग्री के बीच होता है। इनके इर्द-गिर्द कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, मीथेन, अमोनिया और सल्फर जैसे सभी घटक भी मौजूद होते हैं। कई वैज्ञानिकों के अनुसार आदिम धरती के समुद्र में ऐसे तप्त स्थल काफ़ी संख्या में रहे होंगे। सम्भवत: जीवन केपहले बीज यहीं रोपे गये।

जैव-रसायन वैज्ञानिक अब प्रयोगशालाओं में पुनरुत्पादन करने वाले जैविक अणु की संरचना में जुटे हैं। किसी चीज के जीवित होने का मतलब है कि वह खुद ब खुद अपनी वंशवृद्धि कर सके और अपना भोजन जुटा सके। वैज्ञानिक ऐसे बनावटी अणु का निर्माण तो कर चुके हैं जो खुद अपनी प्रतिमूर्ति बना लेते हैं, पर उन्हें इसके लिए बाहर से निर्मित प्रोटीन की खुराक मुहैया करानी पड़ती है। **उम्मीद की जा रही है इस सदी के अन्त तक इस समस्या को हल कर लिया जायेगा।**

एक और प्रश्न का भी सही जवाब ढूँढ़ना अभी बाकी है- धरती पर जीवन कितना प्राचीन है? पिछले दिनों ग्रीनलैण्ड में मिले सबसे पुराने कोशिकीय जीव के जीवाश्म (फॉसिल) की उम्र लगभग 3.8 अरब साल आँकी गई है। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी का जन्म आज से लगभग 4.6 अरब साल पहले हुआ था। इसका मतलब हमारे ग्रह के शैवाल काल में ही विकसित (कोशिकीय) जीवन ने यहाँ पैर जमा लिए थे। यह भी हो सकता है कि स्थायी बनने से पहले कई बार जीवन पनपा और मिट गया हो।

हम जानते हैंकि शुरू-शुरू में जीव एक कोशिका वाले थे। उनका निर्माण प्रोटीन और वसा (लिपिडों) से हुआ था और आर एन ए तथा डी एन ए के जीन इनमें मौजूद थे। प्रजनन के दौरान डी एन ए द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी में आनुवंशिकी गुणों का स्थानांतरण होता है। डी एन ए द्वारा यह काम सूचना वाहक आर एन ए एन्जाइम और प्रोटीन की मदद से ही करता है। यह एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। इसीलिये वैज्ञानिक अब मानते हैं इस प्रकार के विकसित जीवन के पहले सिर्फ आर एन ए धारी और एक कम जटिल प्राक्-जीवन का अस्तित्व जरूर रहा होगा। इस प्रकार के खुद ब खुद पुनरुत्पादन करने वाले सरल जीवित अणु को अब प्रयोगशाला में ही बनाने का प्रयास चल रहा है।

वैज्ञानिक कोशिका के खोल की तरह एक ऐसी कृत्रिम चारदीवारी के निर्माण की भी कोशिश कर रहे हैं जो प्रयोगशाला में बने जीवन के अणु को धारण किये रहने के साथ-साथ उसे बाहरी तत्वों के हमले से भी बचाये रख सके, एक ऐसी चारदीवारी जिसके अन्दर शायद कृत्रिम जीवन की रचना सम्भव हो सके।

■ ■ ■

['अमर उजाला', 15 अप्रैल 1996 से साभार]

यन्त्रशास्त्री पं० ओंकारनाथ शर्मा

❑ **डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय**

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

आज हमारे देश में हिन्दी विज्ञान लेखकों की कमी नहीं है। लेकिन यन्त्र-शास्त्र पर हिन्दी में लिखने वाले कुछ गिने-चुने व्यक्ति ही हैं। सच पूछा जाय तो यन्त्रशास्त्र पर हिन्दी में लेखन **ओंकार नाथ शर्मा** से शुरू होता है और इस दृष्टि से आपको हिन्दी में यन्त्र-शास्त्र लेखन का प्रणेता माना जा सकता है।

आपके पिता **पं० लक्ष्मी नारायण गौड़** ग्राम-नांगल चौधरी, जनपद नारनौल, पटियाला के निवासी थे। वे जीविकोपार्जन हेतु सन् 1890 में राजस्थान के अजमेर नामक स्थान पर जाकर रेलवे क्लर्क का कार्य करने लगे थे। यहीं पर सन् 1904 में उनकी धर्मपत्नी **हरिदेवी जी** के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम माता-पिता ने बड़े प्यार के साथ रखा -ओंकारनाथ।

इकलौती संतान होने के कारण आपका पालन-पोषण अत्यन्त लाड़-प्यार के साथ हुआ था। पिता ने आरम्भ से ही आपकी शिक्षा और चरित्र-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। स्कूली शिक्षा के साथ ही वे स्वयं बालक को घर पर विश्व के महापुरुषों और लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में बताते और बालक को भी जीवन में कुछ करने के लिए प्रेरित करते।

यन्त्रों के प्रति आपका विशेष आकर्षण था। अनुभवी पिता ने आपकी इस स्वाभाविक रुचि और लगाव को देखकर मैट्रिक की साधारण शिक्षा के बाद ही आपको बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे अजमेर लोको वर्कशाप में साधारण अपरेण्टिस में लगवा दिया। इस प्रकार आपकी स्कूली शिक्षा पर विराम लग गया। इस साधारण -सी नौकरी द्वारा आपको अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर प्राप्त हुआ। यन्त्र-विद्या की ओर तो झुकाव था ही अतएव इस दिशा में आप स्वाध्याय और परिश्रम द्वारा उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो गए। इसका सुपरिणाम भी शीघ्र ही सामने आ गया और आपने यन्त्र निर्माण कला में विशेष दक्षता प्राप्त कर ली। आपकी प्रतिभा और दक्षता को देखकर सन् 1931 में आपको इंग्लैण्ड और भारत के 'इंस्टीट्यूशन ऑव लोकोमोटिव इंजीनियर्स' और 'अमेरिकन सोसाइटी ऑव मैकेनिकल इंजीनियर्स' का सभ्य चुन लिया गया।

आप परिश्रमी तो थे ही, अतएव खाली समय में आप अवैतनिक रूप से कंसलटिंग इंजीनियर का कार्य भी करते थे, जिसके फलस्वरूप आपने कई छोटे-छोटे उद्योग स्थापित करवाए। आपकी यह विशेष इच्छा थी कि जिन कारीगरों के साथ कार्य कर रहे हैं, उनको शिक्षित किया जाय। इसके लिए वे उन्हें प्रायोगिक गणित आदि पढ़ाया करते थे। हालाँकि आपको मैट्रिक से आगे की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला, फिर भी अपने अनुभव के आधार पर आपने **महात्मा गाँधी जी** के पास 'वर्धा शिक्षा समिति' के लिए बढ़ईगिरी और लोहारी के काम के माध्यम से इंटरमीडिएट के गणित का पाठ्यक्रम बनाकर भेजा था।

आपको राष्ट्र व राष्ट्रीयता के प्रति गहरा लगाव था। आप चाहते थे कि ज्ञान का प्रचार-प्रसार विशेष रूप से हिन्दी में किया जाय, जिससे जनसाधारण उससे लाभ उठा सकें।

हिन्दी के उन्नयन के प्रति उनकी चिन्ता का अनुमान 7.12.1967 को **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** को लिखे गये एक पत्र से भी सहज ही लगाया जा सकता है-

"अब तो हिन्दी विरोधी विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत है, यदि यह पारित हो गया तो हम लोगों, के लिए बड़ी लज्ज्ञा की बात होगी। खेद है कि हम लोगों ने अभी तक विरोधियों का मुँह बन्द करने के लिए आवश्यक साहित्य तैयार किया ही नहीं किया। छुट-पुट विषयों पर कुछ 5-7 वैज्ञानिक ग्रन्थ इण्टरनीडिएट स्तर के ही तैयार हो पाये हैं। 20 वर्षों में एम० एस-सी० स्तर के सब विषयों पर प्रामाणिक ग्रन्थ तैयार हो सकते थे....।"

विज्ञान के प्रचार-प्रसार को समर्पित देश की प्रतिष्ठित प्राचीनतम संस्था 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' से भी आप ग़हरे जुड़े हुए थे। इस संस्था द्वारा प्रकाशित "विज्ञान" मासिक में सन् 1934 से ही लिखते रहे जिसमें 1956 तक आपके 39 लेख छपे। आपने 1963 में 'विज्ञान लोक' में भी अपने लेख प्रकाशित करायें 'विज्ञा-' में प्रकाशित आपके लेखों की सूची निम्नवत है-

लेख	माह	वर्ष
1. रेल में खतरे की जंजीर खीचने से गाड़ी कैसे रुकती है?	मार्च	1934
2. प्राचीन भारत में लोहे का बढ़ा चढ़ा उद्योग	मई	1934
3. हमारी रोटी की समस्या	मई	1934
4. चलती हुई रेलगाड़ी की जान	जुलाई	1934
5. मजदूरों और किसानों के काम का वैज्ञानिक साहित्य	जुलाई	1934
6. सोखने वाली रूई की तैयारी	नवम्बर	1935
7. सरेस काग़ज का निर्माण	अप्रैल-सितम्बर	1936
8. टीन की स्लेट	अप्रैल-सितम्बर	1936
9. लोहे पर पानी चढ़ाना	अप्रैल-सितम्बर	1936
10. धातु की चद्दर का उद्योग	अप्रैल-सितम्बर	1936
11. इस्पात के निब कैसे बनाये जाते हैं?	अप्रैल-सितम्बर	1936
12. वनस्पतियों के तेल को साफ करने का उद्योग	अप्रैल-सितम्बर	1936

मृदा परीक्षण की उपयोगिता

❑ कुसुमलता पाण्डेय, नलिनी जोशी एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार

भारत सरकार, रक्षामंत्रालय, रक्षाअनुसंधान तथा विकास संगठन
रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला,
पत्र बैग संख्या 40, गोरा पड़ाव, हल्द्वानी-263139
(नैनीताल, उ० प्र०)

मिट्टी वह माध्यम है जिसमें विभिन्न पेड़-पौधे आते हैं तथा जो हमारे भोजन से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में जुड़े हैं। जैसा कि हम जानते हैं, भोजन के बिना किसी भी प्राणी का जीवित रहना भी असंभव है इसलिए मिट्टी के अभाव में हम जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसे जीवन का आधार कहना गलत नहीं होगा। मिट्टी से हमें अनाज, दालें, सब्ज़ी, फल, मेवे, दूध, मक्खन, अण्डा और मांस (जो पशुओं से प्राप्त होता है) वे भी मिट्टी पर उगे पौधों पर जीते हैं। मिट्टी सिर्फ हमारे भोजनोपयोगी पेड़-पौधों को उगाने में ही सहायक नहीं होती अपितु यह उन पेड़ पौधों को भी उगाने में सहायक होती है जो कि हमारी बहुत सी आधारभूत आवश्कताओं को, जिनके बिना आधुनिक जीवन में विराम सा आ जायेगा, पूरा करती है। जैसे कपड़े के लिए रेशे जो कि कपास से प्राप्त होते हैं, इमारती लकड़ी, काग़ज, जलाने की लकड़ी, तथा जीवनदायिनी शुद्ध ऑक्सीजन जो कि सिर्फ पेड़-पौधों से ही मिल सकती है।

जिस प्रकार स्वस्थ रहने के लिए हमें तरह-तरह के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार पौधों को अपने सामान्य जीवन व बढ़ोत्तरी के लिए कुछ अनिवार्य खनिज तथा खाद्य तत्वों की आवश्यकता होती है, जो कि ये मिट्टी से ही प्राप्त करते हैं। ये अनिवार्य तत्व मुख्य रूप से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश हैं, जिनको पौधे भूमि से ग्रहण करते हैं। हर वर्ष फ़सलें लेने के साथ-साथ इन तत्वों की भूमि में कमी हो जाती है, जिसके कारण फ़सल को उसकी पर्याप्त मात्रा में खुराक नहीं मिल पाती। और फ़सल की पैदावार कम होने लगती है। अगर फ़सलों द्वारा भूमि में से खींची गई खुराक को गोबर, कम्पोस्ट रासायनिक खादों या उर्वरकों द्वारा वापस कर दिया जाये तो अच्छी पैदावार मिल सकती है और भूमि की उपजाऊ शक्ति सुधारी व संरक्षित की जा सकती है। यह कैसे जाने कि मृदा में कौन सा पोषक तत्व कितनी मात्रा में मौजूद है व भूमि की उपजाऊ शक्ति कितनी है इसके लिए हमें मृदा परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों के वैज्ञानिक विश्लेषण को मिट्टी का परीक्षण या मृदा परीक्षण कहते हैं। मृदा परीक्षण के अन्तर्गत मुख्य रूप से नाइट्रोजन, आर्गेनिक कार्बन, पोटाश, फॉस्फोरस, पी - एच० एवं घुलनशील लवण हेतु विश्लेषण किया जाता है। इन विश्लेषणों के आधार पर मिट्टी में उर्वरक का सही और संतुलित उपयोग कर अधिक पैदावार ली जा सकती है। मृदा परीक्षण किसानों के लिए वरदान है, जिसके द्वारा व उर्वरकों का उपयोग नियंत्रित रूप से करके अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

मृदा परीक्षण से क्या जानकारी मिल सकती है?

1. मृदा परीक्षण से पता चलता है कि भूमि अम्लीय है या क्षारीय। इसकी जानकारी पी- एच० द्वारा प्राप्त होती है और यदि मिट्टी अधिक

क्षारीय या अम्लीय है तो पौधे आसानी से अपना भोजन ग्रहण नहीं कर सकते हैं। अधिक अम्लीय मृदा में चूना तथा ऊसर भूमि में जिप्सम नामक रासायनिक का प्रयोग करना चाहिए।

2. मृदा में कौन सा पोषक तत्व कितनी मात्रा में मौजूद है व भूमि की उपजाऊ शक्ति कितनी है।
3. फसलों की पैदावार कम क्यों है।
4. ज़्यादा पैदावार के लिए कौन सी व कितनी खाद व उर्वरक देना चाहिए।
5. मिट्टी में पाये जाने वाले सम्पूर्ण घुलनशील लवणों की मात्रा का पता चलता है। जिसकी कमी के कारण मिट्टी ऊसर हो जाती है।
6. भूमि किस फ़सल के लिए अधिक उपयुक्त है और किन फ़सलों से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अत: मिट्टी की जाँच द्वारा हमें भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों का ज्ञान होता है, जिसके आधार पर ली जाने वाली फ़सल को सन्तुलित मात्राओं में पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने हेतु आवश्यकतानुसार रासायनिक खाद का प्रयोग किया जा सकता है तथा अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है।

मृदा का नमूना लेना व उसका महत्व

मृदा परीक्षण के लिये यह आवश्यक है कि प्रयोगशाला से प्राप्त नमूना खेत की सम्पूर्ण मिट्टी का प्रतिनिधित्व करे। क्योंकि बहुत बड़े ज़मीन के टुकड़े से अर्थात् लगभग एक हेक्टेयर समतल ज़मीन से एक नमूना लेना होता है जिस पर इस भूमि का सही परीक्षण निर्भर करेगा।

मृदा नमूना लेने की विधि

1. सामान्यत: मिट्टी का नमूना लेने के लिये जिस भूमि का नमूना हो, उसके भिन्न-भिन्न स्थानों पर 8-10 निशान लगा लें।
2. मिट्टी का नमूना लेते समय ऊपरी सतह पर पड़े खरपतवार, पत्तों और पौधों के अवशेष आदि को इस प्रकार निकाल देना चाहिए जिससे भूमि की ऊपरी सतह सुरक्षित बनी रहे।
3. फ़सल काटते ही मिट्टी का नमूना शीघ्रातिशीघ्र लेने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि अगली फ़सल के लिए परीक्षण परिणाम समय पर प्राप्त हो सकें। फ़सल खड़ी होने पर नमूना न लें।
4. यदि एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की मिट्टी हो या खेत के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न फ़सलें ली गई हों तो एक हिस्से का अलग-अलग नमूना लेना चाहिए।
5. ऐसे स्थान जैसे गड्ढा, नाली, मेड़, सड़क आदि के नमूने नहीं लेने चाहिए।
6. नमूना लेने के लिए खेत में 8-10 स्थान छाँट लें जो गोबर के ढेरों से काफी दूर हों।
7. नमूने के लिए 10 x 10 वर्ग सेमी० के आकार का15 सेमी० गहरा गड्ढा खुरपी या अन्य यन्त्र की सहायता से बना लें। तब ऐसे गड्ढे की दीवार की ओर से पतली व बराबर परतें भूमि की सतह से उस गहराई की मिट्टी इकट्ठा कर लें।
8. एकत्रित की गई मिट्टी को खूब मिला लें और उसमें से बड़े पत्थर, जो कि भूमि में सामान्य तौर पर नहीं होते, हटा दें।
9. भूरी मिट्टी को लेकर एक जगह मिला लें और उसे चार बराबर भागों में बाँट कर आमने-सामने के दो भागों की मिट्टी लेकर अन्य दोनों भागों की मिट्टी हटा दें।
10. बचे हुये भाग की मिट्टी को पूर्ववत फैला लें और चार बराबर भागों में बाँट लें और इस बार दूसरे आमन-सामने के भागों की मिट्टी प्राप्त करें। इस क्रिया को तब तक दुहराना चाहिए जब तक कि आधा किलोग्राम नमूना न

रह जाये।

11. मृदा के नमूनों को परीक्षण के लिये साफ-सुथरी थैलियों में डाल दें और लेबिल लगा कर नाम, पता, खेत का खसरा नं० व फ़सल-चक्र आदि का ब्यौरा लिख दें तथा प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेज दें जहाँ उसकी जांच होती है।

मृदा-नमूना लेने के सम्बन्ध में विशेष सावधानियाँ

1. जिन स्थानों की मिट्टी क्षार, लवण या अम्लीयता से ग्रसित हो, वहाँ विभिन्न गहराइयों से मिट्टी के नमूने भेजे जायें।
2. नमूना कम्पोस्ट आदि के ढेर, नीची ज़मीन या पानी की नाली के बिल्कुल नज़दीक से न लें।
3. ध्यान रखें कि नमूना लेने वाली जगह पर ताज़ी खाद चूना या कोई भूमि सुधारक रसायन आदि तत्काल न डाला गया हो।
4. ऊसर आदि की समस्या से ग्रस्त खेत का नमूना न लें।
5. खेत का नमूना बुआई से करीब एक महीने पहले लें।
6. जहाँ तक सम्भव हो एक खेत का एक ही नमूना लें।
7. बड़ी फ़सल वाले खेत से नमूना न लें। यदि नमूना लेना जरूरी हो तो पौधों की लाइनों के बीच वाले स्थान से नमूना लें।
8. भूमि परीक्षण की रिपोर्ट के अनुसार उर्वरकों और भूमि सुधारक रसायनों का सही मात्रा में इस्तेमाल करें।

प्रयोगशाला में प्राप्त नमूने की जांच आधुनिक विधि एवं उपकरणों की सहायता से प्रशिक्षित सहायकों द्वारा सामान्यत: 7-8 दिन में कर ली जाती है। परिणाम के आधार पर उर्वरक संस्तुति का नमूना देने वाले को भेज दिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषणों की संक्षिप्त व्याख्या

मिट्टी परीक्षण द्वारा भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की मात्रा के आधार पर इसे कम, मध्यम व उत्तम श्रेणियों में निम्नलिखित तालिका के अनुसार बाँटा गया है।

तालिका 1. भूमिक का रासायनिक विश्लेषण

उपलब्ध तत्व (किलो/हेक्टेयर)	कम	मध्यम	उत्तम
नाइट्रोजन	150 - 200	200-400	400-600
फॉस्फोरस	5-10	10-20	20-40
पोटाश	200-250	250-400	400-600

यदि मिट्टी में कोई तत्व कम हो तो उसमें उस तत्व को प्रदान करने वाले उर्वरकों को डालने की बहुत आवश्यकता होती है।

यह जानने के लिए कि प्रति हेक्टेयर कितना पोषक तत्व देना होगा, हमें उर्वरक विश्लेषण या ग्रेड का अवश्य पता होना चाहिए। उर्वरकों की बहुत सी ग्रेड या कोटियाँ हैं। विश्लेषण या ग्रेड निकालने के लिये उर्वरक में मौजूद प्रत्येक पोषक तत्व की प्रतिशत मात्रा रासायनिक रीति से निकाली जाती है।

$$\text{पोषक तत्व की मात्रा} = \frac{\text{पोषक तत्व की प्रतिशत मात्रा}}{\text{उर्वरक का कुल भार}} \times 100$$

उर्वरक अनुपात पोषक तत्वो का परस्पर अनुपात बताता है। उदाहरण के लिए किसी 10:10:10 ग्रेड वाले उर्वरक में NPK 1:1:1 होगा, और 8:32:32: ग्रेड वाले उर्वरक में NPK 1 : 4: 4 होगा।

प्रति हेक्टेयर कितना उर्वरक लगाना चाहिए यह बात इस तथ्य पर निर्भर है कि पोषक तत्व की कितनी मत्रा की आवश्यकता है। और उर्वरक कौन सा ग्रेड का मिलता है। किसी क्षेत्र में फ़सलों पर मिट्टियों के लिए उर्वरक की आवश्यक मात्रा निकालने के लिए हमें यह बातें जान लेनी

चाहिए।

1. उर्वरक में कौन से पोषक तत्वों की जरूरत हैं।

2. अधिक से अधिक पैदावार या सबसे अधिक मुनाफा देने वाली पैदावार के लिए प्रत्येक पोषक तत्व कितना चाहिए।

इन प्रश्नों के उत्तर कैसे निकालेगें? इसके लिए कई तरीके उपयोगी हो सकते हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं-

1. बढ़ती हुई फ़सलों पर हम पोषक तत्व की भूख के चिन्ह (हीनता के चिन्ह) ढूंढ सकते हैं।

2. उर्वरक के पोषक तत्वों और उनकी आवश्यक मात्राओं का पता लगाने के लिए आप मृदा परीक्षण का विश्लेषण करा सकते हैं।

3. आप पौधा परीक्षण का उपयोग करा सकते हैं।

4. आप उर्वरक के क्षेत्र परीक्षण करा सकते हैं।

मृदा परीक्षण से किसी क्षेत्र के लिए सामान्य सिफारिशें की जा सकती है। इन सिफारिशों का आधार बहुत सारे खेत पारखियों और अच्छे किसानों के अनुभवों पर आधारित होना चाहिए।

■■■

Society of Pilgrimage Studies

4A / 2 / 1 Muirabad, Allahabad, UP 211002, India

President : Dr. Rana P. B. Singh *Secretary* : Dr. D. P. Dubey

Preamble

- Pilgrimage to sacred places is an ancient and continuing tradition in all the cultures of the world. The various forms and structures involved therein form a unique faithscape where various dimensions of faith meet. Pilgrimage is a process, fluid and changing phenomenon, spontaneous, initially unstructured and outside the bounds of religious orthodoxy. The ecological mysteries and invisible revelations related to man's cosmic integrity may be visioned and experienced through the pilgrimage system. There exist strong linkage among faith system, pilgrimage and tourism—all moving to unravel the mysteries and powers of the earth-places.

Plan

- The SPS, established in 1989, aims to promote the overall perspectives and dimensions of pilgrimage institution in the context of inter-disciplinary approach, preservation and conservation of pilgrimage centres and monuments, planning of sacred places to make them better for pilgrimage without disturbing the religious glory, checking the human and environmental pollutions at sacred places through mass awareness campaigns, and finally revitalizing the deeply involved values at sacred places for attracting more people in search of revelation and peace.

Theme

- The SPS is interested o support and encourage any aspect of study like pilgrimage studies, conceptual frame, cosmic purview and sacred ecology, historical outlook, travel genre, typology and hierarchy of sacred places, sacred time, sacred rituals, sacred functionaries, sacred organisations and systems, and heritage preservation.

Function

- The SPS functions around two broad activities ; (a) organisation of international conference and, (b) publication of Bulletin. The first international conference on "*Pilgrimage Traditions*" was organised on Oct. 14-16, 1990, at Vrindavan, India. The second conference on "*Pilgrimage Tourism and Conservation of Cultural Heritage*" was organised on January 21-23, 1995 at Allahabad, India. The third conference on "*Cultural Heritage of Allahabad*" was held on February 3-5, 1996 at Allahabad. Based on invited papers and presentations in the conferences, the Pilgrimage Studies series is published, which includes *Kumbhaparva Prayāga* (1989), *Pilgrimage Studies : Text and Context* (1990), and *Pilgrimage Studies : Sacred Places, Sacred Traditions* (1995), and *Triveni : Essays on the Cultural Heritage of Allahabad* (1996).

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार **'राजीव'**	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार **'राजीव'**	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	[illegible]	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

जुलाई-अगस्त 1997

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913 :
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 4-5

जुलाई-अगस्त 1997

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत,
500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक 25 रु०,
एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

इस अंक का मूल्य 7 रु०

◆

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

◆

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

◆

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

◆

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

◆

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

◆ ◆

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद!

विज्ञान का जुलाई-अगस्त 1997 अंक आपके हाथों में है। आपको इस अंक में परिषद् के यशस्वी प्रधानमंत्री प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी का यात्रा संस्मरण भी पढ़ने को मिलेगा। डॉ० मिश्र अपनी 100 दिनों की अमेरिका-यात्रा से सकुशल वापस लौट आये हैं और अच्छी खबरें भी लाये हैं। आपके पुत्र श्री आशुतोष मिश्र, जो अमेरिका में कार्यरत हैं, को डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त हो गई। उनके शोध ग्रन्थ पर 'वाइबा' और दीक्षान्त समारोहों के अवसरों पर प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी वहीं थे। एक और अच्छी खबर। डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी को उनकी पुस्तक 'जल प्रदूषण' पर भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 20,000 रु० का पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया है।

पिछले मई-जून अंक में आपने विज्ञान वक्तव्य में "क्लोनिंग" से संबंधित मेरे विचार पढ़े। इस बीच 'मानव क्लोनीकरण' की संभावनाओं और समाज पर इसके प्रभाव से संबंधित समाचार अखबार की सुर्खियों में रहे।

गत 14 मई 1997 को सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद के वनस्पति विज्ञान विभाग में "शुड ह्यूमन क्लोनिंग रिसर्चेज बी बैण्ड"(क्या मानव क्लोन बनाने संबंधी अनुसंधान कार्यों पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए) विषय पर एक वाद-विवाद प्रतियोगिता हिन्दी और अँग्रेजी दोनों ही भाषाओं में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई।

इस प्रतियोगिता में 10 छात्रों और 3 छात्राओं ने भाग लिया। इन्हें प्रथम चरण में 40 छात्र-छात्राओं की प्रतियोगिता पहले ही करा कर चुना गया था। इसमें से 7 ने पक्ष और 6 ने विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत किए। प्रतियोगिता के निर्णायकों का कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राणि विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव जी, वनस्पति विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० डी० डी० नौटियाल जी और इविंग क्रिस्चियन कॉलेज के वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री युद्धवीर चड्ढा ने किया।

पुरस्कृत प्रतियोगियों की सूची निम्नवत है-

1. श्री ऋषि कुमार बी० एस-सी० प्रथम वर्ष जीव-विज्ञान (पक्ष में) प्रथम पुरस्कार
2. कु० शक्ति खरे बी० एस-सी० तृतीय वर्ष जीव-विज्ञान (विपक्ष में) द्वितीय पुरस्कार
3. श्री रूपेश चन्द्र बी० एस-सी० तृतीय वर्ष, जीव-विज्ञान (विपक्ष में) तृतीय पुरस्कार
4. कु० अभिलाषा बी० एस-सी० तृतीय वर्ष, जीव-विज्ञान (पक्ष में) सांत्वना पुरस्कार
5. श्री हेमन्त बाजपेयी बी० एस-सी० द्वितीय वर्ष, जीव-विज्ञान (पक्ष में) सांत्वना पुरस्कार

इनके अतिरिक्त जीव विज्ञान, तृतीय वर्ष के विद्यार्थी सर्वश्री अतुल कुमार, अनुज श्रीवास्तव, पवन कुमार दुबे, अमित श्रीवास्तव, वीरेन्द्र सिंह, निर्भय निरंकार, प्रदीप कुमार और कु० विनीता त्रिपाठी ने भी भाग लिया। इस अवसर पर विद्वान निर्णायकों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। संचालन कॉलेज के वनस्पति विज्ञान विभाग के रीडर डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव और धन्यवाद ज्ञापन वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया।

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस पर 'कचरे के ढेर पर बैठे शहर : क्या करें, क्या न करें' विषय पर संगोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई।

शेष फिर,

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवस्तव

■■■

भारत एवं विश्व के संवेदनशील जैविक विविधता बाहुल्य क्षेत्र

❑ डॉ० सतीश कुमार शर्मा

क्षेत्रीय वन अधिकारी, अरावली
वृक्षारोपण परियोजना झाडोल (फ०)
जिला उदयपुर (राज०) -313 702

हमारे देश सहित संसार के कई देशों के कतिपय क्षेत्रों में जैविक विविधता अनुपम है। इन क्षेत्रों में सुदूर भूतकाल के एक लम्बे विकास के बाद ऐसे विशेष जलवायु एवं सूक्ष्म जलवायु युक्त आवास विकसित हुए जिनमें विशिष्ट जैविक पुंज पनप सका है। ये विशिष्ट जैविक विविधता वाले स्थल मानवता की अनमोल धरोहर हैं। परन्तु अनेक कारणों से ये धरोहर स्थल संकटों से घिरते जा रहे हैं। जिससे इनकी आवासीय विशिष्टता का क्षरण होता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में इन स्थलों की विशिष्ट जैविक विविधता भी अपना मूल स्वरूप खोती जा रही है तथा अनेक जातियों के समक्ष अस्तित्व का संकट खड़ा हो रहा है।

संसार के ऐसे संवेदनशील स्थलों (Hot spots) की एक लम्बी फेहरिस्त है तथा शनैः-शनैः यह बढ़ती जा रही है।

भारत में जैविक दृष्टि से संवेदनशील स्थल

भारत में जलवायु विभिन्नता की वजह से विपुल आवास विविधता पनपी है तथा उसी अनुपात में जैविक विविधता भी पनपी है। परन्तु अनेक नकारात्मक कारकों की वजह से अनेक जैविक विविधता बाहुल्य क्षेत्र संवेदनशील हो चुके हैं।

कुछ का विवरण सारणी-1 में दिया गया है:-

सारणी-1

नाम क्षेत्र	राज्य	अस्तित्व के लिए प्रमुख खतरे
लोकटक झील	मणिपुर	झील शुष्कन
मनास	आसाम	बढ़ती जनसंख्या, अवैध शिकार एवं व्यापार
नारायण सरोवर	गुजरात	खनन
गिरवन	गुजरात	बढ़ती जनसंख्या
कच्छ रण	गुजरात	मानवीय कारक
साइलेंट वैली	केरल	जल विद्युत हेतु प्रस्तावित बांध
पोयमकुट्टी वैली	केरल	बांध निर्माण
पालनी पहाड़ियाँ	तामिलनाडु	बढ़ती जनसंख्या एवं ट्यूरिस्टों का निर्बाध आगमन
नीलगिरी पहाड़ियाँ	तमिलनाडु	चाय-काफी के बढ़ते बगीचे, शहरीकरण, निर्बाध ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ
कौड़ाई झील	तमिलनाडु	वाहनों से फैलता प्रदूषण, अपशिष्ट, अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधयाँ
ऊटी झील	तमिलनाडु	ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ, झील में अपशिष्ट निस्तारण

नाम क्षेत्र	राज्य	अस्तित्व के लिए प्रमुख खतरे
पुलिकट खारे पानी की झील	तमिलनाडु	तलछट का जमाव
दून घाटी	उत्तर प्रदेश	खनन
अरावली पर्वतमाला	राजस्थान	बढ़ती जनसंख्या एवं खनन
सरिस्का	राजस्थान	खनन
केवलादेव घना वेटलैण्ड, भरतपुर	राजस्थान	ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ, शहर का फैलाव
थार मरुस्थल	राजस्थान	बढ़ती मानव एवं पशु आबादी
शिवालिक पहाड़ियाँ	हिमाचल प्रदेश	खनन
चिल्का झील	उड़ीसा	व्यापारिक स्तर पर मछली एवं झींगा आखेट
सुन्दरवन	प० बंगाल	तटीय आवास का क्षरण
रेणुका झील	हरियाणा	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ
डल झील	जम्मू-कश्मीर	अतिक्रमण
हिमालय	जम्मू-कश्मीर	बढ़ती जनसंख्या, जल विद्युत् परियोजनाएँ, सेब तथा चीड़ के फैलते प्लांटेशन
अण्डमान नीकोबार द्वीप समूह	-	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ
पश्चिमी घाट	-	विभिन्न विकासीय गतिविधियाँ विशेषकर कोंकण रेलवे परियोजना
उत्तर पूर्वी हिमाचल	जम्मू-कश्मीर	बढ़ती जनसंख्या, झूम खेती

सारणी -1. का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि बढ़ती मानव एवं पशु आबादी, अतिक्रमण, अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ, मोनोकल्चर, प्रदूषण, खनन, जल-विद्युत् परियोजनाएँ आदि ऐसे प्रमुख नकारात्मक कारक हैं जो भारत की जैविक विविधता के लिए खतरा बनते जा रहे हैं।

भारत के बाहर यानि संसार के नक्शे पर दृष्टि डालें तो पता चलता हैं कि संसार के अन्य देश भी अपनी जैविक विविधता के क्षरण से परेशान है। संसार के कुछ संवेदनशील स्थलों की सूची सारणी-2 में दी गई है:-

सारणी - 2

नाम	स्थल देश/विश्व के क्षेत्र	अस्तित्वके लिए मुख्य खतरे
अमेजन	लेटनि अमेरिका	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ अपशिष्ट निस्तारण
हडसन खाड़ी	अमेरिका-कनाडा	बांध
अलास्का	अमेरिका	प्रदूषण
आर्कटिक टुण्ड्रा	उत्तरीध्रुव	पेस्टीसाईड तथा रेडियो सक्रिय पदार्थों से प्रदूषण, तेल हेतु खुदाई
एटार्कटिका	दक्षिणी ध्रुव	खनन, ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ, प्रदूषण
राईन नदी	स्वीटजरलैण्ड	विषैले रसायन
ब्रीटनी सागर तट	फ्रान्स	तैल का फैलाव
मैडागास्कर	फ्रान्स	पशुओं द्वारा चराई एवं अग्नि
सेंट हेलेना द्वीप	फ्रान्स	अंधाधुंध विदोहन
सैचलीज द्वीप	फ्रान्स	अंधाधुंध विदोहन
लार्ड हौवे द्वीप	फ्रान्स	अंधाधुंध विदोहन
मसाई मारा	केनिया	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गति-विधियाँ
विक्टोरिया झील	केनिया	अत्यधिक मत्स्य आखेट, प्रदूषण, विदेशी वनस्पति एवं जंतुओं का प्रवेश
मौरिशस	केनिया	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधयाँ
कैलोईट द्वीप	फिलिपाईन	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ
एल्प्स	यूरोप	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ
मालदीव द्वीप	यूरोप	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ

नाम	स्थल देश/विश्व	अस्तित्वके लिए मुख्य खतरे के क्षेत्र
कैरिबियान द्वीप समूह	यूरोप	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ अपशिष्ठ, भारी धातुएँ
भूमध्य सागरीय तट	यूरोप	अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ ट्यूरिस्टों द्वारा फेंका गया प्लास्टिक का सामान

सारणी- 2 से स्पष्ट होता है कि संसार के जैविक रूप से धनी क्षेत्रों में अत्यधिक ट्यूरिस्ट गतिविधियाँ, प्रदूषण, बांध निर्माण, अंधाधुध विदोहन आदि निर्णायक क्षति पहुंचा रहे हैं। विभिन्न देश ट्यूरिज्म के जरिये विदेशी मुद्रा कमाने या मौज-मस्ती के लिए आई जैविक विवधता को दांव पर लगा रहे हैं। हमें नियंत्रित ट्यूरिज्म को ही अपनाना पड़ेगा। समुद्रों में तैल परिवहन एवं तैल सम्बन्धी दुर्घटनाओं से होने वाला रिसाव भी जैविक विविधता के लिए बहुत बड़ा खतरा साबित हो रहा है। प्रजातियों के विलुप्तीकरण का खतरा बड़े भू-भागों की बजाय छोटे-छोटे द्वीपों पर अधिक है। गत 400 साल में लगभग 108 पक्षियों की प्रजातियाँ विलुप्त हुई हैं जिनमें 97 जातियाँ छोटे द्वीपों की निवासी थीं। सेंट हेलेना, लार्ड हांवे, सेचलीज द्वीपों की 90 प्रतिशत से ज्यादा एण्डेमिक वानस्पतिक प्रजातियाँ विलुप्तीकरण के खतरे से घिरी हुई हैं। विभिन्न छोटे द्वीपों की 75 प्रतिशत स्तनधारी जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। छोटे द्वीपों की जातियाँ ऐसे वातावरण में विकसित हुई हैं जहाँ उनके प्राकृतिक दुश्मन विद्यमान नहीं है। वे नं तो देशान्तर गमन करती हैं, न बचाव के लिए कहीं प्रस्थान करती हैं। उनके पास परभक्षियों से बचाव के साधन भी सीमित हैं। यही कारण है कि छोटे द्वीप जैविक दृष्टि से अधिक संवेदनशील हैं।

संसार के विभिन्न संवेदनशील स्थानों व अन्य भागों पर नज़र डालें तो हम पायेंगे कि विलुप्तीकरण के दौरान हम ने निम्न कितनी जातियों को खोया है (देखें सारणी-3)-

सारणी-3

संवर्ग	विलुप्त जातियाँ	खतरे से घिरी जातियाँ
पौधे	384	19078
अपृष्ठवंशी	98	1355
मछलियाँ	23	343
उभयचारी	2	50
सरीसृप	21	170
पक्षी	113	1037
स्तनी	83	497
योग	724	22530

उपरोक्त सूची से स्पष्ट है कि हमने 724 जातियों को खो दिया है तथा उनकी 30 गुनी जातियाँ विभिन्न खतरों से घिरी हुई हैं। आने वाली पीढ़ीयों को जीन पुंज सुरक्षित मिले इसके लिए जरूरी है कि हर स्थिति में विलुप्तीकरण पर प्रभावी अंकुश लगाया जाए। यह कार्य हम सभी के सहयोग से ही संभव हो सकता है।

■■■

"यदि मैंने अन्य लोगों की अपेक्षा और दूर तक देखा है, तो यह इसलिए संभव हुआ कि मैं असामान्य शक्ति या योग्यता आदि गुणों से संपन्न व्यक्तियों के कंधों पर खड़ा था।"

- सर आइज़ेक न्यूटन

पर्यावरण-मित्र वृक्ष : पीपल

❑ डॉ दीपक कोहली

उ० प्र० सचिवालय, उद्योग अनुभाग- 3,
एनेक्सी भवन (चतुर्थ तल), लखनऊ 226001

पीपल का वृक्ष भारत के प्रत्येक कोने में पाया जाता है। इसका वानस्पतिक नाम **फाइकस रेलिजियोसा** है, जो कि ''मोरेसी'' कुल से सम्बन्धित है। बगंला भाषा में इसे ''अश्वत्थ'', अंग्रेजी में ''बो ट्री'', गुजराती में ''जारी'', मलयालम में ''अवासी'' एवं संस्कृत में ''पीपल'' कहा जाता है। यह पेड़ मंदिरों के पास तथा सुन्दर छाया या चमकीली हरी पत्तियों के कारण सड़कों के किनारे रोपित किया जाता है। पीपल का वृक्ष अत्यन्त पवित्र माना जाता है। हिन्दू तथा बौद्ध धर्म में इस वृक्ष का बहुत महत्व है। इसके वानस्पतिक नाम का ''रेलिजियोसा'' शब्द पीपल के धार्मिक महत्व को अंगीकार करता है।

पीपल वह महान वृक्ष है जिसके नीचे बैठकर बुद्ध सिद्धार्थ से ''महात्मा बुद्ध'' बने। पीपल के नीचे समाधि और ध्यान लगाने पर उन्हें आत्मज्ञान की चेतना का बोध हुआ था। अतः बौद्धों के लिये पीपल से बढ़कर अन्य कोई पेड़ पवित्र नहीं है। यह एक सदापर्णी पेड़ है, हाँ शुष्क जलवायु में यह अल्पकाल के लिए पर्णविहीन हो जाता है। जनवरी से मार्च के बीच नयी पत्तियाँ आ जाती हैं। इन पत्तियों से पूर्णमासी की रात को जब चन्द्रमा की आभा झलकती है तो ऐसा लगता है जैसे हर पत्ती एक चन्द्रमा बन गई हो। रात में यह दृश्य कुछ डरावना लगता है। हो सकता है इसी कारण यह धारणा बनी हो कि पीपल में पिशाच का निवास है। कुछ भी हो झिलमिलाती पत्तियाँ, जिन पर चन्द्रमा का बिम्ब होता है, हवा में डोलने पर बड़ी मनोहर लगती हैं। पीपल एक विशाल वृक्ष है जिसकी ऊँचाई 20 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियों का आकार बहुत सुन्दर है। इसका डण्ठल या वृंत हल्का और चपटा होता है , जिससे सदैव डोलता रहता है। इसी से इसे चलदल भी कहते हैं और कुछ कहावतें बन गई हैं, यथा —

(क) ''बिना बोलाए मूरख बोले,
बिना बयारे पीपल डोले।''

(ख) ''पीपर पात सरस मन डोला।''

इसके पत्ते का आकार हृदय की बनावट जैसा होता है, जिसका अन्त फीते के समान पतला होता है। पत्ते का डण्ठल लम्बा होता है और दोनों को मिलाकर लम्बाई 15-20 से०मी० होती है।

पीपल के फूल रंगहीन, महत्वहीन एवं छुपे हुए होते हैं। फल अप्रैल-मई के महीने में आते हैं। ये गोलाकार तथा 1-2 से०मी० और कुछ दबे-दबे होते हैं। ये गुच्छे के रूप में तने से चिपके रहते हैं। इनका रंग पकने पर गहरा बैंगनी हो जाता है। इसके बीज छोटे होते हैं।

पीपल के वृक्ष की आयु बहुत लम्बी होती है। श्री लंका में उत्तर भारत से ले जाया गया पीपल का वृक्ष जिसकी अनुमानित आयु 2147 वर्ष है, आज भी विद्यमान है। इसके अतिरिक्त भारत में भी कई सौ वर्ष प्राचीन पीपल के वृक्ष ज्ञात हैं। से भारत वर्ष में यह वृक्ष वैदिक काल पाया जाता है।

पीपल को इतना पवित्र एवं धार्मिक आस्था से जुड़ा वृक्ष माना जाता है कि काटा नहीं जाता। ऐसा मानते हैं कि इसकी जड़ों में "ब्रहमा", तने में "विष्णु" एवं प्रत्येक पत्ते पर "महेश" का निवास है।

इसके बीज धरती पर कठिनाई से ही अंकुरित होते हैं। यह अक्सर दीवारों की दरारों अथवा पेड़ की खोह में खुद उग जाता है। इसकी जड़ें बहुत तेजी से बढ़ती हैं और फिर अपने मेजबान को मजबूती से जकड़ लेती हैं। यह दूसरे पेड़ की शाखाओं पर भी उग जाता है। इसमें खुश्क और सूखी जलवायु बर्दाशत करने की क्षमता है।

"पर्यावरण" की दृष्टि से पीपल के वृक्ष की उपयोगिता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने शोध द्वारा सिद्ध कर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक ऑक्सीजन उत्पादित कर पर्यावरण को शुद्ध करने वाला वृक्ष "पीपल" ही है। प्रकृति की यह अनुपम सम्पदा एक घण्टे में एक हज़ार सात सौ किग्रा ऑक्सीजन देती है। सर्वाधिक ऑक्सीजन उत्पादनकर्ता के अतिरिक्त यह पेड़ अपनी छाया और सुन्दरता के लिये भी जाना जाता है। इस पेड़ की पत्तियों का उपयोग हाथी, भेड़ और बकरी के चारे के लिए भी होता है। इसका पत्ता सूखने के पश्चात् कड़ा हो जाता है और इस पर कलाकारों द्वारा बहुरंगी सुन्दर चित्र बनाये जाते हैं। इन चित्रों को अक्सर पर्यटक केन्द्रों पर देखा जा सकता है।

■ ■ ■

विज्ञान कविता

मिटे तिमिर अज्ञान का

❑ डॉ० दिनेश मणि

प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
संयुक्त मन्त्री एवं सहायक सम्पादक 'विज्ञान'

विज्ञान की बातें सब करते हैं,
विज्ञान न कोई अपनाता ।
विज्ञान यदि सब अपनाते होते,
तो फिर काहे का झगड़ा होता ।
अपने दिल की देहरी पर
जला दीप विज्ञान का ।

करें प्रकाशित अन्तस अपना,
मिटे तिमिर अज्ञान का ।
हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो,
हमें सत् असत् का ज्ञान रहे ।
प्रगति पथ पर चलें सदा,
गन्तव्य का अनुमान रहे ।

❑ अखिलेश आर्येन्दु
मिलिन्दु साहित्य समिति (बैंक ऑफ बड़ौदा के बगल)
फूलपुर, इलाहाबाद- 212402

मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा

मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा,
स्वर्ग बने यह वसुधा और जीवन सारा।
अन्वेषण अभिसारित पावन
नए सृजन में रत होएं जन
खुशहाली का हेतु निराला,
मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा।
कल-बल अविचल बढ़े जगत में
न्यूट्रॉन-प्रोट्रॉन-इलेक्ट्रॉन के मग में
विध्वंस कभी न होए तारा
मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा।
शोषण, दमन से सब को मुक्ति दिलाएं
सब के हित में यह उपयोगी होएं
श्रम का यथायोग्य फल सारा
मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा।
जल, थल और समीर उपयोगी
इसे करें न प्रदूषित न बनाएं अनुपयोगी
वातावरण का सुसर्जन सारा
मानवता के हित में हो विज्ञान हमारा।

■■■

पर्यावरण हो शुद्ध हमारा

पर्यावरण हो शुद्ध हमारा,
जीवन इससे बनता प्यारा।
आत्मीय सुख, शान्ति वृद्धि हो
मानवीय भावना में सुवृद्धि हो
सूर्य बने हृदय जन-जन का
चन्दा-सा आचार भुवन का
दोहन उतना करें सृष्टि का
जिससे बंजर न हो धरती
जंगल भी मंगलमय होएं
हो, ऐसी रीति , नीति संसृति की।
विज्ञान-ज्ञान का हो सदुपयोग
मानवता का तब प्रगति सुयोग
पर इसका यदि दुरुपयोग
बनेगा जग में प्रबल कुयोग।
पर्यावरण का रख कर ध्यान
हर कार्य करें बढ़ाएँ ज्ञान
होगा जीवन स्वर्ग हमारा
जब पर्यावरण हो शुद्ध हमारा।

■■■

इलेक्ट्रॉन की खोज

❑ डॉ० कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मानखुर, मुंबई -400088

सचमुच आज इलेक्ट्रॉन की खोज के सौ साल पूरे हो चुके हैं। अप्रैल 1887 में ब्रिटिश वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने केवेन्डिश लेबोरेटरी में कुक्स नलिका पर कार्य करते हुए इलेक्ट्रॉन की खोज की थी। वही इलेक्ट्रॉन जो आज सारी वैज्ञानिक प्रगति का भूल है तथा इसे विगत सौ वर्षों के निरन्तर प्रयासों के बाद भी पूर्ण रूपेण नहीं समझा जा सका है। । बिना इलेक्ट्रॉन के विज्ञान पर कोई चर्चा ही संभव नहीं है। इलेक्ट्रॉन की खोज के पूर्व जॉन डॉल्टन का सिद्धान्त ही सर्वमान्य था कि किसी भी पदार्थ की सबसे छोटी संरचनात्मक इकाई परमाणु होता है जो कि अविभाज्य होता है। किन्तु टामसन ने जब यह सिद्ध किया कि परमाणु भी अन्य सूक्ष्म कणों से मिलकर बना होता है तथा उसमें ऋणात्मक आवेशयुक्त इलेक्ट्रॉन एक अभिन्न घटक होता है तो डॉल्टन का सिद्धान्त प्रासंगिक नहीं रहा।

कुक्स नलिका 60 सेन्टीमीटर लम्बी बेलनाकार सीसे की नली थी जिसके दोनों सिरों को एनोड एवं कैथोड से जोड़ दिया गया था। गैस के नली से बाहर निस्कासन हेतु एक चूसक पेय लगाया गया था जिससे नलिका के अंदर वायु का दाब घटाया जा सके। इस प्रकार नलिका के अंदर दबाव को एक मिलीमीटर पारे के स्तम्भ के हज़ारवें हिस्से तक कम कर दिया गया तथा कैथोड एवं एनोड को दस हज़ार वोल्ट से संयुक्त कर दिया गया। कम दाब पर नली के अंदर गैसों के अणु दूर-दूर थे तथा उच्च विभव पर आयनित हो गए एनोड (धनात्मक) प्लेट की ओर प्रवाहित होने लगे। चूंकि ये कैथोड प्लेट की ओर से आ रहे थे अतः इन्हें कैथोड किरणें कहा गया तथा धनात्मक प्लेट की ओर गति कर रहे थे अतः माना गया कि इन पर विपरीत आवेश यानि ऋणात्मक आवेश होगा।

टामसन ने एनोड एवं कैथोड प्लेटों के धातुओं को बार-बार बदल कर तथा नली में विभिन्न गैसों के साथ यह प्रयोग दुहराया किन्तु हर बार एक-सा ही परिणाम प्राप्त होता था। उन्होंने इन कणों के आवेश एवं द्रव्यमान का अनुपात भी ज्ञात किया जो कि एक स्थिरांक प्राप्त होता था। इन प्रेक्षणों के आधार पर टामसन ने बताया कि ये कण सार्वजनिक हैं तथा हर पदार्थ की मूल संरचनात्मक इकाई हैं। दो साल बाद टामसन ने प्रकाश-विद्युतीय (फोटो-इलेक्ट्रिक) एवं ताप-विद्युतीय (थर्मोइलेक्ट्रिक) प्रभावों का अध्ययन किया तथा पाया कि इन प्रक्रियाओं में भी उत्पन्न कणों के लिए आवेश एवं द्रव्यमान का अनुपात स्थिर था। अतः इन सूक्ष्म कणों को भी इलेक्ट्रॉन की संज्ञा दी गयी।

इलेक्ट्रॉन के अस्तित्व की खोज के बाद माना जाने लगा कि यदि परमाणु में ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन हैं तो उसी आवेश के बराबर एक धनावेशित कण भी होना चाहिए क्योंकि परमाणु उदासीन होता है। सन् 1911 में लार्ड रदरफोर्ड ने अल्फा कण प्रकीर्णन प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि परमाणु में एक नाभिक होता है जहाँ धनावेशित कण पाए

जाते हैं। नाभिक का आयतन संपूर्ण परमाणु के आयतन की तुलना में बहुत कम होता है। इन कणों को प्रोटॉन कहा गया। सन् 1932 में जेम्स चैडिवक द्वारा न्यूट्रॉन नामक उदासीन कण की खोज होने पर यह माना जाने लगा कि ये कण प्रोटॉन एवं न्यूट्रॉन से मिलकर बने हैं। पाल डिराक द्वारा पाजिट्रॉन की खोज तथा 1937 में कॉस्मिक किरणों पर अध्ययन के दौरान म्युआन नामक अन्य कण, जो कि आवेश में इलेक्ट्रॉन के बराबर किन्तु द्रव्यमान में 210 गुना भारी था, की खोज के बाद तो अन्यान्य कणों का अस्तित्व खोजने की होड़ सी लग गयी। अब यह निर्णय करना कि कौन-सा कण सूर्वसूक्ष्म एवं पदार्थ की मूल रचनात्मक इकाई है, बड़ा मुश्किल हो गया। इन कणों के प्रतिकण भी खोजे गए। इन कणों को उच्च गति पर आपस में टकराने से अन्य कण बनते हैं जैसे दो इलेक्ट्रॉनों के आपस में टकराने पर इलेक्ट्रॉन एवं उसका प्रतिकण पाजिट्रॉन बनते हैं। इलेक्ट्रॉनों की नाभिक पर तीव्र गति से बमबारी करने पर इलेक्ट्रॉनों के साथ पाजिट्रॉन भी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह बात सामने आयी कि नाभिक में स्थित न्यूक्लिआन (प्रोटॉन-न्यूट्रॉन) भी मूलकण नहीं हैं तथा अन्य सूक्ष्मकणों से बने हैं। आज भौतिक विज्ञानी न्यूट्रॉन-प्रोटॉन की बात नहीं करते बल्कि इनकी संरचनात्मक इकाई क्वार्क की बात करते हैं। ये क्वार्क कई प्रकार के होते हैं तथा प्रतिकणों की तरह इनके भी प्रति क्वार्क होते है। ये क्वार्क ही भिन्न -भिन्न तरीके से जुड़कर विभिन्न कणों का निर्माण करते हैं तथा उच्च गति एवं ऊर्जा के साथ टकराने पर अपनी व्यवस्था में परिवर्तन कर अन्य कणों का निर्माण करते हैं। अब तक लगभग 200 मूलकणों की खोज हो चुकी है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्तर तक अनुसंधान के बाद भी एक बात जो निर्विवाद है वह है इलेक्ट्रॉन की सत्ता। एक शताब्दी पूर्व भी यह सबसे सूक्ष्म एवं मूलभूत कण था जो अविभाज्य था, आज भी उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वैज्ञानिक जगत आज भी इलेक्ट्रॉन को एकमात्र मूलभूत सूक्ष्मतम कण मानता है। ■■■

[पृष्ठ 11 का शेष भाग]

खा जाते हैं। इस पर पादप भक्षी माइट, **यूटेट्रानाइकस ऑरिएन्टेलिस** *(Eutetranychus orientalis)* का आक्रमण भी पाया जाता है जिसका कि कीट-नाशक मोनोक्रोटोफॉस 0.054% के छिड़काव द्वारा नियन्त्रण किया जा सकता है।

अत: सहजन अपनी सब्जी, औषधीय गुणों एवं उपयोगी लकड़ी के कारण एक बहुउपयोगी वृक्षों की श्रेणी में रखा जाता है। हमें चाहिए कि इस बहुउपयोगी वृक्ष को अपने किचिन गार्डन में लगाकर या घरों के आँगन में लगाकर अपने आस-पास हरियाली बढ़ाए, वातावरण को शुद्ध करें, ठण्डी हवा और छाँव से आनन्द विभोर हों और साथ ही साथ इसके उपयोगी उत्पादों का भी रसास्वादन करें एवं आर्थिक लाभ उठायें।

■■■

सहजन-एक बहुउपयोगी वृक्ष

❑ सहदेव चौहान एवं डॉ० मोहम्मद युसुफ

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान,
प्लॉट नं० 43अ, ए० सी० एफ० सी० कॉलोनी,
लोको शेड, जोधपुर (राज०)

सहजन की फलियों में सब्ज़ी के साथ-साथ औषधिय गुण भी अगणित हैं। इसकी लकड़ी पत्ती, फूल, छाल, जड़ तथा बीज बहुत उपयोगी है। इसलिए सहजन एक बहुउपयोगी वृक्ष के रूप में किचिन गार्डन तथा घरों के आँगन में लगाया जाता है। प्रस्तुत लेख में सहजन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

— सम्पादक

मनुष्य का आदिकाल से ही वृक्षों के प्रति उनके फल-फूलों, हरियाली एवं अन्य उपयोगी उत्पादों के कारण लगाव रहा है तथा आज भी इनके बारे में नित नई-नई जानकारियाँ जुटाने एवं खोज करने में लगा है। अनेक बहु-उपयोगी वृक्षों में से सहजन **(मोरिंगा ऑलिफेरा)** भी एक है। जो एक ओर रसोई में सब्ज़ी की जगह लेता है, तो दूसरी ओर अनूठे औषधिय गुणों से भरपूर है।

सहजन एक पर्णपाती वृक्ष है, जो भारत और अफ्रीका का स्वदेशी पेड़ है और इसे ड्रमस्टिक (Drumstick) के नाम से भी जाना जाता है। भारत में इसे सब्जी के रूप में बहुत काम लिया जाता इसलिए दक्षिण भारत में यह किचिन गार्डन में बहुतायत से लगाया जाता है। इसकी हरी पत्तियाँ एवं कोमल-फल, सब्जी बनाने के काम आते हैं।

सहजन के वानस्पतिक नाम **मोरिंगा ऑलिफेरा** में जीनस ''मोरिंगा'' का उद्दीपन मलयालम शब्द मुरिंगो (Muringo) से हुआ है। इसका कुल एकल जीनस मोरिंगेसी है। विश्व में इसकी 12 प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

सहजन विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। संस्कृत में इसे सोबन्जना (Shobanjana); हिन्दी में मूंगा, मूंगना, सहजना, सहजन; मराठी में सीवगी (Shevgi); तेलुगु में तीला मुनागा (Tella Munaga); गुजराती में मिधोसरागो (Midhosaragoa), सरागो (Saragao); बंगाली में सजीना (Sajina); मलयालम में मुरिना (Murina) सीगरू (Sigru), मोरिंगा (Moringa); तमिल में मुरूंगाई (Murungai); पंजाबी में सेंजना (Sainjna), सोंजना (Soanjna); असामी में सेजना (Saijna), सोजना (Sohjna); उड़ीया में सजीना (Sajina); संथाल में मुंगा अरक (Munga arak); उर्दू में सहजनो (Sahjnao); कन्नड़ में नूगी (Nugge), नूगीमारा (Nuggemara) तथा अँग्रेजी में ड्रमस्टिक, होर्स रेडिस ट्री (Horse raddish tree) कहते हैं।

सहजन भारत, अफ्रीका, श्रीलंका तथा अन्य देशों में भी पाया जाता है। यह छोटे या मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष होता है, तथा ऊँचाई लगभग 10 मी० से 12 मीटर और गोलाई 1 से 1.5 मी० होता है। इसके फूल सफेद, गुच्छे युक्त एवं सुगंधित होते हैं। नर्सरी अवस्था में यह बहुत तेजी से बढ़ता है, इसका पौधा नर्सरी में ही खेत या किचन गार्डन में लगाने के समय पर लगभग 1 मीटर तक का हो जाता है। साधारणत: दिसम्बर -जनवरी में पेड़ की पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा नई पत्तियाँ फरवरी-मार्च में आ जाती हैं। पेड़ जनवरी

से मार्च तक पुष्पित होता है तथा इसकी फलियाँ अप्रैल से जून तक पक जाती हैं।

सहजन जहाँ नमी होती है, वहाँ आसानी से उग जाता है, परन्तु यह वाटर लॉग क्षेत्र तथा रूक्ष पहाड़ी पर जहाँ मिट्टी शुष्क व छिछली हो नहीं उगता है। इसे कृषि-वानिकी, सामाजिक वानिकी तथा पड़ती भूमि पर आसानी से रोपा जाता है।

उपयोग

- सहजन की लगड़ी से खिलौने बनाए जाते हैं।
- इसकी टहनियाँ तथा पत्तियाँ ऊँट एवम् अन्य पशुओं के चारे के रूप में काम में आती हैं।
- इसकी फलियों को सब्जी एवं कढ़ी बनाने में काम में लाया जाता है।
- सहजन आयुर्वेदिक, हकीमी एवं अन्य प्राकृतिक औषधियों में भी काफी उपयोग में लिया जा रहा है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने इसकी छाल, जड़ फल, फूल, पत्तियाँ, बीज एवं गोंद को उपयोगी साबित किया है।
- इसका उपयोग डॉएयूरिटिक (Diuretic), स्फूर्ति दायक एवं एण्टीसेप्टिक के रूप में उपयुक्त है। पत्तियों एवं छाल के रस में जीवाणु-नाशक तथा कवक-नाशक गुण भी होते हैं।
- इसकी पत्तियों एवं फलों में खनिज पदार्थ एवं विटामिन्स 'ए' एवं 'सी' होता है। पत्तियों में कैल्सियम की मात्रा बहुत अधिक होती है, 100 ग्राम पत्तियों में करीब 440 ग्राम कैल्सियम पाया जाता है।
- बीजों से प्राप्त तेल में भी बहुत से अम्ल पाये जाते हैं।
- अधपके फलों की सब्जी का उपयोग करने पर खाँसी एवं बुखार को समाप्त करता है।
- ताजे जड़ के रस का सेवन 20 मिली० रोजाना 3-4 बार करने से दमा, गठिया, तिल्ली, यकृत तथा लगातार बुखार जैसी बिमारियों से छुटकारा मिलता है। यदि जड़ के रस का सेवन करने में तकलीफ हो, तो कच्चे फलों का शोरबा (Soup) मिलाकर लेने से आंत के कीड़ो की रोक-थाम करता है। उच्च रक्त-चाप को भी नियन्त्रित करने में सहायक होता है।
- सहजन की कोमल पत्तियों को मक्खन से घी बनाते समय डाल दे, तो घी जल्दी अलग होगा तथा साथ ही अच्छी महक देगा।
- पत्तियों का पेस्ट (Past) बाहरी घाव पर लगाने में काम आता है।
- बीजों से तेल निकालने (Extract) के बाद बची खली उर्वरक के रूप में काम आती है।

सहजन की उपयोगिताओं को देखते हुए यदि आपने -अपने आँगन में या किचन गार्डन में सहजन लगाया है तो यह जानना भी आवश्यक है कि इसकी देखभाल कैसे करें। क्या सहजन के पौधे में भी कीटों का आक्रमण या बीमारी का प्रकोप होता है? आइए इस पर भी एक नजर डालें।

भारत में सहजन पर कोई गंभीर बीमारी नहीं देखी गई है। केवल तमिलनाडु में जड़-सड़न (Root-Rot) **डिप्लोडिया** द्वारा प्रेक्षित की गई है। इसके अतिरिक्त केटरपिल्लर (Caterpillar) तथा एक तना छेदक इस वृक्ष को हानि पहुँचाते हैं। हैयरी केटर पिल्लर **यूप्टेरोट मोलिफेरा** *(Eupterote mollifera)* व **तारागामा शिवा** *(Taragama siva)* (विशेषत: राजस्थान में देखा गया है) पेड़ की पत्तियाँ पूर्णत: काकर पेड़ को निस्पत्रित कर देता है। इनके नियन्त्रण हेतु कीट-नाशक दवाएँ बी० एच० सी० 5% का बुर्काव या एण्डोसल्फान 0.07% का छिड़काव किया जाता है।

अन्य कीड़ों के लार्वा जैसे पेरिकेलिया रिसिनाई *(Pericallia ricinii)*; प्रोडिनिया लिटूरा *(Prodenia litura)*; **पोइक्लोसिरस पिक्टस** तथा **माइलोसिरस स्पि०** इसकी पत्तियों को

[शेष पृष्ठ 9 पर देखें]

आयुर्वेद चिकित्सा में रसशास्त्र

❑ आनन्द प्रकाश मिश्र

रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद-211002 (उ० प्र०)

दैवीय, मानुषी व आसुरी चिकित्सा पद्धतियों में रस-चिकित्सा का आधार अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। दार्शनिक रूप में शैव-तंत्रों में रस को ही 'ब्रहम' कहा गया है। जीवन-उक्ति ही वास्तविक मुक्ति है और उसकी प्राप्ति स्थिर स्वरूप देह या दिव्य देह से ही है। शरीर को स्थिर, निर्विकार व स्वस्थ बना कर दीर्घजीवन प्राप्त कर मुक्ति की चेष्टा करना ही साधन है। यह रस-रसायन-सेवन से सम्भव है। सांसारिक दु:खों (Physical ailments) से पार दिला सकने की शक्ति के कारण ही आयुर्वेद के श्रेष्ठतम धातु-रस को 'पारद' की संज्ञा प्रदान की गई है। पुरातन भारतीय ग्रंथों, जहाँ शिव-नृत्य (Dance of Shiva) से जगत् उद्भव की कल्पना की गई है, वहाँ शारद को शिवन्सार व गंधक को प्रकृतिरूप पार्वतीसार, माना गया है। इनका संयोग शारीरिक व्याधियों का नाशक है।

वनौषधि चिकित्सा में क्काथादि को बड़ी मात्रा में पीने पर अनिच्छा होने से तथा चिकित्सा के दीर्घकालीन लंघनादि से त्रस्त होकर चिकित्सकों का प्रयास रस-चिकित्सा की तरफ हुआ और शीघ्र प्रभावकारक होने से अत्यधिक प्रिय होने लगा। यही आयुर्वेदीय पद्धति में रस-शास्त्र की प्रसिद्धि का कारण है। साध्य रोगों में काष्ठ औषधियाँ कार्य करती हैं, किन्तु असाध्य रोगों में रसौषधि अधिक प्रभाव करती हैं, परिणामत: रसौषधियाँ प्रमुख हो गईं। वेदों में देहसिद्धि के लिये रस-विद्या का नाम आया है। **सुश्रुत** लौह-विज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता समझे जाते थे। चिकित्सा हेतु धातुओं में कनक, रजत, ताम्र, यशद्, वंग, सीसक, चपल, लौहादि का सेवन पूर्ण शोधनोपरान्त प्रशस्त किया जाता था।

रसशास्त्र में पारद (Mercury) सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। इसमें धातु, उपधातु, रत्न और दिव्य औषधियों को आत्मसात् (Amalgamation) करने की विशिष्ट शक्ति होती है। किन्तु यह शक्ति पारद में प्रसुप्त रहती है और इसे जागृत व उत्तेजित करने हेतु कई रासायनिक उपक्रम करने पड़ते हैं। आयुर्वेदिक ग्रंथों में पारद के शोध व सक्रियण हेतु 18 संस्कार वर्णित हैं, जिनमें आठ संस्कार प्रमुख हैं-

इत्यस्टौ सूत संस्कारा: समाद्रव्ये रसायने।

शेषा: द्रवयोपयोगित्वाम् न ते वैद्योपयोगिन:।।

पारद को संशक्त करने हेतु इसे दो शक्तिमान द्रव्यों- गंधक व अभ्रक के साथ बहुश: जारण कहते हैं। पारद को शक्ति देकर महारस बनाने के लिये इन आठ द्रव्यों का संसर्ग देते हैं- अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षीक, विमल, शिलाजीत, तुत्य, चपल व खपरिया। आयुर्वेद में पारद की उग्रक्रिया के वर्धन हेतु इन आठ उपरसों का सम्मिश्रण कराते हैं- गंधाश्म, गैरिक, कासीस, काँक्षी, हरताल, मन: शिला, अंजन व कंकुष्ठ। इनके अतिरिक्त आवश्यकता व स्थितिनुरूप कुछ साधारण रस तुल्य द्रव्यों को भी पारद के साथ मिलाया जाता है यथा- यह खनिज, वानस्पतिक व प्रणिज द्रव्य हैं कपर्द, नवसार, अग्रिजार, संखिया, गिरिसिंदूर, हिंगूल मुर्दासंख।

लौह सिद्धि के बाद सारा रस विज्ञान शरीर-वेध- देह-सिद्धि में लगाया गया। रसों के साथ अन्य काष्ठादिक मूल की औषधियाँ चिकित्सकीय कार्यों में प्रयोग की जाती रही हैं। आयुर्वेद चिकित्सा में धातुओं के साथ उपधातुओं के भी यौगिक व भस्म सावधानी के साथ प्रयोग किये जाते रहे हैं। महारसों, रसों व उपरसों के प्रयोग व प्रभाव के सन्दर्भ में आयुर्वेद में निम्नांकित मान्यता रही है-

अल्पमात्रोपयोगित्वादरूचेर प्रसंगत: ।

क्षिप्रभारोग्य दायित्वादौषधेभ्योअधिकोरस: । ।

किसी भी रस के बन जाने पर उसका स्वरूप वारितर होना चाहिए अर्थात् धातु का मारल करके भस्म बनने पर जल में तैरने योग्य हो जावे। पारद की वेधन क्षमता बढ़ाने के लिये उसका मर्दन भंग, अहिफेन संखिया, हरताल आदि द्रव्यों से करते हैं। रसशास्त्र में शोधनादि कर्म हेतु पंच मित्रकों, गुड़, गुंजा, टंकण, मधु, धृत का उपयोग भी बताया गया है। रसों के शोधनार्थ कुछ अन्य द्रव्यों का प्रयोग भी प्रशस्त किया गया है। सोंठ, मिर्च, कालीमिर्च, पीपल, लवण राई, मूली, धृतकुमारी, कांजी, नीबू, गोमूत्र, अजामूत्र, गुड़, तैल, दही, त्रिफला, इमली, हरिद्रा, पुनर्नबा, हींग, जीरा, अजवायन, तुलसी, गुलाब आदि।

प्राचीन काल में रत्नों में रसों व उनसे सम्बन्धित द्रव्यों के गुणावगुण का निर्धारण उनके औषधीय माहात्यम के आधार पर ही था। इनके भौतिक रसायनिक संघटनात्मक तत्वीय गुणों की स्पष्ट विवेचना उपलब्ध नहीं थी। विज्ञान के वृहत विस्तार के इस आधुनिक युग में कई रसादिक द्रव्यों का विश्लेषण उपलब्ध हैं यथा गैरिक Fe_2O_3, कासीस $FeSO_4.7H_2O$, हरताल $As_2 S_3$, अंजन $Sb_2 S_3$. Pbs, गिरिसिंदूर PbO_2, हिंगुल HgS, माक्षिक FeS (Pyrites), स्वर्णमाक्षिक $CuFeS_2$, अभ्रक Al व K के द्विक सिलिकेट + Fe; वैक्रान्त Al, Mg, Fe के बोरोसिलकेट, विमल FeS, रसपुष्प $Hg_2 Cl_2$, मकर ध्वज- Hg (1/2 भाग), गंधक (2 भाग), सोना (1/2 भाग), धृतकुमारी रस - $Hg I_2$ (1/5 भाग)।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त हो रहे धातु कीलेट उपचार पद्धति में सन्निहित जैवरासयनिक सिद्धान्तों व प्रक्रियाओं के आधार पर, आयुर्वेद में प्रतिष्ठित रसशास्त्र द्वारा देह सिद्धि की बात समझना कठिन नहीं रह जाता है। धातु आयन व यौगिक मानव शरीर प्रक्रम में अपनी अल्प उपस्थिति (Micro & Ultramicronutrients) से ही सम्पूर्ण एन्ज़ाइमों की अभिक्रिया को नियंत्रित कर जैविक क्रियाओं का सन्तुलन बनाते हैं। इस शताब्दी की अत्यधिक भयावह बीमारी- कैन्सर व एड्स (Acquired Immuno Deficiency Syndrome) के उपचार में रसशास्त्र की सक्षम भूमिका(धातु आयन व काष्ठौषधियों के प्रभावी कीलेट) हो सकती है, इस दिशा के कई प्रयोग किसी सीमा तक सफल भी रहे हैं। वनस्पतियों में जहाँ क्लोरोफिल के केन्द्र में मैग्नीशियम है, कुछ निम्नवर्गीय जन्तुओं व समुद्री जीवों के रक्त रंग का आधार कॉपर, वैनेडियम व मैंगनीज हैं, वहीं मानव शरीर में हीमोग्लोबिन व सायनोकोबालैमीन के केन्द्र में क्रमश: आयरन व कोबाल्ट आयन स्थित हैं । जैव-वैज्ञानिकों के संज्ञान में यह भी आया है कि कार्बनिक द्रव्यों से उत्पन्न शारीरिक विषाक्तता को रसचिकित्सा हेतु हो रहे एन्टीबायोटिकों के अधिक प्रयोग को सावधानीपूर्वक घटाया जा सकता है। अन्य और कई अवसरों पर आयुर्वेद की इस पद्धति के माध्यम से एलोपैथिक दवाओं की विषाक्तता के दूरगामी प्रभावों से देह की सुरक्षा की जा सकती है।

■ ■ ■

"मैं यह नहीं जानता कि दुनिया को मैं कैसा दिखाई देता हूँगा, लेकिन अपनी दृष्टि में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं साधारण की अपेक्षा अधिक सुन्दर सीप अथवा अधिक चिकने स्फटिक की खोज में अपना ध्यान जब-तब हटाते हुए, समुद्र के किनारे अठकेलियाँ करता हुआ केवल एक बालक ही रहा हूँ, जबकि सत्य का महान सागर मेरे सामने अनाविष्कृत (अज्ञात) फैला हुआ था।"

- सर आइज़ेक न्यूटन

क्या शाकाहार पूर्ण पौष्टिक भोजन है?

❑ राजेन्द्र सिंह सैनी
डी-753 सरस्वती बिहार,
दिल्ली-34

आज की इस दौड़ में हमने अपने खान-पान को भी भुला दिया है। आज अधिकांश लोग मांसाहारी हो गए हैं। संभवत: यही कारण है नई-नई बीमारियों का जन्म हो रहा है। हमारा शरीर प्राकृतिक तत्वों से मिलकर बना है। अत: मनुष्य को वही भोजन करना चाहिए जिसमें सात्विक गुण हो, क्योंकि शरीर किसी बाह्य तत्व का बोझ सहन नहीं कर सकता है। अब हमारा पौष्टिक भोजन क्या हो ? यह सोचनीय प्रश्न नहीं है। विशेषज्ञों के अनुसार शाकाहार ही पौष्टिक भोजन है।

शाकाहारी भोजन में उचित मात्रा में शक्तिवर्धक तत्व होते हैं। शाकाहारी भोजन स्वस्थ, सबल और दीर्घायु बनाता है जबकि मांसाहारी व्याधियों से घिरे होते हैं। शाकाहार के संबंध में अनेक शोध भी हो चुके हैं। इसका परिणाम स्वास्थ्य कें लिए साकारात्मक ही पाया गया है। शाकाहारी मांसाहारियों की अपेक्षा सहनशील, शक्तिशाली और परिश्रमी होते हैं। इसके अलावा शाकाहारी भोजन का रसायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि यह मांसाहारी भोजन से कई मायनों में अधिक पौष्टिक होता है जैसे प्रति सौ ग्राम अण्डों का विश्लेषण करने पर 13.3 प्रतिशत प्रोटीन, 0 प्रतिशत कार्बो हाईड्रेट्स, 13.3 प्रतिशत फैट, 0 प्रतिशत फाइबर, 1.0 प्रतिशत मिनरल्स व 173 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। जबकि प्रति सौ ग्राम सोयाबीन से 43.2 प्रतिशत प्रोटीन 20.9 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स, 19.5 प्रतिशत फैट, 3.7 प्रतिशत फाइबर, 4.6 प्रतिशत मिनरल्स और 432 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। ऐसे प्रति सौ ग्राम बकरे का मांस 21.4 प्रतिशत प्रोटीन, 0 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस, 23.6 प्रतिशत फैट, 0 प्रतिशत फाइबर, 1.1 प्रतिशत मिनरल्स, 18 कैलोरी ऊर्जा रखता है जबकि प्रति सौ ग्राम सोठ से 23.6 प्रतिशत प्रोटीन, 56.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स, 3.5 प्रतिशत मिनरल्स और 330 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

भेड़ के मांस में 18.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स, 2.6 प्रतिशत फैट, 0 प्रतिशत फाइबर, 1.1 प्रतिशत मिनरल्स, और 118 कैलोरी ऊर्जा प्रति सौ ग्राम भाग में निश्चित होती है। जबकि प्रति सौ ग्राम अरहर में 22.3 प्रतिशत प्रोटीन, 57.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेटस, 1.7 प्रतिशत फैट, 1.5 प्रतिशत फाइबर, 3.5 प्रतिशत मिनरल्स और 335 कैलोरी ऊर्जा निश्चित होती है। इसी प्रकार मछली की अनेक किस्मों में प्रति सौ ग्राम भाग की रासायनिक पौष्टिकता इस प्रकार है- प्रोटीन 8.9 से 76.1 प्रतिशत, फाइबर 0 प्रतिशत और ऊर्जा 59 से 413 कैलोरी जबकि मात्र मूंगफली व तरबूज के सौ ग्राम बीजों की पोषकता यूं है—26.2 से 34.1 प्रतिशत प्रोटीन, 26.7 से 45 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स, 39.8 से लेकर 52.6 प्रतिशत फाइबर, 1.6 से लेकर 25 प्रतिशत मिनरल्स और 570 से 628 कैलोरी ऊर्जा।

अब देखिए फाइबर मांस में बिलकुल नहीं है जबकि रोगों से लड़ने की ताकत यही जुटाता है। इसके विपरीत हर शाकहरी भोजन में फाइबर की उपस्थिति निश्चित है। इसके

अतिरिक्त हरी सब्जियाँ तो विटामिन्स की खान हैं। अगर कुछ विटामिन रह भी जाएँ तो इनकी पूर्ति दूध, दही व मक्खन से की जा सकती है।

शाकाहार के संबंध में अमेरिका में हुए एक अध्ययन से पता चला है कि जो अमेरिकी महिलाएँ शाकाहार करती हैं उन्हें छाती का कैंसर कभी न होने की संभावनाएँ होती हैं। शाकाहार में अंगूर, पपीते व हरी पत्तेदार सब्जियों के सेवन करने वालों को भोजन नली का कैंसर बहुत कम होने का खतरा रहता है।

शाकाहार के संबंध में जर्मनी की इंस्टीट्यूट ऑव सोशल मेडिसिन एण्ड ऐपिडेमियोलोजी द्वारा भी सर्वेक्षण किए जा रहे हैं।

इस संस्था के शोधकर्ताओं का मानना है कि शाकाहारियों के रक्त में यूरिक ऐसिड की मात्रा कम होती है। इससे रक्त चाप सामान्य रहता है जबकि मांसाहारियों में इसकी अधिकता पाई जाती है। शाकाहार के बारे में कुछ जाने माने सितारों का भी मत साकारात्मक है। एवरेस्ट की चोटी पर झण्डा फहराने वाले मोहनसिंह कोहली के पिता शाकाहारी थे। बौद्ध भिक्षु पूर्ण शाकाहारी होते हैं तभी उनकी आयु अधिक आंकी गई है।

विश्व के प्रसिद्ध महापुरुष शाकाहारी थे जिनमें प्लूटार्क, सर आईजक, न्यूटन, टाल्सटाय मिल्टन, अरस्तु, बर्नार्ड शॉ आदि के नाम प्रमुख है। शाकाहार ने ही उनके बन्द ज्ञान की पंखुड़ियों को खोलने में मदद की। महान वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्सटाइन का कथन आज भी सत्य है- शाकाहार का हमारी प्रकृति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इससे तो इंसान का भाग्य पलट सकता है।

"कैंसर एण्ड अदर डिसीज फ्राम मीट कन्जम्पशन" पुस्तक के लेखक लियोनार्डो ब्लानचे ने कैंसर के अनेक मरीज़ों का इलाज किया है। उहोंने पाया कि कुल संख्या का एक तिहाई भाग जिस कैंसर से पीड़ित मिला वह पेट का कैंसर ही था। उनके अनुसार पेट में पूरी तरह न पचने वाले खाद्य पदार्थों से ऐसा संभव हुआ। मांस ही ऐसा भोजन है जो देर से पचता हैं जबकि शाकाहार करने वाले ऐसी शिकायतें कम करते हैं।

आर्थिक दृष्टि से शाकाहार, मांसाहार की अपेक्षा अधिक सस्ता पड़ता है। जैसे अण्डे से प्राप्त एक ग्राम प्रोटीन की कीमत 15 पैसे है जबकि गेहूँ से प्राप्त एक ग्राम प्रोटीन का खर्च केवल 5 पैसे ही पड़ता है। सोयाबीन से प्राप्त एक ग्राम प्रोटीन की कीमत तो मात्र 3 पैसे ही पड़ती है। इसी प्रकार अण्डं से सौ कैलोरी ऊर्जा प्राप्त करने के लिए एक रुपया खर्च आता है जबकि सोयाबीन से सौ कैलोरी ऊर्जा प्राप्त करने का खर्च मात्र 6 पैसे ही पड़ता है।

शाकाहरी भोजन चाहे जितना ही भारी हो लेकिन मांस से पहले पचता है। यह भूख को पूर्ण रूप से तृप्त करता है। इससे मोटापा आने के अवसर बहुत कम होते हैं। शाकाहारी के शरीर में रक्त के संचार की गति तेज़ होती है। शाकाहार की महत्ता को गास्पल ऑव जीसस क्राइस्ट में भी बताया गया है कि यदि तुम शाकाहारी भोजन को नियमित अपनाओगे तो तुम्हें नया जीवन व शक्ति मिलेगी।

मांसाहारी जिस मांस को खाते हैं वह न जाने कैसे पशुओं का होता है। शहर में घूमते इन आवारा पशुओं को अनेक बिमारियाँ घेरे रहती हैं। जब इन्हें काटा जाता है तो क्या इनके शरीर की जांच की जाती हैं? मांसाहार अवश्य ही मानव शरीर को विकृत करता है। शाकाहार वास्तव में मनुष्य के मन और शरीर को सुदृढ़ बनाता है। अत: निषकर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि हर हाल में शाकाहार मांसाहार की अपेक्षा अधिक लाभदायक होता है और फिर मनुष्य को प्रकृति में रहने की आदत है तो उसे उसी के अनुरूप आचरण भी करना चाहिए।

■ ■ ■

हल्दी

❑ डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

उपाध्याय कैंसर शोध संस्थान
परिसर कोठी काके बाबू,
देवकाली मार्ग, फैजाबाद-224001

हल्दी के नाम से कोई भी अपरिचित नहीं है। यह सदैव से हमारे भोजन और स्वास्थ्य से संबंधित रही है। जब हम स्वास्थ्य की चर्चा करते हैं तो बरबस हल्दी के विविध उपयोगों का स्मरण हो आता है। दवा के रूप में हल्दी की चर्चा से चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग-हृदय भरे पड़े हैं। आयुर्वेद की इस वृत्तत्रयी से ही हल्दी के विविध औषधीय गुणों का प्रचार और प्रसार हुआ है। चरक संहिता में हल्दी को हरिद्र और दरुहरिद्रा नामों से संबोधित किया गया है तो एक अन्य स्थान पर भ्रमवश एक हरे रंग के कपोत प्रजाति के पक्षी हरिताल-हारिल को (चरक संहिता में) हरिद्रा से जोड़ दिया गया है। (च० स० सू० सं० 26, 114) ।

वास्तव में हरिद्रा जंजीवार द्वीप का मूल वासी है तथा इसे वनस्पति शास्त्र में **कुरकुमा लांगा** के नाम से जाना जाता है। इस पौधों की जड़ ही अधिकतर उपयोग में लायी जाती है। यह जड़ हल्के पीले रंग की सुंगध युक्त होती है। इस जड़ में निहित पीला रंग, एक रसायन जिसे कुरकुमिन कहा जाता है- के कारण होता है। यहाँ पर यह चर्चा करना अनुचित नहीं होगा कि हल्दी खाने के कार्य से लेकर कपड़ों के रंगने के कार्य तक में प्रयोग होती रही है।

हल्दी के घाव भरने की क्षमता से सभी परिचित हैं परन्तु इसके अन्य जैव रसायनिक गुणों तथा औषधीय गुण, जो धीरे-धीरे वैज्ञानिक शोध साहित्य की श्रीवृद्धि करते जा रहे हैं, ध्यान देने योग्य हैं।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि लिपिक पर ऑक्सीडेशन मानव कोशिकाओं को नष्ट कर उसे वृद्धावस्था की ओर अग्रसर कर देता है, परन्तु हल्दी में व्याप्त एक प्रोटीन जिसे टरमरिक एण्टीऑक्सीडेन्ट प्रोटीन कहा जाता है, इस वृद्धावस्था के प्रभाव को कम करती है।

शरीर में चोट लगने तथा सूजन आ जाने पर साइटोकाइनिन्स नामक जैन-रसायनिक पदार्थ शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। परिणामस्वरूप नाइट्रिक-ऑक्साइड की उत्पत्ति होती है जो कि डी० एन० ए० को प्रभावित कर कैंसर उत्पन्न करने की प्रेरणा देता है। हल्दी में पाया जाने वाला कुरकुमिन नामक रसायन इस प्रक्रिया को रोकने में सक्षम है। इस प्रकार हल्दी कैंसर रोधी भी है।

शरीर के अंगों में चोट लगने के परिणामस्वरूप एक विशिष्ट जैव रसायन-इकोसाचयड्स-जो प्लेटलेट्स की उत्पत्ति को प्रेरित करते हैं जिसके फलस्वरूप शोथ की वृद्धि होती है। (उस स्थान पर जहाँ चोट लगी है), हल्दी में इस शोथ को घटाने की क्षमता है जो कि इकोसान्वायड्स की जैव-रसायनिक प्रक्रिया को प्रभावित करने के परिणाम स्वरूप प्रकट होती है। यह हल्दी के एक दूसरी औषधीय आयाम का द्योतक है।

कुरकुमिन के कारण हल्दी एड्स पीड़ित रोगियों के लिए भी लाभप्रद पायी गयी है। कुरकुमिन HIV Type 1 के इन्टीग्रेज इन्जाइम को रोधित करता है, इसमें भविष्य में AIDS (एड्स) के रोगियों के हेतु नवीन औषधियों की सम्भावना है।

हल्दी सायनाइड मिले भोज्य पदार्थो में इस विष की उपस्थति जानने के लिए तो प्रयोग होती है, साथ ही इसका दाल, साँभर, रसम और अन्य व्यन्जनों में उपयोग परम स्वास्थकर है। अतएव हमें हल्दी का उपयोग करते रहना चाहिए जिससे इसके अनेक नैसर्गिक गुणों के कारण, हम स्वस्थ रह सकें। ■■■

फर्क स्त्री-पुरुष के दिमाग़ों का

❑ मनीष कुमार गोरे

डी-753, सरस्वती विहार,
दिल्ली-110034

क्या आपने कभी यह जानने की कोशिश की है कि शेर, सांप जैसे किसी जंगली जानवर या फिर किसी भयानक दृश्य को देखकर आपके रोंगटे क्यों खड़े हो जाते हैं? आपका हाथ किसी गर्म वस्तु के संपर्क में आते ही झटके के साथ पीछे क्यों हट जाता है? रात में सोते समय मच्छरों के काटने पर हमारा हाथ स्वतः उस ओर क्यो चला जाता है? यही नहीं हमें जब भूख-प्यास लगती है या नींद आती है तो इसका पूर्वानुमान हमें कैसे होता है?

यदि आप इन पर सूक्ष्मता से विचार करेंगे तो पाएंगे कि हमारे शरीर में कुछ ऐसा केन्द्रीय अंग है जो इस प्रकार की अनेकानेक ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं का नियमन करता है। यह केन्द्रीय अंग हमारा 'मस्तिष्क' ही है जिसके न होने पर हम कुछ भी सोच नहीं सकते। हमारे शरीर में जितनी भी ऐच्छिक क्रियाएँ होती है उन सभी पर मस्तिष्क का नियन्त्रण होता है। इसके अतिरिक्त हमारे शरीर में ऐसी भी अनेक घटनाएँ निरंतर होती रहती हैं जिनका हमें आभास भी नहीं होता। इन्हें अनैच्छिक क्रियाएँ कहते हैं, इन क्रियाओं पर मनुष्य की इच्छाओं का वश नहीं चलता। ऐच्छिक क्रियाओं के साथ-साथ समस्त अनैच्छिक क्रियाएँ भी मस्तिष्क के द्वारा ही संचालित होती हैं। दिल की धड़कन, रक्त परिसंचरण, श्वसन क्रिया आदि कुछ प्रमुख अनैच्छिक क्रियाएँ हैं।

यदि 'मानव मस्तिष्क' को उसकी कार्य क्षमताओं के आधार पर दुनिया का सबसे बड़ा अजूबा कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसकी अद्भुत क्षमताओं और जटिल संरचनाओं को समझने के प्रयत्न मनुष्य सदियों से कर रहा है। लेकिन अभी तक हम इस 1500 ग्राम वजनी मस्तिष्क को एक कण भर समझ सके हैं। नई-नई मशीनों और तकनीकों की मदद से वैज्ञानिक मस्तिष्क में झांकने की कोशिश कर रहे हैं। इसके प्रारंभिक निष्कर्ष ही चौंकाने वाले हैं। खोजों से पता चला है कि स्त्री और पुरुष अपने मस्तिष्क का इस्तेमाल अलग-अलग तरीके से करते हैं। यहाँ प्रश्न श्रेष्ठता का नहीं, भिन्नता का है। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष की शारीरिक संरचना में फर्क होता है उसी प्रकार उनके मस्तिष्क के कार्य करने के ढंग भी भिन्न हैं।

अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि महिलाओं में यदि मनोभावों को पढ़ने की क्षमता अधिक होती है तो पुरुषों में तार्किकता। कुछ समान मसलों पर स्त्री और पुरुष अपने मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों का उपयोग करत हैं। इसी तरह महिलाओं में पूर्वाभास की क्षमता अधिक होती है। दूसरी ओर शांत अवस्था में भी पुरुष मस्तिष्क के उस हिस्से में सक्रियतापाई गई जो क्रोध जैसे आक्रामक मनोभावों को नियंत्रित करता है। शायद इसलिए पुरुष, स्त्रियों से व्यवहार में कहीं अधिक आक्रामक होते हैं।

वैज्ञानिक अब मस्तिष्क के स्त्रियोचित और पुरुषोचित व्यवहार के कारणों का पता लगा रहे हैं। इसका कारण जैविक है या परवरिश और परिवेश भी इसे निर्धारित करते हैं? विभिन्न प्रयोगों के जो नतीजे मिल रहे हैं उनके आधार पर कहा जा सकता है कि मस्तिष्क की संरचना को प्रकृति और परवरिश, दोनों प्रभावित करते हैं।

लड़कियाँ अपनी गुड़िया को सजाती, संवारती और दुलराती हैं तो लड़के सुपर मैन, ही मैन, रैम्बो और फैण्टम की तरह उछल कूद और धूम धड़ाके वाले खेल पसंद करतेहैं। हम उम्र लड़की और लड़कों के हाव-भाव, पसंद और व्यवहार में फर्क होता है। इसी प्रकार महिला तथा पुरुष के मस्तिष्क की क्रियाओं में भी फर्क होता है। महिलाएँ दूसरे व्यक्ति के चेहरे को आसानी से पढ़ लेती हैं जबकि पुरुष को अन्दर के मनोभावों का पता तब चलता है जब किसी का चेहरा उदास दिखाई देता है या जब किसी के चेहरे पर आंसू की बूंदें गालों पर लुढ़क जाती हैं। महिलाओं को लच्छेदार शब्दों का प्रयोग करने में भी महारत हासिल होती है। उनकी मीठी-मीठी बातों के जाल में फंसकर पुरुष लट्टू हो जाते हैं। कभी ये बातें अवास्तविक लगती थीं लेकिन अब बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि स्त्री और पुरुष के मस्तिष्क में कुछ ऐसी बात है जो उनके व्यवहार और आचरण में भिन्नता लाती है।

साक इंस्टीट्यूट के न्यूरोसाइंटिस्ट साइमन लेवी ने 1991 में इस तथ्य को उजागर किया था कि समलैंगिकों और सामान्य लोगों के मस्तिष्क में भिन्नता होती है। स्त्री और पुरुष के मस्तिष्कों के बारे में भी उनका कहना है कि इनमें खासी भिन्नता होती है। अगर यह बात सही है तो उसकी संरचना में भी फर्क होना चाहिए। वैज्ञानिक कई दशकों से इस भिन्नता को खोजने में लगे हुए हैं। लेकिन मस्तिष्क की अत्यंत जटिल संरचना के कारण उन्हें अभी बहुत थोड़ी सफलता मिल पाई है।

अत्याधुनिक इमेजिंग मशीनों ने न्यूरोसाइंस (तंत्रिका, स्नायुविज्ञान) के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी है। इस मशीन की मदद से वैज्ञानिक अब स्त्री और पुरुष के मस्तिष्कों की भिन्न कार्यशैली की झलक पा सकने में सफल हो रहे हैं। 'फंक्शनल मैग्नेटिक रिजोनेंस इमेंजिंग' (एफ एम आर आई) जैसे तरीकों से अनुसंधान कर्ता अब मस्तिष्क की चिन्तन शीलनता, महसूस करने या याद करने की क्रिया को पकड़ सकते हैं।

न्यूरोसांइटिस्टों का कहना है कि स्त्री और पुरुष का मस्तिष्क निष्क्रिय हो या जब पढ़ने जा रहे हों तो वे भिन्न तंत्रिका कोशिका पिण्डों का इस्तेमाल करते हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य अन्वेषण के दैरान सामने आया है कि स्त्रियां विषाद के क्षणों में पुरुष की तुलना में अपने मस्तिष्क का अधिक इस्तेमाल करती हैं। लेकिने जब उन्हें गणितीय सवालों को हल करना होता है तो सम्भवतः पुरुषों की तुलना में मस्तिष्क का कम उपयोग करती हैं।

पेंसिलवेनिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक रुबेन गुट ने हाल ही में स्त्री और पुरुष के मस्तिषकों में भिन्नताओं का पता लगाने के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने पाजिट्रॉन एमिशन टोमोग्राफी (पेट) तकनीक से मस्तिष्क की सक्रियाता का पता लगाने के लिए 37 पुरुष और 24 स्त्रियों को रेडियोएक्टिव ग्लूकोज के इंजेक्शन दिए और फिर उन्हें बिल्कुल खाली दिमाग आधा घण्टा आराम करने को कहा गया। उन्हें मध्यम प्रकाश वाले कक्ष में लिटा दिया गया और उनके सिर को 'पेट' मशीन के 'टनल' के भीतर डाला गया। चूंकि मस्तिष्क की प्रमुख खुराक ग्लूकोज है और मस्तिष्क का सक्रिया भाग निष्क्रिय भाग की अपेक्षा अधिक ग्लूकोज लेता है, रेडियो धर्मी ग्लूकोज का मस्तिष्क के सक्रिय हिस्से से अधिक विकिरण होता है और 'पेट' से इसका पता आसानी से लगाया जा सकता है।

प्रयोग के दैरान इन लोगों से अपने दिमाग को बिल्कुल हल्का रखने और कुछ न सोचने के लिए कहा गया । पुरुषों में निष्क्रिय अवस्था के दौरान मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब के टेम्पोरल लिम्बिक सिस्टम में सक्रियता पाई गई। मानव मस्तिष्क का यह आदिम हिस्सा साधारण आक्रामक मनोभावों जैसे क्रोध, झुंझलाहट आदि को नियंत्रित करता है इसलिए इसे अक्सर दिमाग का 'पाजी हिस्सा' कहा जाता है। दूसरी ओर स्त्रियों में मस्तिष्क की निष्क्रियाता के दौरान तंत्रिकाओं पीछे का 'संगुलेट जाइरस' विकास काफी बाद में हुआ और यह गूढ़ मनोभावों जैसे आँखों से नाराजगी का जाहिर करना, को नियंत्रित करता है। प्रयोग के दौरान तेरह पुरुष और चार स्त्रियों के मस्तिष्क में सक्रियता क्षेत्र समान था। लेकिन समस्या तो यह है कि कुछ न सोचने की स्थति लगभग असंभव है। प्रयोग के दौरान एक व्यक्ति यह सोच रहा था कि 'यह प्रयोग कब पूरा होगा'। जब पुरुषों से कुछ न सोचने के लिए कहा गया तो उनमें से कुछ सेक्स और फुटबाल के बारे में सोचने लगे जबकि स्त्रियाँ कुछ न सोचने की स्थिति में शब्दों

का ताना-बाना बुनने लगी। लेकिन पुरुष मस्तिष्क में वह तंत्रिकाएँ हमेशा सक्रिया पाई गई जो 'एक्शन' और 'क्रोध' को नियंत्रित करती हैं।

हाल ही में अनुसंधानकर्ताओं ने एक और रहस्योद्‌घाटन किया कि तुकान्त कविता पढ़ने में स्त्री और पुरुष अपने मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों का प्रयोग करते हैं। भेल विश्वविद्यालय के शाविट्ज दम्पत्ति ने स्त्री-पुरुष के मस्तिष्क की दक्षता आंकने के लिए नमूने के तौर पर तुकान्त शब्दों को रखा था। इसके लिए उन्होंने 19 पुरुष और इतनी ही स्त्रियों को चुना। ई० एम० आर० आई० मशीन सेजांच के दौरान पता चला कि इन तुकान्त शब्दों को पढ़ने में सभी 19 पुरुषों का 'फ्रंटल जाइरस' सक्रिय था। यह क्षेत्र बाई भोंह के पीछे होता है। यह निष्कर्ष तो सामान्य था क्योंकि वैज्ञानिकों को एक शताब्दी पहले ही यह पता चल गया था कि मानव मस्तिष्क का बायाँ हिस्सा भाषा और शब्दों को नियंत्रित करता है। लेकिन 19 महिलाओं में से 11 के मस्तिष्क के बाएँ हिस्से के साथ दाया हिस्सा भी सक्रिया पाया गया । मस्तिष्क का दायां हिस्सा भावनाओं को नियंत्रित करता है। शायद इसीलिए महिलाएं भाषा में अधिक से अधिक भावों (मनोदशाओं) का प्रयोग करती हैं। जब वे शब्दों का प्रयोग करती हैं तो उसमें तर्क (बाएँ मस्तिष्क) के साथ ही भावनाओं (दाएं मस्तिष्क) का भी प्रयोग करती हैं। एक और रोचक तथ्य सामने आया । इन उन्नीस महिलाओं में से आठ (यानि 42 प्रतिशत) के मस्तिष्क ने पुरुषों के मस्तिष्क की तरह ही काम किया। इस संदर्भ में न्यूरोलॉजिस्ट मेलिसा हाइन्स का कहना है कि कुछ महिलाओं के मस्तिष्क पुरुषों की तरह होते हैं। इसलिए उन्होंने उन लड़कियों का उदाहरण दिया जो अपने खिलौनों के बजाए लड़कों के खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करती हैं।

एक अन्य प्रयोग के दौरान 22 पुरुषों और 22महिलाओं को एक ही सवाल दिया गया और 'पेट' (पाजिट्रान एमीशन टोमोग्राफी मशीन) से उनके मस्तिष्क की जांच की गई । इनमें से आधे लोगों ने एक सौ से अधिक अंक प्राप्त किए जबकि अन्य लोगों नें 540 या उससे अधिक अंक प्राप्त किए। इनमें औसत पुरुषों की अपेक्षा प्रतिभाशाली पुरुषों का टेम्पोरल लोब अधिक सक्रिय पाया गया। (टेम्पोरल लोब कान के पीछे के हिस्से में स्थित होता है जो श्रवण शक्ति, याददाश्त, समय तथा आत्मानुभूति को नियंत्रित करता है।) यहाँ मानसिक क्षमता और प्रयास में संबंध जाहिर होता है लेकिन जिन महिलाओं ने 700 अंक पाए उनके टेम्पोरल लोब में अधिक सक्रियता नहीं दिखी तथा ऐसे संकेत मिले कि औसत महिलाओं की तुलना में इन महिलाओं ने अपने मस्तिष्क का प्रयोग अधिक तीव्रता से नहीं किया। इस मामले में वैज्ञानिकों का कहना है कि जिन महिलाओं ने सवाल हल करने में औसत महिलाओं से अधिक अंक अर्जित किए, संभवतः वे औसत महिलाओं की अपेक्षा अपने मस्तिष्क का अधिक कुशलता से प्रयोग कर रही थीं ।

मस्तिष्कों में लैंगिक भिन्नता को सिद्ध करने के लिए अत्याधुनिक तकनीक 'ब्रेन इमेजिंग स्टडी' है। इसकी वैज्ञानिक लोकप्रियता के कारण कुछ महिलाओं द्वारा इसाक विरोध भी शुरू हो गया है। उन्हें भय है कि इस भिन्नता के कारण वे पुरुषों से पिछड़ जाएँगी। महिलाओं का इस मुद्दे पर चिंतित होना सही भी है क्योंकि हाल की विज्ञान पत्रिकाओं में जो लेख छपे हैं उनमें इस तरह की बातें लिखी हैं कि पुरुष मस्तिष्क को फालतू सूचनाओं से आसानी से दिग्भ्रमित नहीं किया जा सकता। पुरुषों की तुलना में महिलाओंमें तर्क से भावनाओं को अलग करने की क्षमता कम होती है तथा पुरुष मस्तिष्क की सोच सीधी होती है। ऐसी कुछ बातें एनी मोहर तथा 'डेविड जेलेस' ने 1991 में अपनी एक पुस्तक 'ब्रेन सेक्स' में लिखी थीं। जिस तरह मानव नस्लों में 'आई-क्यू' (इंटेलिजेंसकोशंट-बुद्धिलब्धि) स्तर की भिन्नता के विज्ञान को लेकर बावेला मचा था उसी तरह मस्तिष्क की भिन्नता के मसले पर होहल्ला मचा हुआ है। 1880 में अँग्रेज सर्जन जेम्स सी ब्राउन ने पुरुष और स्त्री के मस्तिष्क की बनावट में थोड़ी भिन्नता की बात कही थी। बाद के वर्षों में पता चला कि महिलाओं के मस्तिष्क में 'कार्पस कैलोसम' पुरुषों की तुलना में बड़ा होता है। 'कार्पस कैलोसम' [illegible]त्रिका कोशिकाओं का वह गुच्छा है जिसके माध्यम से मस्तिष्क का बायां हिस्सा दांए हिस्से को सुनाता तथा उससे बात करता है। 1991 में न्यूरोसाइंटिस्ट रोजर गोरस्की तथा लाउश ऐलन ने 146 मस्तिषकों की जांच के

बाद पाया कि महिलाओं के कैलोसम का पिछला हिस्सा पुरुषों की तुलना में 23 गुणा बड़ा होता है । इससे वैज्ञानिकों के इस विश्वास की पुष्टि होती है कि पुरुषों में मस्तिष्क के बांए और दांए हिस्से, एक दूसरे की गतिविधियों के बारे में बहुत नहीं जानते जबकि महिलाओं में दोनों हिस्सों में स्नायुविक बातचीत लगातर होती रहती है। महिलाओं का मस्तिष्क एक ऐसे घर के समान है जिसमें परस्पर एकता और तालमेल है जबकि पुरुषों का मस्तिष्क ऐसा घर है जिसमें बंटवारा हो चुका है।

यहा एक बात ध्यान देने की है । बड़े आकार का कार्पस कैलोसम तभी महत्व रखता है जब उमसें 'न्यूरोनों' (तंत्रिका कोशिकाओं) की संख्या अधिक हो क्योंकि यह कोशिकाएँ संदेशवाहक का कार्य करती हैं। जिस प्रकार टेलिफोन केबिल की संचार-क्षमता तभी अधिक हो सकती है जब उसमें तारों की संख्या अधिक हो। लेकिन वर्षों के अनुसंधान के बाद भी वैज्ञानिक यह निश्चित तौर पर नहीं बता सकते कि महिलाओं के कार्पस कैलोसम में पुरुषों की अपेक्षा कितने अधिक न्यूरोन होते हैं।

न्यूरोसाइंटिस्टों को अभी एक ऐसी चीज़ के बारे में पता है जो मस्तिष्क में तंत्रिकाओं के गुच्छों को खत्म कर सकती है, घटा सकती है या बढ़ सकती है। यह चीज है सेक्स हॉर्मोन । जन्म से पहले भ्रूण का मस्तिष्क सेक्स हार्मोन में डूबा रहता है। ये हार्मोन भ्रूण के लिंग के अनुसार भिन्न प्रंकार के तथा भिन्न मात्रा में होते हैं। चिकित्सीय नैतिकता हार्मोन को बदलकर भ्रूण के मस्तिष्क पर उसके प्रभाव को परखने की अनुमति नहीं देती लेकिन प्रकृति के साथ ऐसी कोई रोक नहीं है और यदा-कदा ऐसी गड़बड़ी हो जाया करती है जब मादा भ्रूण में नर हार्मोन 'टेस्टोस्टेरोन' का प्रभाव अधिक हो जाता है। इस प्रकार के बर्थ डिफेक्ट को 'सी ए एच' कहते हैं। ऐसी लड़िकायाँ अन्य औसत लड़िकियों की दुलना में अधिक सक्षम और सक्रिया होती हैं। अतिरिक्त टेस्टोस्टेरोन की वजह से उनके जनन अंगों में मर्दानगी के लक्षण आ जाते हैं । ऐसी लड़कियाँ उस प्रकार के खिलौने को खेलना अधिक पसंद करती हैं जिसे आमतौर पर लड़के खेलते हैं। इसी प्रकार ऐसे लड़के जिनमें टेस्टोस्टेरोन के प्रति संवेदन शीलता के लक्षण नहीं थे, भाषा के मामले में अपने अन्य सामान्य भाइयों से बेहतर थे लेकिन वे अन्य पुरुषोचित कार्यों में उतने सक्षम नहीं थे।

स्त्रियोचित गुणों वाले लड़के (जिनके हाव-भाव स्त्रियों जैसे होते हैं) तथा सी ए एच गुणों वाली लड़कियाँ (जिनका मस्तिष्क लड़कों जैसा होता है) शारीरिक रूप में सामान्य नहीं होती। इसलिए अगर लड़िकायाँ लड़कों के खिलोनों से खेलती हैं और सामान्य लड़कियों की तुलना में गणित में अधिक अंक लाती हैं या लड़के अपने अन्य भाइयों की तुलना में भाषा में अधिक दक्षता दर्शाते हैं तो यह बता सकना लगभग असंभव है कि उनके इस व्यवहार का कारण केवल हार्मोन हैं या जीवन के अनुभवों से भी वे प्रभावित हुए हैं। केवल डी० ई० एस० हार्मोन से प्रभावित लड़कियाँ ही ऐसी होती हैं जो सामान्य लड़कियों की तरह दिखाई देती हैं। इसलिए उनके साथ सामान्य लड़कियों जैसा ही व्यवहार किया जाता है । इसके बावजूद उनमें पुरुषों जैसे गुण विद्यमान होते हैं, उनके बारे में यह निश्चित तौर से समझाया नहीं जा सकता कि यह परवरिश का परिणाम है।

इस आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि इन सबको निर्धारित करने वाली 'बायोलॉजी' ही है। लेकिन कुछ अनुसंधानकर्ता इससे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि परवरिश प्रकृति को प्रभावित करती है और अनुभव उसकी बनावट को। मस्तिष्क की बनावट और प्रकृति को समझने के लिए भी यही बात लागू होतीहै।

अध्ययनों से अभी ऐसे ठोस सबूत नहीं मिले हैं जो सिर्फ प्रकृति के पक्ष में जाते हों लेकिन एक बात तय है कि टेस्टोस्टेरोन हार्मोन पुरुषों में मस्तिष्क को पुरुषत्व प्रदान करता है। इसी हार्मोन के कारण वह लैंगिक गुण प्रदर्शित करता है जो लड़कियों में प्रकट नहीं होता। (सम्प्रेषण)

■■■

डेंगू और मलेरिया का बढ़ता आतंक

❑ दीप्ति भटनागर

पीपुल फार साइंस एंड डिवेलपमेंट
बी-2, वैल्कम अपार्टमेंट,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085

अप्रैल का महीना आते ही फरवरी मार्च की गुलाबी सर्दी सूखी गर्मी में बदलने लगती है। बढ़ती गर्मी मनुष्य और जानवरों को तो पसीने और थकान से परेशान करती ही है, अनगिनत कीड़े और रोगवाहक जंतुओं के पनपने का भी कारण बनती हैं। इन कीटों द्वारा फैंलने वाले रोग समय असमय शरीर को घेर लेते हैं।

मच्छर एक ऐसा ही कीट है। यह धरती पर मानव का सबसे बड़ा शत्रु माना जाने लगा है। यह हर जगह पाया जाता है। इसकी **ऐनोफलीज** प्रजाति के कीट कई भंयकर संचारी और घातक बीमारियों के रोगजनक परजीवियों के वाहक का कार्य करते हैं। इन बीमारियों में सबसे जानी-मानी बीमारी है-मलेरिया।

रोगों के फैलाने में आग में घी का काम करता है जगह-जगह बेतरतीब से पड़ा कचरा और चारों ओर फैली गंदगी । छोटे, तंग और गदंगी भरे इलाकों में मच्छरों को बड़ी तादाद में पनपने का पूरा मौका मिलता है। चिंता की बीत तो यह है कि गंदगी और कचरा केवल गाँवों या कस्बों की ही समस्या नहीं है, बल्कि बड़े-बड़े आधुनिक कहे जाने वाले शहर भी कचरे के ढेर बने हैं। कचरे के अलावा हर छोटी-मोटी जगह और गड्ढों में इकट्ठा और ठहरा हुआ पानी, झोपड़ियों में गलत और खुली शौचालय व्यवस्था रोगों को बढ़ाने के ही साधन हैं।

हालांकि कुछ वर्षों से सरकार ने इस गंभीर होती समस्या को समझा है, और अनेक प्रकार से इसके निदान के कार्य प्रारंभ किए हैं परन्तु इनका असर आशा के अनुरूप नहीं हुआ।

सरकारी संस्थाएँ डी डी टी पाउडर का छिड़काव कराती हैं, रेडियो, टीवी और पोस्टरों के जरिए साफ-सफाई के निर्देश भी प्रेषित करती हैं। परन्तु उन्हें केवल पढ़ सुन कर छोड़ देना ही शायद अधिकतर लोगों की फितरत बन गई है।

हालात काफी चिंताजनक हो गए हैं और स्थिति की नजुकता को देखते हुए जल्दी ही कुछ कर गुजरना जरूरी है। शायद इसी पर जोर डालने के लिए दिल्ली नगर निगम के स्वास्थ्य विभाग ने इस वर्ष 27 अप्रैल के दिन को "डेंगू और मलेरिया से बचाव दिवस" के रूप में मनाया।

इसके अंतर्गत आम जनता से इस बीमारी से बचाव के उपाय अपनाने और उसकी रोकथाम की अपील की गई। यह बिल्कुल सही है कि आम जनता के सहयोग के बिना मलेरिया का निदान और उन्मूलन कतई संभव नहीं है।

वैसे मलेरिया रोग कोई नई दुनिया का या आधुनिक युग का रोग नहीं है। प्राचीन काल में भी मच्छरों से इस रोग के फैलने का उल्लेख है। सबसे पहले मलेरिया के रोगजनक परजीवी **प्लाज्मोडियम** को मनुष्य के रक्त में लेवरांन नामक वैज्ञानिक ने देखा था। इसके बाद भारत में सेना में कार्यरत डॉ० गेनाल्ड रास का **एनोफेलीज** मच्छर में **प्लाजमोडियम** की खोज करने पर 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इसी संबंध में इटली के वैज्ञानिक ग्रासी द्वारा भी अनेक

उल्लेखनीय कार्य किए गए। उस समय रोग के कारण व निदान प्रक्रिया से अनभिज्ञता के कारण इसका इलाज असंभव था। आज हमारे पास इस बीमारी का इलाज है। लेकिन आवश्यक सावधानियाँ न बरतने से यह रोग अभी भी अक्सर जानलेवा हो जाता है। इसलिए आज मलेरिया निवारण और उपचार को विश्व स्तर पर प्राथमिकता दी जा रही है।

भारत सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार सन् 1995 के प्रारंभिक महीनों में आसाम में मलेरिया से करीब 140-145 लोगों की मृत्यु हुई थी। यहाँ की पहाड़ी जलवायु के कारण यह बीमारी बड़ी तेजी से फैलती है। इसके फलस्वरूप देश में अनेक मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमों को चलाया गया है। इनके अंतर्गत हर वर्ष करीब 20 लाख रोगियों को टीका लगाया जाता है। पिछले वर्ष रोगवाहक और रोगवाहक जन्य रोगों पर भुवनेश्वर स्थित नेशनल अकादमी ऑव वेक्टर बोर्न डिजीजेज द्वारा नवम्बर 96 में एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी जिसमें भारत की अनेक रोगवाहकजन्य बीमारियों पर विस्तृत विचार-विमर्श हुए। इसमें मलेरिया एक प्रमुख बीमारी थी।

संगोष्ठी की रिपोर्ट के अनुसार मलेरिया की वापसी चिंता का विषय है। इसमें खुलासा किया गया था कि इस वापसी में विशेष हाथ मलेरिया कीटों का कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधी शक्तियाँ विकसित कर लेना है, जिससे उनपर दवाओं का आवश्यक प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अलावा इसमें पर्यावरण प्रदूषण और अपर्याप्त सुरक्षा उपायों का भी हाथ है। परन्तु अब इस चिंताजनक स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई हैं।

भुवनेशवर की एक संगोष्ठी में सारी स्थिति का जायज़ा लेते हुए अनेक तरीके सुझाए गए। इनमें रोग नियंत्रण नीति का विकास, चिकित्सा के सुचारु प्रबंध, महामारी की पूर्व सूचना के लिए सरकार के कड़े निर्देश, कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम, नए कीटनाशकों का विकास, तथा आम जनता में रोग से बचाव और उसकी रोकथाम के बारे में जागृति लाना प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक जोर मलेरिया अनुसंधान के कार्यक्रमों पर दिया गया।

विदेशों में भी मलेरिया की रोकथाम और बचाव के लिए अनेक शोध कार्य होते रहे हैं। कुछ ही समय पहले ऑक्सफोर्ड में आण्विक चिकित्सा विभाग के डॉ० एड्रियन हिल और उनके सहयोगियों ने मनुष्य शरीर में उपस्थित किलर कोशिकाओं की सहायता से रोगाणु द्वारा ग्रस्त कोशिकाओं को समाप्त करने के विषय में शोध कार्य प्रारंभ किए हैं। इस विधि से बाद में मलेरिया के लिए प्रभावी दवा बनाई जा सकती है।

कुछ व्यक्तियों में आनुवंशिक जीन के कारण एक विशेष प्रकार के ऊतक होते हैं। इन जीनों के कारण इन व्यक्तियों में मलेरिया के प्रति प्रतिरोधी शक्तियाँ पैदा होती है, जिससे इनमें इस रोग की संभावना करीब चालीस प्रतिशत कम हो जाती है। यह जीन नाइजीरिया के इलाके में अधिक व्यक्तियों में देखी गई है जबकि यूरोप में एक प्रतिशत निवासियों में ही होती है।

मलेरिया के लिए चूहों पर किए गए परीक्षणों में काफी हद तक सफलता मिली है। अब डॉ० हिल और उनके सहयोगियों का अगला कदम मनुष्यों पर इसका परीक्षण करना है। उन्हें आशा है कि यह विधि निश्चित ही कारगर सिद्ध होगी।

मलेरिया रोग को फैलाने में मुख्य हाथ **प्लाज्मोडियम फैल्सीपैरम** जीवाणु का है। एक अन्य परीक्षण में आस्ट्रेलिया के पर्थ विश्वविद्यालय के प्रो० एन्ड्रयू थोम्पसन तथा कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने मुर्डोक विश्वविद्यालय के सहयोगियों के साथ इस पर विस्तृत शोध कार्य किए हैं। मलेरिया तथा मनुष्य के शरीर में पाए जाने वाले परजीवी **जियार्डिया** जैसे रोगाणुओं में ट्रयबूलिन नामक एक विशेष प्रोटीन पाया जाता है। आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले रासायनिक औषध एल्बेन्डेज़ोल से इस प्रोटीन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे मनुष्य शरीर के अंदर **जियार्डिया** और मलेरिया को मारा जा सकता है।

प्लाज्मोडियम फैल्सीपैरम जैसे रोगाणु पर इस रसायन के प्रभाव को देखकर इन वैज्ञानिकों ने इसी आधार पर एक दवा का विकास किया है। अभी इसका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर नहीं हुआ है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार आमतौर पर

कीटनाशकों और खाने योग्य दवाओं के प्रति रोगाणुओं में प्रतिरोधी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, परन्तु इस नई औषध की प्रक्रिया में ऐसा प्रभाव नहीं पड़ेगा। उम्मीद है कि शायद एल्बेन्डेज़ोल के इस्तेमाल से इस घातक बीमारी का इलाज मिल सके।

इन सभी परीक्षणों के परिणामों के आमतौर पर लागू होने में अभी समय लग सकता है, परन्तु केवल औषध या कीटनाशक ही जरूरी नहीं हैं, आम जनता को भी मच्छरों के जंनन को रोकने में सहायता करनी होगी। घर और बाहर की सफाई, पानी जमा न होने देना, समय पर दवा लेना, सुरक्षित उपायों की जानकारी हासिल करना और रोगों के बारे में पूरा ज्ञान अर्जित करना भी समय की मांग है। तभी हम इस त्रासदायक जानलेवा बीमारी पर काबू पा सकने की उम्मीद कर सकते हैं। [अभियान]

आ रहे हैं डिज़ाइनर पौधे

पौदों से मनुष्य जितना कुछ प्राप्त कर सकता है उसकी शायद वह आसानी से कल्पना भी नहीं कर सकता। पौधों से भोजन, दवाइयाँ, कपड़ा, मकान बनाने का समान आदि तो वह सहजता से प्राप्त करता ही है अब वह कुछ ऐसे पौधे भी विकसित करने की कोशिश में है जो उसकी कुछ विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने की विशेषता से युक्त होंगे।

मानव में आने-जाने के कुछ ऐसे साधन विकसित किए हैं जिनके संचालन के लिए उसे खनिज तेल की लगातार आवश्यकता रहती है, किन्तु खनिज तेल के स्रोत सीमित होने के कारण इस बात की आशंका लगातार बनी रहती है कि कब यह स्रोत चुक जाए। खनिज तेल के विकल्प के रूप में उसने जिन स्रोतों की ओर ध्यान देना शुरू किया उनमें कुछ पौधे भी शामिल हैं। प्रारंभ में उसने गन्ने व कुछ अन्य पौधों से अल्कोहॉल बनाकर उसे पैट्रोल में मिलाकर ईधन की तरह इस्तेमाल करना शुरू किया।इसे गैसोहोल कहते हैं। बाद में उसके प्रयत्न पौधों की ऐसी प्रजातियाँ खोजने पर केन्द्रित हो गई जिनसे पैट्रोल की तरह का ईधन प्राप्त करने की संभावना बढ़ गई।

इन पौधों में **मिसकैंथस, स्पार्टिना, पेनिकम** और **फेलेरिस** आदि की प्रजातियाँ शामिल हैं। इनसे प्राप्त बायोमास को भविष्य का नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत माना जा रहा है। पौधे क्योंकि अपनी वृद्धि के लिए वातावरण की कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करत हैं जब उन्हें ऊर्जा प्राप्त के लिए जलाया जाता है यही कार्बन डाइऑक्साइड उनमेंसे मुक्त होकर वातावरण में मिल जाती है। इस प्रकार वे वातावरण में मुक्त कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि नहीं करते । हम जानते हैं कि खनिज तेलों के दहन के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड को पर्यावरण के प्रदूषण का एक स्रोत माना जाता है।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक पौधों की विभिन्न प्रजातियों की ऊर्जा फसल के रूप में उपयोगिता जांचने के प्रयत्न कर रहें हैं। **मिसकैंथस** के विषय में यह माना जा रहा है कि यह घास अपने रोपण के तीसरे-चौथे वर्ष से 15 से 20 वर्ष तक प्रतिवर्ष 20 टन से भी अधिक दहन योग्य शुष्क पदार्थ उपलब्ध कर सकती है। इस खोज को अपने आप में एक उल्लेखनीय उपलब्धि बताया जा रहा है।

वैज्ञानिकों के एक और दल ने एक ऐसे पौधे को खोज निकाला है जो धरती में अधिक मात्रा में मौजूद निकेल धातु को सोख कर धरती में निकेल की मात्रा को इस कार्य कते लिए प्रयुक्त की जाने वाली अन्य वर्तमान तकनीकों की अपेक्षा कहीं सफाई और कुशलता से साफ करने में सक्षम है।

इस पौधे की निकेल को सोखने की क्षमता को आधार बना कर वैज्ञानिक ऐसे और पौधे खोजने तथा विकसित करने के कार्यक्रम चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं जो धरती में एक ही जगह पर अधिक मात्रा में मौजूद विभिन्न धातुओं को सोखककर धरती का धातु संतुलन पुनः स्थापित कर सकेंगे। धरती को धातु प्रदूषण अथवा असंतुलन से मुक्त करने में ऐसे पौधे प्रमुख भूमिका निभाएंगे।

पौधों को ही आधार बनाकर कुछ अमेरिकी वैज्ञानिक इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि वे शिशुओं-बच्चों में रोगों की रोकथाम के लिए कुशल टीकों का विकास कर सकें। उन्होंने इस काम के लिए केले को चुना है। केला आम तौर पर सभी को पसन्द होता है। यदि इसे आनुवंशिक

इन्जीनियरी द्वारा कुछ प्रकार के टीकों के वाहक के रूप में विकसित कर दिया जाए तो इस का उपयोग शिशुओं-बच्चों को जान लेवा बीमारियों से बचानेके लिए बखूबी किया जा सकेगा।

न्यूयार्क राज्य के कारनेल विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे एक स्वतंत्र अनुसंधान केन्द्र बायस थोम्पसन संस्थान के जीववैज्ञानिक केले में आनुवंशिक इंजीनियरी द्वारा परिवर्तन करके उसमें हेपेटाइटिस-बी वायरस के बाहरी आवरण में पाए जाने वाले एक एन्टीजेन का समावेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसे खिलाकर शिशुओं बच्चों की हेपेटाइटिस-बी रोग से रक्षा की जा सकेगी। इस केले को समूचा खिलना के बजाए इसकी प्यूरी बनाई जा सकती है और उसे निर्धारित मात्रा में दवा की तरह खिलाया जा सकता है। दुनिया के गरीब मुल्कों में रोगों की रोकथाम की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा, इसमें संदेह नहीं। [अभियान]

मच्छरों के लिए टीका बना

मच्छरों के काटने से फैलने वाले मलेरिया व डेंगू जैसे रोगों के लिए किए जाने वाले उपाय अभी तक केवल आंशिक रूप से सफल हो पाए हैं। इन उपायों में मनुष्यों को टीका लगाने या मच्छरों को कीटनाशियों द्वारा नष्ट करने जैसे उपाय शामिल हैं।

सच तो यह है कि इन उपायों के बावजूद इन रोगों का फैलना जारी है। मच्छरों की आबादी को नियंत्रित करने के लिए दुनिया भर में किए जा रहे प्रयत्न ढीले तो हैं ही मच्छर भी पहले से अधिक कीटनाशकरोधी होते जा रहे हैं। यही कारण है कि अनुसंधानकर्ताओं ने इन रोगों की रोकथाम के लिए एक पूरी तरह नए तरीके पर काम करना प्रारंभ किया है।

अनुसंधानकर्ता अब मच्छरों को टीका लगा रहे हैं ताकि वे डेंगू रोग के प्रतिरोधता विकसित कर पाएं और मनुष्यों में इस रोग को न फैला सकें। किंतु यह टीका उस प्रकार का नहीं है जैसा हम जानते हैं। यह टीका जीन के स्तर पर प्रयुक्त किया जाएगा और इसमें बायोटैक्नोलॉजी की जटिल प्रक्रियाएँ शामिल हैं जिनके द्वारा वायरस के अन्दर पाए जाने वाले आर० एन० ए० में परिवर्तन किया जाएगा।

डेंगू वास्तव में वायरस द्वारा फैलने वाला एक रोग है। यह वायरस मच्छर की लार में मौजूद रहता है। मच्छर द्वारा फैलाए जाने वाले अधिकांश वायरसों की तरह डेंगू वायरस में भी आनुवंशिक सूचना उसमें मौजूद आर० एन० ए० में रहती है। वैज्ञानिकों ने इस वायरस के आर० एन० ए० को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया कि वे मच्छर के शरीर में रह कर भी अपने जैसे वायरसों को जन्म देने में सक्षम हो गए और उनकी संख्या-वृद्धि रुक गई। मच्छरों द्वारा फैलने वाले रोगों की रोकथाम की दिशा में किए जाने वाले प्रयत्नों में यह प्रयत्न उल्लेखनीय बताया जा रहा है। [अभियान]

■■■

माइक्रोस्फीयर (कोएसरवेट्स)

न्यूयार्क विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जेम्स डेविली ने विभिन्न कोशिकाओं के अंगों का अन्तः रोपण करके सजीव कोशिका का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर ली। फ्लोरिडा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक सिडनी एफ० फॉक्स ने प्रयोगशाला में टेस्ट ट्यूब के अंदर प्रोटीन्स व कुछ अन्य विशेष पदार्थों को, जिनमें कई एमीनोअम्ल भी शामिल हैं, 90डिग्री सेल्सियस तक गर्म करके प्रोटीन के समान जटिल अणु प्राप्त किए। इन अणुओं को पानी में गर्म करके जब ठंडा किया गया तो कोशिका के समान संरचनाएँ प्राप्त हुई। इन कृत्रिम कोशिका सदृश संरचनाओं को माइक्रोस्फीयर नाम दिया गया। इनको कोयसरवेट्स के नाम से भी जाना जाता है।

मंगल पर जीवन तलाश रहे हैं वैज्ञानिक

❑ डॉ० वृजमोहन कुमार प्रसाद

पीपुल फार साइंस एंड डिवेलपमेंट
बी-2, वैल्कम अपार्टमेंट, सैक्टर-9,
रोहणी दिल्ली-110085

लगभग 300 वर्षों से चल रहे मंगल खोज अभियान में अचानक आई तेजी की वजह वहाँ जीवन की मौजूदगी के नए साक्ष्य मिलना बताया जा रहा है। लेकिन प्रश्न उससे कहीं गंभीर लगता है जितना दिखाई दे रहा है, शायद वैज्ञानिक पृथ्वी पर जीवन के परिरक्षण का प्रश्न सुलझाने के लिए ही मंगल की गुत्थी सुलझाने में लगे हैं।

मंगल ग्रह का नाम सुनते ही हमारे मन मस्तिष्क में उसकी अनोखी और कुछ-कुछ रहस्यमयी छवि उभर आती है। ज्योतिषशास्त्र में इस ग्रह की इतनी अधिक महत्ता है किअधिकतर लोगों के जीवन के कार्यकलाप इस ग्रह के प्रभाव की तीव्रता या क्षीणता के इर्द-गिर्द घूमते बताए जाते हैं। सदियों से मानव जीवन पर इसके प्रभाव के चर्चे सुने जा रहे हैं।

भारतीय मानस पर भी मंगल का प्रभाव पूरा-पूरा है। किसी शिशु की जन्मपत्री हो या विवाहसंबंध का प्रस्ताव, मंगल पहले सामने आ जाता है। मंगल की शान्ति के लिए अनेक उपाय किए जाते हैं। ज्योतिष में विश्वास रखने वाले लाखों-करोड़ों भारतीय इस ग्रह की महत्ता का लोहा मानते हैं तो दूसरी ओर ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं जिन्हें इन बातों पर विश्वास नहीं है।

खैर, ज्योतिष के आंकड़ों के जोड़-तोड़ में मनुष्य मन के विश्वास-अविश्वास से अलग आज यह सर्वसिद्ध हुआ है कि मंगल ग्रह आकाश में हमारे सौर मंडल का एक महत्वपूर्ण ग्रह है जो पृथ्वीवासियों के लिए विशुद्ध वैज्ञानिक कारणों से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आकाश में लाल रंग की लालिमा से दमकते इस ग्रह ने ज्योतिषियों के साथ ही वैज्ञानिकों के लिए भी हमेशा चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। कई वर्षों के सतत परिश्रम या आकस्मिक परिणामों के मिलने से यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि पृथ्वी के समान ही मंगल ग्रह पर भी जीवन अपने कुछ रूपों में विद्यमान हो सकता है। कई बार इस विषय पर चर्चाएं हुई, शोध हुए और ग्रह पर खोज भी की गई। मंगल ग्रह की सतह देखने से यह कहना सही नहीं लगता कि वहाँ जीवन हो सकता है। ऑक्सीजन, जल तथा गरमाहट के बल पर जिन्दा रहने वाले जीवों के लिए तो मंगल ग्रह कल्पना मात्र है। परन्तु पिछले दिनों मंगल ग्रह पर जीवन की संभावना की चर्चा वैज्ञानिक क्षेत्रों में कुछ अधिक गरम रही। मंगल ग्रह पर इसी संभावना की तलाश में रूस का अब तक का सबसे विशाल अंतरिक्षयान 17 नवम्बर 1996 को छोड़ा गया था। ग्रह पर जीवन की संभावना पर मार्ग दर्शन तथा सुझाव देने के लिए अमेरिका में नासा के वैज्ञानिक डेनियल गोल्डिन ने अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय की एक कांफ्रेंस बुलाने की पेशकश भी की है।

वैज्ञानिकों में हो रही हलचल से अभी भी यह एक खुला अध्याय बना हुआ है। इस वर्ष अगले दशक तक मंगल पर जीवन की संभावना की खोज के लिए नासा की तरफ से एक

महत्वपूर्ण खोजी अभियान भेजने की योजना है। अमेरिका के अतिरिक्त अगले दो दशकों में बीस मानव रहित अंतरिक्ष यान भेजने की तैयारी जापान, रूस तथा योरोप के वैज्ञानिकों ने भी की है। अमेरिका में नवंबर में आयोजित किए जा रहे अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के सम्मेलन के दौरान मंगल पर जीवन की संभावना पर विशेष जानकारी मिलने की आशा है। वास्तव में वैज्ञानिक इस रहस्यमय लाल ग्रह की पूरी स्थिति जानने के लिए पिछले करीब तीन सौ वर्षों से तलाश जारी रखे हुए हैं। शुरू में खगोलविदों ने यह पता लगाया था कि मंगल ग्रह का दिन 28 घंटे का होता है, वहाँ पृथ्वी जैसी टोपियाँ मौजूद हैं, कुछ खगोलविदों के अनुसार मंगल ग्रह पृथ्वी की भांति अपनी धुरी पर झुका हुआ है। वहाँ पृथ्वी जैसे मौसम परिवर्तन भी होते हैं, वहाँ बादल हैं तथा ग्रह की सतह पर दिखाई पड़ने वाले काले धब्बे समुद्र होने की संभावना दर्शाते हैं।

इटली के खगोल वैज्ञानिक जियोवानी शियापरेली ने 1878 में मंगल ग्रह पर नहर होने की संभावना व्यक्त की थी। उन्होंने बताया था कि यह बुद्धिमान प्राणी की युक्ति हो सकती है। शियापरेली की बातों को ज्यादा सही तब माना गया जब अमेरिका के एक गणितज्ञ पर्सिवल लावेल ने एरिजोना में फ्लेगस्टाफ के निकट एक पर्वत पर अपनी वेधशाला बनवाई और वहाँ से मंगल ग्रह का विस्तृत अध्ययन किया। लावेल ने मंगल ग्रह पर सैंकड़ों नहरें होने का दावा किया। उन्हें विश्वास था कि मंगल ग्रह के इंजीनियरों ने शुष्क इलाकों में ध्रुवीय टोपियों से पानी पहुँचाने के लिए नहरों का निर्माण किया था।

लेकिन सच यह है कि अभी तक भी मंगल ग्रह पर जीवन होने की पुष्टि नहीं हो सकी है। सिर्फ संभावनाएँ व्यक्त की गई हैं। मंगल ग्रह लाल धूल और चट्टानों का एक बंजर है, जहाँ ब्रह्मांडीय और पराबैंगनी (अल्ट्रा वायलेट) किरणें लगातार उसकी सतह पर प्रहार करती रहती हैं। ग्रह का तापमान एकदम ठंडा है जिससे कार्बनडाइऑक्साइड भी जम जाती है। पूरी सतह पर रेत के बवंडर उठते हैं जो कई-कई रोज तक चलते रहते हैं।

मंगल ग्रह का आकार पृथ्वी की तुलना में करीब एक तिहाई है। इसी से गुरुत्वाकर्षण भी एक तिहाई है। उसका वायुमंडल पहुत पतला और विषाक्त है। उसमें 83 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड है। सर्दियों में उसका तापमान शून्य से 125 डिग्री सेल्सियस तक नीचे पहुंच जाता है। गर्मी के दिनों में ग्रह के कुछ हिस्सों का तापमान 22.2 डिग्री सेल्सियस के आस-पास हो जाता है। मंगलग्रह की लाल मिट्टी में लौह अंश काफी अधिक है।

सन् 1976 में अमेरिका के दो वाईकिंग यान मंगल ग्रह पर उतरे थे। उन्होंने इस ग्रह की सतह पर मौजूद अनेक तरह की भौगोलिक सरंचनाओं का पता लगाया था। वहाँ विशाल निष्क्रिय ज्वालामुखियों, केटरों तथा बड़े-बड़े गड्ढों के होने का पता चला। इन यानों ने वहाँ की मिट्टी के नमूने एकत्र करके उनका विश्लेषण भी किया। नजदीक से देखने से मंगल ग्रह की सतह पृथ्वी के किसी रेगिस्तान सरीखी ही दिखाई दी।

वाइकिंग यान मंगल ग्रह पर जीवन की कोई संभावना नहीं ढूंढ पाए, लेकिन परिक्रमा में साथ दे रहे यानों (सहयनों) में लगे कैमरों से इस बात की पुष्टि हुई कि इस ग्रह पर कभी पानी बहता था, वहाँ बड़े-बड़े समुद्र थे। पहाड़ों से प्रवाहित पानी ने लाल मिट्टी को काटते हुए जो आकृतियाँ उत्पन्न कीं वे ही यहाँ पर सूखी नदियों और झीलों की मौजूदगी का आभास कराती हैं।

यह संभव है कि उस समय बनी चट्टानों की दरारों में जीवाश्मीकरण हो गया हो। लेकिन यह तभी हो सकता है जब वहाँ कभी जीवन रहा हो। क्या आज भी वहाँ जीवन के चिन्ह मौजूद हैं? मंगल ग्रह के संदर्भ में मौजूदा वैज्ञानिक प्रश्न यही है जिनका संतोषजनक उत्तर पाने का प्रयत्न वे आज भी कर रहे हैं।

पिछले दिनों अमेरिकी वैज्ञानिकों ने मंगल ग्रह से गिरी एक उल्का में जीवन के चिन्ह होने का दावा करके सौर मंडल के इस चौथे ग्रह के बारे में सदियों से चली आ रही बहस को एक बार फिर गरमा दिया। मंगल ग्रह संबंधी विशेष जानकारी रखने वाले एक बड़े वर्ग का यह दावा है कि मंगल ग्रह आज जीवन के लिए भले ही प्रतिकूल हो लेकिन शुरू में वह ऐसा नहीं था। वहाँ पानी मौजूद था और सतह पर गरमाहट भी थी।

मंगल ग्रह संबंधी अध्ययनकर्ताओं के अनुसार करीब 36अरब वर्ष पहले, जब मगलं कीं उम्र करीब एक अरब वर्ष थी, उसकी सतह पर बहुत बड़े हिस्से में पानी का प्रवाह था। नये सबूतों के आधार पर वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया कि मंगल के समुद्रों गें जीवाणु पनपे होंगे। लेकिन अच्छे दिनों के बाद मंगल ग्रह का बुरा समय आ गया। वहाँ विपदाजनक घटनाएँ घटीं। उसके समुद्र गायब हो गये और ग्रह ने अपनाअधिकांश वायुमंडल गवां दिया। करीब एक करोड़ साठ लाख वर्ष पहले एक विशाल धूमकेतु (क्षुद्र ग्रह) मंगल ग्रह से आ टकराया। इस भंयकर टक्कर के बाद ग्रह पर एक विशाल केटर बन गया और चट्टानों के टुकड़े अंतरिक्ष में फैल गये। इनमें से कुछ एक टुकड़े लाखों वर्षों तक सूर्य की परिक्रमा करते रहे। बाद में दूसरे ग्रहों के खिंचाव बल के कारण एक टुकड़ा सूर्य की कक्षा से बाहर निकल आया और पृथ्वी की ओर बढ़ने लगा।

मंगल ग्रह से निकला यह टुकड़ा लाखों वर्षों तक अंतरिक्ष में भटकने के बाद करीब 13,000 वर्ष पहले अंटार्कटिका के ऐलन हिल्सं क्षेत्र में गिरा। वैज्ञानिकों ने इस उल्का को 1984 में खोज निकाला । तीन वर्ष पूर्व जब उन्हें विश्वास हो गया कि यह उल्का पिण्ड मंगल ग्रह से आया है तब उन्होंने इसका गहन अध्ययन शुरू कर दिया। अमेरिका के नासा के अनुसंधानकर्ताओं ने ह्यूस्टन के जानसन स्पेस सेंटर के डेविड मैके के नेतृत्व में आले के आकार की इस विशाल करीब दो किलोग्राम वजन की उल्का में जीवाणुओं के जीवाश्मों व रासायनिक अवशेषों की मौजूदगी का दावा किया।

नासा की टीम ने उल्का के भीतर मौजूद सूक्ष्म जीवाश्मों अथवा माइक्रो फोसिस के इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप द्वारा लिए गए चित्रों के द्वारा यह साबित करने की कोशिश की है कि मंगल पर 3.6 अरब वर्ष पहले जीवाणु सक्रिय थे। इनमें से कुछ संरचनाएँ, जैसे कार्बोनेट ग्लोब्यूल्स, पृथ्वी के आदिम बैक्टीरिया के जीवाश्मों से मिलती-जुलती है। एक चित्र में ट्यूब जैसी आकृति देखकर वैज्ञानिक ज्यादा आश्चर्यचकित हुए । यह आकृति किसी बैक्टीरिया का भ्रम उत्पन्न करती है। नासा के वैज्ञानिक स्वंय ज्यादा उत्साहित हुए यह अलग बात है। लेकिन कुछ वैज्ञानिक इन दावों को सही नहीं मान रहे हैं। उनका मानना है कि मंगल ग्रह पर जीवन होने का दावा असाधारण है। इसके लिए असाधारण प्रमाण की ही जरूरत है।

पृथ्वी पर अत्यन्त विषम परिस्थतियों में जीवों के पाए जाने से भी वैज्ञानिकों का हौसला बढ़ा है। वैज्ञानिकों को पृथ्वी पर ऐसे स्थानों पर जीवाणुओं की उपस्थिति का पता है जहाँ पहले उन्होंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। समुद्र तल के ज्वालामुखियों, ठोस चट्टानों, तेल भंडारों, खौलते पानी के चश्मों और पृथ्वी की गहराइयों में कई किलोमीटर नीचे अत्यधिक तापमान वाले वातावरण में फलने-फूलने वाले जीवाणुओं के विस्तृत आनुवंशिक अध्ययन के बाद वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ये जीवाणु पृथ्वी के आदिम जीवाणुओं से काफी मिलते-जुलते हैं।

नई खोजों के आधार पर वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि जीन की उत्पत्ति अत्यधिक गरम माहौल में हुई होगी और संभवतः चार अरब वर्ष पहले मंगल ग्रह पर भी ऐसी ही स्थति रही होगी। उष्मा प्रेमी जीवाणुओं का विस्तृत अध्ययन करने वाले एक जर्मन वैज्ञानिक डॉक्टर कार्ल ओ० स्टेटर ने कुछ दिनों पहले लंदन में वैज्ञानिकों की एक बैठक में कहा था कि यदि पृथ्वी पर काफी गहराई पर जीवाणु पाए जा सकते हैं तो मंगल ग्रह पर भी इनकी मौजूदगी संभव हो सकती है।

वैज्ञानिकों का दल मंगल ग्रह के भीतरी हिस्सों में जीवाणुओं की मौजूदगी से इंकार नहीं करता। क्योंकि मंगल ग्रह की सतह अब सूखी हुई या प्रशीतित नहीं है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ग्रह पर उत्पन्न होने वाले गरमाहट और पानी की तलाश में संभवतः सतह से काफी नीचे पहुंच गए होंगे। यह भी संभव है कि मंगल ग्रह के गर्भ में उनकी बस्तियाँ पनप रही हों। ह्यूस्टन स्थित लूनर एंड प्लेनेटरी इंस्टीट्यूट के भूगर्भशास्त्री डॉ० एम० क्लिफर्ड का कहना है कि आप जैसे जैसे मंगल की सतह से नीचे चलते जायेंगे आपको गरमाहट महसूस होती जाएगी। खुदाई करते-करते आप ऐसी गहराई पर पहुंच जायेंगे जहाँ का वातावरण बर्फ को पिघला सकता है।

इन सभी विचारधाराओं के चलते एक बात लगभग सुनिश्चित ही है कि मंगल ग्रह पर जीवन होने की संभावना की पुष्टि के लिए शायद हमें तब तक रुकना पड़ेगा जब तक कि अंतरिक्ष अभियान इसके विषय में कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं करते । आज संभावनाएँ यही हैं कि मंगल पर यदि जीवन है तो वह अपने विकास की आरंभिक अवस्थाओं में ही होगा। पृथ्वी पर जीवन के विकास को ठीक से समझने के लिए विशेष तौर पर यह अपने आप में एक अनोखा अनुभव होगा। किन्तु प्रश्न और भी हैं।

आज वैज्ञानिक मंगल ग्रह पर जीवन की उपस्थिति की संभावना के अलावा यह जानना भी जरूरी मान रहे हैं कि यदि वहाँ जीवन था तो वह नष्ट क्यों कर हो गया? अचानक उस ग्रह पर जीवन को पोषित करने वाली परिस्थितियाँ कैसे इतनी जीवन के प्रति आक्रामक हो गईं और जीवन ही नष्ट हो गया? यह जानकारी पृथ्वी पर इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने में भले ही अभी कारगर सिद्ध न हो सकती हों, हमारे पूरे सोच में परिवर्तन तो ला सकती है और पृथ्वी पर पनपे बहुमूल्य जीवन को अपने सभी रूपों में परिरक्षित करने के सभी मानवीय प्रयत्नों को बढ़ावा दे सकती है। ■■■ [अभियान]

डॉ० शिवगोपाल मिश्र पुरस्कृत

भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय की ओर से विज्ञान परिषद् के प्रधानमन्त्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र को उनकी पुस्तक "जल प्रदूषण" पर 20,000/- (बीस हज़ार) रुपयों का पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र 5 जून 1997 को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के अवसर पर पर्यावरण मन्त्री श्री सफीउद्दीन सोज के कर कमलों द्वारा प्रदान किया गया। डॉ० मिश्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर हैं और शीला धर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद के निदेशक भी रह चुके हैं। डॉ० मिश्र पिछले लगभग 4 दशकों से हिन्दी विज्ञान लेखन में रत हैं और उनकी अनेक कृतियाँ पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा द्वारा आपको 'डॉ० आत्माराम विज्ञान लेखन पुरस्कार, देकर सम्मानित भी किया जा चुका है। विज्ञान परिषद् प्रयाग से तो आप पिछले लगभग 4 दशकों से जुड़े हुए हैं और विभिन्न पदों पर रहकर परिषद् की अतुलनीय सेवा की है। प्रो० शिवगोपाल मिश्र को परिषद् परिवार की भावभीनी बधाई।

-प्रे० चं० श्री०

अमेरिका में 100 दिन

❑ डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधान मंत्री,
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

फरवरी, मार्च, अप्रैल तथा मई-जून मासों में विदेश में था अतः परिषद् का पृष्ठ नहीं जा सका। प्रस्तुत है इस अनुपस्थिति काल का संक्षिप्त विवरण—

भारत से अमेरिका जाने का अर्थ है हवाई जहाज़ से यात्रा करना। ऐसी यात्रा का यह मेरा पहला अनुभव होना था। मैं अपनी पत्नी के साथ नई दिल्ली के इन्दिरा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर डॉ० हेमचन्द्र जोशी के साथ श्री डी० एन० भटनागर की कार से बारह बजे रात में पहुँच गया था। उन्हें विदा करके हम हवाई अड्डे के भीतर आये। हमारा जहाज़ 3 बजकर 40 मिनट पर चला। उड़ान भरते समय कानों में कुछ बोझ-सा पड़ा और पास की आवाज़ भी सुनने में कठिनाई हो रही थी किन्तु थोड़ी देर में सब कुछ सामान्य हो गया। एयर होसटेस ने हमें भोजन कराया। कुछ देर तक हम बगल की खिड़की से रात में नीचे झाँक कर दृश्य देखते रहे। जब हम 35000 फुट से अधिक ऊँचाई पर पहुँचे तो हमें लगा कि हम बादलों के बीच में हैं या किसी ऐसे महोदधि के ऊपर मंडरा रहे हैं जिसमें उत्ताल तरंगे उठ रही हैं। ऊपर नीले व्योम से नक्षत्र झाँक रहे थे। फिर तो ऊँघते हुए रात बीती और फ्रैंकफर्ट में प्रातः के साढ़े सात बजे थे। यहाँ से दूसरी उड़ान साढ़े नौ बजे डल्लास के लिए थी। इस जहाज़ में हमें अच्छा शाकाहारी भोजन मिला। यह पहले वाले की अपेक्षा छोटा जहाज़ था। दोपहर में जब हम डल्लास पहुँचे तो रिमझिम पानी बरस रहा था। मेरे पुत्र को आने में देर हुई इसलिए हम बाहर निकल कर प्रतीक्षारत थे।

अब हम अमेरिका की धरती पर थे। जब कार से चले तो हवाई अड्डे के पास से ही अनेक रम्य पुल, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, सड़क के अगल-बगल नंगे वृक्षों की कतारें दिखीं। देख-देखकर मन पुलकित होता रहा। घर पहुँचे तो विश्राम मिला। घर लकड़ी का बना था और बिजली से गर्म था। बिल्कुल बन्द डिब्बे-सा, किन्तु काफी उजाला था। फर्श पर कार्पेट, बाथरूम में कार्पेट। गुदगुदी छूटी। (वैसे दिल्ली, जोधपुर तथा लखनऊ के होटलों में ऐसा वातावरण भोग चुके थे) नींद पूरी न होने से हम लेट गये तो देर तक सोते रहे।

अगले कई दिनों तक पानी बरसता रहा फिर भी हमारा पुत्र हमें शाम को आस-पास की दूकानों में घुमा लाता। डल्लास अत्यन्त समृद्ध नगर माना जाता है। यहाँ के माल (Mall) दर्शनीय हैं। स्टोरों में उपभोग की सारी वस्तुएँ जिस ढंग से सजी दिखती और ग्राहक जिस प्रकार से मनपसन्द वस्तुएँ निकाल-निकाल कर काउंटर पर आकर मूल्य चुकता कर रहे थे और लेजर किरणों से जिस तरह मूल्य को कम्प्यूटर पर दर्ज किया जा रहा था, उसे देखकर नवीन अनुभव हो रहा था। यह भारत के रेलवे स्टेशन पर सीट रिजर्वेशन से भिन्न लगा। कुछ दिन बाद यह सब सहज लगने लगा।

हमें प्रायः सप्ताहान्त की प्रतीक्षा रहती जब हमारा बेटा

हमें घुमाने ले जाता। इस तरह हम डेंटन बरसाना धाम (आस्टिन), डाउन टाउन स्थित केनेडी स्मारक तथा डल्लास के कुछ रमणीक स्थलों में घूमने गये। डल्लास में इस बार कुछ अधिक ही बारिश हुई। 100 दिनों के हमारे प्रवास काल में लगभग 40 दिन मौसम खराब रहा, या वर्षा होती रही। दो चार दिन रात में खूब मेघ-गर्जना हुई और बिजली चमकी, तथा तदुपरान्त मूसलाधार वर्षा हुई। अक्सर टार्नेडो उठने तथा उसके द्वारा क्षति होने या बाढ़ आ जाने के समाचार टी० वी० में देखने-सुनने को मिलते।

हम प्रायः सुबह शाम घूमने निकलते- वह भी कंपाउंड के भीतर जहाँ घास का मैदान था और सड़क से सटे नाले के आस-पास छोटे-बड़े वृक्ष थे जिनमें चिड़ियाँ चहकतीं, कौवे बोलते, गिलहरी पेड़ पर चढ़ती-उतरती, बिल्लियाँ घरों के आस-पास लड़ती दिख जातीं। कुछ लोग अपने साथ कुत्ते लेकर घूमने निकलते। बच्चे परस्पर खेलते, पेड़ पर चढ़ते, ऊधम मचाते, पतंग उड़ाते, फुटबाल खेलते। जो वृक्ष पहले पत्रहीन थे, उनमें धीरे-धीरे कलियाँ चटक आई और तब फूलों की समा बंध गई। लेकिन 15-20 दिन बाद वे सब हरी पत्तियों में बदल गये और चतुर्दिक हरियाली ही हरियाली नज़र आने लगी।

हम प्रातः काल चाय, नाश्ता फिर भोजन और पुनः शाम को चाय और भोजन के बाद शयन करते - यही दैनिक जीवनचर्या बनी रही। बीच में लेखन और पठन कार्य चलता रहा। भारतीय समाचारपत्र भी हमें दोपहर में अपने बेटे से मिल जाते जिन्हें हम बड़े ध्यान से पढ़ते।

डल्लास में रहते हुए हमने जिन दर्शनीय स्थलों को देखा उनमें रे एबर्ट झील, बोटैनिकल गार्डेन, डाउन टाउन स्थित हरे कृष्ण मन्दिर, हिन्दू मन्दिर एवं साइंस सिटी मुख्य थे। हम टेक्सास इन्स्ट्रूमेण्ट के भीतर अपने बेटे के कार्यालय भी गये तथा वहाँ के फैब्रिकेशन (Fabrication) विभाग का भी अवलोकन किया जहाँ पर विश्वविख्यात सेमीकंडक्टर (चिप्स) [Semi Conductor (Chips)] का उत्पादन पड़े पैमाने पर होता है।

हम डल्लास से लगभग 40 मिनट की दूरी पर (56 किलोमीटर) स्थित नार्थ टेक्सास यूनिवर्सिटी, डेंटन भी गये। यहां का जो शान्त वातावरण दिखा वह अपने देश के विश्वविद्यालयों में दुर्लभ है। छात्र-छात्राएँ पढ़ने में व्यस्त मिलीं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं, कहीं भी उद्‌डंदता नहीं दिखी। क्या मज़ाल कि कोई लड़का किसी लड़की को कुछ कह दे।

यह विश्वविद्यालय 1903 ई० में स्थापित हुआ था और टेक्सास प्राविंस के अग्रणी विश्वविद्यालयों में है। विज्ञान के अतिरिक्त यहाँ मानविकी विषयों में से संगीत का विभाग सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इमारतें, डार्मिटरी, रजिस्ट्रार ऑफिस तथा छात्र यूनियन भवन- सभी सुन्दर लगे। पूरे परिसर में ज़मीन ऊँची-नीची, थी और सर्वत्र वृक्ष थे। यहाँ के पुस्तकालयों के भीतर बैठ कर मैंने कई दिन बिताये।

चूँकि इसी विश्वविद्यालय में मेरा बेटा रसायन विभाग में पी० एच-डी करने आया था अतः जब उसकी मौखिक परीक्षा हुई तो हम दोनों परीक्षा सुनने गये। पूरे साढ़े तीन घंटे परीक्षा चली।

पुनः हम दीक्षान्त समारोह देखने गये। लगभग 1200 छात्र-छात्राओं को ग्रैजुएशन मिलना था। बहुत बड़े हाल में प्रबन्ध था। दर्शक गैलरी अभिभावकों से भरी थी। ऐसा दीक्षान्त समारोह भारत में मैंने नहीं देखा। समारोह पूरे 2 घंटे चला। बीच में हम दोनों चार दिन के लिए संयुक्त राज्य की राजधानी वाशिंगटन की सैर पर गये। हमने NIH Complex, White House, Capital, Lincoln Memorial, Jafferson Memorial देखने के अलावा Air & Space Museum तथा Smithsonian Natural History Museum भी देखा। स्पेसलैब का जीता जागता मॉडेल देखा, उसके भीतर भी गये। वहाँ पर समतल में प्रवहमान पोटोमैक नदी के तट पर ये सारे स्थल हैं, जिन्हें पैदल चलकर, निःशुल्क देखा जा सकता है। हम जर्मन टाउन (जहाँ रुके थे) से वाशिंगटन रेल द्वारा गये। मेट्रो में यात्रा करने का नवीन अनुभव हुआ। टिकट लेना, स्टेशन के भीतर जाना, एलीवेटर से ऊपर-नीचे जाना, ट्रेन के दरवाज़े का स्वयं खुलना, बन्द होना, अगले स्टेशन की घोषणा, सभी रोमांचक लगे।

मैंने अपने प्रवास काल में कुछ लेखन कार्य भी किया। नई पुस्तकें पढ़ीं जो मृदा विज्ञान एवं प्रदूषण के अतिरिक्त

'नोबेल पुरस्कार' प्राप्तकर्ताओं की जीवनी से सम्बद्ध थीं। मैंने पुस्तकालय जाकर जो पुस्तकें उधार ली थीं उनके आवश्यक अंश उतारे या इलेक्ट्रोस्टैट कराये। मैने अपने जीवन के संस्मरण लिखे और मेरे बेटे ने मेरे जीवन से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री टेप की।

मैंने कम्प्यूटर के बारे में कुछ नई जानकारी भी अपने पुत्र से प्राप्त की। Home Page, Worldwide Web Internet, America on line, File, Mouse Page आदि के विषय में तथा समाचार जानने, E-mail आदि के बारे में काफी ज्ञान अर्जित किया। अमेरिका के छात्र इस तरह की जानकारी का लाभ उठा रहे हैं।

प्रवासकाल में लगातार इलाहाबाद की याद सताती रही। मैंने मित्रों को पत्र लिखे, फोन किया और जब-जब उधर से पत्र आये बड़ी प्रसन्नता होती रही। जब वापस जाने के दिन निकट आये तो सामान बाँधने लगा। उच्चाटन-सा होने लगा। सच है- 'मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै।' भारत की भूमि में न जाने कितना आकर्षण है?

मैंने यहाँ पर कुछ भारतीयों से बातें कीं। भारतीय बुद्धिजीवी, आशा से अधिक वेतन पाने से सन्तुष्ट हैं। उन्हें वे सारी सुविधाएँ यहाँ की व्यवस्था के कारण प्राप्त हैं जिनकी अपने देश में उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं है। वे यहीं रह जाने के मूड में हैं। उन्हें सुरक्षा मिली है और शान्ति भी। यद्यपि उन्हें अपनी नौकरी पर विश्वास नहीं क्योंकि कभी भी बिना बताये छुट्टी हो सकती है, किन्तु उन्हें अपने बाहुबल तथा कार्यकुशलता पर विश्वास है कि वे दूसरा कार्य पा लेंगे। इसीलिए वे भारत जाने का नाम नहीं लेते। वे अँग्रेजी बोलने के लिए बाध्य हैं, अमेरिकी फ़ैशन उन पर हावी हो रहा है। भारतीय महिलाओं को अमेरिका विशेष रूप से भाने वाला है। वे भी मोटरकार चला कर, नौकरी करने जा सकती हैं, घर पर ऐश-आराम की सारी वस्तुएँ जुटा सकती हैं और फोन की सुविधा होने से स्थानीय या दूरस्थ हमजोलियों से बातें करके, उनके यहाँ जाकर, यहां उन्हें बुला कर अपना जी भर सकती हैं। वे मुक्त जीवन बिताने के लिए स्वतन्त्र हैं, अपने पति की ही तरह समानता का अधिकार चाहती हैं, दोनों ही घर के कामों में हाथ बंटाते हैं। अधिक क्या कहूँ, ऐसी थी मेरी अमेरिका की खोज।

विज्ञान परिषद् के आजीवन सदस्य को पी० एच-डी० उपाधि मिली

परिषद् के आजीवन सदस्य एवं "विज्ञान" पत्रिका के पुराने लेखक श्री आशुतोष मिश्र को यूनिवर्सिटी ऑव नार्थ टेक्सास, डेंटन से 10 मई को रसायनशास्त्र में शोधकार्य करने पर पी० एच-डी० उपाधि से सम्मानित किया गया है। सम्प्रति वे टेक्सास इंस्ट्रूमेंट में केमिकल इंजीनियर के पद पर कार्य कर रहे हैं। आप परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिव गोपाल मिश्र के सुपुत्र हैं। आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं।

■ ■ ■

"मैं समझता हूँ कि स्वप्न जीवन के श्रेष्ठ अंश हैं। केवल एक अनुभूति ही नहीं वरन् इस बात का प्राग्ज्ञान (पूर्वाभास) कि मैं कल कोई नया आविष्कार करने जा रहा हूँ, किसी भी वैज्ञानिक को कार्य करने के लिए प्रवृत्त करता है चाहे वह आविष्कार करे या न करे.......किसी वस्तु को प्राप्त करने की अपेक्षा उसे पाने की उत्कट अभिलाषा जावन की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। यह एक ऐसा संघर्ष है जो सम्मान्य है।"

-सी० वी० रामन

लोहा : खोज एवं खनन की कहानी

❑ डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ इंजिनियरी कॉलेज
भागलपुर-813210 (बिहार)

वर्तमान युग में किसी देश में होने वाले लोहे का उत्पादन तथा इसकी खपत उस देश के विकास-स्तर का सर्वोत्तम मापदण्ड है। परन्तु लोहे की खोज सर्वप्रथम कब तथा कहाँ हुई, इस संबंध में कई प्रकार की अटकलें लगायी गयी हैं। पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ताँबे की खोज के लगभग एक हज़ार वर्षों के बाद लोहे की खोज हुई।

अनुमान है कि आज से लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व भारत में लौह-उद्योग काफी विकसित अवस्था में था। 'ऋग्वेद' (जो लगभग साढ़े चार हज़ार वर्ष पुराना है।) में लोहे की चर्चा मिलती है। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि भारत से ही लौह-उद्योग संबंधी जानकारी बेबीलोन, सीरिया तथा एशिया माइनर आदि देशों में पहुँची। भारत में कुछ स्थानों पर की गयी पुरातात्विक खुदाइयों से लोहे के कुछ ऐसे सामान तथा औज़ार मिले हैं जिनमें जंग नहीं लगा है। ऐसे ही उदाहरणों में शामिल हैं तमिलनाडु राज्य के तिरुनेवेली ज़िले आदितानालूर के पुराने कब्रिस्तान में पाये गये छुरे, तलवार, त्रिशूल तथा तीर इत्यादि। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि उस काल में भारत में लौह-उद्योग काफी उन्नत अवस्था में रहा होगा। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में बस्ती ज़िले के पिपरहवा नामक स्थान पर ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व निर्मित लोहे का एक बरछा पाय गया है। बिहार में बोध गया के निकट की गयी पुरातात्विक खुदाई से लोहे से निर्मित कुछ क्लैम्प मिले हैं। इन क्लैम्पों में जंग नहीं लगा है। दिल्ली में कुतुबमीनार के निकट लोहे का एक स्तम्भ है। यह स्तम्भ ईसा बाद चौथी शताब्दी के अन्त में चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा एक विजय स्तम्भ के रूप में बनवाया गया था। इस स्तम्भ की ऊँचाई 7.2 मीटर तथा उसके आधार की त्रिज्या 0.35 मीटर है। इस पूरे स्तम्भ का वजन लगभग छः मीट्रिक टन है। इसका विशिष्ट घनत्व 7.81 है। प्रसिद्ध ब्रिटिश रसायनविद् सर रॉबर्ट हैडफील्ड ने जब इस लोहे का रासायनिक विश्लेषण किया तो पाया कि इसमें 0.06 प्रतिशत कार्बन, 0.06 प्रतिशत सिलिकन, 0.006 प्रतिशत गंधक, 0.114 प्रतिशत फॉस्फोरस, 0.082 प्रतिशत नाइट्रोजन 0.034 प्रतिसत ताँबा तथा 99.658 प्रतिशत लोहा मौजूद है। मध्य प्रदेश में इंदौर से लगभग 53 किलोमीटर पश्चिम धार नामक स्थान पर भी लोहे का एक स्तम्भ पाया गया है। उड़ीसा में कोणार्क के सूर्य मंदिर में लोहे के शहतीर पाये गये हैं। एल० एम० हीथ के मतानुसार भारत में लोहे का निर्माण बहुत ही प्राचीन काल से होता आ रहा है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में लोहे को अनेक प्रकार से उपयोग में लाये जाने की चर्चा मिलती है। भारती चिकित्साविद् बहुत प्राचीन काल से ही लोहे से लौह-भस्म बनाते आये हैं जिनका उपयोग अनेक रोगों में होता आया है।

मिस्र तथा यूनान के निवासियों ने भारत से ही लौह-उद्योग की जानकारी प्राप्त की थी। इतिहास में ऐसा वर्णन मिलता है कि जब यूनानी विजेता सिकंदर भारत आया तो पोरस ने युद्धोपरान्त कुछ पिटवा लोहा उसे उपहार में दिया था। विश्व विजेता को लोहे का उपहार दिया जाना यह संकेत देता है कि उस काल में लोहा अवश्य एक दुर्लभ पदार्थ रहा

होगा। मिस्र के पिरामिडों, प्रतिभाओं तथा स्मारकों में भारत से ही मंगाया गया लोहा उपयोग में लाया जाता था।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लौह-प्रगलन की पुरानी भटिठयों के अवशेष पाये गये हैं। प्राचीन काल में लौह अयस्क की बड़ी-बड़ी खाने उपलब्ध नहीं थी। उस समय के लुहार कहीं भी, किसी भी स्तर में पाये गये लौहअयस्क का उपयोग कर लेते थे। प्रायः भूसतह या कम ग़हराई पर उपलब्ध अयस्कों का ही उपयोग किया जाता था। उपयोग में लाये जाने वाले प्रमुख अयस्कों में शामिल थे मैगनेटाइट, हेमेटाइट, लिमोनाइट तथा यदा-कदा लैटेराइट।

टॉमस हॉलैंड के मतानुसार प्राचीन भारत में लोहे का निर्माण दो प्रक्रमों में किया जाता था। उस काल में फ्लास्क का उपयोग नहीं होता था। लौह अयस्क के चूर्ण को लकड़ी के कोयले के साथ छोटी-छोटी मिट्टी की घड़ियों (कुसिबुल) में जालाया जाता था। प्रगलन समाप्त हो जाने पर घड़ियों में कार्बनीकृत किया जाता था। एक प्रक्रम में पिटवें लोहे को मिट्टी की घड़ियों में कार्बनीकृत किया जाता था। पिटवें लोहे के कार्बनीकरण से प्राप्त इस्पात को ''उट्ज'' के नाम से पुकारा जाता था। अनेक घड़ियों में पिटवाँ लोहे को रख कर उन्हें चमड़े से बनी धौंकनी से तेज़ हवा के झोंके देकर गर्म किया जाता था। तीन घंटों में प्रगलन कार्य लगभग पूरा हो जाता था। दूसरे प्रक्रम में ढलवाँ लोहे को अकार्बनीकृत किया जाता था। इसके लिये लोहा तथा लकड़ी का कोयला एक साथ मिलाकर ज़मीन के अन्दर बनाये गये सुरंगनुमा छोटे-छोटे गड्ढों में रख कर चमड़े की धौंकनी से हवा के झोंके देकर गर्म किया जाता था। इस प्रकार इस्पात तैयार हो जाता था।

ऐनाटोलिया (वर्तमान टर्की) में लगभग 1400 वर्ष ईसा पूर्व लोहा बनाने के साक्ष्य पुरातात्विक अवशेषों से प्राप्त हुए हैं। मिस्र के बालक राजा तूतन खानम की कब्र (जो 1350 वर्ष ईसा पूर्व का है) में लोहे से बने कई औज़ार तथा अन्य सामान प्राप्त हुए हैं। इन सामानों में शामिल हैं- लोहे के कटार तथा कुछ अन्य चीजें। तूतन खानम के शव को 242 पाउंड सोने से निर्मित ताबूत में रख कर उसके साथ लोहे के छोटे-छोटे सामानों को रखना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि मिस्रवासी उस काल में लोहे को कितना अधिक महत्व देते थे। 13वीं शताब्दी ईसा पूर्व के समाप्त होते-होते मिस्र में लोहा काफी प्रचलित हो चुका था। परन्तु उस काल में इसका उपयोग प्रायः आभूषणों एवं धार्मिक कृत्यों में ही किय जाता था। रोम में भी इसी समय के आस-पास लोहे का उपयोग होने लगा था, परन्तु उस काल में वहाँ लोहे का प्रगलन बहुत सीमित मात्रा में होता था।

ब्रिटेन में लौह-उद्योग की जानकारी काफी विलम्ब से पहुँची। मध्य पूर्व में लौह-उद्योग की जानकारी प्राप्त होने के लगभग एक हज़ार वर्षों के बाद ब्रिटेन तथा कुछ अन्य यूरोपीय देशों में लोहे को एक दुर्लभ पदार्थ माना जाता था। ऑस्ट्रिया में कुछ कब्रों में मध्य काल के दौरान निर्मित लोहे की तलवारें पायी गयी हैं। ये तलवारें बहुत निम्न कोटि के लोहे से निर्मित हैं।

चीन में लौह-उद्योग की जानकारी काफी प्राचीन काल से ही रही है। अनुमान है कि चीन में लोहे से संबंधित जानकारी भारत से ही पहुँची। यहाँ से जाने वाले बौद्ध भिक्षुओं ने इस ज्ञान को चीन तक पहुंचाया। कुछ समय बाद चीन में लोहे के प्रगलन हेतु फॉस्फोरस का भी उपयोग किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप लोहे की तरलता बढ़ जाती थी तथा धातुकर्म में सुविधा होती थी। चीन में सन् 150 ई० में लोहे से निर्मित एक प्रतिमा पायी गयी है जो 12 फीट लम्बी तथा 20 फीट ऊँची है।

जॉर्जियस एग्रिकोला नामक एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने सन् 1540 ई० में 'डी० रे०मेटालिका' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें 16वीं शताब्दी में अपनाये जा रहे लौह अयस्क के खनन की विधियों का विस्तृत विवरण दिया गया है। ये खनन विधियाँ लगभग वे ही हैं जिन्हें प्राचीन रोमवासी अपनाया करते थे।

धरती की सतह पर लोहा दो प्रकार के प्राकृतिक रूपों में पाया जाता है। ये दो रूप हैं पार्थिव तथा ब्रह्माणडीय। पार्थिव लोहा तो भू-पटल पर उपस्थित चट्टानों में खनिजों के रूप में पाय जाता है। परन्तु ब्रह्माण्डीय लोहा बाह्य अंतरिक्ष से उल्का पत्थरों के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। चूँकि लोहा रासायनिक दृष्टिकोण से बहुत सक्रिय धातु है, अतः यह

शीघ्र ही ऑक्सीजन तथा अन्य तत्वों से संयुक्त होकार अनेक यौगिकों का निर्माण कर लेता है। ये ही खनिज हमें लौह खनिजों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्माण्डीय लोहा जो लौह उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर गिरता है, प्रायः धात्विक अवस्था में प्राप्त होता है। इन्हीं लौह-उल्काओं से आदि मानव ने अपने औज़ार तथा अन्य सामान बनाये। मिस्र में गीजा नामक स्थान पर बने पिरामिड में लोहे के कुछ औज़ार पाये गये हैं। ये औज़ार आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहले बनाये गये थे। रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इस लोहे में 5 प्रतिशत से अधिक निकेल शामिल है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह अवश्य ही ब्रहमाण्डीय लोहा है। मिस्र के अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका, अर्जेंटीना, ग्रीनलैंड तथा भारत में भी प्रागैतिहासिक मानव द्वारा उल्का से प्राप्त लोहे से औज़ार बनाये जाने के प्रमाण मिले हैं। सन् 1803 ई० के थियोसौफिकल मैग़जीन में प्रकाशित एक लेख के अनुसार भारत में सन् 1626 ई० में एक स्थान पर उल्कापात हुआ था जिसके लोहे से दो तलवार, एक कटार तथा एक चाकू बनाया गया था।

आज लौह अयस्क का सबसे बड़ा उत्पादक देश रूस है जहाँ लोहे का औसत वार्षिक खनन लगभग 22.5 करोड़ टन है। लौह अयस्क के खनन में भारत का स्थान संसार में तीसरा है। अभी हमारे देश में लौह अयस्क मुख्यतः गोआ, मध्य-प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में पाया जाता है।

■ ■ ■

"प्रतिभा में एक ऐसा बन्धन निहित है जो न केवल सृष्टि कर सकता है वरन् संप्रेषण भी कर सकता है। यह संभव नहीं है कि एक वैज्ञानिक वास्तव में केवल चिंतन की अनजानी राहों से ही गुजरता रहे। अत्यधिक भेदी आँख उसे दर्शक रूपी बादलों से घिरा हुआ पाएगी। वह औरों से लेता है, तब औरों को देता है। उसे चाहिए कि वह वक्त की ज़रूरतों की ओर ध्यान दे। उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अपने विचारों को अपने समकालीन व्यक्तियों की भाषा में रूपान्तरित करे। अपने विचारों को पारस्परिक प्रभाव के लिए सभी दिशाओं में फैलाना उसके लिए अनिवार्य है। कोई चिंतन यदि औरों के मस्तिष्क पर ग़हरा प्रभाव नहीं डाल पाता,वह व्यर्थ नष्ट हो जाता है।"

– जे० आर० पूलैट

प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण : एक गंभीर समस्या

❑ डॉ० कृष्णानन्द पाण्डेय

अनुसंधान अधिकारी, प्रकाशन एवं सूचना प्रभाग,
आई० सी० एम० आर० पोस्ट बाक्स 4911,
नई दिल्ली -110049

आज के बच्चे भारत के भावी कर्णधार हैं। बच्चों के उपयुक्त शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए उन्हें कुपोषण की चपेट में आने से बचाना प्रत्येक माता-पिता का नैतिक कर्तव्य है। अन्य विकासशील देशों की भाँति भारतीय बच्चों में भी प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण की समस्या विद्यमान है। अधिकांश बच्चे कुपोषित पाए जाते हैं जिन्हें उपयुक्त जानकारी और घरों में उपलब्ध खाद्यों की सहायता से स्वस्थ रखा जा सकता है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रायः शिशु लम्बी अवधि तक माता के दूध पर निर्भर रहता है। यदि ऊपरी दूध दिया भी जाता है तो उसमें पानी काफी मात्रा में मिलाकर । इसके अलावा अर्ध ठोस और ठोस आहार देने की शुरुआत काफी देर से की जाती है। एक बढ़ते शिशु को प्रतिदिन लगभग 150-200 कैलोरी प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से ऊर्जा और 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से प्रोटीन उपलब्ध होना चाहिए।

सारणी 1. बाह्य सम्पूरण हेतु ऊर्जा बहुल आहार

आहार	घटक	प्रति 100 ग्राम	
		कैलोरी ऊर्जा	प्रोटीन
बेसन पंजीरी	बेसन, गेहूँ का आटा, गुड़, घी (प्रत्येक बराबर मात्रा में)	500	9
सूजी खीर	टोंड दूध 750 मिलीलीटर चीनी 100 ग्राम, सूजी 25 ग्राम, तेल 5 ग्राम, पानी 1 लीटर	143	2.8
शक्ति आहार	भुना गेहूँ 40 ग्राम, भुना चना 20 ग्राम, भुनी मूंगफली 10 ग्राम, गुड़ 30 ग्राम	390	11.4
हैदराबाद मिक्स	गेहूँ 40 ग्राम, चना 16 ग्राम, मूंगफली 10 ग्राम, गुड़ 20 ग्राम	330	11.3

भारतीय महिलाओं में आम धारण है कि बाज़ार में उपलब्ध डिब्बाबंद शिशु आहार अथवा घर में निर्मित विशेष आहार द्वारा ही शिशु को स्वस्थ रखा जा सकता है जो सर्वथा उचित नहीं। घर में उपलब्ध आहार में घी, मक्खन की मात्रा थोड़ी बढ़ाकर ऊर्जा की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार आहार में हरी पत्तेदार सब्ज़ियों को शामिल करके विटामिन ए और सी तथा लौह जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों को उपलब्ध कराया जा सकता है। इसके अलावा, शिशु को कुछ बाह्य सम्पूरण दिया जा सकता है। (सारणी 1)

गंभीर कुपोषण की चपेट में आए बच्चों को अस्पताल में भरती कराना जरूरी हो जाता है, उनमें 9-32% बच्चे मौत का शिकार हो जाते हैं। इसके अलावा, अस्पताल से छुट्टी मिलने के शीघ्र बाद लगभग 10 से 30 प्रतिशत बच्चों की मृत्यु हो जाती है। अतः गंभीर कुपोषण की स्थिति में बच्चों को शीघ्र अस्पताल में भरती कराना आवश्यक होता है।

कुपोषण से उत्पन्न जटिलताएँ

निर्जलीकरण : शरीर में जल की अत्यधिक कमी हो जाने की स्थिति में बच्चे अतिसार की चपेट में आ जाते हैं। इस स्थिति में नाड़ी कमजोर पड़ना, श्लेष्मा का शुष्क पड़ना और रोने पर आँसू नहीं निकलना प्रमुख लक्षण पाए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि कुपोषित बच्चों में पानी और सोडियम की मात्रा बहुत अधिक होती है, अतः आयु और शरीर भार के आधार पर तरल की मात्रा 75 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ाई जानी चाहिए। इसके विपरीत कुपोषित शिशु के पूरे शरीर में पोटैशियम की मात्रा 30 से 40 प्रतिशत तक घट जाती है, अतः ऐसे शिशु को अविलम्ब अस्पताल में भरती करा कर चिकित्सक के निर्देशानुसार पोटैशियम तुरन्त उपलब्ध कराया जाना चाहिए, भले ही सीरम में पोटैशियम का स्तर सामान्य हो जाए।

मुखीय पुनर्जलीकरण द्रव अर्थात ओ आर एस निर्जलीकरण की अधिकांश घटनाओं का रामबाण उपचार है। इस स्थिति में माँ का दूध जारी रखना चाहिए। मुख द्वारा पर्याप्त मात्रा में तरल उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में बाल चिकित्सक की देख रेख में मुखीय ड्रिप द्वारा शिशु को तरल दिया जा सकता है, परन्तु शिशु के फेफड़ों को प्रभावित होने से बचाने हेतु पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। गंभीर निर्जलीकरण की स्थिति में बाथ-चिकित्सक की देख रेख में अंतः शिरा विधि से इंजेक्शन द्वारा 5 प्रतिशत डेक्सट्रोज में N/2 सेलाइन का प्रयोग किया जा सकता है।

संक्रमणः कुपोषित बच्चे ऊपरी और भीतरी दोनों प्रकार के संक्रमणों से प्रभावित रहते हैं। हालांकि, अधिकांश संक्रमण बैक्टीरिया जनित होते हैं परन्तु खसरा और चिकेन पॉक्स जैसे विषाणुजनित संक्रमण जानलेवा साबित हो सकते हैं।

जिन बच्चों में लम्बे समय से अतिसार से पीड़ित होने और शरीर का वजन घटने की समस्यायें हों, उनमें यह सुनिश्चित करने हेतु जाँच आवश्यक है कि कहीं वे एच आई वी संक्रमण से तो पीड़ित नहीं हैं। आम तौर पर कुपोषित बच्चों के फेफड़ें, त्वचा, जठरांत्र और मूत्र पथ बैक्टीरिया जन्य संक्रमणों की चपेट में आते हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम निगेटिव सेप्टीसीमिया की घटनाएँ भी सामान्य हैं। कुपोषित बच्चे मलेरिया की चपेट में आने पर बुखार और कांपने जैसे लक्षण व्यक्त नहीं करते ।

गंभीर रूप से कुपोषित बच्चों में क्षयरोग की घटनाएँ सामान्य पाई जाती हैं परन्तु इनकी आसानी से पहचान नहीं हो पाती। ऐसे बच्चों के माता-पिता की एक्स-रे जाँच आवश्यक है जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे क्षयरोग से मुक्त हैं।

चयापचय संबंधी गड़बड़ियाँ : कुपोषित बच्चों के रक्त में ग्लूकोज़ की काफी कमी पायी जाती है। ऐसे शिशुओं को अस्पताल में भरती कराने के पश्चात कम अवधि के अंतराल में उनके खून की जाँच की जानी चाहिए। यदि खून में शर्करा की मात्रा 50 मिलीग्राम प्रति डेसीलीटर से कम हो तो 2 मिललीटर प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से 10 प्रतिशत डेक्स्ट्रोज़ दिया जाना चाहिए।

जिन बच्चों में लम्बी अवधि से अतिसार की घटनाएँ होती हैं उनमें मैगनीशियम की कमी आम तौर पर पाई जाती है। चिकित्सक की देख-रेख में 1 से 3 दिनों तक उपयुक्त

मात्रा में मैगनीशियम के सम्पूरण से बच्चों में बेहतर वृद्धि देखी गई है। कुपोषित बच्चों की रक्त प्लाज़्मा में जिंक का स्तर गिरने का यह तात्पर्य नहीं कि शरीर में जिंक की कुल मात्रा में कमी आ गई है। परिवेश के तापमान में गिरावट आने पर गंभीर रूप से कुपोषित बच्चे अपने शरीर का तापमान उपयुक्त नहीं बनाए रख सकते । शरीर के तापमान में अत्यधिक गिरावट आना जानलेवा साबित हो सकता है।

विटामिन की कमी : गंभीर कुपोषण की चपेट में सभी बच्चों को विटामिन ए की खुराक अवश्य दी जानी चाहिए ताकि वे आँख के रोगों से बच सकें। मल्टीविटामिन के रूप में विटामिन डी की मुखीय खुराक दी जानी चाहिए। मल्टीविटामिन में इसके अलावा विटामिन बी कॉम्पलेक्स और विटामिन सी भी उपलब्ध रहता है। चिकित्सक की सलाह पर विटामिन के और विटामिन ई भी दिया जाना चाहिए।

अरक्तता : लगभग सभी कुपोषित बच्चे अरक्तता का शिकार होते हैं जो मुख्यतः लौह और फोलिक एसिड की कमी से उत्पन्न होती है। हालांकि, लम्बे समय से बार-बार होने वाले मलेरिया, पेचिश और कृमि संक्रमण भी अरक्तता का कारण बनते हैं। इसे दूर करने के लिए सामान्यतः लौह और फोलिक एसिड की मुखीय खुराक दी जाती है। प्रति डेसी लीटर रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा 5 ग्राम से कम होने की स्थिति में गंभीर अरक्तता हो जाती है। ऐसे बच्चों को 10 मिलीलीटर/ किलोग्राम शरीर भार की दर से रक्ताधान की सिफ़ारिश की जाती है।

आहार द्वारा गंभीर कुपोषण का उपचारः गंभीर कुपोषित बच्चों को धीरे-धीरे ऐसा आहार उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे प्रतिदिन लगभग 80 कैलोरी प्रति किलोग्राम तथा 0.7 ग्राम प्रोटीन प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से उपलब्ध हो सके। आहार की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जानी चाहिए ताकि प्रथम सप्ताह के अंत तक लगभग100 कैलोरी तथा 1 ग्राम प्रोटीन प्रति किलोग्राम शरीर भार की दर से उपलब्ध हो सके। आम तौर पर शुरुआत में दूध दिया जाता है। प्रतिदिन लगभग 120 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम की दर से दूध दिया जाना चाहिए। इस दर से प्रथम सप्ताह में दो-दो घंटे के अंतराल पर तथा उसके बाद 3-3 घंटे के अंतराल पर दूध दिया जाना चाहिए। दूध में घी और चीनी मिलाकर उसकी कैलोरी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। (सारणी 2)

सारणी 2. पौष्टिक दूध

घटक	मात्रा	ऊर्जा (कैलोरी)	प्रोटीन (ग्राम)
गाय का दूध	300 मिलीलीटर	200	9.6
चीनी	85 ग्राम	340	-
वेजीटेबल ऑयल	30 ग्राम	270	-
	योग	810	9.6

इस आधार पर तैयार दूध में आवश्यकतानुसार पानी मिलाया जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि इसकी मात्रा 1000 मिलीलीटर बढ़ाई जाए तो 120 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम की दर से प्रतिदिन 96 कैलोरी तथा 1.1 ग्राम प्रोटीन प्रति किलोग्राम प्राप्त हो सकेगा। इस दूध में सामान्यतः नारियल का तेल मिलाया जाता है। शिशु को यह तरल कप और चम्मच की सहायता से दिया जाना चाहिए।

उच्च ऊर्जा प्रावस्था : इस प्रावस्था में धीरे-धीरे 150-180 कैलोरी प्रति किलोग्राम प्रतिदिन की दर से ऊर्जा प्रदान की जानी चाहिए। बाद में धीरे-धीरे दूध की मात्रा घटाकर अर्ध ठोस और ठोस आहार की मात्रा बढ़ा दी जानी चाहिए। इस प्रावस्था में प्रतिदिन 1.5 से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम प्रोटीन उपलब्ध होनी चाहिए। धीरे-धीरे बच्चों को परिवार के अन्य सदस्यों हेतु तैयार किया गया आहार देना चाहिए। अस्पताल में तरह-तरह के अन्य संक्रमणों का खतरा रहता है, अतः अधिक दिनों तक भरती रखने से बचना चाहिए। माता-पिता को पोषण संबंधी जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए। शिशु के भार, सीरम एलब्यूमिन आदि की नियमित जांच आवश्यक है ताकि उसे पुनः कुपोषित होने से बचाया जा सके।

इस प्रकार बच्चों में कुपोषण की अशंका की स्थिति में तुरंत चिकित्सक का परामर्श आवश्यक है और निर्देशानुसार प्रोटीन ऊर्जा के कुपोषण से बचने हेतु सम्पूर्ण आहार उपलब्ध कराया जाना चाहिए। ■■■

विज्ञान-वार्ता

❑ डॉ० आशुतोष मिश्र

125/16, अयूडेलिया रोड, अपार्टमेंट 711
डल्लास, टेक्सास-75243 (यू० एस० ए०)

जल-प्रदूषण ज्ञात करने की नई विधि

आप यह न सोचें कि केवल आप ही काफी पी रहे हैं, जल की मछलियाँ भी उसका स्वाद चख रही होंगी, इस पर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया था। यह ज्ञात हुआ है कि घनी आबादी वाले बड़े-बड़े शहरों के पास की नदियों में पनालों के माध्यम से प्रचुर विषैला कैफीन पहुँचता रहता है। यह कैफीन काफी में निहित सक्रिय पदार्थ है, जो जल में मिल जाने पर विलग नहीं किया जा सकता। इसलिए जल को स्वच्छ करने का चाहे जितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय, कैफीन उसमें विद्यमान रहता है। अब जल-प्रदूषण मापने के लिए कैफीन की उपस्थिति एक सुगम मापक बनने जा रही है। कैफीन की अधिक मात्रा होने से जल में रहने वाली मछलियाँ मरने लगती हैं।

गर्म जल की फुहारें खर-पतवार का नाश करेंगी

फ्लोरिडा (संयुक्त राज्य अमेरिका) के संतरा उद्यानों में ऐसी मशीनों से गर्म जल की फुहारों से वर्षा की जाती है जो सारे खर-पतवारों का विनाश कर सकती हैं। गर्म जल से खर-पतवारों की बाह्य मोमीली परत को पिघलाया जाता है जिससे खर-पतवार नमी को संचित न कर पाने से विनष्ट हो जाते हैं। यदि तीन बार गर्म जल की फुहारें उद्यानों के खर-पतवारों पर बरसाई जायें तो खर-पतवारों को पूरी तरह नष्ट किया जा सकता है। किन्तु अच्छी फुहार-मशीनें आवश्यक होंगी जिनके लिए इंजीनियरों को अनुसन्धान करना होगा। हाँ, जल उपलब्ध होना चाहिए।

क्लोनिंग का कमाल

मार्च माह के प्रथम सप्ताह में 'नेचर' नामक वैज्ञानिक पत्रिका में समाचार छपा कि स्काटलैंड में एडिनबरा के निकट स्थित रोजलिन संस्थान में डॉ० विलमुट ने अपनी अनुसन्धान-टोली के सहयोग से एक प्रौढ़ मादा भेड़ के थन से एक कोशिका निकाल कर उससे 'डाली' नामक एक भेड़ को जन्म देने में सफलता प्राप्त कर ली है। 'डाली' अपनी माता की 'कार्बन-प्रति' है- यानी हू-बहू जुड़वाँ है। इस समाचार के प्रकाशित होते ही विश्व भर के राजनैतिक तथा धार्मिक नेताओं में उथल-पुथल मच गई कि हो न हो, अब मनुष्य की भी क्लोनिंग हो सकती है जिसके परिणाम भयावह हो सकते हैं। उन्हें यह जानने की परवाह नहीं हुई कि डॉ० विलमुट को किस तरह विगत 10 वर्षों से शोध कार्य करना पड़ा है। यह एक दिन की तपस्या का परिणाम न था। वर्षों से लगातार 277 बार परीक्षण करने पर केवल 29 भ्रूण छह दिनों से अधिक से अधिक जीवित रहे जिनमें से 'डाली' के अतिरिक्त शेष सभी जन्म के पूर्व मृत हो गये। 'डाली' अब दस मास की है किन्तु वह कितने वर्षों तक जीवित रहेगी, कोई नहीं जानता।

डॉ० विलमुट की टोली ने एक गर्भिणी भेड़ के थन से कोशिकाएँ निकालीं और उनके विभाजन को रोकने के लिए उन्हें एक सप्ताह तक कोई पोषण नहीं दिया गया। इसके बाद नाभिकीय स्थानान्तरण (Nuclear transfer) प्रविधि से अनिषेचित अंड (Oocite) का नाभिक इस तरह विलग किया गया कि घेरने वाला साइटोप्लाज्म अक्षत रहा आवे। तब इस अंड को एक नवीन दाता कोशिका के नाभिक के पास रखा

गया और बिजली का हल्का सा झटका दिया गया। इससे अंड ने नवीन नाभिक ग्रहण कर लिया, पूरा डी० एन० ए० स्वीकार कर लिया। एक सप्ताह बाद इसे अन्य (Surrogate) भेड़ के ग़र्भाशय में स्थापित किया गया। उससे 'डाली' का जन्म हुआ। इस प्रयोग से ऐसा लगता है कि मानव-क्लोनिंग की बारी आने ही वाली है। क्लोनिंग के अनुभव से मेरुदण्ड शिराओं, हृदय पेशी तथा मस्तिष्क टिशुओं की पहेली सुलझेगी। अभी तक गहरी चोट के बाद ये टिशु पुनरुत्पादित नहीं हो पाते थे, न ही कैंसर कोशिकाएँ अपना गुणन बन्द करती थीं। क्लोनिंग से दुश्शंकाएँ भी हैं-यथा मानव -संस्करण, क्लोन सेनाएँ, दास प्रजनन शालाएँ आदि जिनका उल्लेख अल्डुस हक्सले ने अपने उपन्यास 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' (Brave New World) में किया है। इस प्रयोग से यह आशा बँधी है कि मनुष्य अपनी सारी बुद्धि भी अपनी प्रतिकृति को, अपने नये जन्म को, प्रदान कर सकेगा। इस तरह हर पीढ़ी में एक 'आइंस्टाइन' को जन्म दिया जा सकेगा।

अट्टहास में भी छिपा है विज्ञान

इसमें दो राय नहीं कि हँसना हमारी प्रकृति का आवश्यक अंग है। अरस्तू, डार्विन, फ्रायड आदि ने हँसी के महत्व का उल्लेख किया है। हँसी सर्वोत्तम औषिधि है। फिर भी हम अट्टहास यानी ठहाका के बारे में अधिक नहीं जानते।

मनुष्य या पशु जो भी ध्वनि निकालते हैं उसके गुणों के अध्ययन को 'एथॉलोजी' (Ethology) कहते हैं। प्रजातिमय हँसी तथा इसकी सामान्य संरचना बताती है कि इसका जीनी तथा न्यूरो-मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध है। यह विचित्र बात है कि किसी को कहकर हँसाया नहीं जा सकता। इसी तरह हम अपनी वाणी पर संयम रख सकते हैं किन्तु हँसी पर हमारा वश नहीं चल पाता। हा हा हा, हू हू करना आसान हैं किन्तु संकेत या इशारे पर हँसना कठिन है। फिर भी ध्वनि प्रयोगशाला में हँसी या ठहाके (अट्टहास) का विश्लेषण ध्वनि स्पेक्ट्रोग्राफ द्वारा किया जाता है। इससे ध्वनि का प्रतिबिम्ब बनता है जिसमें समय के साथ ध्वनि की आकृति तथा तीव्रता में होने वाले परिवर्तनों का पता चलता है। हँसी में लघुस्वर जैसे अक्षरों (Notes) की श्रृंखला रहती है जो 75 मिली सेकेंड तक बने रहते हैं और 210 मिली सेकेंड के बाद उनकी पुनरावृत्ति होती है। किसी विशेष स्वर ध्वनि से हँसी नहीं बनती किन्तु एक जैसे स्वर किसी हँसी के अक्षर (Notes) के लिए प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ, हँसी की संरचना 'हा-हा-हा' या 'हो-हो-हो' होती है। वह कभी भी 'ह-हो-ह-हो नहीं होती। हाँ, 'ह-ह-हो' जैसी ध्वनि सम्भव है।

यह भी ज्ञात हुआ है कि स्त्रियों की हँसी में उच्च आवृत्ति (502 हर्ट्ज) होती है, और पुरुषों में निम्न (276 हर्ट्ज) । इसका कारण हमारे गले की बनावट है।

यह सोचना ग़लत होगा कि हँसी का प्राकृतिक उपहार मनुष्य को ही मिला हुआ है। डार्विन ने लिखा है कि खेलते, शिकार करते या कुश्ती लड़ते समय चिंपाजी हँसते हैं।

मनुष्य में हँसी का अवसर अन्य मनुष्यों के सम्पर्क में आने पर उपस्थित होता है। वक्ता हमेशा श्रोता से ड्योढा अधिक हँसता है। महिलाएँ महिलाओं के साथ कम देर तक हँसती हैं किन्तु पुरुष पुरुष के साथ या महिला के साथ अधिक देर तक हँसता है। इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष अच्छे हँसोड तथा स्त्रियाँ अच्छी ठहाका लगाने वाली होती हैं। मनुष्यों में जन्म के 3-4मास बाद ही हँसी की शुरुआत हो जाती है किन्तु इसका विकास किस तरह होता है, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। बहरे-गूँगे बच्चे भी हँसते हैं।

अट्टहास या हँसी पर अब भी शोध करने की आवश्यकता है।

विज्ञान के क्षेत्र में लिंग भेदभाव

अमेरिका में विगत बीस वर्षों से विज्ञान के क्षेत्र में लिंग भेदभाव को अवैध घोषित कर दिये जाने से लिंग अन्तराल में कमी आई है फिर भी, कई क्षेत्रों में असमानता बनी हुई है। असमानता के कारण हैं जैसे सामाजिक प्रणाली तथा व्यक्ति के आन्तरिक कारण। स्त्रियों में आमतौर पर रोजगार के प्रति मनोवृत्ति नहीं दिखती। विज्ञान को पुरुषों का कार्य क्षेत्र बताकर प्रायः स्त्रियों को निरुत्साहित किया जाता है। अतः आवश्यक है कि विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त होनहार पुरुषों तथा स्त्रियों की उपलब्धियों की सही जाँच-पड़ताल की

जाय। एक ऐसे ही सर्वेक्षण में 92 पुरुषों तथा 108 स्त्रियों से साक्षात्कार किया गया। विषयवार विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि जीव विज्ञान के क्षेत्र में स्त्री तथा पुरुष समान रूप से सफल होते हैं, कोई लिंग भेद नहीं दिखता। किन्तु भौतिकी, गणित और इंजीनियरी के क्षेत्र में काफी अन्तर मिला। इसमें स्त्रियाँ कम सफल रहीं।

वैसे यह विशेष बात देखने को मिली कि स्त्रियाँ अपने शोधकार्य के प्रति अधिक ईमानदार होती हैं। स्त्रियों ने बतलाया कि नौकरी के लिए होने वाले साक्षात्कार में भेदभाव बरते जाने से उन्हें अवसर नहीं मिलते। उनकी शिकायत रही कि उनके शोध निर्देशक उनके साथ उपेक्षा बरतते हैं या उन्हें अपने अधीन मानते हैं। जिन स्त्रियों की निर्देशक स्त्रियां थीं उन्हें बीच में ही शोधकार्य छोड़ना पड़ा जबकि स्त्री निर्देशकों के साथ कार्य करने वाले पुरुषों ने अपना शोध कार्य नहीं छोड़ा।

स्त्रियों का कहना है कि पुरुष वर्ग वैज्ञानिक गोष्ठियों में दिखावा अधिक करते हैं। महान वैज्ञानिकों से जाकर हाथ मिलाते हैं और उनके साथ खाते-पीते हैं। स्त्रियाँ यह कार्य नहीं कर पातीं। स्त्रियाँ सर्वथा नया विषय चुनती हैं, वे होड़वाले विषयों में हाथ नहीं लगाना चाहतीं। यद्यपि उनके शोधपत्रों की संख्या कम होगी किन्तु वे उच्चस्तरीय होंगे। शोधपत्रों की संख्या कम होने से नौकरी मिलते समय उन्हें घाटा उठाना पड़ता है। उनके जीवन में सबसे बड़ी बाधा आती है पारिवारिकता। उन्हें अपनी कम, अपने पति और बच्चे की उन्नति का ध्यान अधिक रहता है। विवाह हो जाने पर उनका इधर-उधर हिल-डुल पाना एक समस्या बन जाती है। फिर भी यह पाया गया कि जिन स्त्रियों के पतियों ने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सहायता पहुँचायी, वे अपने क्षेत्र में अग्रणी बनीं।

अन्ततः यह माना जा सकता है कि अच्छे विषय का चुनाव, अच्छा निर्देशक मिलना-यह सब भाग्य पर निर्भर है।

बच्चों के लिए सीसा घातक

पर्यावरण में सीसायुक्त पेट्रोल के कारण पर्याप्त सीसा वायु में उपस्थित रहता है। चाहे बच्चे कार में घूमें या कार से स्कूल जावें या पैदल चलें, उनकी श्वास से सीसा निरन्तर उनके शरीर में प्रविष्ट होता रहता है। इससे उनके शरीर में, उनके रक्त में, सीसा की मात्रा सुरक्षित स्तर से अधिक हो जाती है। यदि रक्त के प्रति डेसीलिटर में दस माइक्रोग्राम से अधिक सीसा हो तो इसे खतरे की रेखा से ऊपर माना जाता है। ऐसा देखा गया है कि शरीर के भीतर जितना भी सीसा प्रविष्ट होता है उसका एक तिहाई अंश रक्त में पहुँच कर चक्कर लगाता है और अस्थियों, ऊतकों तथा मस्तिष्क में जाकर स्थिर हो जाता है।

तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों में सीसा के कारण बुद्धिलब्धि प्रभावित होती है, जिससे उसमें सीखने की शक्ति घटती है और धीरे-धीरे उसका स्वभाव बदलने लगता है। वह शान्त नहीं बैठ सकता, उसका ध्यान विचलित होता और वह बड़े होने पर पढ़ने में मन्द पड़ने लगता है, विशेषतः गणित में पीछे रह जाता है। उनमें फेल होने की प्रवृत्ति स्वस्थ बालकों की तुलना में सात गुनी अधिक हो सकती है। अमेरिका जैसे विकसित देश में सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग होने के बावजूद 1980 तक सीसे के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा जिसके फलस्वरूप लोग रिहायशी मकानों की दीवारों में सीसे के पेन्ट से पुताई नहीं कर सकते और उद्योग-धन्धों में खाद्य सामग्री के डिब्बों में सीसे का प्रयोग वर्जित है। इतने पर भी पुराने घरों में सीसे की पाइपों से पीने का जल आने तथा घरों की दीवारों से रंग की चिप्पियाँ झड़ने या फिर धूल में बच्चों के खेलने से काफी मात्रा में सीसा शरीर के भीतर पहुँच जाता है। चूँकि सीसा की विषाक्तता व्यापक है अतः अमेरिका में 9 से 12 मास तक के बच्चों की रक्त की जांच कराना आवश्यक है। यदि रक्त में सीसा अधिक रहे तो पुनः 24 मास पर रक्त की जांच करानी होती है। घर पर की गई जाँच अविश्वसनीय है। यदि बच्चे को सीसा-विषाक्तता हो तो उसे अल्प वसा युक्त तथा लौह एवं कैल्सियम में समृद्ध भोजन करने की सलाह दी जाती है।

क्या भारत अपने 'धूल भरे हीरों' या दुधमुँहे बच्चों की सुरक्षा का ऐसा ही कोई उपाय ढूँढ़ सकेगा?

■■■

विज्ञान परिषद् प्रयाग
द्वारा
आयोजित अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 1997

व्हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1997 से दिसम्बर 1997 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1997 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 1 मार्च 1998 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें

सम्पादक,
विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 83 अंक 6
सितम्बर 1997

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत,
500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक : 25 रु०,
एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

♦

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक

अरुण राय
कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

♦ ♦

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

"विज्ञान" का सितम्बर 1997 अंक आपके हाथों में है। कुछ अपरिहार्य कारणों के कारण हमें इधर लगातार दो अंक संयुक्तांक निकालने पड़े । इसका हमें खेद है, पर क्या करें, परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी रहीं।

मंगल ग्रह पृथ्वी से मिलता-जुलता है

इन दिनों विज्ञान सम्बन्धी कुछ अच्छी खोजों के समाचार सामने आये। मंगलग्रह पर खोजी 'पाथफाइण्डर' द्वारा भेजे गए चित्रों और आँकड़ों से यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि मंगल ग्रह अन्य ग्रहों की तुलना में पृथ्वी से सबसे ज़्यादा मिलता-जुलता है।

हुआ यह कि 'पाथफाइण्डर' में वैज्ञानिकों ने 'सोगोनट' नामक एक रोबोट रख दिया। फिर तो मंगलग्रह पर पहुँच कर इस रोबोट ने कमाल ही कर दिया। रोबोट ने अल्फा प्रोटॉन एक्स-रे स्पैक्ट्रोमीटर से 'वार्नाकल बिल' नामक चट्टान के जो रेखाचित्र भेजे हैं, उनके अध्ययन से ऐसा लगता है कि चट्टान पर विकिरण से उसमें एक तिहाई भाग सिलिका और खनिज मिश्रित क्वार्ट्ज के होने का संकेत मिलता है। इसके पूर्व चंद्रमा से लाये गए चट्टानों के नमूनों में क्वार्ट्ज नहीं पाया गया था। बस क्वार्ट्ज की उपस्थिति ही चौंकाने वाली बात है और इससे इस बात की पुष्टि होती है कि मंगल ग्रह पृथ्वी से काफी मिलता-जुलता है। क्वार्ट्ज कई तरह से बनता है। ज्वालामुखी से निकली चट्टान के ठंडी होने से और पानी द्वारा बहकर ज़मीन पर पहुँचने से। 'पाथफाइण्डर' जिस स्थान पर उतरा था, उसके नज़दीक ज्वालामुखी के मुख के समान गड्ढा देखा गया। इससे यह अनुमान लगाया गया है कि अरबों वर्ष पूर्व उस जगह पर बाढ़ आई रही होगी। इस खोज से यह सिद्ध होता है कि मंगल ग्रह पर कभी पानी रहा होगा।

इसके पूर्व मंगल ग्रह से धरती पर आई 12 चट्टानों का रासायनिक विश्लेषण किया जा चुका है और चट्टान के नमूनों में जैव अणु और लौह खनिज के यौगिक के विद्यमान होने की पुष्टि हो चुकी है।

विश्व का प्राचीनतम जीवित पादप

तस्मानिया के पार्क और वन्य जीवन सेवा के प्रमुख वनस्पतिविद् स्टीफेन हैरिस (Stephen Harris) का कहना है कि *लोमैटिका तस्मानिका* (*Lomatica tasmanica*) नामक झाड़ी इस धरती पर विश्व का सबसे पुराना जीवित पादप है जिसकी वय 43,000 वर्ष की है।

वास्तव में 'पवित्र झाड़ी' के नाम से विख्यात इस पादप के विषय में सर्वप्रथम 1930 के दशक में जानकारी मिली थी, किन्तु इस झाड़ी की उम्र कितनी है, इस पर किसी का ध्यान नहीं गया था। अब वनस्पतिविज्ञानियों का ऐसा विश्वास है कि यह पादप विश्व का प्रचीनतम जीवित पादप है।

जनसंख्या विस्फोट : भयावह समस्या

पिछले दिनों भारत के रजिस्ट्रार जनरल एवं सेंसस कमिश्नर ने "पॉप्यूलेशन प्रोजेक्शन्स फॉर इण्डिया एण्ड स्टेट्स : 1996-2016" नामक अपने प्रकाशन में देश की बढ़ती जनसंख्या और उससे उत्पन्न भयावह समस्या का आकलन प्रस्तुत किया है। अर्थात् पिछले चार दशकों से चला

आ रहा परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रभावी नहीं रहा। हमारी आबादी प्रतिदिन 45000 से 50,000 बढ रही है। इस प्रकार कुपोषण, गरीबी, बेरोज़गारी, बीमारी, निरक्षरता, अपराध, पर्यावरण प्रदूषण और नैतिक पतन के मूल में है जनसंख्या का दबाव। अतएव हमें अविलम्ब जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने के नए उपाय करने होंगे। विश्व जनसंख्या दिवस 11 जुलाई पर मात्र संगोष्ठियाँ आयोजित करने से कुछ नहीं होने वाला है।

मेहता को मैगसेसे पुरस्कार

सुप्रीम कोर्ट के वकील 50 वर्षीय श्री महेश चन्द्र मेहता को भारतीय पर्यावरण की रक्षा के लिए किए गए उत्कृष्ट योगदान के लिए वर्ष 1997 का 50 हजार डॉलर (लगभग 20 लाख रुपयों) 2 का 'मैगसेसे पुरस्कार' प्रदान करने के लिए चुना गया है। 'मैगसेसे पुरस्कार' एशिया का 'नोबेल पुरस्कार' माना जाता है।

श्री मेहता आगरा में स्थिति भारत के मुग़लकालीन वास्तुकला आश्चर्य (विश्व का आठवां आश्चर्य) ताजमहल को प्रदूषण से बचाने के लिए 1984 से संघर्ष करते रहे हैं। उनके प्रयास से 40 पर्यावरण संबंधी मुक़दमों के फैसले न्यायालय द्वारा पर्यावरण संरक्षण के पक्ष में दिए गए हैं। इस प्रकार श्री मेहता भारत की वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों को स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकर पर्यावरण का संवैधानिक अधिकार दिलाने के लिए कृत संकल्प हैं।

श्री मेहता इस पुरस्कार को पाकर खुश हैं किन्तु साथ ही उनका मत है कि पर्यावरण संरक्षण को जन आन्दोलन का रूप देना होगा।

शुभ समाचार

"विज्ञान" का नवम्बर 1997 अंक 'प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति अंक' और दिसम्बर 1997 अंक 'स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती स्मृति अंक' होंगे।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

प्रो० नन्दलाल सिंह स्मृति व्याख्यानमाला

विख्यात भौतिकविद् एवं हिन्दी विज्ञान लेखन के उन्नायक आचार्य नन्दलाल सिंह का देहावसान 26 नवम्बर 1996 को हो गया था। स्वर्गीय डॉ० सिंह के सुपुत्रों-ब्रिगेडियर के० पी० एन० सिंह, श्री अखिलेख नारायण सिंह और डॉ० गिरीश नारायण सिंह द्वारा विज्ञान परिषद्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शाखा के माध्यम से विज्ञान परिषद् प्रयाग को प्रो० नन्दलाल सिंह स्मारक व्याख्यान के लिये 20,000 रु० की राशि प्रदान की गई है। यह व्याखान स्व० प्रो० सिंह के जन्मदिन 1 अगस्त अथवा अगस्त के प्रथम सप्ताह में किसी ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक द्वारा दिया जायेगा। इस वर्ष इस व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान 1 अगस्त 1997 को भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, शाखा परिषद् द्वारा आयोजित किया गया है। प्रथम व्याख्यान अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के भौतिकीविद्, गोरखपुर विश्वविद्यालय के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष प्रो० देवेन्द्र शर्मा जी द्वारा दिया जायेगा। इस व्याख्यान माला के आयोजन से संबंधित स्व० प्रो० नन्दलाल सिंह के तीनों पुत्रों, प्रो० देवेन्द्र शर्मा, डॉ० श्रवण कुमार तिवारी, परिषद् की वाराणसी शाखा के प्रति मैं परिषद् की ओर से और अपनी ओर से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रे० चं० श्री०

ज़िमीकन्द

प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, भारत की सम्पदा, प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, हिल साइड रोड,नई दिल्ली-110012

ज़िमीकन्द *एर्मोफोफैलस* (*Amorphophallus*) नामक वंश से संबंध रखता है। यह बहुवर्षी या एकवर्षी शाकों का वंश है। इस वंश की अनेक जातियों में पाये जाने वाले प्रकंद खाद्य होते हैं। जिमीकंद का वानस्पतिक नाम **एर्मोफोफैलस कैम्पेन्युलेटस** है। अँग्रेज़ी में इसे एलिफेंट फुट याम कहा जाता है। ज़िमीकंद लगभग सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। ज़िमीकंद पौधे का वह भाग है जो भूमि के अन्दर रहता है। इसके चारों ओर पतली चिकनी बेलनाकार जड़े निकली होती हैं।

ज़िमीकन्द की खेती सामान्यतः अकेले ही की जाती है, लेकिन इसे नारियल के बाग़ानों में सहायक फ़सल के रूप में भी लगाया जाता है। भारत में ज़िमीकन्द विशेष रूप से आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु में बोया जाता है। वैसे केरल में ज़िमीकन्द की खेती अदरक के साथ लगाकर भी की जाती है। ज़िमीकन्द भूमि से खुराक बटोर कर स्वंय में एकत्र कर लेता है। लगातार यदि एक ही भूमि में इसे बोते रहें तो भूमि का उर्वरता लगभग समाप्त हो जाती है। ज़िमिकंद का प्रवर्धन धनकंदों द्वारा किया जाता है।

ज़िमीकन्द को मुख्य रूप से सब्ज़ी की तरह खाया जाता है। यह पर्याप्त रूप से पौष्टिक होता है। इसके धनकन्दों को सफ़ाई से धोकर इमली के पानी में उबाला जाता है या फिर नमक के पानी में डुबोकर कुछ घंटों के लिये रख दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो मुख में खुजली होने की संभावना रहती है। ज़िमीकन्द के टुकड़ों को तेल अथवा घी में अच्छी तरह तलकर खाने के काम में लाया जाता है। ज़िमीकन्द के नये व नाज़ुक वृतों को छील कर व उबालकर व अच्छी तरह पकाकर खाने के काम में लाते हैं। इनमें अनेक पोषक तत्व होते हैं। इनमें खनिज भी भरपूर होते हैं।

ज़िमीकन्द को देशी चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत् भी प्रयोग में लाया जाता है। ज़िमिकन्द की एक जाति **एर्मोफोफैलस इयूबियस** का विशेष रूप से औषधि की तरह काम में लाते हैं। इसके धनकंदों को निस्सारक तथा हल्का दस्तावर समझा जाता है। कहते हैं कि इसे वायुसारी औषधि के रूप में भी प्रयोग में लाया जाता है। धनकंद जब ताज़े होते हैं तो वे अत्यन्त तीखे, उद्दीपक व कफ़ निस्सारक होते हैं। ये ताज़ी अवस्था में भूख तो बढ़ाते ही हैं तथा स्वाद में भी इज़ाफा करते हैं। ज़िमीकन्द की जड़ों को 'नेत्राभिष्यंद' में उपयोग में लाते हैं। फोड़े-फुंसियों पर इनका लेप किया जाता है तथा इन्हें आर्तवजनक के रूप में भी दिया जाता है। पेचिश, बवासीर तथा अर्श में धनकंदों को प्रयोग में लाया जाता है। गठिया में होने वाली सूजन के उपचार में बीजों को प्रयोग में लाते हैं। यह कुछ हद तक जीवाणुरोधी भी पाया गया है। धनकंदों में कैल्सियम ऑग्ज़ैलेट की उपस्थिति के कारण वे क्षोभक की भाँति कार्य करते हैं। ज़िमीकंद में प्रोटीन, वसा, रेशा, कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च तथा ऑक्ज़ैलिक अम्ल होते हैं। जहाँ तक खनिजों का प्रश्न है, इसमें कैल्सियम, फॉस्फोरस, लौह इत्यादि पाये गये हैं। ज़िमीकन्द में ग्लुकोज,

गैलेक्टोज, रैम्नोज तथा जाइलोज भी विद्यमान रहते हैं। आर्जीनीन, हिस्टीडीन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, लाइसीन, मीथियोनीन, फेनिलएलानीन, थ्रीयोनीन, ट्रिप्टोफैन तथा वैलीन आदि अनिवार्य अमीनोअम्लों की उपस्थिति भी ज़िमीकंद में पाई गई है। कुल मिलाकर ज़िमीकंद एक अत्यंत उपयोगी पौधा है।

प्राकृतिक सम्पदा पर मंडराता ख़तरा

दीप्ति भटनागर

पीपुल फॉर साइंस डिवेलपमेंट, बी-२, वैल्कम अपार्टमेंट
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-85

विकास की आँधी के चलते आज पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पदा नष्ट हो रही है। अनेक प्राकृतिक क्षेत्र उनमें पनपने वाली जैविक प्रजातियों से खाली होते जा रहे हैं। क्या यही है इक्कीसवीं सदी की पृथ्वी का स्वरूप?

आधुनिकता और विकास के मद में चूर मानव आज बिना सोचे-समझे प्रकृति की नायाब देन बर्बाद करता जा रहा है। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण की मारामारी और तकनीकी विकास के बेलगाम घोड़े प्राकृतिक सम्पदाओं को बेहिचक रौंदते जा रहे हैं।

प्राकृतिक सम्पदा का यह ह्रास इस समय विश्व की सबसे बड़ी चिंता का विषय बन गया है। इसीसे पूरे विश्व में पर्यावरणविदों ने आवाज़ उठाई है और सरकार और जनसाधारण का ध्यान इस ओर खींचने के प्रयत्न किए हैं। प्रदूषण जैसी समस्याओं के कारण आज सबसे चौंकाने वाली समस्या है प्राणियों के प्राकृतिक निवासस्थानों के नष्ट होने की।

गाँवों और पहाड़ी इलाकों में ईंधन जैसी जरूरतों की भरपाई के लिये वन काटना आम बात है। इसके परिणामस्वरूप वनों में रहने वाले जीव-जंतु आवासरहित होकर या तो अन्य स्थानों की खोज में भटक-भटक कर ही अपना जीवन समाप्त कर देते हैं या फिर प्राकृतिक रूप से या मनुष्य का शिकार हो कर मृत्यु तक पहुँच जाते हैं।

दूसरी ओर शहरों में बढ़ती आबादी बसाने के लिए जंगलों को काट कर आसमान छूती इमारतें बनती जा रही हैं। इन कंक्रीट के जंगलों में पेड़-पौधे गुम होते चले जा रहे हैं। आज शहरों में पेड़ या तो घरों के बागों में या फिर किसी कॉलोनी और मोहल्ले में बने मैदानों तक सीमित रह गए हैं। इन पर रहने वाले जीव इधर-उधर बिखर गए हैं। चिंता यह है कि इनकी संख्या इनके निवास स्थालों के खत्म होने के कारण कम होती जा रही है। यह सच है कि पृथ्वी पर मौजूद सभी पारिस्थितिक तंत्र खतरे के घेरे में आ गए हैं। उदाहण के तौर पर अफ्रीका के तटीय प्रदेशों जैसे कैमेरुन के जंगल कभी प्राकृतिक संपदा और जैव विविधता से भरपूर थे। इसी प्रकार मैंडागास्कर के शुष्क वन क्षेत्र प्राकृतिक रूप से पनपने वाली ऐसी अनमोल प्रजातियों के भंडार थे, जो विश्व में शायद कहीं और नहीं पाई जातीं। आज यह दोनों प्रदेश प्रदूषण, बढ़ती आबादी और पानी के अनियंत्रित ठहर जाने के कारण खत्म होते जा रहे हैं। यही नहीं कभी अनेक असाधारण और दुर्लभ प्रजातियों के निवास स्थल रह चुके सुमात्रा और मलेशिया जैसे द्वीपों के वर्षा प्रचुर वन, भारत के तटीय वन प्रदेश, अमेज़न के सुदूर फैले वर्षा प्रचुर वन भी

आबादी से उत्पन्न हस्तक्षेप और प्रदूषण का शिकार हो चुके हैं। समुद्री क्षेत्र भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं, तन्जानिया, कीन्या, दक्षिणी यूरोप और एशिया के समुद्री तट कुछ ऐसे ही समुद्री क्षेत्र हैं, जो मनुष्य के हस्तक्षेप के कारण अपनी प्राकृतिक आभा गवां चुके हैं। अत्यधिक प्रदूषण, आवश्यकता से अधिक मछली पकड़ने का व्यवसाय और तटों की बढ़ती आबादी ने समुद्र के पानी को तो प्रदूषित किया ही है, इन स्थानों पर पनपने वाली अनेक समुद्री प्रजातियों को भी विलुप्ति के कगार पर ला खड़ा किया है।

मानवीय हस्तक्षेप से विनाश की समस्या केवल इन गिने चुने प्रदेशों की ही नहीं है, बल्कि विश्व के प्राकृतिक मैदानी इलाकों और गैलेपेगोस द्वीपों जैसे दूरस्थ इलाकों को भी मनुष्य की विनाशकारी गतिविधियों ने नहीं बख्शा है। इन सभी पारिस्थितिक तंत्रों में विचरने वाले जीव-जन्तु और पेड़-पौधों की दुर्लभ प्रजातियाँ आज एक-एक कर विलुप्त हो रही हैं।

इसी से चिंतित होकर विश्व के सभी देशों में अब इस समस्या को गंभीरता से लिया जा रहा है और प्रायः सभी जगह छोटे-बड़े संस्थान इससे जूझ रहे हैं। एक रिर्पोट के अनुसार विश्व स्तर पर कार्यरत वर्ल्ड वाईड फंड फॉर नेचर ने 5 अप्रैल 1997 को 'ग्लोबल 2001' नामक एक अभियान की शुरुआत की है। इस अभियान के अंतर्गत पूरे विश्व में करीब 100 देशों में विनाश के खतरे से ग्रस्त 200 प्राकृतिक स्थानों को चुना गया है। कार्यक्रम के अनुसार सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं की मदद से इन स्थानों को पुनः अपने पूर्व रूप में लाने के लिये कार्य करने का विचार है।

इन सभी स्थानों पर नष्ट हुए पेड़-पौधों को फिर से लगाकर उन्हें पनपने देने के लिये पूरा इंतजाम किया जाएगा। इसके साथ ही इसमें बचे हुए जीव-जन्तु और पेड़-पौधों का संरक्षण किया जाना भी शामिल है। इससे न केवल ये स्थान फिर से स्वाभाविक रूप में फल-फूल सकेंगे, बल्कि इनमें पलने वाले लाखों जीव और पादप प्रजातियों को भी उनका प्राकृतिकनिवास स्थल एक बार फिर वापिस मिल पाएगा।

प्रसन्नता की बात यह है कि इतने कम समय में ही इस अभियान के आशापूर्ण परिणाम सामने आने लगे हैं। अनेक देशों की सरकारों ने इसके तहत कड़े नियम लागू कर प्राकृतिक स्थानों की सुरक्षा के लिये सक्रिय कदम उठाने प्रारंभ कर दिए हैं।

आज पृथ्वी के प्रकृतिक स्थानों की खोई हुई स्वाभाविक छंटा को हमें वापस लाना है। हमारी पीढ़ी के सामने यह एक महत्वपूर्ण और प्रमुख जिम्मेदारी है। इससे जहाँ हम इसे अपने लिए साफ और सुरक्षित बना पाएंगे वहीं आने वाली पीढ़ी को भी यह पृथ्वी अपने पूरे प्राकृतिक और सुन्दर रूप में सौंप पाएंगे।

सच तो यह है कि पृथ्वी हमें विरासत में मिली ऐसी संपदा नहीं है जिसका शोषण करना हमारा अधिकार है वरन् हमारे पास आगे आने वाली पीढ़ियों की थाती है जिसे हमें सजों कर रखना है, अगली पीढ़ियों को सौंपने के लिए ताकि वे उसे अपने बाद आने वाली पीढ़ियों को सौंप सकें।

[अभियान]

"केवल कर्म ही वह अनुकूल पवन है जो मानव जीवन की नौका को महासमुद्रों के पार कराता है, और इस कर्म के महत्व के मूल्य -निर्धारण के विषय में एक अचूक, चिरसम्मानित मापदंड है, एक ऐसी सूक्ति जो चिरकाल के लिए अंतिम, प्रामाणिक निर्णय उच्चारित करती है: आपको अपने परिणामों के द्वारा उनका ज्ञान होगा।"

- मैक्स प्लांक

क्रायोजनिक इंजन-क्या और क्यों ?

कृषिचयन

भौतिक विज्ञान विभाग द्वारा डॉ० चतुर्भुज साहु, रीडर एवं विभागध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह (बिहार)

सन् 1992 ई० में, जब रूस तथा भारत के मध्य क्रायोजनिक इंजन के प्रौद्योगिकी के आदान-प्रदान की बात लगभग तय हो गयी थी, अमेरिका ने भारत के अंतरिक्ष संगठन इसरो (ISRO) को 'प्रेक्षेपास्त्र प्रोद्योगिकी नियंत्रण व्यवस्था' (Missile Technology Control Regime, MTCR) के तहत व्यापारिक प्रतिबंध लगा दिया, जबकि इसरो (ISRO) शांति कार्यक्रम पर आधारित अंतरिक्ष संगठन है और इसके साथ-ही-साथ समयोचित उपयोग करते हुए रूस के विघटनकारी तथा व्यापारिक समस्या को देखते हुए जी-7 (G-7) की बैठक में 'क्लिंटन-येल्तसिन वार्ता, में इस क्रायोजनिक इंजन के समझौते के रद्द करवाने हेतु रूस पर पूरा दबाव डाला, जिससे रूस ने अमेरिका के सामने हथियार डाल दिया, परिणामस्वरूप भारत और रूस के बीच यह समझौता रद्द हो गया। इस सौदे के सम्बंध में अमेरिका ने यह आशंका व्यक्त की थी कि, भारत इस क्रायोजनिक इंजन की तकनीक का उपयोग अपने प्रक्षेपास्त्र विकसित करने में करेगा, इसलिए वह इस हस्तानान्तरण का विरोध कर रहा है, लेकिन अमेरिका की यह दलील तर्कों की कसौटी पर खरी नहीं उतरती है। यह सर्वविदित है कि भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम शांतिपूर्ण कार्यों के लिये है और यह भारत के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। परन्तु अमेरिका की गहरी सोच यह है कि अगर भारत जैसा देश भी प्रक्षेपण तकनीक विकसित कर लेता है तो अपने उपग्रहों को तो स्वयं अंतरिक्ष में भेजने में समर्थ हो ही जाएगा, साथ ही साथ आपसी प्रतिस्पर्धा की दौड़ में सस्ते दरों पर अन्य देशों के उपग्रहों को भी प्रक्षेपित करने लगेगा, जिससे अमेरिका तथा इस क्षेत्र में दक्ष अन्य पश्चिमी देशों का एकाधिकार समाप्त होने के साथ-साथ उन्हें व्यापारिक घाटा भी सहन करना पड़ सकता है। इस कारण अमेरिका ने अपनी कूटनीति के तहत इस समझौते को रद्द कर अपने दोहरे मापदण्ड को प्रदर्शित किया है।

अब हम क्रायोजनिक इंजन की संरचना, विकास की रफ्तार, विकास की चुनौतियाँ तथा इसकी उपयोगिता आदि के बारे में चर्चा करेंगे।

'क्रायोजनिक्स' का हिन्दी शब्दार्थ 'निम्न ताप विज्ञान' होता है जिसके अन्तर्गत् एक निश्चित तापमान (-100^0से०) के नीचे के तापमान से संबंधित क्षेत्र आते हैं। इस निम्न तापक्रम की स्थिति में होने वाले सभी प्रभावों का अध्ययन करना भी क्रायोजनिक्स के अन्तर्गत् ही आता है। साधारणतया इस निम्न ताप विज्ञान को दो भागों में बाँटा जाता है-

- अत्यधिक निम्न ताप उत्पन्न करना एवं इस स्थिति को बरकरार रखना, तथा
- विकसित तकनीक तैयार करना ताकि इस ताप पर होने

वाले अनेक प्रकार के प्रभावों का सुचारु रूप से अध्ययन हो सके।

क्रायोजनिक इंजन एक तरल ईंधन (Liquid fuelled) इंजन हैं जिसमें तरल हाइड्रोजन एवं तरल ऑक्सीजन का उपयोग ईंधन (नोदक) के रूप में किया जाता है, वैसे तो इंजन में उपयोग होने वाले ईंधन चार प्रकारके होते हैं।

(i) द्रव नोदक, (ii) ठोस नोदक, (iii) संकर नोदक (हाइब्रिड नोदक) एवं (iv) थिक्सोट्रोप (जेल नोदक)।

चूँकि हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन गैसों को तरल अवस्था में लाकर उसका उपयोग किया जाता है इस कारण उसे काफी निम्न तापक्रम में रखने की आवश्यकता होती है, हाइड्रोजन के लिये 253^0C तथा ऑक्सीजन के लिए 183^0C निम्न तापक्रमीय गुण के कारण ऐसे इंजन को क्रायोजनिक इंजन का नाम दिया गया है। क्रायोजनिक इंजन अन्य इंजनों से श्रेष्ठ होता है और इसकी यह श्रेष्ठता इसकी उत्कृष्ठ दक्षता के कारण होती है। यह दक्षता विशिष्ट आवेग के मान से मापी जाती है। क्रायोजनिक इंजन में द्रवीय हाइड्रोजन तथा द्रवीय ऑक्सीजन के संयोजन से दोहन की प्रक्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप अल्प आण्विक द्रव्यमान वाली गैसें निकलती हैं और इस प्रकार के गैस ही उच्च निष्पादन के लिये सर्वाधिक वांछित गुणक होते हैं। विभिन्न प्रकार के नोदकों के विशिष्ट गुणक होते हैं।

विभिन्न प्रकार के नोदकों का विशिष्ट आवेग (Specific Impulse) को तालिका नोदक—1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1

नोदक	विशिष्ट आवेग (सेकेन्डों में)
(i) ठोस नोदक	250-300
(ii) द्रव नोदक	300-340
(iii) क्रायोजनिक नोदक	(400-445)

तालिका-1 से यह स्पष्ट है कि क्रायोजनिक नोदक का विशिष्ठ आवेग सबसे अधिक होता है जो किसी भी रॉकेट नोदक की उत्कृष्ट क्षमता की पहचान होती है।

क्रायोजनिक इंजन के प्रणोदकों के प्रबंधन तथा भंडारण के लिये विशेष प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता होती है, क्योंकि हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन अपने निम्नतापीय अवस्था में उच्च विस्फोटक पदार्थ के समान होते हैं। इनके विस्फोटक होने के कारण, इनसे होने वाले खतरे को कम करने के लिये इसके रख-रखाव एवं भंडारण के लिये पूर्णतः प्रमाणित तकनीकों का उपयोग परम आवश्यक होता है। कम ताप बनाए रखने के लिये विशेष प्रकार के निरोधक (insulators) की व्यवस्था करनी पड़ती है, जो इतने कम ताप में भी कार्य करता रहे।

क्रायोजनिक इंजन के टर्बाइन (Turbine) तथा उच्च वेग टर्बो पम्प, जिसके सहारे क्रायोजनिक ईधन तथा ऑक्सीकारक को नियंत्रित वेग से दहन कक्ष (Combustion chamber) में भेजा जाता है, के विकास में भी काफी कठिनाइयाँ सामने आती हैं तथा इनसे संबंधित नियंत्रण प्रणालियों के घटकों के निर्माण में भी काफी कठिनाइयाँ होती हैं, क्योंकि इनके लिये एक विशेष पदार्थ की आवशयकता होती है तथा एक पूर्णतः परिष्कृत तकनीकी, विशेष जिड़ाइन तथा परिमार्जित उपकरणों का उपयोग करना पड़ता है, जिससे व्यवस्था में हमेशा नियत दबाव बना रहे तथा गैसों में विस्फोट आदि की घटना न हो।

अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में दक्षताप्राप्त देश, क्रायोजनिक इंजन का उपयोग बड़े पैमाने पर उपग्रहों को भू-स्थिर कक्षाओं में व्यवस्थित करने में कर रहें हैं। अमेरिका का एटलस सेन्तुर एवं स्पेस शटल तथा यूरोप का ऐरियन रॉकेट, क्रायोजनिक चरण का उपयोग करते हुए अनेक देशों के कृत्रिम उपग्रहों को यथोचित स्थानों पर भेजा है और इसके बदले में काफी मोटा धन संचित किया है। हॉल ही में चीन ने भी उपग्रह प्रक्षेपण यानों के लिये क्रायोजनिक इंजनों का विकास किया है। जापान ने इस दिशा में पहले ही सफलता हासिल कर ली है।

क्रायोजनिक इंजन का विकास, एक बहुत ही मुश्किल कार्य है,परन्तु प्रक्षेपण यान में इसके उपयोग के कई फायदे

भी हैं। ठोस ईंधन वाले इंजन के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस प्रकार के इंजन को जब एक बार चालू कर दिया जाता है तो इसके जलने की गति (Rate of burning) पर कोई नियंत्रण नहीं हो पाता है। इस कारण किसी सूक्ष्म परिवर्तनों वाले कार्य में इसकी उपयोगिता बेकार हो जाती है। साथ ही साथ ठोस ईंधन अधिक भारी होता है, जिससे पूरी व्यवस्था (प्रक्षेपण यान) का वज़न काफी बढ़ जाता है।

क्रायोजनिक इंजन में ये सारी खामियाँ नहीं होती हैं। इसका ईंधन एक ओर जहाँ अपेक्षाकृत वज़न में कम भारी होता हैं, वहीं, दूसरी ओर रॉकेट को ज़्यादा प्रक्षेपण शक्ति प्रदान करता है, क्योंकि इसका प्रति इकाई भार की प्रक्षेपण के दौरान अंतिम अवस्था में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस समय यान का कम भारी होना तथा अधिक प्रक्षेपण क्षमता का होना अति आवश्यक होता है और इस परिस्थिति में क्रायोजनिक इंजन पूर्णरूपेण खरा सिद्ध होता है। क्रायोजनिक इंजन में सभी यंत्रों को इस तरह से विशेष तकनीकी तथा डिज़ाइन से बनाया जाता है कि टर्बाइन पम्प तथा बल्ब के द्वारा एक बार इंजन चालू हो जाने के बाद भी दहन की गति (Rate of Combustion) पर नियंत्रण रखा जा सकता है और किसी भी इंजन की सबसे बड़ी खूबी यही होती है।

रूस द्वारा क्रायोजनिक इंजन प्रोद्योगिकी के हस्तांतरण में बाधा से भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों तथा दलों में कुछ निराशा अवश्य हुई है, परनतु जी० एस० एल० वी० परियोजना इस प्रगति की दिशा में महत्वपूर्ण पहल है।

क्रायोजनिक इंजन प्रौद्योगिकी रूस से प्राप्त न होने के कारण हम अंतरिक्ष में भू-स्थिर उपग्रह के प्रक्षेपण में आत्मनिर्भर नहीं हो सकेंगे और हमें यह काम दूसरे सम्पन्न देशों के द्वारा पूरा करवाना पड़ेगा जिससे विदेशी एजेंसी को काफी मोटा धन चुकाना होगा। ऐसी स्थिति में विश्व के आधुनिकतम तकनीक के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने हेतु हमें क्रायोजनिक इंजन के विकास में लग जाना चाहिए और यह काम हमारे भारतीय वैज्ञानिकों के लिए बहुत कठिन कार्य नहीं है क्योंकि इसरो (ISRO) के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कुछ ऐसे करिश्में कर दिखाये हैं कि इनका नाम पूरे विश्व में प्रचलित हो गया है। और तो और इसरो (ISRO) अब दुनिया की प्रथम श्रेणी की अनुसंधान संस्थाओं में से एक अनुसंधान संस्थान हो गया है। रूस की असहमति ने इस दिशा में 'उत्प्रेरक' का काम किया है क्योंकि अब इसकी उपस्थिति हमें काफी महत्वपूर्ण मालूम पड़ रही है।

इस दिशा में हमारी सरकार को भी दृढ़ इच्छा शक्ति प्रदर्शित करनी चाहिए तथा अमेरिका तथा कुछ अन्य सम्पन्न देशों के दबावों को नकारते हुए अपनी शांतिमय स्वतंत्र नीति का अनुसरण करना होगा, जिससे हम इस दिशा में निश्चित रूप से आत्मनिर्भर हो सकेंगे।

जीवन के लिये महत्वपूर्ण है विटामिन 'के'

डॉ० शिवशंकर राय

डी-753, सरस्वती बिहार, दिल्ली-34

विटामिन-के खून को बहने से रोकने में मदद करता है। शोधकर्त्ता शरीर में इसकी भूमिका पर नए प्रकाश डाल रहे हैं। जीवन के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण इस विटामिन की शरीर में भूमिका पर हो रहे नए शोध अध्ययनों की एक तथ्यपूरक वैज्ञानिक जानकारी।

हमारे शरीर में कुल मिलाकर लगभग 40 विभिन्न प्रकार के विटामिन पाए जाते हैं, इसमें एक है विटामिन 'के'। यह खून को बहने से रोकने में मदद करता है। यह तो हम सभी ने देखा है कि शरीर में कहीं कटने या चोट लगने से निकलने वाला रक्त कुछ देर में स्वयं ही जम जाता है। यह

प्रक्रिया जितनी अनूँठी है, उतनी ही हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण भी। यह प्रक्रिया विटामिन-के कारण ही संपन्न होती है। विटामिन 'के' दो प्रकार के होते हैं विटामिन-के-1 और विटामिन-के-2, विटामिन के 1 कई हरी सब्ज़ियों में बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। यह पीला तैलीय पदार्थ जैसा होता है। विटामिन के-2 पीला मोम जैसा पदार्थ होता है, जो जीवाणुओं द्वारा ही उत्पन्न होता है। यह शरीर में आँतों में उपस्थित जीवाणुओं से तैयार होता है। ये वे जीवाणु हैं जो इस महत्वपूर्ण विटामिन की शरीर में बराबर आपूर्ति तैयार करते रहते हैं।

रक्त शरीर का एक ऐसा द्रव है जो उसके विभिन्न अंगों के बीच बराबर संपर्क बनाए रखता है। आंशिक रूप से तरल और आंशिक रूप से ठोस रक्त शरीर की परिसंचार प्रणाली (सर्क्यूलेटरी सिस्टम) का मुख्य भाग है। रक्त में तरल अंग प्लाज़्मा (यह किसी भी पदार्थ की चौथी अवस्था होती है) के जरिए ऑक्सीजन, लवण और खाद्य पदार्थ शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँचते हैं। रक्त में लगभग 50 लाख लाल कोशिकाएँ और 6000 श्वेत कोशिकांए होती हैं। लाल कोशिकाओं में पाए जाने वाले पदार्थ हीमोग्लोबिन के कारण ही खून का रंग लाल होता है। श्वेत कोशिकाओं का मुख्य कार्य बाहरी जीवाणुओं व हानिकारक तत्वों से बचाव करना है।

विटामिन-के हमारे शरीर में गुर्दे द्वारा तेरह प्रकार के रक्त के घटकों की फलोरिंग करता है। यदि किसी कारणवश शरीर में इसकी कमी हो जाती है तो रक्त के थक्के बांधने में योगदान देने वाले तीन घटकों में कमी आ जाती है और चोट लगने आदि पर खून का बहना जल्दी बन्द नहीं होता है। यह स्थिति घातक हो सकती है। ज़्यादा चोट लग जाने पर खू न का बहना यदि शीघ्र बन्द नहीं हुआ तो परिणाम गंभीर होता है। विटामिन के-1 और के-2 वसा (फैट) में घुलनशील होते हैं, इसलिए शरीर में ये चर्बी में ही घुल कर रहते हैं। इसकी कमी का असर पाचन क्रिया, वसा व त्वचा द्वारा तेलों की सोखने की क्षमता पर भी दिखाई पड़ता है। ये दोनों विटामिन आसानी से बाज़ार में उपलब्ध हैं। इन्हें टैबलेट या इंजेक्शन द्वारा लिया जा सकता है।

आखिर शरीर में विटामिन 'के' की कमी क्यों हो जाती है? क्योंकि यदि पूरा खाना न खाएँ, तब भी यह विटामिन शरीर में आँत में उपस्थित जीवाणुओं में पूरी हो जाती है। तब क्यों कमी होती है? इसके लिए कई एंटीबायोटिक्स दवाइयाँ (जीवाणुनाशक ददाई) जिम्मेदार हैं। अगर कोई ताकतवर एंटीबायोटिक्स दवा लंबे समय तक खाई जाए तो ऐसा हो सकता है क्योंकि एंटीबायोटिक्स से आंत में विटामिन के पैदा करने वाले जीवाणु भी मर जाते हैं।

विटामिन 'के' की कमी से कई बार गुर्दे के रोग भी प्रकाश में आए हैं। कभी-कभी नवजात शिशुओं में भी इसकी कमी देखी जाती है। ऐसा तब होता है जब शिशु को माँ के दूध से बहुत कम विटामिन 'के' मिले। लेकिन विटामिन 'के' एक दुधारी तलवार की तरह है। यदि इसकी कमी घातक है तो अधिकता भी कम घातक नहीं है। इसकी अधिकता से शरीर की स्वस्थ रक्तवाहिनियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं। इससे फेफड़ों, मस्तिष्क व दिल को गंभीर क्षति पहुँच सकती है। इस स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए भी बाज़ार में आज दवाइयों की कमी नहीं है।

विटामिन-के की सर्वाधिक मात्रा पत्तागोभी में पाई जाती है। कुल 100 ग्राम पत्ता गोभी में इसकी मात्रा 3200 माइक्रोग्राम (1000 माइकोग्राम 1 मिलीग्राम के बराबर होता है) होती है जबकि गाजर में 100, मटर में 100 से 300, टमाटर में 400, आलू में 28 व गाय के दूध में 2 तथा अंडे में 20 माइकोग्राम प्रति 100 ग्राम में पाई जाती है। एक वयस्क व्यक्ति को रोजाना लगभग 4000 माइकोग्राम, 10 साल के कम बच्चे को 1000 से 2000 माइक्रोग्राम व एक साल से कम शिशु को 500 से 1000 माइकोग्राम विटामिन की आवश्यकता होती है जो आहार द्वारा आसानी से पूरी की जा सकती है।

शरीर में रक्त जमने की प्रक्रिया पर हाल में कुछ नए शोध-अध्ययन सामने आए हैं। अमेरिका के मिनिसोटा में रोचेस्टर के मायोक्लीनिक के वैज्ञानिकों और सिएटल वाशिंगटन के जाइमोजेनेटिक्स कारपोरेशन के शोधकर्त्ताओं के एक दल ने स्वतंत्र रूप से थ्रोम्बोपोयटिन नामक एक विशेष प्रोटीन की खोज की है, जिससे शरीर पर कटने या चोट लगने के समय निकलने वाला रक्त स्वतः ही जम जाता है। सर्वप्रथम इसकी पहचान कुछ जीवों में की गई थी। अब थ्रोम्बोपोयटिन की रासायनिक संरचना के बारे में वैज्ञानिकों को बहुत कुछ पता चल चुका है।

इन शोधकर्त्ताओं के अनुसार थ्रोम्बोपोयटिन प्रोटीन से अस्थिमज्जा (बोन मेरो) कोशिकाओं में प्रेरण होता है, जिससे रक्त में बिंबाणु (प्लेटलेट) नामक चकदार कोशिकाओं की संरचना होती है। शरीर से कहीं से भी खून निकलने पर अनेक विषाणुओं के उस स्थान पर इकट्ठा होने से रक्त वहीं जम जाता है। जिन व्यक्तियों में विषाणुओं की संख्या कम होती है, उनमें कटने या चोट लगने पर रक्त का बहना बंद नहीं

होता है। इसे हीमोफीलिया कहते हैं। यह एक प्रकार आनुवंशिक रोग है। इस रोग से ब्रिटेन का राज परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी से ग्रस्त चला आ रहा है।

इन वैज्ञानिकों को आशा है कि थ्रोम्बोपोयटिन की खोज से कैंसर और हीमेटोलोजी जैसे रोगों पर काबू पाने में मदद मिलेगी। यदि किसी प्रकार शरीर में बिंबाणु संरचना की दर बढ़ाना संभव हो पाया तो कैंसर की बीमारी में रासायनिक व विकिरण चिकित्सा के दुष्प्रभावों से रोगी को बचाने में मदद मिलेगी। लेकिन इससे हीमोफीलीया जैसी बीमारी के इलाज में कोई मदद की आशा नहीं है।

शरीर में विटामिन 'के' की भूमिका को लेकर कई शोध अध्ययन आज हो रहे हैं, संभव है आने वाले दिनों कुछ नए सुखद समाचार मिलें। तब तक आप इसकी आवश्यक मात्रा अपने आहार में अवश्य लेते रहें।

आइसोटोप के खोजी

फ्रांसिस विलियम एस्टन

डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

रेजिडेंसी रोड, जोधपुर,-342011 (राजस्थान)

समस्थानिकों (Isotopes) की खोजों के साथ फ्रांसिस विलियम एस्टन का नाम सदैव जुड़ा रहेगा। 1877 में ब्रिटेन के बरमिंघम नगर में वैज्ञानिक एस्टन का जन्म हुआ था। उसका पिता धनाढ्य् धातु-व्यापारी तथा माँ बन्दूक निर्माता की बेटी थीं। छरहरे शरीर वाला एस्टन खेल-कूद में निपुण युवक था। बचपन में उसे सोडा-वाटर बोतल द्वारा पिकरिक अम्ल विस्फोटन का शौक था। टीशू कागज़ के विशालकाय गुब्बारों को वह अग्नि-प्रज्वलन द्वारा उड़ाया करता था। एस्टन जीवनपर्यन्त अविवाहित रहा। युवा अवस्था में वह हिम-स्की तथा मोटर साइकिल दौड़ाना पसंद करता ता। 1908 में पिता के निधन के बाद एस्टन विशाल सम्पति का उत्तराधिकारी हो गया। उसने अनेक विदेश यात्राएँ शानदार सुविधा सम्पन्न जहाजों द्वारा सम्पन्न की थीं। समय-समय पर वह समुद्र पर तैराकी के करतब (Surfing) भी किया करता था।

एस्टन ने वैज्ञानिक शिक्षा बरमिंघम तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में प्राप्त की थी। उसने रसायन विज्ञान में उच्च योग्यता अर्जित की परन्तु उसी काल में जर्मनी के भौतिक विज्ञानी रांजन द्वारा एक्स-किरण की खोज के फलस्वरूप एस्टन को भौतिकी में विशेष रुचि उत्पन्न हो गई और 1910 में उसने केम्ब्रिज के विश्वविख्यात वैज्ञानिक जे० जे० थामसन के निर्देशन में अनुसंधान आरम्भ किया। धन-किरणों पर प्रयोगों द्वारा थामसन ने उन्हीं दिनों नियॉन गैस में दो समस्थानिकों की उपस्थिति दिखाई थी। इन प्रयोगों में नियॉन परमाणु कुछ इलेक्ट्रॉन खो कर धन आयन में रूपांतरित हो जाते थे। इस कारण इन्हें धन किरणों की संज्ञा दी गई थी।

इस खोज की पुष्टि हेतु एस्टन ने गैसीय-विसरण (Gaseous Diffusion) क्रिया द्वारा नियॉन के समस्थानिकों को पृथक करने का प्रयोग आरम्भ किया। अंततः उसे सफलता मिली और 1913 में ब्रिटिश ऐसोसियेशन की वार्षिक बैठक में उसने नियॉन गैस के समस्थानिकों को पृथक करने की सूचना दी। चिकनी मिट्टी की नलियों के बीच गैस के विसरण (Diffusion) द्वारा पृथकीकरण सम्पन्न हुआ था।

प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ होने पर एस्टन केम्ब्रिज छोड़ कर लंदन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित 'रॉयल एयर क्राफ्ट संस्थान' में कार्यरत हो गया। वहाँ पर उसने वायुयानों को ढँकने के लिये मज़बूत त्रिपाल तथा उत्तम वारनिश बनाये। परन्तु वह उस काल में भी थामसन के प्रयोगों के बारे में सोचा करता था। उस समय तक अपने नियम (समस्थानिकों की खोज) पर थामसन को पूरा भरोसा नहीं हुआ था परन्तु एस्टन को था। एस्टन उनकी उपस्थिति का ठोस प्रमाण जुटाना चाहता था। उसे विश्वास था कि थामसन की धन किरणों में ही यह राज छुपा है, परन्तु उसकी प्रयोग विधि अत्यंत अस्पष्ट थी। 1918 में कैम्ब्रिज लौटने के पूर्व एस्टन ने समस्या का सैद्धांतिक हल निकाल लिया और उसी के अनुसार लौटने पर उपयुक्त सूक्ष्म उपकरण बनाना आरम्भ किया। इसमें उत्पन्न धन किरणों को दो समानांतर रेखा-छिद्रों (Slits) द्वारा प्रवाहित किया गया था, जिससे वे सूक्ष्म समानांतर किरणों के रूप में निकलें। तत्पश्चात् किरणों पर स्थिर वैद्युत् क्षेत्र (Electro-magnetic field) का प्रभाव डाला जिससे किरणों में उपस्थित परमाणु आयन विभिन्न तत्वों की किरणों में अलग-अलग की गई आयन किरणें अपने-अपने समस्थानिकों में बंट गई। अंत में यह किरण समूह एक कैमरे की फोटोग्राफी प्लेट पर पड़े। प्रत्येक किरण पृथक निर्धारित स्थान पर अंकित हो गई और उपस्थित परमाणुओं के समस्थानिकों की उपस्थिति सूक्ष्मता से ज्ञात हो गई।

एस्टन ने निर्मित उपकरण को मास-स्पेक्ट्रोग्राफ (Mass-spectrograph) का नाम दिया और अगले बीस वर्ष के काल में उसने 212 प्राकृतिक समस्थानिकों की पहचान की। उसने यह भी पाया कि अधिकांश तत्वों के परमाणु भार पूर्ण संख्याएँ थीं। जिन तत्वों की (जैसे क्लोरीन) पूर्ण संख्या न थी वे एक से अधिक समस्थानिकों के मिश्रण थे। उदाहरण के लिये नियॉन गैस का परमाणु भार 20.2 है। वास्तव में यह तत्व 20 और 22 भार वाले दो समस्थानिकों का 9:1 के अनुपात का समिश्रण है। इन्हीं प्रयोगों के आधार पर एस्टन ने बाइंडिंग एनर्जी (Binding Energy) तथा पैकिंग फ्रैक्शन (Packing Fraction) के महत्व को समझा। उसके अनुसार हाइड्रोजन नाभिकों के विलयन द्वारा भारी तत्वों के बनने पर कुछ मात्रा का क्षय होकर ऊर्जा उदय होती है। 1938 में दिये एक भाषण में उन्होंने यह विचार रखा कि एक गिलास पानी में उपस्थित हाइड्रोजन के हीलियम में परिवर्तन के फलस्वरूप 'क्वीन मेरी' जैसा विशाल पोत अतलांटिक सागर को दो बार पार कर सकेगा। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में रासायनज्ञ तत्वों का उसी प्रकार निर्माण कर सकेंगे जैसे कि वे यौगिकों का निर्माण करते रहे हैं। एस्टन ने आशा व्यक्त की कि परमाणु-ऊर्जा का नियंत्रित उपयोग शीघ्र ही संभव हो सकेगा।

एस्टन को 1922 का रसायन विज्ञान का 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किये गये थे। 1920 में 'रांजन सोसाइटी' ने उन्हें 'मैकेन्जी डैविडसन मेडल' (Mackenzi Davidson Medal) से पुरस्कृत किया। ब्रिटेन की 'रॉयल सोसायटी' ने उन्हें 1938 में 'रॉयल मेडल' प्रदान किया। एस्टन अपने प्रयोगों को कैम्ब्रिज की केवेंडिश प्रयोगशाला में रात्रि काल में ही करना पसंद करता था। दिन में प्रयोगशाला से लगे कमरे से छन कर आने वाली ध्वनियाँ भी उसे चिढ़ा देती थीं। उसे पशुओं से बहुत स्नेह था, विशेषकर बिल्लियों से। परन्तु भौंकने वाले कुत्ते उसे बिलकुल पसन्द न थे। 20 नवम्बर 1945 को यह महान वैज्ञानिक चिर निद्रा में सो गया, किन्तु अपने कार्यों में वह आज भी जीवित है। एस्टन जैसे वैज्ञानिक, पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी सदैव याद किए जाते रहते हैं।

अभी और भी आएंगे भूकंप

डॉ० बृजमोहन कुमार प्रसाद
पीपुल फॉर साइंस डिवेलपमेंट
बी-2, बैल्कम आपर्टमेंट, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085

जबलपुर में अचानक आए भूकम्प के कारण हुए जान माल के नुकसान ने इस प्राकृतिक प्रकोप के आगे हमारी असहाय स्थिति को एक बार फिर उघाड कर रख दिया है। स्पष्ट है कि भूकम्पों के बारे में हमारा ज्ञान आज भी अत्यन्त सीमित है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रकृति के कार्यों में मानवीय हस्तक्षेप को कम किया जाए और प्रकृति के इस प्रकोप के बावजूद जीने के उपाए सीखे जाएँ।

भारत को 22 मई 1997 को एक बार फिर एक बड़े भूकंप का धक्का लगा। इस बार जबलपुर के लोग इसका शिकार बने। सैंकड़ों मारे गए। हज़ारों घायल हुए और असंख्य बेघर। चारों ओर हाहाकार मचा। भूकंप पीड़ितों की मदद के लिए सरकारी और स्वयंसेवी संस्थाएँ राहत कार्यों में जुटी रहीं पर फिर जैसे पन्ना पलटा और सब कुछ विस्मृति के सागर में समा गया।

भूकम्प के अचानक लगने वाले झटके हमेशा से ही जान और माल का भयंकर नुकसान करते रहे हैं। पुरातन युग में भी मनुष्य ने इसका सामना अवश्य किया होगा पर तब वह प्राकृतिक विपदाओं के सामने और भी अधिक बेबस था। किंतु आज हम भूकम्प के आने के बारे में बहुत कुछ जानते हैं। यदि नहीं जानते तो यह कि वह कब और कहाँ कितनी शक्ति से मार करेगा। जबलपुर में तबाही लाने वाला भूकम्प इसका जीता-जागता उदाहरण है। अचानक आए इस भूकम्प के विषय में कोई भी पूर्व जानकारी हमारे वैज्ञानिकों को हासिल नहीं थी। ऐसा नहीं कि भूकम्प की पूर्व जानकारी हासिल करने के प्रयत्न वैज्ञानिक नहीं कर रहे हैं, केवल वे अभी तक अपने इन प्रयत्नों में सफल नहीं हो पाए हैं। भूकंप कितनी संहारक क्षमता का था, इसे तो हमारे वैज्ञानिक बखूबी पढ़ लेते हैं। भूकम्प की शक्ति का अंदाजा उसके झटकों से होने वाले बिखराव और जान माल के नुकसान से भी लगाया जा सकता है।

उन्नीसवीं सदी से लेकर अब तक अनेक प्रकार के भूकम्प मापक यंत्र बनाए जा चुके हैं। परन्तु वर्तमान में आमतौर पर सीस्मोग्राफ का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अब भूकम्प वैज्ञानिक भूकम्प आने की पूर्व-सूचना अर्जित करने और उसकी शक्ति के आकलन के लिए नए और बेहतर तरीके विकसित कर रहे हैं। इन यंत्रों को और अधिक कारगर बनाकर आसानी से हर स्थान पर उपयोग में लाना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

भूकम्प के समय धरती पर होने वाला कंपन उसकी शक्ति पर निर्भर करता है। भूकम्प की शक्ति का सबसे अधिक प्रभाव उसके केंद्र (एपिसेंटर) पर पड़ता है। इस स्थान से दूरी के साथ-साथ उसका प्रभाव कम होता जाता है। इसीलिए भूकम्प के मापक यंत्रों में इन तथ्यों का विशेषतौर पर ख्याल रखा जाता है। भूकम्प को मापने के लिये पृथ्वी में उसकी गहराई का ध्यान रखना भी जरूरी है। यह विशेषता स्थान-स्थान पर निर्भर करती है, इसीलिए उसके अनुसार ही मापक यंत्रों में बदलाव और सुधार लाना आवश्यक है।

भूकम्प मापने के सही और आधुनिक यंत्र बनाने के

अलावा भविष्य के लिए भूकम्प के विषय में विस्तृत जानकारी करना भी बहुत जरूरी है। इस विषय पर भूकम्प विशेषज्ञ बड़ी तीव्रता से कार्य कर रहे हैं। उन्होंने पिछले कई वर्षों में पृथ्वी के अनेक इलाकों को तहस-नहस करने वाले भूकम्पों की जानकारी हासिल करना प्रारंभ कर दिया है। इसी के अंतर्गत् भूकम्प द्वारा बरबाद हुए इलाकों की खुदाई कर वहाँ मिट्टी में दबे अवशेषों और जीवाश्मों के अलावा मृदा की परतों और उसके आस-पास के वातावरण का अध्ययन भी किया जा रहा है। वैज्ञानिकों को आशा है कि इसके फलस्वरूप भूकम्पों के सही कारण, उनकी उत्पत्ति और प्रभावित होने वाले संभाव्य स्थान व समय के विषय में जानकारी मिल पाएगी।

पूरे विश्व में प्रतिवर्ष आने वाले भूकंपों की औसत संख्या का सीधा संबंध विश्व के प्रदूषित होते वातावरण से तो है ही, पहाड़ी इलाकों पर बड़े-बड़े बाँधों तथा कंक्रीट की इमारतों के निर्माण और वहाँ की बढ़ती जनसंख्या को भी इसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। यह खतरा अब दिन पर दिन और बी बढ़ता जा रहा है। भारत में जबलपुर का महाप्रलयी भूकम्प हमारे लिए एक कड़वी सच्चाई होने के साथ ही एक गंभीर चेतवानी भी है।

अपने इन्हीं अध्ययनों के चलते अपने अनुभवों और जानकारी के आधार पर वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि अगला भूकंपीय तनाव अप्रत्याशित रूप से विध्वंसकारी साबित हो सकता है। पिछले दिनों काठमांडु में आयोजित एक सम्मेलन में अमेरिका के जाने माने भूकंप विशेषज्ञ रोजर बिलहैम ने बताया कि भारत में अगले कुछ दशक में रिख्टर माप पर 8.5 तीव्रता का भूकंप आने की काफी संभावना है। यह अब तक का सबसे विध्वंसकारी भूकंप सिद्ध हो सकता है। हिमालयी क्षेत्रों के बारे में बिलहैम की चेतावनी विशेष रूप से स्पष्ट है। भारत में यह क्षेत्र देहरादून का है जिसके ज़्यादा प्रभावित होने की संभावना है।

अमेरिका के कोलोरैडो विश्वविद्यालय के भूकंप विशेषज्ञ रोजर बिलहैम को भूकंपीय इतिहास का अध्येता माना जाता है। उन्होंने चेतावनी दी है कि बड़ी पिरयोजनाएँ, विशेषकर हिमालयी क्षेत्र के बड़े बाँध, भूकंप से ढह सकते हैं। हिमालय में जारी बड़ी परियोजनाओं, जैसे टिहरी बाँध के कारण रिख्टर माप पर 8.5 तीव्रता वाले भूंप का प्रभाव दुगुना हो सकता है। उन्होंने बताया है कि भारत के भूकंप प्रभावित क्षेत्रों में गलत और खतरनाक निर्माण हो रहे हैं। उत्तर भारत तथा हिमालयी क्षेत्रों में आबादी के अधिक बढ़ जाने के कारण भी भूकंप का विनाशकारी प्रभाव अत्यन्त तीव्र हो सकता है।

बढ़ते भूकंप के झटकों तथा जान-माल के नुकसान पर वैज्ञानिक परेशान हैं। भूवैज्ञानिक भारत के भूकंप प्रभावित क्षेत्रों में ऊँचे वोल्ट की बिजली और गैस की लाइनों जैसी नई समस्याओं के बारे में भी चिंतित हैं। भूकंप से बिजली और गैस लाइनों में भारी आग लग सकती है जिससे सारे शहर पर खतरा आ सकता है। सड़क रेल की पटरी और हवाई अड्डे के क्षतिग्रस्त होने के कारण राहत की शुरुआत में देर हो सकती है और भूकंप के बाद शुरू होने वाली बीमारियों, गर्मी, ठंड या फिर भूख की मार से और भी कहीं ज्यादा जानें जा सकती हैं।

उधर बिलहैम का मानना है कि भारत में भूकंप से निपटने की तैयारियाँ बिल्कुल ही अपर्याप्त हैं। अधिकाधिक क्षेत्रों में भूकंप की अनिवार्यता स्वीकार करने के बारे में काफी हिचकिचाहट एवं लापरवाही है। बढ़ते भूकंप के प्रभाव को कम करने के लिए बिलहैम ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर हिमालयी क्षेत्रों में, सीस्मोमीटरों के जाल तत्काल बिछाए जाने का सुझाव दिया है। सीस्मोमीटर भूकंप की चेतावनी देता है। इससे भूकंप आने के कमसे कम 30 सेकेंड पहले तक चेतावनी मिल सकती है।

इस अप्रत्याशित विपत्ति से बचने के लिए पर्यापत् धन और साधन बटोर कर कुछ विशेष उपाय करना ही आज की पहली मांग है। इसके साथ ही जरूरत है भूकम्प विशेषज्ञों द्वारा भूकम्प के बारे में अधिक अध्ययन करने और इससे संबंधित कार्यगति को तीव्र करने की। किंतु इससे भी पहले हमें भूकंप की चेतावनियों को गंभीता से लेकर उससे कारगर तरीके से निपटने की मानसिकता विकसित करनी होगी। भूकंप आने की स्थिति में देशव्यापी स्तर पर उससे बचाव की तैयारियों का प्रशिक्षण देने के उपाय करने होंगे तभी हम इस प्राकृतिक प्रकोप से निरीह जानों को बचा पाएँगे, अन्यथा हर भूकंप के झटके के सामने अपने को बेबस कांपता ही पाएंगे।

[अभियान]

काश हम बोनोबू होते

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

5 ई/4, स्टाफ क्वार्टर्स
लिडिल रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत सीटें रिजर्व होने चाहिये जैसा मसला इन दिनों अखबार की सुर्खियों में है। 15 जून 1997 के टेलीविजन 'प्रिया तेन्दुलकर शो' में भी चर्चा का विषय यही रहा। वैसे यह मसला विवाद का विषय तो नहीं होना चाहिए, किन्तु पुरुष प्रधान सत्ता में विश्वास रखने वाले लोगों के गलै के नीचे यह बात नहीं उतर रही है। पार्लियामेंट के सम्मानित सदस्यों में भी इस मुद्दे पर मतैक्य नहीं है। इसका कारण है कि इससे पुरुष प्रधान ताने-बाने वाली सामाजिक संरचना को झटके लगने प्रारंभ हो गए हैं। गो कि बचपन से हमने अनेक ऐसी कहानियाँ पढ़ रखी हैं जहाँ सत्ता रानी के पास है और पूरी की पूरी राज्य-व्यवस्था नारियों के हाथों में रहने से वहाँ के निवासी स्वर्ग जैसा आनन्द भोगते हैं पर सामाजिक नियमों को तोड़ने वालों के लिए कठोर दण्ड की भी व्यवस्था है।

किन्तु यदि हम किस्से-कहानियों की बातों को छोड़ दें, तो भी यदि हम चाहें तो अपने पूर्वजों की एक प्रजाति से ही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

कहते हैं आज मानव विज्ञान और तकनीकी के कारण सभ्यता के शिखर पर पहुँच गया है। लाखों वर्षों के क्रमिक विकास से गुजरते हुए, 'गोरिल्ला', 'चिम्पान्जी', 'औरंगउटान' जैसी प्रजातियों से, आज हम सभ्य 'मानव' प्रजाति तक पहुँच गए हैं। हमें लगता है इस पूरी प्रकृति में मानव सुन्दरतम एवं सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु जिस प्रकार हम मोह, लोभ, स्वार्थ और हिंसा में रत हैं, उसे देखते हुए क्या हम 'सभ्य' कहलाने के वास्तविक हकदार हैं? आज यदि सबसे अधिक हिंसक प्रकृति के प्राणियों की खोज की जाये तो मानव का नाम निःसंदेह सबसे ऊपर आयेगा। पुरुष प्रधान शासनतंत्र की जगह यदि नारी प्रधान शासन सत्ता होती तो परिस्थितियाँ कुछ भिन्न होतीं। समाज में आज जिस प्रकार हिंसा, अनाचार और भ्रष्टाचार व्याप्त है वैसा कतई नहीं होता।

नारी सत्ता में कितनी शांति, कितनी अहिंसा, कितना सुख है यदि इसे देखना, चाहते हैं तो हमें कहीं दूर न जाकर अपने ही पूर्वजों की एक प्रजाति 'बोनोबू' की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करना होगा। उसी से सीख लेनी लेगी।

वैसे यदि बोनोबू को छोड़ दें तो हमारे अन्य पूर्वजों का इतिहास हम से ही मिलता-जुलता है। नारी को दबाकर अथवा उत्पीड़ित करने की आदत साफ दृष्टिगोचर होती है।

नर गोरिल्ला मादा को प्रजनन-क्रिया के लिए दोबारा तैयार करने के लिए मादा के अबोध शिशुओं को जान से मारने से भी नहीं हिचकिचाता। चिम्पांजी भी कुछ कम नहीं। मादा पर अपने अधिकार को बनाये रखने के लिए अथवा अपने रहने वाले स्थान पर अपना कब्जा बनाये रखने के लिए एक दूसरे से खूनी लड़ाइयाँ लड़ते रहते हैं। और औरंगउटान तो इन दोनों से बढ़-चढ़कर बलात्कारी प्रकृति का होता है। मादा ने नर औरंगउटान के सम्भोग के प्रस्ताव को ठुकराया नहीं कि मादा को बलात्कार का शिकार होना पड़ता है। काम के वशीभूत होकर औरंगउटान 'अंधा' हो जाता है। मादा को पाने के अतिरिक्त उसे कुछ नहीं सूझता। तो ऐसा 'गौरवशाली' है हमारे पूर्वजों का इतिहास। इससे मानव ने

कोई सबक नहीं सीखा। फिर भी, अपने ही पूर्वजों की एक ऐसी प्रजाति है-'बोनोबू'- जो उपरोक्त प्रजातियों से बिल्कुल अलग है।

बोनोबू प्रजाति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी 'मातृ सत्ता'। इस दृष्टि से बोनोबू अपने अन्य सजातियों -बानरों (प्राइमेट्स) से स्वाभाव में एकदम अलग है। इस प्रजाति के नरों का आचरण असभ्य नहीं होता है। वे सामाजिक नियमों का पालन करते हैं। फिर भी किसी ने समाज की सीमाओं का अतिक्रमण किया तो उसे अपराधी मानकर कड़ा दण्ड दिया जाता है।

सच पूछिये तो 1928 के पूर्व बोनोबू के विषय में कोई खास जानकारी नहीं थी। इन्हें छोटे कद वाला चिम्पांज़ी 'पिग्मी चिम्प' के नाम से ही पुकारते थे और इन्हें चिम्पांज़ी ही समझा जाता था।

'बोनोबू' नाम तो इन्हें बहुत बाद में मिला, जब इनका विस्तार से अध्ययन किया गया और यह पता चल गया कि इनकी कुछ स्वभावगत विशेषतायें ऐसीं हैं जो इनकी सजातियों में नहीं देखी जाती हैं।

सन् 1970 में जापान के प्राणि-विज्ञानी और प्राइमैलोजिस्ट ताकायोशी कानो ने बोनोबू के नैसर्गिक परिवेश में इनका बारीकी से अध्ययन किया। इस अध्ययन के दौरान ताकायोशी को बोनोबू के विषय में अनेक चौंकाने वाली जानकारियाँ हासिल हुई। और सबसे विलक्षण खोज यह रही कि बोनोबू की संस्कृति में नर बोनोबू के स्थान पर मादा बोनोबू का वर्चस्व रहता है।

ताकायोशी कानो की इसी खोज के आधार पर रिचर्ड रैंग हैम नाम के एक एंथ्रोपोलोजिस्ट ने डेल पेटर्सन नाम के एक विज्ञान लेखक के सहयोग से एक पुस्तक की रचना की और इस पुस्तक का नाम रखा 'डायनमिक मेल्स'। इस पुस्तक में लेखक द्वय ने मानव समाज में बोनोबू की ही भाँति, मातृसत्ता लागू करने की वकालत की है।

आमतौर से मानव सहित वानरों (प्राइमेट्स) में मादा को नर के आधीन माना गया है, किन्तु बोनोबू में मादा को अधिक अधिकार प्राप्त हैं और नर उनके आधीन रहते हैं। बोनोबू मादाओं की कुछ स्वभावगत विशेषतायें हैं। अपने सजातीय मादाओं के विपरीत मादा बोनोबू नर बोनोबू से स्थाई संबंध बनाती हैं। मादा एक दूसरे के बीच सौहार्द पैदा करती हैं और सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्ता तैयार करने के लिए सदैव प्रयलशील रहती हैं।

बोनोबू की सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व मादा पर होता है। किन्तु यदि कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये जिससे उनकी सामाजिक व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हो तो अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि कोई नर किसी मादा को जबरदस्ती अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता हो, छेड़-छाड़ करता हो अथवा भोजन के ढेर पर अधिकार जमाने की कोशिश करे या किसी मादा को उसके बच्चों के पालन-पोषण में व्यावधान पहुँचाने की चेष्टा करे, निश्चित रूप से दण्ड का भागी होता है। मादा के बस सहायता के लिये पुकारने की देर है, मादा 'फौज़' अविलम्ब उसकी सहायता के लिये दौड़ पड़ती है और अपराधी को समुचित दण्ड देती है। यह नहीं, यदि कोई नर किसी दूसरे नर से झगड़ता है, तो भी वह दण्ड का भागी होता है।

यहाँ एक सहज-सा प्रश्न उठता है कि बोनोबू के इस दृढ़ सामाजिक ढाँचे का कारण क्या है? इसका उत्तर देते हैं रैंग हैम। रैंग हैम के अनुसार 'भोजनकी आपूर्ति' इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चिम्पांज़ी का भोजन है मांस और पके फल और गोरिल्ला पत्तियाँ और जड़-मूल खाता है। किन्तु बोनोबू दोनों प्रकार के भोजन को सहज भाव से स्वीकार कर लेता है। चूँकि चिंपांज़ी को मांस और फल एक जगह नहीं उपलब्ध होते इसलिये भोजन की तलाश में उन्हें जगह-जगह भटकना पड़ता है। और गोरिल्ला के लिये भी कुछ ऐसा ही है। उसे भी एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ता है। इसके विपरीत चूँकि बोनोबू सभी कुछ खा लेता है इसलिए उसे भोजन की तलाश में दर-दर नहीं भटकना पड़ता है। और एक जगह रहने के लिए स्वाभाविक है कि उन्हें मज़बूत सामाजिक संरचना की आवश्यकता पड़ती है।

मानव भी स्वाभाव से एक ही स्थान पर रहने का आदी है। इसलिए यदि शांतिपूर्वक रहना है तो हमें बोनोबू की सामाजिक व्यवस्था को अविलम्ब अपनाना चाहिए।

अतएव महिलाओं के लिये रिजर्वेशन की बात तो छोड़िए, यदि समाज से अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, उत्पीड़न और हिंसा मिटाना है तो सारे अधिकार नारियों को सौंप देने चाहिए। यह निर्विवाद सत्य है कि घर में व्यवस्था इसलिए बनी रहती है क्योंकि गृहस्थी के अधिकार नारियों के हाथों में होते हैं। इस प्रकार मातृसत्ता के माध्यम से समाज में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया जा सकता है। वैसे यदि आप वर्तमान परिस्थितियों से प्रसन्न हैं तो आपकी मर्जी। फिर तो मुझे कुछ भी नहीं कहना है।

अपनी चमक खोता हुआ कला स्मारक ताजमहल

धनंजय श्रीवास्तव

रामपुर, कोटवा बाज़ार
पड़रौना- 274305 (उत्तर प्रदेश)

दुनिका का आठवां आश्चर्य आगरे का ताजमहल, वही ताज जो भारत में पर्यटकों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है, वही ताज जो शरद पूर्णिमा की रात में दुधिया चांदनी में नहाया होता है और संगमरमर का यह भवन चांदी के महल का आभास देता है।

लेकिन उसी ताज के संगमरमर की चमक अब मद्धिम पड़ने लगी है। ताजमहल के धूमिल होने के कई कारण हैं। अधिकतर लोग प्रदूषित वातावरण को ही जिम्मेदार मानते हैं। ताजमहल के संगमरमर के पीला पड़ने का कारण है वायुमण्डल में सल्फर डाइऑक्साइड और कार्बन के कणों की बढ़ती मात्रा। इनकी बढ़ती मात्रा का परिणाम है, अम्ल- वर्षा और धूल भरी आंधियाँ।

सल्फर डॉइऑक्साइड उत्पन्न होता है धुएँ से, यह धुआँ चहे बड़े-बड़े कारखानों की चिमनियों या वहनों के इंजन से निकलने वाला हो, या खाना बनाने के लिए जलाए जाने वाली लकड़ी के चूल्हे से निकलने वाला हो, यह धुआँ वतावरण में सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ाने में सहायक है। वायुमण्डल में फैला सल्फर डाइऑक्साइड वर्षा के जल के साथ मिलकर अम्ल का निर्माण करती है और यह अम्ल जब अम्ल-वर्षा के रूप में गिरता है तब संगमरमर यानी कैल्सियम कार्बोनेट से क्रिया करके पानी में घुलनशील कैल्सियम सल्फेट बनाता है। यह कैल्सियम स्फेट बरसाती पानी के साथ बह जाता है और इसी कैल्सियम सल्फेट के क्षय से दिनों-दिन ताजमहल की सतह खुरदुरी होती जी रही है, जिससे संगमरमर की चमक कम होती जा रही है।

विभिन्न सर्वेक्षणों से पता लगा है कि ताजमहल के तीन किलोमीटर के परिधि में आटोमोबाइल वाहनों की वजह से 65 किलोग्राम सल्फर डाइऑक्साइड प्रतिदिन उत्पन्न होती है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार यह जानकारी मिली है कि जहाँ आगरा फोर्ट, सिकंदरा और फतेहपुर सीकरी पर सल्फर डाइ ऑक्साइड की मात्रा 35 से 38 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर या उससे कम की दर से मिलती है, वहीं ताजमहल पर सल्फर डाइऑक्साइड 107 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर की दर से मिलती है। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह आंकड़े कुछ वर्ष पूर्व के हैं, इसी से यह अंदाजा भी सहज ही लगाया

जा सकता है कि आज ताजमहल के आसपास के वातावरण में सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा कितनी अधिक होगी।

आखिरकार वायुमण्डल में बढ़ती सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा का कारण क्या है? औद्योगिक शहर आगरा लोहे के ढलाई का देश का दूसरा बड़ा केन्द्र है। ये ढलाई की फैक्ट्रियाँ वायु को तो प्रदूषित करती ही हैं, साथ ही साथ शहर के तापमान को बढ़ाने के लिये भी जिम्मेदार हैं। वातावरण में ताप की मात्रा सामान्य से ज्यादा होने पर इसका विपरीत असर न केवल मनुष्य, जीव-जन्तु और वनस्पतियों पर होता है बल्कि इससे जीवन के सभी पहलू प्रभावित होते हैं। उद्योगों की वृद्धि के साथ वाहनों की संख्या बढ़ना कोई चौंकानें वाली बात नहीं लगती। वायु को प्रदूषित करने में इन वाहनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। "करेला ऊपर से नीम चढ़ा" ये वाहन खुद तो प्रदूषण के लिये जिम्मेदार हैं ही परन्तु आगरा की ट्रैफिक-व्यवस्था इन्हें अनावश्यक रूप से ज़हरीले धुएँ को निकालने पर मजबूर करती है। आगरा से तीन राष्ट्रीय राजमार्ग गुजरते हैं और इन राजमार्गों को आगरा शहर से बाहर जोड़ने वाला कोई भी मार्ग नहीं है। इसी कारण ये तीनों राष्ट्रीय राजमार्ग शहर में होकर ही एक दूसरे से जुड़ते हैं। फलतः सभी प्रकार के वाहन शहर के अन्दर ही अन्दर गुजरते हैं। वाहनों के इसी भीड़ के कारण शहर में घण्टों लगे जामों को अक्सर देखा जा सकता है। यही जाम वाहनों को अनावश्यक रूप से प्रदूषित धुएँ उगलने को मज़बूर करती है।

आगरा के वातावरण को प्रदूषित करने में मथुरा की रिफाइनरी का योगदान भी कुछ कम नहीं है। इस तेल शोधक कारखाने से निकलने वाली ज़हरीली गैसें आगरा के वायुमण्डल को भरपूर प्रदूषित करती हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि गर्मियों के दिनों में चलने वाली धूल भरी आंधियाँ भी ताजमहल की क्षति के लिए जिम्मेदार हैं। अन्य बड़े शहरों की तरह आगरा भी औद्योगीकरण और शहरीकरण की अंधी दौड़ में शामिल होने के लिए धड़ाधड़ पेड़ों और वनस्पतियों का सफाया कर रहा है। जितनी संख्या में ये वनस्पतियाँ कट रही हैं उसकी जगह कितने वृक्ष लगते होंगे, जगजाहिर है। वनस्पतियों और पेड़ों के इस अंधाधुन्ध सफाई के एवज में आगरा को मिलता है गर्मियों की धूल भरी आंधियाँ। यदि इसी तरह पेड़ कटते रहे तो धूल भरी आंधियों के कम होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

कुछ लोगों का मानना है कि यमुना के सूखने और प्रदूषित होने का प्रभाव भी पड़ा है। यमुना नदी में दिनों दिन पानी कम और गंदगी अधिक होती जा रही है। इसका मुख्य कारण है दिल्ली में गिराए जाने वाले औद्योगिक कचरे तथा सीवेज। दिल्ली में ये कचरे इतनी अधिक मात्रा में यमुना में गिराए जाते हैं कि आगरा में पहुंचने वाला जल शुद्ध न होकर दिल्ली के लोगों के मल-मूत्र एवं गंदगी से भरा होता है। बची-खुची कसर मथुरा के साड़ी उद्योग तथा आगरा के औद्योगिक नाले तथा कचरे पूरा कर देते हैं।

ताजमहल को हो रहे क्षति का जिम्मेदार केवल प्रदूषित पर्यावरण ही नहीं है, कुछ हद तक इसका जिम्मेदार ताजमहल की बुनियादी खामियाँ भी हैं, जैसे ताजमहल को बनाने में उपयोग किया गया धातु। इन धातुओं में जंग लगने से वे फैलती हैं जिससे संगमरमर में दरार पड़ने की सम्भावना हो जाती है। विशेषज्ञों का मानना है कि बीतते समय के साथ संगमरमर को जोड़ने वाले मसाले में प्रयुक्त चूना भी भर जाता है और मसाले की शक्ति घटने लगती फलतः दरार पड़ने की संभावना और भी अधिक हो जाती है।

वास्तुकला के कारीगरों का मानना है कि जिस तरह हमारी एक निश्चित उम्र होती है उसी तरह पत्थरों की भी एक निश्चित उम्र होती है, लेकिन जिस तरह हम एक उम्र के बाद मर जाते हैं, उस तरह ये पत्थर मरते नहीं, बल्कि एक निश्चित उम्र के बाद इनका रंग बदलना प्रारम्भ हो जाता है और इनमें कई प्रकार के परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। शायद संगमरमरों का पीला पड़ना उन्हीं परिवर्तनों में से एक हो।

ताजमहल को रोज कई हज़ार देशी-विदेशी पर्यटक देखने आते रहते हैं। कभी-कभी विशेष अवसरों पर यह संख्या काफी बड़ जाती है। क्या ये पर्यटक ताजमहल को अपनी धरोहर के रूप में देखते हैं? विदेशी सैलानियों की बात छोड़िए, क्या हम भारतीय इसे अपनी धरोहर के रूप में देखते

हैं?

यदि हमें ताजमहल को बचाना है तो उसके आसपास के वायुमण्डल में सल्फर डाइऑक्साइड के सान्द्रण पर बराबर नज़र रखनी होगी। उनके कारणों पर विचार कर उन्हें समाप्त करने की कोशिश करनी होगी। सल्फर डाइऑक्साइड की मात्रा कम करने के लिए ताजमहल के आसपास के वातावरण को प्रदूषण मुक्त रखना होगा। प्रदूषण रोकने के लिए एकमात्र उपाय है पेड़ लगाए जाएँ। आप जहाँ कहीं भी हो, पेड़ लगाएँ। ये पेड़ निश्चित रूप से आपको और आपके ताजमहल को लाभ पहुंचाएंगे।

वायुमण्डल में बढ़ते प्रदूषण को रोकने के लिए ताजमहल के आसपास से गुजरने वाली भारी गाड़ियों और वाहनों के रास्तों को बदला जाए, इससे कम से कम ताजमहल पर सल्फर डाइऑक्साइड का सान्द्रण अवश्य कम किया जा सकता है।

यदि सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था ठीक ढंग से काम करे तो दुपहिये और तीन पहिये वाले वाहनों की संख्या को नियन्त्रित किया जा सकता है। यदि लोगों को यह एहसास हो जाय कि साइकिल यातायात के लिए सुरक्षित और सुविधाजनक वाहन है तो इसे छोटे वाहनों के विकल्प के रूप में प्रयोग करने के लिये लोगों को आकर्षित किया जा सकता है।

प्रदूषण नियन्त्रण के लिये अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं, लेकिन इनके अच्छे परिणाम नहीं मिल रहे हैं, क्यों ? विशेषज्ञों का मानना है कि इन कार्यक्रमों का रोड़ा है, हम लोगों में जागरूकता का अभाव। प्रदूषण नियन्त्रण की बात करने पर हमारा प्रश्न होता है कि हम लोग क्यों अपना समय और धन खर्च करें, इससे हमें क्या मिलेगा? लाभ तो सभी को होगा।

ज़रा सोचिए, यदि हम पर्यावरण को इसी तरह प्रदूषित होते देखते रहे और उस पर काबू पाने का कोई प्रयास हमने नहीं किया, तो अपने ताज का क्या होगा? दिल कांप उठता है न? लेकिन यदि हमने शीघ्र कदम नहीं उठाया और मूक दर्शन बन केवल अपने स्वार्थ की सोचते रहे, तो किसी भी दुर्घटना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ताजमहल को हमें अपनी धरोहर समझना होगा। उसे अपनत्व और प्यार देना होगा। ताजमहल को अपना "ताज" मानना होगा।

सवाल

ज़िन्दगी क्या है?
सिर्फ एक बुलबला
मेरी ही नहीं सभी की
अमीरी गरीबी साथ है
और चलता रहता है
ये सिलसिला ।
मैं किसके लिए जिऊँ
एक सवाल है, ज़ेहन में

तभी आई दूर से एक आवाज़, ठहर
और देख पेड़ को बाग़ में
चोट खाकर भी देता है जो फल
जिसको खाने से उठते हैं हम खिलखिला ।
तभी मैंने कहा जिऊँगा औरोंके लिए
नहीं है ज़िन्दगी अब बुलबुला।

- प्रो० नरेन्द्र कोहली

[दैनिक जागरण 27.10.96 से साभार]

प्राचीन भारत में एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग

जीतेन्द्र कुमार गुप्ता

बी० यू० एम० एस० चतुर्थ वर्ष, स्टेट यूनानी मेडिकल कॉलेज, इलाहाबाद (उ० प्र०)

पूरा विश्व यही जानता है कि एण्टीबायोटिक दवाइयाँ एलोपैथी का आविष्कार हैं। परन्तु यह सत्य नहीं है। एण्टीबायोटिक औषधियाँ आयुर्वेद की खोज हैं। अलेक्जेन्डर फ्लेमिंग (जिन्हें एण्टीबायोटिक्स का खोजकर्ता, सन् 1934 माना जाता है) से हज़ारों वर्ष पहले लिखे गये संस्कृत ग्रंथों में 'कान्जिकम' एवं 'कान्चिकम' के नाम से एक औषधि वर्णित है और तदुपरान्त इन्हीं संस्कृत ग्रंथों के अरबी व फारसी में अनुवाद से बने यूनानी चिकित्सा के ग्रंथों में (जो अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग के जन्म से हज़ारों वर्ष पूर्व अनुदित किये गये थे) इसी औषधि का 'मुर्री' व 'मुर्रिय' (अरबी ग्रन्थों में) और 'आबकामा' व 'कबामख' (फारसी ग्रन्थों में) नामों से वर्णन आया है। यह औषधि साधारण बोलचाल की भाषा में काँजी कहलाती है। इसका उपयोग बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों में कुछ जीवाणुजनित रोगों जैसे -कण्ठशालूक (Adenoiditis), ग्रसनी शोथ या कण्ठशोथ (Pharyngitis), कण्ठविद्रधि (Quinsy), अतिसार (Diarrhoea), फोड़े-फुंसी (Boils & Pimples), अन्य चर्म रोगों और आज्ञात सूजनों (जिनका उस समय निदान नहीं था) और चेचक रोगियों के जीवाणु संक्रमणजनित उपद्रवों (जैसे न्यूमोनिया, त्वचीय रक्तस्राव आदि) में होता था। इसके अलावा आँख में चेचक के दाने निकलने पर आँख को जीवाण्विक संक्रमण से बचाने के लिये इसका आश्च्योतन (Eye Drop) प्रयोग किया जाता था। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल में काँजी का उन सभी स्थानों पर प्रयोग होता था जहाँ आज प्रतिजैविक (एण्टीबायोटिक्स) प्रयोग किये जाते हैं।

यदि हम काँजी के निर्माण की विधि का अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काँजी कुछ और नहीं बल्कि कई एण्टीबायोटिक्स और उन एम्टीबायोटिक्स के दुष्प्रभावों को रोकने वाले पदार्थों का मिश्रण है।

प्राचीन आयुर्वेदिक और तिब्बी ग्रन्थों में काँजी के निर्माण की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। ये सभी किण्वन विधियाँ (Fermentation Methods) हैं। इन विधियों में विभिन्न अनाजों का आटा (मण्ड) जो कि एण्टीबायोटिक-किण्वन में आधार (Substrate) होता है, काँजी उत्पादन के मुख्य स्रोत के रूप में प्रयोग किया जाता है। तिब्बी चिकित्सा पद्धति में अनाजों के इस मण्ड (Starch) के लिये 'माया' शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्न मण्ड (Starchy meal) का जलीय निलम्बन बनाकर उसमें कुछ अन्य पदार्थ जैसे -राई (*Brassica nigra*) के बीज, जीरा (*Cuminum cyminum*), सौंफ (*Foeniculum vulgare*), अजवाइन (*Trachyspermum amini*), पुदीना (*Mentha spicata*) सिरका आदि मिलाये जाते हैं और मिश्रण को किसी ऊष्ण स्थान पर रखा जाता है ताकि किण्वन क्रिया सम्पन्न हो सके। कुछ अन्य विधियों में वनस्पति तेल, राई के बीज, जीरा, सौंफ, अजवाइन, पुदीना आदि को अंगारे पर गर्म करके इन पदार्थों की वाष्प उत्पन्न की जाती है और इन वाष्पों को एक मिट्टी के बरतन में अवशोषित कर लिया जाता है। फिर इस बरतन में जल और मण्ड दिया जाता है और ऊपर से पुनः उपरोक्त पदार्थ मिला दिये जाते हैं और किण्वन कराया जाता है। किण्वन क्रिया पूरी होने के बाद मिश्रण को बिना मसले छान लिया जाता है। कुछ अन्य विधियों में दुग्ध तथा/अथवा जन्तु वसा व माँस रस भी मिलाया जाता है। किण्व (Ferment)

के (मिश्रण में) प्रवेश कराने हेतु यह परामर्श दिया जाता है कि काँजी निर्माण में वही पात्र उपयोग में लाया जाय जिसमें काँजी बनाई जा चुकी हो। और यदि पात्र नया हो तो उसमें किण्व का जलीय सम्बर्धन, जो काँजी से ही बनाया जाता है, मिलाने का परामर्श दिया जाता है। बिना छनी हुई नवीन काँजी भी जलीय सम्बवर्धन का कार्य करती है। जबकि प्राचीन यूनानी ग्रन्थों में गेहूँ की रोटी पर उगाये गये किण्व को ठोस-सम्बर्धन (Solid culture of ferments) को मिलाने की विधि का वर्णन आया है।

काँजी निर्माण की इन प्राचीन विधियों में मण्ड प्रचुर धान्य-चूर्ण (Starchy meals) के जलीय निलम्बन में जिन अन्य पदार्थो-राई, जीरा, सौफ, पुदीना, अजवाइन, वनस्पति तेल,तेल की वाष्प अर्थात् वाष्पशील वसीय अम्ल, लवण, दुग्ध, माँस निष्कर्ष, जन्तुवसा, सुरा-किण्व(Yeast चूर्ण आदि) के मिलाने का विवरण आता है, वे सभी पदार्थ आज स्टार्च के किण्वन द्वारा एण्टीबायोटिक्स के उत्पादन की प्रक्रिया में उत्प्रेरक (Catalyst) का कार्य करते हैं। इन पदार्थों का उत्प्रेरण गुण (Catalytic property) आधुनिक जैव प्रौद्योगिकीय अनुसंधानों द्वारा प्रमाणित हो चुकी है। अब जब तक आधुनिक वैज्ञानिक यह स्वीकार नहीं करते कि उन्होंने इन उत्प्रेरकों पर पुनर्शोध के लिये प्राचीन भारतीय चिकित्सा से प्रेरणा ली, तब तक इन अनुसन्धानों का श्रेय इन आधुनिक वैज्ञानिकों को ही मिलता रहेगा।

डॉ० लोव(Dr. Lowe) ने सन् 1986 में सिद्ध किया कि एसिटिक अम्ल और इसके ऐरोमैटिक यौगिक किण्वन माध्यम में उपस्थित होने पर एण्टीबायोटिक्स का उत्पादन बढ़ाते हैं जबकि भारतीय चिकित्सक (वैद्य और हकीम) सहस्रों वर्षों से काँजी के नाम से एण्टीबायोटिक्स के उत्पादन में सिरका और सुगन्धित द्रव्यों (Aromatic Compounds) के साथ बने सिरके के यौगिकों का किण्वन में उत्प्रेरक की भाँति उपयोग करते आ रहे हैं।

डॉ० चेन (Dr. Chain) ने सन् 1966 में सिद्ध किया कि केसीन प्रोटीन, बीफ निष्कर्ष (Beef extract) और यीस्ट किण्वन माध्यम (Fermentation Medium) में उपस्थित होने पर एण्टीबायोटिक्स के उत्पादन को उत्प्रेरित करते हैं जबकि प्राचीन भारतीय चिकित्सक दुग्ध और जन्तु माँस-निष्कर्ष और खमीर चूर्ण काँजी के उत्पादन में उत्प्रेरक की भाँति सहस्रों वर्षों से उपयोग करते आ रहे हैं।

डॉ० लोव[4] (Dr. Lowe) ने सन् 1986 में सिद्ध किया कि किण्वन विधि द्वारा एण्टीबायोटिक्स के उत्पादन में वसीय अम्ल (Fatty acid) उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। जबकि प्राचीन भारतीय चिकित्सक वाष्पशील वसीय अम्लों युक्त वनस्पति तेलों की वाष्पों, तेलयुक्त बीजों के चूर्णों (जैसे पिसी हुई राई) और स्वयं वनस्पति तेलों का प्रयोग आज से सहस्रों वर्ष पूर्व से करते आ रहे हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वर्णित काँजी-कल्पना के लिये बनाये जाने वाले किण्वन माध्यमों और आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा एण्टीबायोटिक किण्वन के लिये सुझाये गये किण्वन माध्यमों (Fermentation Media) में आश्चर्यजनक समानता देखने को मिलती है। **डॉ० कालम** (Dr. Calam) द्वारा पेनिसिलिन के उत्पादन के लिये बनाये गये किण्वन माध्यम में भी वनस्पति तेल और सिरका का प्रयोग किया जाता है।

आधुनिक विधियों में भी एण्टीबायोटिक्स के साथ-साथ दूसरे किण्वन उत्पाद भी बनते हैं। उदाहरणार्थ पेनिसिलिन के साथ अल्कोहॉल उत्पन्न होता है।

काँजी-कल्पना में प्राचीन भारतीय चिकित्सकों द्वारा लवण का मिलाया जाना भी अवांछित नहीं था। आधुनिक खोजों द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि एण्टीबायोटिक्स के सोडियम लवण अधिक स्थाई होते हैं।

आधुनिक जैवप्रौद्योगिकीविदों को बीसवीं सदी में आकर इस तथ्य का पता लगा कि द्वितीयक उपापचयी पदार्थों (Secendary Metabolite) को किण्व पुनः विघटित नहीं कर सकते इसलिये इन्हें किण्वन से पूर्व ही किण्वन माध्यम में मिलाया जा सकता है, जबकि प्राचीन भारतीय चिकित्सकों द्वारा इस तथ्य का पहले से ही ज्ञान था और यही कारण है कि वे एल्केलाइडों, वाष्पशील तेलों (Essential Oils) और रंजकों (Pigments) को किण्वन माध्यम में पहले ही मिला दिया करते थे।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकों ने हर बार काँजी को

छानते समय उसके अवशेषों (Residues) को बिना मसले (बिना दबाये) छानने का परामर्श दिया। इस तथ्य को आधुनिक वैज्ञानिक भी प्रमाणित कर चुके हैं कि अधिकांश किण्व (ferments) अपने उपापचयी उत्पादों को अपने शरीर से बाहर स्रावित (Secrete) करते हैं।

अन्य एण्टीबायोटिक्स की भाँति काँजी को भी (आयुर्वेद व यूनानी ग्रन्थों में) शीत प्रकृति (Allergic) अर्थात् असात्म्य (Allergic) लोगों के लिये हानिकारक बताया गया है।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकों द्वारा काँजी में उपस्थित प्रतिजैविक पदार्थों को पृथक न किये जाने के पीछे यही कारण रहा होगा कि काँजी में कुछ ऐसे द्रव्य भी पाये जाते हैं जो आधुनिक एण्टीबायोटिक्स के दुष्प्रभावों को दूर करते हैं। उदाहरणार्थ-

- कई एण्टीबायोटिक्स से दुष्प्रभावस्वरूप अतिसार (Loose Motions) होने लगते हैं लेकिन काँजी में उपस्थित अजवाइन (*Trachyspermum amini*) में पाया जाने वाला थाइमोल (Thymol) अतिसार को रोक देता है। थाइमोल का यह गुण आधुनिक फार्माकोलॉजिकल खोजों द्वारा प्रमाणित हो चुका है।

- अधिकांश एण्टीबायोटिक्स अरुचि एवं वमन कारक (emetic) दुष्प्रभाव उत्पन्न करते हैं। परन्तु थाइमोल के वमनरोधी प्रभाव (Antiametic) के कारण काँजी में उपस्थित एण्टीबायोटिक्स अरुचि पैदा नहीं करते।

- अधिकांश एण्टीबायोटिक्स पाचक रसों के स्रावण को रोक या कम कर देतें हैं और भूख कम कर देते हैं, परन्तु काँजी में उपस्थित जीरा (*Cuminum cyminum*), सौंफ (*Foeniculum vulgare*) में उपस्थित वाष्पशील तेल और अजवाइन (*Trachyspermum amini*) के थाइमोल के अच्छे पाचक रस स्रवण उत्तेजक होने के कारण काँजी में उपस्थित एण्टीबायोटिक्स डिस्पेप्सिया (Dyspepsia) और भूख की कमी (anorexia) उत्पन्न नहीं करते बल्कि काँजी भूख बढ़ाने की एक प्रसिद्ध औषधि के रूप में जानी जाती है।

कई एण्टीबायोटिक्स आन्तरिक रूप से प्रयोग किये जाने पर संज्ञा भ्रम (Helucinations) और उन्माद (Madness) उत्पन्न करते हैं जिनको रोकने में थाइमोल को आधुनिक खोजों के अनुसार भी प्रभावकारी पाया गया है।

कई एण्टीबायोटिक आन्तरिक प्रयोग में जठरांत्रीय गड़बड़ियाँ जैसे ऐंठन, मरोड़ आदि उत्पन्न करते हैं। परन्तु थाइमोल इसकी उत्तम औषधि है अतः काँजी उपरोक्त दुष्प्रभाव नहीं उत्पन्न करती।

सन्दर्भ

1. शारंगधर संहिता, उत्तर खण्ड, अध्याय 10 श्लोक सं० 12, दलजीत सिंह, यूनानी द्रव्यगुणादर्श भाग-3 पृष्ठ 263 शीर्षक काँजी आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी लखनऊ (उ० प्र०) भारत
2. मख्जन-उल अदबिया (तिब्बी ग्रंथ) शीर्षक खमीर यूनानी द्रव्यगुणादर्श मसूरिका चिकित्सा प्रकरणम् 59, श्लोक सं० 13 व 14
3. भैषज्य रत्नावली, मसूरिका चिकित्सा प्रकरणम् 59, श्लोक संख्या 13 व 14
4. मुहीत आज़म-शीर्षक-'खमीर'। यूनानी द्रव्यगुणादर्श भाग- प्रथम पृष्ठ 258, भाग तृतीय, पृष्ठ 263, शीर्षक- कांजी
5. यूनानी द्रव्यगुणादर्श, भाग प्रथम, पृष्ठ 258
6. लोव डी० ए० (Lowe D.A., 1986) in Betalactum Antibiotics for clinical Use (Ed. Queeners. F., Webber, J.A. & Queener S.W.) pp. 117-161 Marcel Delkkar Inc. New York.
7. Chain, E.B. (1966) Antimicrobial Agent Chemotherapy P.I. Florey, M.W., Gardener, A.D., Heatley N.G., Jennings. M.A. Orr Ewing, J. and Senders, A.G. (1940) Lancet 2:226.
8. Calam C.T. (1976), Proc. Biochem. 11:7.
9. Tripathi K.D., Essentials of Medical Pharmacology Second Ed. Page 659, Jaypee Bros. New Delhi.
10. R.C. Dubey : A text book of Biotechnology, page 181, S. Chand & Co. Ltd., Ram Nagar, New Delhi-55.
11. Unani Dravyagunadarsh, Part-I page 257, 258.
12. Sharangdhara Samhita-Dwitiya Khand-Chapter (Adhyay) 10, Shloka No. 12.
13. Sharangdhara Samhita, Dwitiya Khand, Chapter-10, Shloka No. 5.

डॉ० पाराशर नहीं रहे

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद-2

3 जून के 3.40 बजे अपरान्ह डॉ० रामकृष्ण पारशर का दिल्ली स्थित उनके पटपड़गंज निवास स्थान में आकस्मिक निधन हो गया। वे लगभग 80 वर्ष के थे।

डॉ० पाराशर के निधन से न केवल कृषि पत्रकारिता की अपितु हिन्दी में विज्ञान लेखन को अपूरणीय क्षति हुई है। वे विज्ञान परिषद् से दीर्घकाल से जुड़े थे और इसकी अनेक गोष्ठियों में उपस्थित होते रहे। एक वर्ष पूर्व वे अपने सुपुत्र डॉ० नकुल पाराशर के साथ परिषद् आये थे। मेरा उनसे परिचय 1970 से ही था। वे अत्यन्त मृदुभाषी, विनम्र तथा मूक साधक थे। उन्हें मैं अपनी ओर से तथा विज्ञान परिषद् परिवार की ओर से श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

डॉ० पाराशर का जन्म 6 अप्रैल 1928 को शाहजहाँपुर ज़िले के तिलहर कस्बे में हुआ था। आपने राजकीय कृषि महाविद्यालय कानपुर से बी० एस-सी० (कृषि), पंजाब विश्वविद्यालय.चंडीगढ़ से एम० ए०(हिन्दी) तथा आगरा विश्वविद्यालय से कृषि शब्दावली पर पी-एच० डी० उपाधियाँ अर्जित कीं। आपने साहित्यालंकार, विज्ञान रत्न, सम्पादन कला विशारद जैसी परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की थीं।

1944 में आपने पत्रकारिता क्षेत्र में प्रवेश किया। नई दिल्ली जालंधर, रामपुर, नजीबाबाद तथा गोरखपुर आकाशवाणी केन्द्रों से आपकी 153 वार्ताएँ प्रसारित हो चुकी हैं। विगत 40 वर्षों में 30 मौलिक पुस्तकें, 7 पुस्तकों का अनुवाद और 15 शोध पत्र लिखे। इसी अवधि में आपने 14 पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। आप प्रौढ़ तथा कृषि प्रसार साहित्य की 30 पुस्तकों एवं 25 लघु पुस्तिकाओं के लेखन, सम्पादन तथा प्रकाशन से सम्बद्ध रहे।

कृषि विज्ञान में हिन्दी लेखकों एवं अनुवादकों की पूरी टीम तैयार की एवं कृषि साहित्य के संपादन एवं प्रकाशन में उल्लेखनीय योगदान किया।

आपकी महत्वपूर्ण कृतियों में विज्ञान के नये चमत्कार, कृषि साहित्य का विकास क्रम एवं रचना शिल्प, कृषि पत्रकारिता तथा सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपकी हिन्दी सेवाओं के लिए वर्ष 1990 का 'सम्पूर्णानन्द पुरस्कार' प्रदान कर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने प्रतिभा का सही मूल्यांकन किया है।

ऐसे विज्ञान साहित्य सेवी को नमन।

भौतिकी की रोचक बातें लेखक: शिवगोपाल मिश्र एवं आशुतोष मिश्र;

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1685 दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2 ; पृष्ठ संख्या: 100 ; प्रथम संस्करण : 1996;

मुद्रक : राधा प्रेस दिल्ली; मूल्य नब्बे रुपये; IS BN: 81-85827-58.3

धरती-आकाश, जल-थल, समस्त भौतिक जगत नाना प्रकार के रहस्यों से भरा पड़ा है। जब तक इंसान इन रहस्यों को जान नहीं पाता है वह एक तरह से इन सबसे बेखबर अज्ञान में डूबा भटकता है। जब रहस्यों से पर्दा उठने पर असलियत का पता चलता है तभी तो यह ज्ञान भांति-भांति के जनुपयोगी कार्यों का मूल स्रोत बनता है और हमें जीवन की नई-नई सुख-सुविधायें उपलब्ध होती हैं। इस कार्य में भौतिक विज्ञान ने महती भूमिका अदा की है।

वैसे भौतिक विज्ञान रोचक कहाँ होता है। प्रायः लोग भौतिक विज्ञान की बातों को नीरस कह कर पीछा छुड़ाने का प्रयास करते हैं लेकिन 'भौतिकी की रोचक बातें' नामक इस लोकप्रिय पुस्तक में लेखकों ने लगता है भौतिकी विषय की गहराइयों में गोता लगाकर लोक हित की अनेक रोचक बातों को संकलित करने और उन्हें सरल तरीके से समझाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

आज दिन-रात, सर्दी-गर्मी, हवा-पानी, बादल-बसात, आँधी-तूफान से लेकर टेलीविज़न, हवाई जहाज़, टेलीफोन आदि अनेक बातों के बारे में हम आप सभी कुछ न कुछ जानकारी रखते हैं। हम अच्छी तरह जानते भी है कि यह और ऐसी घटनायें क्यों होती हैं। इससे अंधकार अथवा अजूबा लगने वाले रहस्यों से पर्दा उठा है और हम भौतिकी के अनेक सिद्धांतों को भी जान पाये हैं और उनका नाना प्रकार के अनुसंधानों, जीवन की सुविधाओं और गुत्थियों को सुलझाने में उपयोग कर रहे हैं।

सदियों से देखने में आया है कि जब यह अजूबे, अजूबे न रह कर, रोचक बन जाते हैं और आम आदमी उन्हें बड़ी आसानी से समझने लगता है, तब-तब वह इस वैज्ञानिक ज्ञान के सहारे जीवन के संघर्षों में आगे बढ़ता रहता है।

इस पुस्तक में भौतिक विज्ञान से संबंधित 131 रोचक बातों का वर्णन किया गया है। जहाँ संभव हुआ है बातों को चित्रों के माध्यम से भी समझाया गया है, जिससे विषय बोझिल न होकर सहज हो गया है और समझने में आसान लगता है।

आप जानते ही है कि आज हम नाप-तौल, गुरुत्वाकर्षण, गति, उष्मा, प्रकाश, बिजली, आवाज़ आदि की कार्य-प्रणाली के सिद्धांतों के बारे में जानते हैं, और उनको अपने हिसाब से उपयोग कर लेते हैं। यह सभी जानकारियाँ यूँ ही नहीं मिल गई हैं, इनकी खोज के पीछे भी अनेक रोचक घटनाओं का इतिहास भरा हुआ है। आम आदमी के लिये

भी यह ऐतिहासिक जानकारी भविष्य के नये द्वार खोलती है और आगे की खोजों के लिये प्रेरणा देती है। भौतिकी की रोचक बातें पुस्तक आम आदमी की इस जिज्ञासा को पूरा करने की दिशा में एक उचित कदम है।

आइये पुस्तक सामग्री का एक उदाहरण लेते हैं। आपको यदि समाचार मिले कि जान-माल की भारी हानि के साथ तूफान में फंसा समुद्री जहाज़ समुद्र में डूबा, तो आप क्या सोचेंगे? यही न कि यह एक बुरी घटना हुई, जान-माल की हानि हुई और जहाज़ भी समुद्र में डूब गया। समाचार की कल्पना में खोये-खोये आप यह भी सोचेंगे कि समुद्र की इतनी गहराई में तो कुछ भी सही सलामत नहीं बचा होगा और अब तो जहाज़ डूबकर समुद्र की तली पर पहुँच गया होगा।

आपका सोचना सामान्य ज्ञान के अनुसार बिल्कुल ठीक है, कि जहाज़ समुद्र की तली पर पहुँच गया होगा, लेकिन भौतिक विज्ञान के अनुसार यह सच नहीं है। सच तो यह है कि डूबे हुये जहाज़ समुद्र की तली तक नहीं पहुँच पाते बल्कि कुछ गहराई पर स्थिर लटके रहते हैं। अब हुई न रोचक बात! इस सच्चाई का कारण है कि समुद्र के ऊपरी जल के स्तरों का दाव नीचे के जल स्तर पर पड़ता है जिससे नीचे के जल स्तरों का घनत्व इतना सघन हो जाता है कि जहाज़ का मलबा नीचे न जाकर बीच में ही लटका रहता है। यह क्रिया ठीक वैसे ही होती है जैसे कि पारे में लोहे का टुकड़ा नहीं डूबता है।

भौतिक विज्ञान के हिसाब से समुद्र के पानी का घनत्व देखें तो अनुमानतः 10मीटर की गहराई पर जल दाब 1 किग्रा० प्रति वर्ग सेमी० होता है। इसी तरह यह 50,100 और 1000 मीटर अर्थात् 1 किमी० की गहराई पर 5,10 और 100किग्रा०/वर्ग सेमी० होता है। समुद्र तो दस किमी० से भी अधिक गहरा है। वहाँ तो बहुत भीषण दाब होगा। इसके अलावा जहाज़ में फंसी हवा भी इसे नीचे नहीं जाने देती। इसलिये जहाज़ तली तक न पहुँच कर कुछ गहराई पर स्थिर लटका रहता है।

ऐसी ही रोचक बातें पुस्तक में उल्लिखित हैं जिन्हें एक बार पढ़ना शुरू करें तो पाठक पढ़ते ही चले जाते हैं। पुस्तक सुन्दर छपी है। यह विद्यार्थियों, अध्यापकों के साथ-साथ जन-साधारण, आम आदमी के लिये भी लाभकारी होगी। इसके लिये लेखक, प्रकाशक, चित्रकार आदि सभी बधाई के पात्र हैं।

तुरशन पाल पाठक
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं सम्पादक भारत की संपदा
वैज्ञानिक विश्वकोश, राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान
पूसा गेट - नई दिल्ली , 110012
निवास-सी-4, एच/56 जनकपुरी
नई दिल्ली- 110058

"यह ध्यान रहे कि जो उत्कृष्ट विषय आप अपने विद्यालयों में सीखते हैं वे दुनियाँ के हर देश में उत्साहपूर्ण प्रयास तथा असीम परिश्रम द्वारा प्राप्त कई पीढ़ियों की उपलब्धियाँ हैं। यह सब आपको विरासत के रूप में सौंप दिया जाता है ताकि आप उसका स्वागत करें, उसका सम्मान करें, उसकी वृद्धि करें, और एक दिन पूरी ईमानदारी के साथ उसे अपने बच्चों के सुपुर्द कर दें। इस प्रकार हम मानव इन स्थायी वस्तुओं में अमरत्व प्राप्त करते हैं, जिनकी सृष्टि हम सम्मिलित रूप से करते हैं।"

- आइन्स्टाइन

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वाधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बाल-ज्ञान विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें — Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जीव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया — Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार ' राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार ' राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार ' राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार ' राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार ' राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें — Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारा पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध — Rs.

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

विज्ञान परिषद्
प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

: विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 7

अक्टूबर 1997

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक : 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

♦

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

♦

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

♦

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

♦

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

♦

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

♦ ♦

प्राचीन काल का महान वैज्ञानिक : अरस्तू

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी कॉलेज, भागलपुर-813210

अरस्तू का जन्म 384 वर्ष ईसा पूर्व रोजियन समुद्र के किनारे एक यूनानी उपनिवेश के स्टैगिरा नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम निकोमैकस था जो मैसीडोन के सम्राट अमितांस द्वितीय के दरबारी चिकित्सक थे। चूँकि अरस्तू के पिता एक चिकित्सक थे अतः बचपन से ही अरस्तू की अभिरुचि जीव विज्ञान के प्रति जाग्रत हो गयी।

अरस्तू 17 वर्ष की अवस्था में ज्ञान प्राप्ति हेतु प्लूटो के शिष्य बने। उस समय प्लूटो की अवस्था 60 वर्ष की थी। अरस्तू प्लूटो के शिष्य रहने के साथ-साथ उनके सहकर्मी भी बनते गये। वे प्लूटो द्वारा स्थापित ऐकेडमी ऑलव एथेंस के कामों में सक्रिय रूप से हाथ बटांने लगे। उस समय तक एकेडमी के कार्यकलाप काफी बढ़ गये थे। इसमें कई प्रकार के विज्ञान संबंधी अध्ययन भी किये जाने लगे थे। विशेषकर गणित एवं खगोल विज्ञान का गहन अध्ययन प्रारम्भ हो चुका था। इन विषयों के साथ-साथ चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन भी शुरू कर दिया गया। प्लूटो हालांकि गणित में अभिरुचि रखते थे जबकि अरस्तू का प्रिय विषय था जीव विज्ञान। बाद के कुछ वैज्ञानिकों ने प्लूटो को एक महान गणितज्ञ के रूप में देखा जबकि अरस्तू को एक जीव वैज्ञानिक के रूप में। जहाँ प्लूटो ने गणित के विभिन्न विषयों (जैसे ज्यामिति, संख्याओं के गुण इत्यादि) के अध्ययन में अपना समय व्यतीत किया वहीं अरस्तू ने अपना समय जीव समूहों के वर्गीकरण संबंधी कुछ अध्ययनों में व्यतीत किया। इन अध्ययनों के आधार पर अरस्तू ने अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अरस्तू ने कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति तथा जीवों की उत्पत्ति के संबंध में गहन अध्ययन किये। एकेडमी में रहते हुए ही अरस्तू द्वारा 'डायलॉग' नामक पुस्तक लिखी गयी। यह पुस्तक आज कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

347 वर्ष ईषा पूर्व प्लूटों का निधन हो गया तथा एकेडमी का प्रधान बन गया प्लूटों का भतीजा स्पेडसिप्पस। इसके कुछ ही समय बाद अरस्तू ने एकेडमी को छोड़ दिया। वह यहाँ से हटने के बाद ऐस्सस नामक स्थान पर बस गया। ऐस्सस में उसने एक विद्यापीठ की स्थापना की। यहाँ वह तीन वर्षों तक शिक्षण कार्य करता रहा। यहाँ उसके शिष्यों में उस क्षेत्र का राजा हरमियास भी शामिल था। कुछ समय के बाद लैस्बोस निवासी थियोफ्रैस्टस भी इस विद्यापीठ में आकर रहने लगा तथा वह शीघ्र ही अरस्तू के प्रधान शिष्यों में गिना जाने लगा। इसी स्थान पर रहते हुए अरस्तू का विवाह हरमियास की पुत्री से हुआ। कुछ समय बाद 344 वर्ष ईसा पूर्व अपने प्रधान शिष्य थियोफ्रैस्टस के अनुरोध पर अरस्तू लैस्बोस नामक द्वीप पर रहने लगा। यहाँ अरस्तू ने दो वर्ष बहुत आनन्द से बिताये। इसी स्थान पर रहते हुए उसने प्राकृतिक इतिहास, विशेषकर समुद्री जीव विज्ञान पर गहन अध्ययन किये तथा कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उस समय सिकन्दर के पिता फिलिप मैसिडोनिया के सम्राट थे। जब फिलिप के कानों में अरस्तू की प्रसिद्धी की खबर पहुँची तो उसने अरस्तू से अनुरोध किया कि वे पेल्ला (मैसिडोनिया) में चलकर रहे। सम्राट फिलिप की हार्दिक

इच्छा थी कि उसके पुत्र सिंकदर के गुरु अरस्तू ही बनें। अरस्तू ने फिलिप के अनुरोध को स्वीकार कर लिया तथा वे लैस्बोस छोड़ कर मैसिडोनिया में रहने लगे। अरस्तू मैसिडोनिया में लगभग सात वर्षों तक रहे तथा सिकन्दर को शिक्षा प्रदान करते रहे।

336 वर्ष ईसा पूर्व सम्राट फिलिप का निधन हो गया तथा उसका पुत्र सिकन्दर गद्‌दी पर बैठा। अब अरस्तू का मैसिडोनिया में कोई काम शेष नहीं बचा था। अतः वह यूनान में ज्ञान-विज्ञान के महान केंद्र एथेंस में आकर रहने लगा। सन् 335 वर्ष ईसा पूर्व से 322 वर्ष ईसा पूर्व तक लगातार 13 वर्ष अरस्तू ने विज्ञान के गहन अध्ययन एवं अनुसंधान में बिताये। प्लूटो द्वारा पहले से निर्मित एकेडमी के अतिरिक्त अरस्तू ने एक नये संस्थान की स्थापना की जिसे पेरीपैटेटिक स्कूल कहा जाता था ! पेरीपैटेटिक शब्द यूनानी भाषा के शब्द 'पेरीपैटोस' से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है उद्यान में टहलने का रास्ता। चूँकि प्रारम्भ में अरस्तू उद्यान में टहलते हुए अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे अतः इस संस्थान को पेरीपैटेटिक स्कूल कहा जाने लगा। यह संस्थान धीरे-धीरे एक प्रसिद्ध महाविद्यालय में परिवर्तित हो गया। इस संस्थान में पठन-पाठन के अलावा छात्रावास तथा पुस्तकालय की भी सुविधा उपलब्ध थी। अरस्तू की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसने अनेक विषयों पर पुस्तकें लिखीं जैसे धर्म, राजनीति, खेल, इतिहास, खगोल विज्ञान इत्यादि। परन्तु उसके द्वारा लिखित सबसे प्रसिद्ध पुस्तक थी ''हिस्टोरिया ऐनिमालियम' जो जीव विज्ञान से संबंधित थी। उस काल में जीव विज्ञान से संबंधित यह सर्वप्रमुख पुस्तक थी। यह पुस्तक सिंकदर द्वारा अपने विजय-अभियान के दौरान एकत्र की गयी समाग्रियों के अध्ययन के आधार पर लिखी गयी थी। इसमें जीवों के आचरण तथा मनोविज्ञान के संबंध में विशद विवरण दिया गया है। साथ ही साथ इसमें शरीर क्रिया विज्ञान से संबंधित अनेक खोजों तथा इनसे संबंधित सिद्धान्तों की विवेचना की गयी है।

जब अरस्तू पेरीपैटेटिक स्कूल में कार्यरत था उसी दौरान 323 वर्ष ईसा पूर्व उसे सिकन्दर के निधन का दुखद समाचार मिला। सिंकदर के निधन का समाचार फैलते ही कुछ लोगों ने बगावत छेड़ दी तथा पूरे यूनान में विध्वंसक कार्यवाइयाँ की जाने लगीं। अरस्तू का संस्थान भी तोड़-फोड़ की चपेट में आ गया तथा उसे डर कर वहाँ से भागना पड़ा। यहाँ से भाग कर अरस्तू इबुबोइया द्वीप के चल्सिस नामक स्थान पर पहुँच गया। इसी स्थान पर 322 वर्ष ईसा पूर्व 60 वर्ष की अवस्था में उसका निधन हो गया।

अरस्तू ने साहित्य, राजनीति तथा धर्म से संबंधित पुस्तकों को लिखने के अलावा विज्ञान से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। उसके द्वारा लिखित विज्ञान संबंधी पुस्तकों को आठ मुख्य समूहों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में वैसी पुस्तकें थीं जिन्हें अरस्तू ने 'एनालिटिकल' नाम दियरी। इस समूह में लगभग छः पुस्तकें हैं जिन्हें 'औरगैनॉन' या 'इस्ट्रूमेंटस ऑव साइंस एंड साइंटिफिक रीजनिंग' कहा गया। दूसरी श्रेणी में भौतिक विज्ञान से संबंधित पुस्तकें हैं। ऐसी पुस्तकों में सामिल हैं 'डी जेनरेशन ऐट करप्शन' तथा 'मीटिरियोलौजिका' इत्यादि। तीसरी श्रेणी में मनोविज्ञान से संबंधित पुस्तकें हैं। चौथी श्रेणी में जीव विज्ञान से संबंधित पुस्तकें हैं। अरस्तू द्वारा जीव विज्ञान पर लिखी गयी कई पुस्तकें आज भी उपलब्ध हैं। इनमें निम्नलिखित पुस्तकें मुख्य हैं (i) डी ऐनिमालियम, जिसमें जीवन के सिद्धान्त आत्मा तथा मनोविज्ञान की चर्चा की गयी है। (ii) हिस्टोरिया ऐनिमैलियम, जिसमें जीवों के इतिहास का विवेचन किया गया है। (iii) जेनरेशन ऐनिमैलियम, जिसमें जीवों की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है। (iv) डी पार्टिबस ऐनिमैलियम, जिसमें जीवों के विभिन्न अंगों, उनके विकास तथा कार्यकलापों की चर्चा की गयी है।

उपर्युक्त पुस्तकों में अरस्तू ने अपने कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उसके विचार से जीवित पदार्थों में कई प्रकार की आत्मायें हैं। आत्मा के आधार पर उसने सजीवों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया। ये तीन श्रेणियाँ हैं (i) वर्धी आत्मा, (ii) पशु आत्मा, तथा(iii) तर्क-परत आत्मा। अरस्तू के मतानुसार वर्धी आत्मा निम्न कोटि की है। पेड़-पौधे इसी श्रेणी में आते हैं। इनमें सिर्फ विकास एवं उत्पादन की क्षमता रहती है। परन्तु इनमें गति, मस्तिष्क एवं बुद्धि अनुपस्थित रहती है। दूसरी श्रेणी में पशु आत्मा

वाले जीव आते हैं, इनमें प्रजनन एवं विकास के साथ-साथ गति की भी सामर्थ्य रहती है, परन्तु मस्तिष्क एवं बुद्धि का अभाव रहता है। कीड़े-मकोड़े तथा जानवर इसी श्रेणी के जीव हैं। तीसरी श्रेणी में तर्क परत आत्मावाले जीव आते हैं। यह जीवों की सर्वोत्तम श्रेणी है। इन जीवों में प्रजनन तथा विकास के साथ-साथ गति, मस्तिष्क तथा बुद्धि भी मौजूद रहती है। मानव इसी श्रेणी का जीव है।

चार्ल्स डार्विन ने विकासवाद के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसका बीजारोपण अरस्तू द्वारा ही कर दिया गया था। जिस प्रकार डार्विन ने विभिन्न जीवों की श्रेणियाँ उनके विकास स्तर के अनुसार तैयार की उसी प्रकार अरस्तू ने भी अपनी पुस्तक 'स्केला नेचुरइ' में जीवों को उनके विकास स्तर के अनुसार वर्गीकृत किया। अरस्तू के मतानुसार प्रकृति में निर्जीव पदार्थों से सजीवों की उत्पत्ति शनैः शनैः होती है। यह प्रगति इतनी सतत तथा धीमी है कि निर्जीव तथा सजीव के बीच सह विभाजन रेखा खींचना बिल्कुल असम्भव है। इस प्रकार के मापदंड से यदि देखा जाय तो निर्जीव पदार्थों से सर्वप्रथम वनस्पतियों की उत्पत्ति होती है। जीवों में एक दूसरे से उनकी स्पष्ट प्राण शक्ति पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ वनस्पतियाँ जन्तुओं की तुलना में प्राणहीन हैं, परन्तु निर्जीव पदार्थों की तुलना में प्राणवान हैं। इसके अतिरिक्त वनस्पतियों में सतत यह प्रवृत्ति रहती है कि वे जन्तु जीवन को प्राप्त करें। उदाहरणार्थ कुछ ऐसे जीव हैं जिन्हें देखकर यह निर्णय करना कठिन है कि वे वनस्पति हैं या जन्तु। इस प्रकार अरस्तू के मतानुसार निर्जीव पदार्थों से जन्तु तक की उत्पत्ति तथा विकास की एक अटूट तथा लम्बी श्रृंखला है जिसकी दो आस-पास की कड़ियों में अंतर बताना कठिन है।

जीवन की उत्पत्ति, विकास तथा आचरण के संबंध में अरस्तू ने जो निष्कर्ष निकाले वे आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी सही उतरते हैं। अरस्तू कोई प्रयोगकर्त्ता नहीं था सिर्फ एक पर्यवेक्षक था। उसने गहन पर्यवेक्षण के आधार पर ही अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उस आदिम युग में अरस्तू ने विज्ञान के विकास के लिये जो कार्य किये वे प्रशंसनीय हैं।

[पृष्ठ 6 का शेष भाग]

इनके अतिरिक्त 'पराग' (1975, 1984), मेला (फरवरी 1981) में बच्चों के लिए अनेक विज्ञान कथाएँ लिखी गई। साप्ताहिक हिन्दुस्तान (सितम्बर 1981), विज्ञान प्रगति (1978), विज्ञान (नवम्बर 1944- जनवरी 1985) तथा सारिका (सितम्बर 1981) के विज्ञान विशेषांक द्रष्टव्य हैं।

टिप्पणी : मुझे लगता है कि 1957-1970 की अवधि 'विज्ञान कथा' का सर्वोत्कृष्ट काल था।

हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन : भूत और भविष्य*

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमन्त्री, विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002 (उ० प्र०)

बंगला, मराठी, मलयालम आदि कई भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा लेखन का सूत्रपात उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक में हुआ किन्तु इससे भी पूर्व हिन्दी में दुर्गा प्रसाद खत्री के उपन्यास बड़े चाव से पढे जा रहे थे। वस्तुतः यह वही काल था जब एच० जी० वेल्स के वैज्ञानिक उपन्यासों की धूम थी। कुछ लोग 'सरस्वती' में (1900ई०) प्रकाशित "चन्द्रलोक की यात्रा" को हिन्दी की पहली विज्ञान तथा मानते हैं। हिन्दी साहित्य में कहानी, गल्प तथा कथा शब्दों का प्रचलन जिस अर्थ में होता रहा है, शायद उस अर्थ से कुछ हटकर हिन्दी की विज्ञान कथाएँ थीं। प्रारम्भ में कहानी के नाम पर आत्म-कथात्मक शैली में अनेक वैज्ञानिक शीर्षकों पर कहानियाँ लिखी गयीं। बाद में वैज्ञानिक लघु कथाओं के नाम पर भी वैज्ञानिक विचारों को कहानी का रूप दिया गया। इस तरह विज्ञान कथाओं में आत्मकथा, रिपोर्ताज, डायरी- इन सबका विचित्र संगम मिलता है।

हमारे विचार से 'विज्ञान कथा' के अन्तर्गत सारी छोटी-बड़ी कहानियाँ तथा उपन्यास वर्गीकृत किये जा सकते हैं और इसे हम साइंस फिक्शन का पर्याय कह सकते हैं।

प्रारम्भ से ही विज्ञान कथाओं के दो रूप प्रचलित रहे हैं- एक तो व जो वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित हैं, दूसरे वे जो अतिरंजित वर्णन करती हैं- ये पुराकथाओं के अतिनिकट हैं। कहना चाहें तो इन्हें विज्ञान फंतासी (Science Fantasy) नाम दे सकते हैं।

स्मरण रहे कि विज्ञान कथा का मुख्य उद्देश्य न तो पूरी तरह विज्ञान की बातें करना है, न ही कोरी कल्पना को प्रश्रय देना है। उसका उद्देश्य मानव समाज के हित की बातें करनी हैं अर्थात् विज्ञान और मानव समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को रेखांकित करना है।

यह सच है कि हिन्दी की विज्ञान कथाओं में अभी वह सफ़ाई नहीं आ पाई, अभी वह शैली विकसित नहीं हो पाई जो शुद्ध साहित्यिक हिन्दी कथाओं में देखने को मिलती है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथाओं को कोई स्थान नहीं मिल पाया। ठीक भी है। अभी विज्ञान लेखकों को शुद्ध कथाकारों से बहुत कुछ सीखना है। यह भी सम्भव है कि कुछ जाने-माने कथाकार विख्यात विज्ञानियों से मिलकर विज्ञान कथा को एक परिष्कृत स्वरूप दें। तभी विज्ञान के इस युग में विज्ञान कथाएँ साहित्यिक दृष्टि से सर्वथा नवीन द्वार खोल सकेंगी। इस तरह हम कह सकते हैं कि हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन अभी अपनी शैशवावस्था में है और यदि इसमें सिद्धहस्त वैज्ञानिक लेखक हाथ नहीं लगावेंगे तो यह बौना ही रह जावेगा।

विज्ञान कथाओं के बारे में आम धारणा यह है कि हिन्दी की विज्ञान कथाएँ कुछेक शीर्षकों के चारों ओर चक्कर लगाने वली हैं। बात ऐसी है भी, वस्तुतः बालकों के लिए विज्ञान कथाएँ जुटाने के प्रयासों के फलस्वरूप अनेक नौसिखिये लेखकों का इस क्षेत्र में पदार्पण हुआ है और एक

---

* भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति के प्रथम अधिवेशन, फैज़ाबाद में 13 सितम्बर को पठित निबन्ध

ही विषय को लेकर कथाएँ लिखी गई हैं। उनमें उड़ान ज़्यादा है, तथ्यों की प्रमाणिकता की ओर ध्यान कम है। अतः बालकों के समक्ष वैज्ञानिक तथ्यों और विज्ञान कथाओं से प्राप्त सूचना में तालमेल बैठा पाना कठिन हो रहा है। इसीलिए कुछ आलोचकों का कहना है कि विज्ञान कथाकार को पहले सिद्धहस्त विज्ञानी होना चाहिये, तभी वह वैज्ञानिक तथ्यों को केन्द्र में रखते हुए उपयोगी कथा का ताना-बाना बुन सकता है। और यदि इस प्रकार से कल्पनाओं की उड़ाने भरी जायें, तो बुरा नहीं है। किन्हीं-किन्हीं विज्ञान कथाकारों में तो भविष्य की सम्भावित तस्वीर खींचने या उसकी रंग-बिरंगी झांकी प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता देखी जाती हैं। उनकी उर्वर कल्पनाएँ, उनके मिथकीय पात्र प्रायः प्राचीन पौराणिक विषय वस्तु का स्मरण दिलाने वाले होते हैं। यही अपेक्षित है आज की विज्ञान कथाओं से कि हर हालत वे ज़मीन से जुड़ी रहें।

विज्ञान कथा की विषय-वस्तु प्रारम्भिक अवस्था में भले ही ऊहात्मक रही हो किन्तु अब तो नये-नये आविष्कारों ने कल्पना के विविध आयामों को जन्म दिया है। आनुवंशिकता, जैव प्रौद्योगिकी, अन्तरिक्ष विज्ञान, अतिचालकता, कृत्रिम मानव जैसे विविध एवं गूढ़ विषय प्रस्तुत हुए हैं जिनकी ओर लेखकों का ध्यान जाना स्वाभाविक है। इसीलिए कई-कई लेखकों ने एक ही विषय पर लेखनी चलाई है। इसे पिष्टपेषण कहना अनुचित होगा, यदि वे विभिन्न दृष्टियों से उस विषय पर विचार करते हैं। लेखक जिस परिवेश में होगा, उसी का अंकन करेगा। उसे मना नहीं किया जा सकता। उसकी शैली, उसकी दूरदृष्टि, उसका मानवीय पक्ष, उसकी रचना को पठनीय एवं विश्वसनीय बनावेगा। विज्ञान कथा लेखन का मूल उद्देश्य ही मानव मन को आज की जड़ता से हटाकर भविष्य के कल्पना-जगत् में ले जाना है। विज्ञान जैसा शुष्क विषय आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, विश्वमैत्री का सन्देश क्यों नहीं दे सकता है? जनमानस में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का संचार करने की आवश्यकता है और विज्ञान कथाएँ इसका अच्छा माध्यम बन सकेंगी, ऐसा विश्वास है। हाँ, कुशल कथाकार बनने के लिए काफी कौशल अर्जित करना होगा। सबसे प्रमुख आवश्यकता होगी कि उस क्षेत्र की जितनी भी वैज्ञानिक जानकारी हो उसे आत्मसात् किया जाय और फिर लोकप्रिय शैली में उसे व्यक्त किया जाय। खेद का विषय है कि लगभग सौ वर्ष के विज्ञान लेखन के बावजूद हिन्दी में उत्तमोत्तम विज्ञान कथाओं का नितान्त अभाव है, उसमें शीर्ष विज्ञान कथाकारों का अभाव है। मराठी में हम जिस स्वर से डॉ० जयन्त विष्णु नार्लिकर का नाम ले सकते हैं उसी स्वर से हम हिन्दी के किसी एक कथाकार का नाम क्यों नहीं ले पाते ? शायद इसका कारण यही है कि हमारे उच्चकोटि के वैज्ञानिकों ने हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनाया। वे क्यों नहीं ध्यान दे पाये? सामान्य विज्ञान लेखकों के वश की बात नहीं कि वे उच्चकोटि की विज्ञान कथाओं को जन्म दे सकें। वे बालकों को बहलाने का काम तो कर सकते हैं किन्तु स्तरीय कथाएँ तब तक नहीं लिख पावेंगे जब तक इसके लिए अपने अध्ययन को उच्चस्तरीय तथा समसामयिक न बनाते रहें जिस गति से वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं और मानव समाज जिस प्रकार से प्रभावित हो रहा है, उसके अनुरूप साहित्य सृजन आवश्यक है। सतही ज्ञान के आधार पर की गई कल्पनाएँ वैज्ञानिक तथ्यों के विपरीत हो सकती हैं, लेकिन वैज्ञानिक कथाएँ तथ्यों का परिचय कराने के लिए नहीं होती हैं। उन्हें समाज की विसंगतियों के लिये विज्ञान सम्मत भविष्यवाणियाँ करनी होंगी। कई बार विज्ञान कथाओं की भविष्यवाणियाँ सच उतरी हैं। अतः जब कल्पना के ऐसे रंगीन पंखों पर विज्ञान कथा का विहग उड़ेगा, जिसके पंख पृथ्वी और अन्तरिक्ष दोनों को एक साथ छू सकने वाले होंगे, तो उसकी उड़ान सही होगी। प्रायः कल्पनाशील होने से विज्ञान कथाएँ वैज्ञानिक शोधों से आगे-आगे रहेंगी। विज्ञान कथा के प्रचार प्रसार में कई पत्रिकाओं ने अहम भूमिका निभाई है। विज्ञानलोक, विज्ञान जगत, विज्ञान प्रगति, विज्ञान जैसी शुद्ध वैज्ञानिक पत्रिकाओं के अलावा, हिन्दुस्तान, धर्मयुग जैसे साप्ताहिकों ने तथा बच्चों के लिए पराग, मेला जैसी छोटी पत्रिकाओं ने विज्ञान कथाएँ छापी हैं और विशेषांक निकाले हैं। 'सारिका' जैसी शुद्ध साहित्यिक पत्रिका ने भी विज्ञान कथा अंक छापा है। एक तरह से 1975 से 1985 के बीच ऐसे विज्ञान कथा अंकों की भरमार रही है।

सर्वेक्षण से पता चलता है कि विज्ञान कथा विषयक पुस्तकों की संख्या अभी भी न्यून है। 1900-1957 की अवधि

को हम प्रारम्भिक प्रयास कहें तो इसमें यमुनादत्त वैष्णव द्वारा लिखित 'वैज्ञानिक की पत्नी' (1937), बाबू सम्पूर्णानन्द द्वारा लिखित 'पृथ्वी से सप्तर्षिमण्डल' (1953) तथा ओम प्रकाश शर्मा द्वारा लिखित 'मंगलयात्रा' (1956) पुस्तकें ही उल्लेखनीय हैं। 1957 के बाद 1970 तक की अवधि में नवल बिहारी मिश्र, राकेश वर्मा एवं भानु शंकर मेहता प्रमुख लेखक हैं जिन्होंने कई-कई पुस्तकें लिखी हैं। 1970 के बाद ही लेखकों की संख्या बढ़ी और 1985 के बाद तो बच्चों के लिए अनेक विज्ञान कथाएँ लिखी गईं। 1970 के बाद के लेखकों में माया प्रसाद त्रिपाठी (1971-80), रामलखन सिंह (1970), राजेश गंगवार (1975-1984), रमेश दत्त शर्मा, पुष्पेष पन्त, कैलाश शॉह, देवेन्द्र मेवाड़ी, प्रेमानन्द चन्दोला, रमेश सोमवंशी, विनीता सिंघल, अरविन्द मिश्र, चन्द्रविजय चतुर्वेदी, दिलीप साल्वी मुख्य हैं। शैली तथा भावों की दृष्टि से ये रचनाएँ अमूल्य निधि है।

मराठी की डॉ० जयन्त विष्णु नार्लिकर की रचनाएँ 1980 के दशक से अनूदित होकर हिन्दी में प्रकाशित होती रही हैं जिनका हिन्दी पाठकों ने खुले दिल से स्वागत किया है। डॉ० नार्लिकर की पुस्तक 'धूमकेतु' 1981 में राजपाल एण्ड सन्स से प्रकाशित हुई जिसमें मराठी से अनूदित उनकी नौ प्रमुख कथाएँ संग्रहीत हैं। ये हिन्दी के विज्ञान कथाकारों के लिये मार्ग-दर्शिका का काम कर सकती हैं।

1900-1957 ई० : प्रारम्भिक प्रयास

चन्द्रलोक की यात्रा	:	बाबू केशव प्रसाद सिंह (सरस्वती 1900)
भुनगा पुराण	:	रामदास गौड़
वैज्ञानिक की पत्नी	:	यमुनादत्त वैष्णव 1937
पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल	:	डॉ० सम्पूर्णानन्द 1953
मंगल यात्रा	:	श्री ओउम प्रकाश शर्मा 1956

1957-1970 ई० : अन्तरिक्ष युग

पाताल योक की यात्रा

अदृश्य शत्रु — डॉ० नवल बिहारी मिश्र
अपराध का पुरस्कार — उपन्यास
आकाश का राक्षस
शुक्रग्रह की यात्रा (1960) — डॉ० नवल बिहारी मिश्र
सितारों से आगे और भी — कहानियाँ (1978)

अधूरा आविष्कार
उड़ती मोटर का रहस्य (1962)

सिंदूरी ग्रह की यात्रा
अन्तरिक्ष का स्पर्श 1963 — रमेश वर्मा
नये चाँद का जन्म
चाँद के वीरान में

मंगल ग्रह में — भानु शंकर मेहता
अन्तरिक्ष के द्वार

1970 से अब तक

आकाश की जोड़ी 1971 — माया प्रसाद त्रिपाठी
साढ़े सात फुट की तीन औरतें 1980

मौत एक पेड़ की 1970 — डॉ० रामलखन सिंह

सप्तबाहु तथा अन्य कहानियाँ 1975-1984 — राजेश गंगवार

अन्तरिक्ष के पार
हरे दानवों का देश — कैलाश शाह

काया कल्प — पुष्पेश पन्त

हरा मानव — रमेश दत्त शर्मा

आधुनिक विज्ञान कथाएँ 1989 — डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय
वैज्ञानिक लघु कथाएँ

सभ्यता की खोज — (उपन्यास)
भविष्य (कहानी) — श्री देवेन्द्र मेवाड़ी
गुडबाई मिस्टर खन्ना — (कहानी)

चीखती चटपट और खामोश आहट (कहानी संग्रह) — प्रेमानन्द चन्दोला

सितारों के आगे 1996 : डॉ० चन्द्रविजय चुतर्वेदी

जब सूरज चुराया जा रहा था : दिलीप साल्वी

[शेष पृष्ठ 3 पर देखें]

राजस्थान का हरा-भरा क्षेत्र कैसे बना मरुस्थल

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ इंजिनियरी कॉलेज, भागलपुर-813210

भारत के पश्चिमी भाग में स्थित राजस्थान के दक्षक्षिण-पश्चिमी भाग एवं इससे सटे सिंध के कुछ भाग में लगभग 640 किलोमीटर लम्बी तथा 160 किलोमीटर चौड़ी एक शुष्क पट्टी है जो वनस्पति विहीन भूमि एवं बालू के टीलों से भरी हुई है। इस शुष्क पट्टी का नाम है "थार मरुस्थल" । इस सम्पूर्ण भूभाग में बालू की कई मीटर मोटी परत फैली हुई है। इस क्षेत्र में दक्षिण-पश्चिम दिशा से चलने वाली प्रचंड आंधियों के कारण बालुका राशि एक स्थान से दूसरे स्थान तक विस्थापित होती रहती है। इस प्रकार बालू की परत की मोटाई स्थान-स्थान पर प्रायः बदलती रहती है। इस क्षेत्र की पथरीली तथा ऊबड़-खाबड़ सतह बालू से ढकी हुई है। परन्तु बीच-बीच में कुछ चट्टान बालू की सतह के ऊपर झाँकते दिखाई देते हैं। इस मरुस्थल के दक्षिणी भाग में, जहाँ वायु की गति प्रायः तीव्र है, टीलों की लम्बाई वायु-प्रवाह की दिशा में व्यवस्थित पायी जाती है। इसके विपरीत मरुस्थल के भीतरी भाग में, जहाँ वायु का वेग कम है, टीलों की लम्बाई वायु प्रवाह दिशा के लम्बवत् व्यवस्थित पायी जाती है। कुछ स्थानों पर जहाँ दो दिशाओं से आकर वायु मिलती है, प्रायः अर्द्ध चंद्राकार टीले पाये जाते हैं।

थार मरुस्थल का पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वी भाग अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे क्षेत्र में प्रायः छोटी-छोटी झाड़ियाँ या कंटीली वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। इस प्रकार की वनस्पतियों में शामिल हैं नागफनी, बबूल, खजूर इत्यादि। इस अर्द्धशुष्क क्षेत्र में अनेक गाँवों एवं नगरों के अवशेष आज बालू के टीलों के नीचे दबे हुए मिलते हैं। इस क्षेत्र में जहाँ बालू की परत पतली है वहाँ थोड़ी खेती हो सकती है, परन्तु सिंचाई के लिये पर्याप्त जल की अनुपलब्धता इस काम में आड़े आती है।

थार मरुस्थल में ही स्थित है साँभर झील जहाँ से काला नमक प्राप्त होता है। यह झील जयपुर से लगभग 64 किलोमीटर पश्चिम स्थित है। इसकी लम्बाई लगभग 32 किलोमीटर तथा औसत चौड़ाई लगभग साढ़े सात किलोमीटर है। यह समुद्र तल से 360 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। ग्रीष्म ऋतु के दौरान यह झील लगभग पूरी तरह सूख जाती है। चार-पाँच छोटी-छोटी नदियाँ आकर इस झील में मिलती हैं। इसकी पेंदी में लगभग 22 मीटर की गहराई तक नमक मिश्रित पंक मौजूद है। इस पंक से नमक प्राप्त करने का काम कई शताब्दियों से चला आ रहा है। अनुमान है कि इस पंक की ऊपरी चार मीटर की गहराई में औसत 6 प्रतिशत नमक मौजूद है। इस हिसाब से प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में लगभग 10 लाख टन नमक की मात्रा आँकी गयी है। गर्मी की ऋतु में जब इस झील का पानी पूरी तरह सूख जाता है तो पंक की सतह पर चमकदार उजले नमक की एक पतली पपड़ी जम जाती है। भूवैज्ञानिकों का अनुमान है कि नमक की इतनी विपुल मात्रा इस झील में बाहर से आकर मिलने वाली नदियों द्वारा लायी जाती है। साँभर झील के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इसमें 87.3 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड, 0.13 प्रतिशत पोटाशियम क्लोराइड, 0.05 प्रतिशत

मैगनेशियम क्लोराइड, 8.60 प्रतिशत सोडियम सल्फेट, 3.80 प्रतिशत सोडियम कार्बोनेट तथा शेष अन्य पदार्थ मौजूद रहते हैं।

थार मरुस्थल में भूमिगत जल के गुण स्थान-स्थान पर परिवर्तित होते रहते हैं। मरुस्थल के पूर्वी भाग में मिलने वाला भूमिगत जल पीने तथा सिंचाई में उपयोग के लिये अनुकूल है। कुछ भागों में कुएँ का जल हल्का खारा से नमकीन तक पाया जाता है। वर्षा ऋतु में मीठा जल रिस कर भूमिगत जल में मिलता रहता है जिससे इसका खारापन कुछ कम हो जाता है। कभी-कभी कुएँ में खारे जल के ऊपर मीठे जल की एक परत तैरती हुई पायी जाती है। परन्तु यह अवस्था बहुत ही अल्पकाल के लिये रहती है। शीघ्र ही खारा तथा मीठा जल एक दूसरे के साथ मिश्रित हो जाता है। इस क्षेत्र में भूमिगतजल के गहरे खारापानी का कारण है अंतर्देशीय जलप्रवाह, जिसकी वजह से बालू में उपस्थित लवण के कण जल में घुल जाते हैं। यह घोल फिर रिस कर भूमिगत जल में मिल जाता है। बालू में उपस्थित लवण के ये कण दक्षिणी-पश्चिमी मानसून द्वारा काम्बे की खाड़ी या कच्छ के रन से ढोकर लाये जाते हैं।

भूवैज्ञानिकों की धारणा है कि थार क्षेत्र सदा से एक मरुस्थल नहीं था जैसा आज दिखाई पड़ता है। किसी काल में यहाँ हरे-भरे जंगल थे तथा नदियों का कल-कल निनाद गूँजता था। परन्तु ये हरे-भरे क्षेत्र विगत तीन-चार हज़ार वर्षों के दौरान मरुस्थल में बदल गये। पुरातात्विक अवशेषों के अध्ययन से पता चलता है कि प्रागैतिहासिक तथा प्रारम्भिक ऐतिहासिक में सिंध, बलूचिस्तान तथा उससे सटा राजस्थान का क्षेत्र हरा-भरा था तथा यहाँ मनुष्य एवं कई अन्य जन्तुओं के निवास हेतु अनुकूल मौसम मौजूद था। मोहनजोदड़ों की प्राचीन इमारतों में पकी हुई ईटों के उपयोग इस बात के प्रमाण हैं कि यहाँ का मौसम आर्द्र था। इन इमारतों के अपवाह तंत्र (ड्रेनेज सिस्टम) का डिज़ाइन भी आर्द्र मौसम को ध्यान में रखकर किया गया था। यह भी जानकारी मिली है कि प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में इस क्षेत्र में जंगली हाथी पाये जाते थे। यह इस बात का प्रमाण है कि यहाँ का मौसम आर्द्र था। अनुमान है कि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व यहाँ का मौसम बदल चुका था तथा बलूचिस्तान निश्चित रूप से शुष्क होने लगा था।

थार क्षेत्र के हरे-भरे से मरुस्थल में परिवर्तित होने के संकेत सरस्वती नदी की सूखी घाटी से भी मिलते हैं। आज से लगभग सात हज़ार वर्ष पूर्व वैदिक काल में सरस्वती नदी सिंधु तथा गंगा से बड़ी थी। उस काल तथा महाभारत काल के बीच सरस्वती नदी का ऊपरी भाग सूख चुका था। इस नदी के सूखने का कारण था इसकी सहायक नदी यमुना के पानी का पूरब की ओर मुड़ना । सरस्वती का निचला भाग, जो बीकानेर, बहवलपुर तथा सिंध होकर गुजरता था, महाभारत काल (आज से लगभग 5 हज़ार वर्ष पूर्व) तक जल से पूर्ण रहता था। इस कथन की सत्यता इस बात से प्रमाणित होती है कि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) उस समय जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था तथा कच्छ का रन एक ग़हरी खाड़ी के रूप में था तथा जलयान यहाँ से सिंध तक जाने के दौरान सरस्वती नदी से होकर गुजरते थे। सरस्वती नदी की सूखी घाटी के किनारे प्रागैतिहासिक काल के गाँवों एवं नगरों के भग्नावशेष टीलों के रूप में जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। ये अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि यह क्षेत्र उस काल में हरा-भरा था। जैसे-जैसे यह क्षेत्र मरुस्थल में परिवर्तित होता गया तथा यह नदी भी सूखती गयी, वैसे-वैसे ये गाँव एवं नगर वीरान होते चले गये। अनुमान है कि ईसा बाद 13वीं शताब्दी के आस-पास सरस्वती नदी पूरी तरह सूख गयी। इसी काल में यहाँ के निवासी जल के अभाव एवं भीषण सूखे के कारण इस क्षेत्र को छोड़ कर अन्यत्र जाने पर मज़बूर हुए।

थार क्षेत्र के मरुस्थल बनने के कुछ विशेष कारण थे। प्रारम्भ में इस क्षेत्र में मौजूद अरावली पर्वत श्रृंखला काफी ऊँची थी जो दक्षिण-पश्चिम से आने वाली मानसून वायु को रोक कर इस क्षेत्र में वर्षा करती थी तथा इसके फलस्वरूप यह क्षेत्र हरा-भरा रहता था। परन्तु धीरे-धीरे ये पहाड़ घिसते गये। नतीजा यह हुआ कि दक्षिण-पश्चिम से आने वाली मानसून वायु को रोकने वाला अवरोध छोटा होता गया, जिसके कारण वर्षा की मात्रा में धीरे-धीरे कमी आती गयी। फलस्वरूप राजस्थान का यह भाग हरे-भर क्षेत्र से मरुस्थल

में बदल गया।

अरावली श्रृंखला के कुछ पर्वत हालाँकि अभी भी ऊँचे हैं, परन्तु वे दक्षिणी-पश्चिमी मानसून वायु का प्रवाह दिशा के समानान्तर स्थित हैं अतः वे पूर्ण अवरोध प्रस्तुत नहीं कर पाते। यह मानसून वायु राजस्थान में नगण्य वर्षा कराती है। आजकल यहाँ सालाना वर्षा की मात्रा 10 से 20 सेंटीमीटर के बीच है। मौसम में बढ़ती शुष्कता तथा दैनिक तापमान में बहुत अधिक परिवर्तन के कारण यहाँ के चट्टान टूटते गये तथा यह क्षेत्र बालू से भरता गया। तेज़ गति से चलने वाली वायु के कारण बालू का सभी स्थानों पर समान रूप से वितरण होता गया। फलस्वरूप आज थार मरुस्थल विस्तृत बालुका पूर्ण भूखंड के रूप में दिखाई पड़ता है।

जीवन का मानचित्र है डी एन ए फिंगर प्रिंट

दीप्ति भटनागर

प्रबंधक, अभियान फीचर व समाचार सेवा,
पीपुल फॉर साइंस एंड डिवलपमेंट, बी-2
वैल्कम अपार्टमेंट, सैक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली-110085

जीवों की कोशिकाओं में स्थित जैविक पदार्थ-डी एन ए की आनुवंशिक सक्षमता जान लेने के बाद वैज्ञानिक अब उसका उपयोग अनेक कामों में करने में सफल हो गए हैं। आज इसका सबसे अधिक उपयोग व्यक्ति की सही-सही पहचान करने के लिए हो रहा है। डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग की यह नई तकनीक वैज्ञानिक क्षेत्र में ही क्रांति नहीं लाई है, बल्कि इसने अपनराध और कानून की दुनिया में सुरक्षा और सबूतों के नए मानदंड भी स्थापित किए हैं।

अभी पिछले ही वर्ष देशकी राजधानी दिल्ली में हुए नैना साहनी के जघन्य हत्याकांड ने पूरे शहर को हिला कर रख दिया था। हत्या के बाद उसके क्षत-विक्षत चेहरे को पहचानना भी नामुमकिन था परन्तु एक जैविक विश्लेषण की सहायता से उसके शरीर की सही-सही पहचान कर ली गई।

एक अन्य चर्चित प्रियदर्शिनी हत्याकांड में भी इसी प्रकार के विश्लेषण के जरिए उसके हत्यारे और बलात्कारी को पहचाना गया। इसी प्रकार दिल्ली में ही एक चिकित्सालय में एक बच्चे के असली माता-पिता की पहचान में भी इसी विश्लेषण प्रक्रिया का सहारा लिया गया, परिणामस्वरूप एक स्त्री को अपनी खोई हुई सन्तान वापिस मिल सकी।

अपराध की दुनिया की रोंगटे खड़े कर देने वाली इन घटनाओं के समाधन में विज्ञान की इस उपलब्धि का महत्वपूर्ण योगदान मिला। इन तीनों ही घटनाओं में सही अपराधी को गिरफ्तार करने के लिये विज्ञान की इस अति-आधुनिक तकनीक का उपयोग किया गया। इसी विश्लेषण प्रक्रिया को डी एन ए फिंगरप्रिन्टिंग तकनीक के नाम से जाना जाता है। इसने आज अपराध जगत में अपराधी की पहचान को बहुत आसान और संदेह से परे बना दिया है।

यह जानने के लिये कि आखिर डी एन ए फिंगरप्रिन्टिंग किसे कहते हैं सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि डी एन ए क्या है?

वास्तव में डी एन ए जीवों की कोशिकाओं में आवश्यक रूप से मौज़ूद एक ऐसा पदार्थ है जो जीवन का मूल तत्व है । पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी छोटे-बड़े जीवों का शरीर कोशिकाओं से बना होता है, जिनकी संख्या **अमीबा** जैसे जीव में एक से लेकर मनुष्य में कई लाख तक होती है। हर कोशिका के मध्य में स्थित केन्द्रक ही जीवन का सार है। इनमें अनगिनत गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पाये जाते हैं जो धागे के समान पतले और लम्बे श्रृंखलानुमा अनगिनत अणुओं से बने होते हैं। इन अणुओं को डी एन ए कहते हैं। यह व्यक्ति विशेष के शरीर की सभी कोशिकाओं में समरूप होते हैं। दोहरे कुंडलीदार आकार के डी एन ए में चार रासायनिक क्षारक पदार्थ अनुक्रम में लगे होते हैं।

डी एन ए की सरंचना का पता सन् 1941 में वाटॅसन और क्रिक नाम के दो वैज्ञानिकों ने सबसे पहले लगाया था। इसके बाद ग्रीफिथ तथा एवेरी मैक्कार्टी और मैक्लिओड द्वारा स्वतन्त्र रूप से किए गए शोधकार्य से स्पष्ट हुआ कि डी एन ए के माध्यम से ही माता-पिता के शरीर की विभिन्न विशेषताएँ उनके बच्चों को मिलती हैं। आँखों व बालों के रंग, शरीर के आकार, मुखाकृतियों की संरचना तथा विभिन्न आनुवंशिक रोग भी इसी आनुवंशिक पदार्थ के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में मिलते जाते हैं। इसी कारण डी एन ए को शरीर का ब्लू प्रिन्ट भी कहते हैं। हर व्यक्ति में डी एन ए अनुक्रम भिन्न होता है, इसी कारण कई वर्षों से बड़े पैमाने पर इस पर शोध किये जा रहे हैं। वैज्ञानिकों का प्रयास है हर डी एन ए अनुक्रम में छिपी कहानी को खोजने का ! डी एन ए के उपयोग से आनुवंशिक अभियांत्रिकी का नया क्षेत्र आज विज्ञान की सबसे बड़ी सफलता है। इसमें डी एन ए के वांछित अंशों को जोड़ कर जीव में इच्छित विशेषताएँ पैदा की जा सकती हैं। इससे अनेक पेड़-पौधों और जीवों की नई और उपयोगी प्रजातियाँ बनाई गई हैं। इसी कड़ी में अनेक सफल परीक्षणों के बाद एक और रोमांचकारी क्षेत्र उभर आया है- वह है अपराध की दुनिया में डी एन ए का इस्तेमाल।

किसी भी अपराध की गुत्थी सुलझाने का सारा दारोमदार घटनास्थल से मिले सबूतोंपर होता है। वे किसी हद तक ग़लत या भ्रमित कर देने वाले हों तो सही अपराधी की खोज और भी कठिन हो जाती है। परन्तु अब अपराध के मामलों में सही अपराधी की पहचान के लिये डी एन ए का विश्लेषण ही सबसे बड़ा सबूत है, जिसे कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता । पहले पहल इससे सही पितृत्व की पहचान, जायदाद के झगड़ों में सही वारिस की पहचान तथा स्थानांतरण के समय सही व्यक्ति की पहचान की जाती थी, परन्तु अब हत्या, बलात्कार और हिंसा के अपराधियों को पकड़ने में डी एन ए की मदद ली जा रही है। यह निश्चित ही एक अद्भुत उपलब्धि है।

सन् 1984 में लेंकेस्टर विश्व विद्यालय के सर ऐलेक जेफेरीज़ तथा उनके सहयोगियों द्वारा विकसित इस नवीन तकनीक को अनेक बार सफलतापूर्वक उपयोग में लाया जा चुका है। हर व्यक्ति के शरीर में पाए जाने वाले डी एन ए में करीब 300 करोड़ क्षारक कड़ियाँ होती हैं, जो जुड़वाँ बच्चों के अलावा किन्हीं भी दो व्यक्तियों में एकसी नहीं होतीं। परन्तु परीक्षणों के लिये इन सभी क्षारकों का जांचा जाना असंभव है। इसके लिये डी एन ए के कुछ विशेष भागों का उपयोग किया जाता है। कोशिका में कुल डी एन ए के करीब चालीस प्रतिशत भाग का कार्य सभी कोशिकाओं में अनेक प्रक्रियाओं का संचालन करना है। शेष साठ प्रतिशत भाग में आनुवंशिक क्रियाकलापों का गढ़ होता है, जो हर व्यक्ति में विशेष प्रकार का होता है। इसी के निर्देशानुसार एक व्यक्ति में विभिन्न शारीरिक विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं तथा विभिन्न व्यक्तियों में विविधताएँ पैदा होती हैं। इसी क्षेत्र में स्थित पदार्थ के रासायनिक विश्लेषण से कुछ विशेष चिन्ह उत्पन्न किए जाते हैं जिन्हें डी एन ए फिंगर प्रिंट्स कहते हैं।

जेफरे द्वारा स्थापित 'सेलमार्क डायगनोस्टिक' नामक प्रयोगशाला में इस तकनीक को और भी विकसित किया जा रहा है। पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया या पीसी आर तकनीक से डी एन ए की एक लड़ी बड़ी तेज गति से दोहरी हो जाती है। तथा इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराया जा सकता है।केवल 20 मिनट के थोड़े से समय में इस प्रक्रिया से डी एन ए लड़ी की दस लाख से भी अधिक कापियाँ की जा सकती हैं।इस प्रकार इस प्रवर्धक तकनीक से बहुत कम कोशिकाओं से भी परीक्षण किया जा सकता है।

डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग तकनीक में सबसे पहले फिनोल-क्लोरोफार्म जैसे रसायन से डी एन ए के आस-पास की प्रोटीन को हटाकर उसे शुद्ध किया जाता है। सही मात्रा में डी एन ए मिलने के बाद रेस्ट्रिक्शन एंजाइम की सहायता से उन्हें काट कर छोटे-छोटे भाग किये जाते हैं। डी एन ए के अन्य भागोंमें अनेक जोड़-तोड़ के क्षारकों की आवृत्ति होती है। इन पुनरावृत्त अनुक्रमों की संख्या को गिनकर डी एन ए के अवयवों की लम्बाई को मापा जाता है। यह प्रतिमान हर व्यक्ति में विशेष और भिन्न होते हैं। इन सभी अवयवों के रंजक पदार्थ में अभिरंजित कर पराबैगनी प्रकाश में विकिरणी चित्रण के जरिए चित्र लिए जाते हैं।

एक्स-रे चित्रों मे डी एन ए के अवयव काली पट्टियों के रूप में दिखाई देते हैं। मनुष्य के रक्त, बालों के पुटक (फॉलीकल) त्वचा, अस्थिमज्ञा (बोन मैरो) और वीर्य जैसे ऊतकों में एकसा डी एन ए होता है। अपराध के शिकार व्यक्ति के शरीर पर पाए गए रक्त, वीर्य या बालों के पुटक से निकाली गई डी एन ए के प्रतिमानों का संदिग्ध व्यक्ति के डी एन ए के प्रतिमानों से मिलान करके उनके एकसा होने पर ही उस व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जाता है। चूंकि किन्हीं दो व्यक्तियों में समान डी एन ए होने की सम्भावना पूर्णतः नगण्य है इसीलिए अवयवों की डी एन ए तथा व्यक्ति के शरीर की डी एन ए की तुलना की जा सकती है।

यद्यपि डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग तकनीक का आविष्कार विदेश में हुआ और अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे देशों में अनेक वर्षों से इसका उपयोग किया जा रहा है, परन्तु भारत में केवल कुछ ही वर्षों में यह काफी प्रचलित हो चुकी है। सबसे पहले सन् 1989 में मद्रास में एक बच्चे के सही पितृत्व की जाँच में इसका उपयोग हुआ था। तब से आज तक विभिन्न आनुवंशिक अध्ययनों से संबंधित संस्थानों में इस तकनीक पर कार्य हो रहे हैं।

भारत में इस तकनीक को विस्तृत तौर पर लागू करने का मुख्य श्रेय हैदराबाद स्थित कोशिकीय एवं अणु जैविक केन्द्र के डॉ० लाल जी सिंह को जाता है। आमतौर पर फिंगरप्रिंटिंग की तकनीक में काफी मंहगे रेडियोधर्मी प्रोब का उपयोग होता है। डॉ० लालजी सिंह ने 'बी के एम' नामक ऐसे प्रोब को विकसित किया है जिससे इस तकनीक की सार्थकता को और बल तो मिला ही है, इसके उपयोग की कीमत में भी काफी कमी आई।

ब्रिटेन तथा अमेरिका में इस तकनीक द्वारा परीक्षण के लिए करीब 3000 पौंड की भारी रकम खर्च करनी पड़ती है, परन्तु कोशिकीय तथा अणु जैविक केन्द्र भारत में इस तकनीक को केवल 30 से 150 डॉलर तक उपलब्ध कराने के प्रयास जारी हैं, जो भविष्य में भी लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।

डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग तकनीक का इस्तेमाल जौविक सम्पदा के संरक्षण में भी किया जाने लगा है। कृषि संबंधी अध्ययन में अनेक बार पादप या पशु प्रजातियों में बाहरी और आंतरिक रूप से अति समानता होने के कारण उनमें भेद करना कठिन हो जाता है। ऐसे समय में डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग की सहायता से उनकी पहचान की जाती है। ब्रिटेन में दक्षिण अमेरिकी बंदरों (स्पाईडर मंकी) की विभिन्न प्रजातियों की पहचान इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। मध्य एवं दक्षिणी अमेरिका में पाए जाने वाले यह बंदर लुप्त होने लगे हैं। संरक्षण के कार्य को बढ़ावा देने के लिये इन बंदरों की उपप्रजातियों की पहचान काफी कठिन पाई गई क्योंकि बाहरी तौर पर यह काफी समान होते हैं। इसी कारण फिंगरप्रिंटिंग के माध्यम से इन लुप्त प्राय उपप्रजातियों की जांच की गई है।

इसी तरह खेती योग्य बीजों की सही पहचान में भी यह तकनीक कारगर सिद्ध हुई है। लिंकेज माप बनाने, दुष्कर रोगों की जांच के लिए, पशु व पौधों में जननक्रियाओं के सर्वेक्षण तथा ऐसे अनेक कोशिकीय स्तर के पहचान कार्यों के लिए निश्चित ही यह तकनीक 'अमोघ अस्त्र' है।

वैसे तो विज्ञान के क्षेत्र में नित नए अध्ययन और आविष्कार होते रहते हैं, परन्तु डी एन ए फिंगर प्रिंटिंग केवल एक तकनीक मात्र ही नहीं, मानवता की सुरक्षा का सही मानदंड भी है। इस तकनीक की सार्थकता ही इसकी सफलता की कुंजी है। सही मायने में मौलिक होने के साथ ही इससे भ्रमित करने वाले परिणामों की आशंका नहीं होती

। सबसे अनूठी बात यह है कि शरीर के किसी भी भाग से बहुत कम मात्रा में प्राप्त डी एन ए के नमूने से यह जांच हो सकती है। साथ ही डी एन ए के अणु हज़ारों साल तक न तो पुराने होते हैं और न ही मृत, इसी कारण इन्हें आसानी से भंडारित किया जाना संभव है।

पहले पहचान कार्यों के लिये रक्त वर्गों की जांच को सही माना जाता था, लेकिन उससे पाये गये परिणामों में भी गलती की गुंजाएश रहती है। डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग से इस क्षेत्र को नई दिशा मिली है। आने वाले कुछ वर्षों में इस तकनीक को और सुधारने के लिये वैज्ञानिक अध्ययनरत हैं। इससे सही अपराधी को पकड़ कर पीड़ित व्यक्ति के प्रति न्याय तो हो ही सकेगा कानून को सभी सही फैसला देने के लिये सच्चे सबूत मिल पाएँगे। इससे भी उल्लेखनीय यह है कि इस तकनीक की बदौलत निरपराध को फंसाकर अब कोई अपराधी खुले आम घूम नहीं पाएगा। [**अभियान**]

'पेजर'! संचार के क्षेत्र में भारत के बढ़ते क़दम

अरुण कांत जिंदल

बी-2, वैल्कम अपार्टमेंट, सेक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली- 110085

गत वर्ष हमारे देश में डाक विभाग ने हाइब्रिड मेल सेवा आरंभ की। इसके साथ ही डाक संदेशों के तीव्र प्रेषण के नए युग का सूत्रपात हुआ। हाइब्रिड मेल सेवा में देश के प्रमुख शहरों में डाकघरों का कंप्यूटरीकरण भी किया गया।

इस सेवा द्वारा संदेश भेजने के इच्छुक उपभोक्ताओं को अपने संदेश इस सुविधा से युक्त डाकघरों में जमा कराने होते हैं। यहाँ ये संदेश कंप्यूटर चालक द्वारा कंप्यूटर में रिकार्ड करके संबंधित डाकघरों को कुछ ही क्षणों में प्रेषित कर दिए जाते हैं। संबंधित डाकघर में यह संदेश स्वयं वहाँ स्थित कंप्यूटर की स्मृति में दर्ज हो जाता है।

बाद में पोस्टमैन द्वारा इस संदेश का वितरण उपभोक्ता के घर तक दिन के दिन कर दिया जाता है। यह प्रणाली फैक्स से कहीं ज्यादा सस्ती है।

डाक विभाग वर्ष 95 में उपग्रह मनीआर्डर सेवा भी आरंभ कर चुका है, जिससे पलक झपकते ही क्षण भर में मनीआर्डर एक डाकघर से दूसरे डाकघर को भेजे जा सकते हैं।

अब भारतीय दूरसंचार विभाग, भारतीय रेलों में टेलीफोन और फैक्स सुविधा उपलब्ध कराने पर विचार कर रहा है। इस सुविधा के रहते यदि सफर करते समय न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी बात कर सकेंगे। आरंभ में यह सुविधा कुछ चुनी हुई सुपर फास्ट ट्रेनों में उपलब्ध होगी।

14 जनवरी 1995 के दिन उच्च तकनीकी रेडियो पेजिंग सेवा की शुरुआत के साथ ही आकाशवाणी को लोकसूचना सेवा उपलब्ध कराने वाली एशिया की प्रथम प्रसारण संस्था बनने का गौरव प्राप्त हुआ था। इस सेवा प्रसारण परिक्षेत्र में आने वाले किसी भी व्यक्ति को एकतरफा सूचना प्रेषित की जा सकती है, बशर्ते कि संबंधित व्यक्ति के पास भी पेजिंग

रिसीवर यंत्र हो। राजधानी दिल्ली के बाद यह सेवा देश के सोलह महानगरों में शीघ्र ही आरंभ किए जाने की योजना है। भरत में सर्वप्रथम आकाशवाणी के आवृत्ति माडुलेशन (एफ एम) प्रेषियों (ट्रांसमिटर्स) के माध्यम से प्रसारित की जाने वाली यह सेवा पूरी तरह से अपने देश में विकसित की गई है।

पेजिंग प्रणाली, रेडियो संकेतों का प्रसारण करती है,जिन्हें छोटे पाकेट आकर के रिसीवरों (संग्राहकों) पर आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। इससे चलते-फिरते व्यक्ति को भी पेजर के माध्यम से संकेत व संदेश भेजे जा सकते हैं। इनके द्वारा कंपनियाँ अपने कर्मचारियों से, अस्पतालों में डॉक्टर एक दूसरे से और यहाँ तक कि घर के सदस्य भी आपस में संदेशों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। पेजर यंत्र में अंकों के साथ साथ लिखित संदेश भी प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे आप तुरंत दूरभा, क्रमांक 332346 पर संपर्क करें, इस सुविधा को प्राप्त करने के लिए संदेश भेजने के इच्छुक उपभोक्ता के पेंजिंग सेवा प्रदान करने वाली कंपनी को टेलीफोन करके अपना संदेश संबंधित स्थान पर प्रेषित करने का आग्रह करना पड़ता है और कंपनी का ऑपरेटर अपने कंप्यूटर यंत्र पर संदेश टाइप करके उसे गंतव्य स्थान तक पहुँचा देता है।

दूसरे प्रकार के पेजर यंत्रों द्वारा आप केवल अंकों का ही प्रेषण कर सकते हैं। इसमें व्यक्ति टेलीफोन पर, जो की पेजर यंत्र प्रणाली से जुड़ा होता है, विभिन्न कोड क्रमांक डायल करने के बाद अपना अंकों वाला संदेश डायल करता है और फिर फोन का एक विशेष बटन दबाकर फोन रख देता है। पलक झपकते ही इन अंकों का प्रेषण संबंधित स्थान पर हो जाता है।

इस प्रकार पेजर पर लोग अधिकतर अपने फोन क्रमांकों का प्रेषण करते हैं।पेजर प्रणाली में पेजर संदेश केंद्रीय पेजिंग टर्मिनल को भेजे जाते हैं, जहाँ से इन संदेशों को कंप्यूटर तथा अन्य सहायक यंत्रों की मदद से उपग्रह पर जोड़ा (अपलिंक) किया जाता है। उपग्रह द्वारा इन संदेशों को पुनः धरती पर स्थित भू-उपग्रह संग्रह केन्द्रों को प्रेषित (डाउनलिंक) किया जाता है। यहाँ से ये संदेश डीकोडर के रास्ते आवृत्ति माडुलेशन प्रसारण केंद्र तक पहुचाएँ जाते हैं, जहाँ से ये संदेश गंतव्य स्थान को प्रेषित कर दिए जाते हैं।

[अभियान]

न्यूट्रॉन तारे : एक चमत्कारी खगोलीय पिण्ड

कृषि चयन

भौतिक विज्ञान विभाग, द्वारा डॉ० चतुर्भुज साहु,
रीडर एवं अध्यक्ष मानव विज्ञान विभाग,
गिरिडीह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गिरिडीह, बिहार

प्राचीन काल से ही मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा और तारों जैसे अनेक आकाशीय पिण्डों को बड़े आश्चर्य से देखता आया है और अपने-अपने ढंग से इससे संबंधित अनेक विचारधारायें भी बनायी हैं। इनमें से कुछ दैवी तथा कुछ दानवी दृष्टि से सम्बन्धित है। परन्तु आज हमने इन सभी पुरानी मान्यताओं को काफी पीछे छोड़ दिया है और इससे संबंधित अनेक

रहस्यमय प्रभावों तथा नियमों को सुलझा भी लिया है। आज संसार के अनेक वैज्ञानिक अंतरिक्ष के रहस्यों को सुलझाने में कार्यरत हैं।

यूं तो आकाशदर्शन के दौरान हमें अंतरिक्ष शांत तथा श्यामल नज़र आता है, परन्तु आकाश में उपस्थित तारों का जीवन बड़े ही उथल-पुथल से भरा होता है। जब तारों में हाइड्रोजन संगलन (Fusion) की क्रिया होती है तो इस अवस्था में तारों में उपस्थित हाइड्रोजन (जो सृष्टि का आदि द्रव्य है) हीलियम में बदलता रहता है। यह जटिल प्रक्रिया कई चरणों में पूर्ण होती है। अंत में तारे कोर (Core) हीलियम का हो जाता है जिसके चारों ओर हाइड्रोजन का कवच रहता है। इस कवच में भी हाइड्रोजन लगातार हीलियम में बदलती रहती है। जब हीलियम की मात्रा बढ़ जाती है तथा हीलियम कोर बन जाता है ,तो उस दौरान तारों में अनेक प्रक्रियायें बहुत जल्दी-जल्दी सम्पन्न होती हैं और तारा मुख्य अनुक्रम (तारे की सामान्य अवस्था) से अलग हो जाता है। जला हुआ कोर विकिरण करना बंद कर देता है जिसके फलस्वरूप विकिरण दाब कम हो जाता है। चूँकि यह विकिरण दाब ही तारों को सहारा देता है अतः इसके कम हो जाने के कारण तारों में गुरुत्व निपात की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरूप कोर का संकुचन होने लगता है। चूंकि तारे में उपस्थित नाभिकीय ईधन, जो उसे गर्म और चमकीला रखता है,समाप्त हो जाती है अतएव तारा शक्तिहीन हो जाता है और संकुचन के कारण तारा का केन्द्रीय घनत्व बढ़ते-बढ़ते जल के घनत्व से 10^{11} गुणा हो जाता है। इस स्थिति में परमाणु के सभी इलेक्ट्रॉन नाभिकों द्वारा निगल लिये जाते हैं अर्थात् परमाणु के प्रोटॉन व इलेक्रट्रॉन संगलित होकर न्यूट्रॉन में बदल जाते हैं, जिससे अब तारों में केवल न्यूट्रॉन ही उपस्थिति रहते हैं और ये 'न्यूट्रॉन तारे' बन जाते हैं। इस तरह के न्यूट्रॉन तारे को 'पल्सर' भी कहा जाता है। तारों का संपीडन उस समय रुकता है जब न्यूट्रॉन आपस में दब कर इतने करीब आ जाते हैं कि पदार्थ का आगे संपीडन होना असम्भव हो जाता है । इस समय तारों का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 1-4 गुणा (कभी-कभी 2-4 गुणा) अधिक होता है।

सन् 1967 के नवम्बर माह के दौरान कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंगलैण्ड के रेडियो खगोलज्ञ ऐनटोनी हीविश (Antony Hewish) ने पहले पल्सर तारे की खोज की। इस तारे की खोज होना मात्र एक संयोग ही था, क्योंकि उस समय एनटोनी हीविश तथा उसी विश्वविद्यालय के शोध छात्र क्वेसर (Quasar) आकाश में रेडियो तरंग के स्रोत से आ रही रेडियो तरंग से सम्बन्धित प्रयोग कर रहे थे। हीविश की एक छात्रा जोसलीन बेल (Jocelyn Bell) ने रोडियो तरंग के प्रस्फुरण प्रभाव(Scintillation) जो कि रेडियो स्रोत से आयी विकिरण की याद्यच्छिक परिवर्तन (Random Variation) की घटना है, के प्रयोग के दौरान यह पाया कि एक स्रोत से आ रही रेडियो तरंग लगातार (continuously) न आकर एक नियत समय के अन्तराल से आ रही ती और यह समय अन्तराल लगभग 1.3 सेकेण्ड था। इस स्रोत को बाद में हीविश ने पल्सर तारा बताआ और इस तरह हीविश तथा जोसलीन बेल द्वारा एक चमत्कारी पिण्ड की खोज हुई।

सन् 1967 में भौतिक विज्ञान का ' नोबेल पुरस्कार' पल्सर की खोज के लिये ऐनटोनी हीविश तथा जोसलिन बेल को प्रदान किया गया। प्रथम पल्सर के खोज के बाद अनेक खगोलशास्त्री आसमान में और पल्सरों की खोज में लग गये और अब तक अनेक पल्सर तारों की खोज हो चुकी है।

वस्तुतः पल्सर बहुत ही तीव्र गति से घूर्णन (चक्रण गति 60 से 60,000 किमी/ सेकेण्ड) करने वाला वह पिंड है, जिसके साथ का चुम्बकीय क्षेत्र प्रबल होता है। तारे में निपात की प्रक्रिया होने के कारण उसका आकार बहुत कम (त्रिज्या -10 किमी० के लगभग) हो जाता है, परन्तु उसका पूर्ण द्रव्यमान, पूर्ण चम्बकीय क्षेत्र और कोणीय संवेग समान ही रहता है और यही कारण है कि यह तारा बड़ी तीव्र गति से चक्रण करता है जिसकी चुम्बकीय शक्ति 10^{12} गास तथा घनत्व 10^{8} टन/मिली० अर्थात् बहुत अधिक होती है।

पल्सर विकिरण

जब कोई वस्तु घूर्णन करता है तो वह अपने साथ चुम्बकीय बल रेखाओं को भी साथ रखता है। हम यह जानते हैं कि जब चुम्बक का चक्रण कराया जाता है तो उससे चुम्बकीय विकिरण प्राप्त होता है और यही कारण है कि पल्सर

के तीव्र चक्रण से चुम्बकीय विकिरण प्राप्त होता है; क्योंकि पल्सर भी एक द्विधूर्वी चुम्बक के सदृश पिण्ड होता है।

पल्सर द्वारा विकरित रेडियों तरंग की आवृत्ति 100 MHz से लेकर 10,000 MHz तक होती है, जो कि एक निश्चित समय अन्तराल में आती है और यह नियत समय अन्तराल में विकिरण होना ही इस पिंड का सबसे प्रमुख गुण है। आज यह एक विशेष चर्चा एवं खोज का विषय बन गया है। इसी गुण का उपयोग सर्वाधिक प्रमाणिक एवं सुग्राही घड़ी के बनाने में किया जा रहा है।

पल्सर की चक्रण गति स्थिर रहती है, क्योंकि अधिक भार के कारण उसके परावर्तित करने के लिये बहुत ही शक्तिसाली संघात की आवश्यकता होती है जो ब्रहमाण्ड में उपलब्ध नहीं हैं।

पल्सर से आती हुई किरणें लाइट हाउस के किरण पुंज की तरह चारों ओर प्रसर्प (Sweep) करती हैं। ब्रह्मांड में अनेक ऐसे पल्सर है जिन्हें हम नहीं देख पाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा निकली हुई किरण पुंज पृथ्वी को प्रसर्प नहीं करती है।

वायनरी पल्सर

1967 ई० में प्रथम पल्सर तारे की खोज के बाद बहुत से खगोल-शास्त्री इस दिशा में कार्य करने लगे जिनमें से एक रसेल ए० हल्स भी थे जिन्होंने जोसेफ एच० टेलर के आदेशानुसार क्यूबा के पास अरेसीबो (Arecibo) नामक शहर में स्थित 305 मीटर रेडियो टेलिस्कोप (यह एक सर्वाधिक संवेदनशील पल्सर सूचक है) के द्वारा आकाश में व्यवस्थित पल्सर की दुनिया के रहस्य को सुलझाने में लगे हुये थे। पल्सर की खोज के दैरान 1974 ई० में एक प्राप्त घटना को देखकर हल्स अचंभित रह गये, क्योंकि अब तक जितने भी पल्सर की खोजें हुई थीं उनकी आवर्तकाल में 10 माइक्रो सेकेण्ड प्रति वर्ष की दर से परिवर्तन होती थी। परन्तु उन्होंने जिस पल्सर की खोज की उससे प्राप्त विकिरण की आवृत्ति लगातार कुछ समय अन्तराल में घट-बढ़ रही थी। यह आवृत्ति 400 MHz से लेकर 1410MHz तक पायी गयी, जो कि अपने आप में एक करिश्मा ही था, क्योंकि अब तक पल्सर से प्राप्त विकिरण की तीव्रता में इतना कम परिवर्तन होता था कि उसे शून्य परिवर्तन माना जा सकता था। बाद में टेलर और हल्स दोनों ने मिलकर इससे सम्बन्धित आँकड़ों को तैयार किये, जिनसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट था कि खोजी गयी पल्सर से लगातार परिवर्तनशील तीव्रता वाली विकिरण प्राप्त हो रही थी और उन्होंने इसका कारण उस पल्सर के गतिमान होने के गुण को बतया जो कि दो पल्सरों की एक दूसरे से जुड़े होने के क रण उत्पन्न हो रही थी।

इस तरह एक दूसरे से जुड़े हुए पल्सर को 'वायनरी पल्सर' का नाम दिया गया। जोसेफ एच० टेलर तथा रसेल ए० हल्स को प्रथम वायनरी पल्सर की खोज के लिए 1993 के भौतिकी के 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। वायनरी पल्सर की खोज आइन्सटीन के सापेक्षवाद के व्यापक सिद्धान्त (General Theory of Relativity) की सार्थकता को प्रमाणित करने में काफी हद तक सफल हुई है। ज़ाहिरहै कि वायनरी पल्सर और इससे संबन्धित घटना विश्व के खगोलशास्त्रियों के लिए इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ है। भौतिक विज्ञान की नोबेल समिति ने प्रथम वायनरी पल्सर की खोज के लिए 'नोबेल पुरस्कार' की घोषणा करते हुए यह कहा-

"..... Their discovery of a new type of pulsar, and a discovery that has opened up new possibilities for the study of Gravitation."

जहाँ एक ओर पल्सर कई रहस्यमय गुत्थियों को सुलझाने में काफी सहायक हुई है, वहीं इसकी खोज ने भौतिक विज्ञान के कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अनेक ऐसे -ऐसे सवाल पैदा कर दिये हैं जो वैज्ञानिकों के लिये नयी चुनौतियाँ बन गयी हैं। यह निर्विवाद है कि पल्सर की खोज ने खगोलशास्त्रियों के बीच आकाशगंगा, परादूर चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव, गैस घनत्व आदि के बारे में ज्ञान के अनेक द्वार खोल दिए हैं। फिर भी ब्रह्माण्ड की रहस्यमयता आज भी एक चुनौती बनी हुई है। और अच्छी बात यह है कि विश्व के वैज्ञानिकों ने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। आगे-आगे देखिए होता है क्या ?

कितने उपयोगी है ये खनिज लवण

कुसुम लता पाण्डेय

रक्षा मंत्रालय, रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयेगशाला
पिथौरागढ़ -262501, उत्तर प्रदेश

एक स्वस्थ्य शरीर के लिये संतुलित भोजन की आवश्यकता होती है। स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क का निवास होता है। लेकिन संतुलित आहार केवल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट वसा और विटामिन ही नहीं हैं। हम अकसर उन तत्वों को अधिकतर भूल जाते हैं जिन्हें सूक्ष्म मात्रा में हमारा शरीर ग्रहण करता है तथा जिनकी बहुत अधिक उपयोगिता हमारे शरीर को होती है। वे तत्व हैं खनिज लवण जो कि सौ रासायनिक तत्वों के रूप में पृथ्वी से प्राप्त होते हैं। इन तत्वों में से अधिकांश तत्व हमारे शरीर में प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहते हैं। इनमें से लगभग 19 तत्व हमारे शरीर के उचित संचालन के लिये आवश्यक हैं।

वास्तव में ये खनिज लवण क्या हैं? खनिज लवण वे अकार्बनिक पदार्थ हैं जो कि एक दूसरे के संयोग से बनते हैं या किसी घोल के आयन के रूप में विद्यमान रहते हैं। ये लवण पूरे शरीर का 4 प्रतिशत भार बढ़ाते हैं और शरीर के कंकाल में मुख्यतः व्यापक रूप से समाहित रहते हैं। मानव शरीर के लिये जो खनिज लवण आवश्यक हैं वे इस प्रकार हैं- सोडियम, पोटेशियम, क्लोराइड, आयोडीन, लोहा, कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, पोटेशियम, मैग्नीज, जिंक, कोबाल्ट, सैलेनियम और क्रोमियम। अन्य जैसे एल्यूमिनियम, सिलिकॉन, आर्सेनिक और निकिल मुख्य रूप से शरीर में पाये जाते हैं। लेकिन इनके कार्यों का अभी तक कोई पता नहीं चला है।

ये खनिज अधिकतर विटामिनों से मिलते-जुलते हैं जैसा कि ये तत्व मनुष्य शरीर को गर्मी या ऊर्जा नहीं देते हैं। मानव शरीर विटामिन की कमी को लम्बे समय तक सह सकता है, लेकिन थोड़ी भी खनिज तत्वों की कमी रुधिर के सांध्रण में खतरनाक परिवर्तन कर सकता है। सोडियम, पोटेशियम और क्लोराइड का प्रमुख कार्य शरीर के रख-रखाव में नमक और तरल को संतुलित करना है। खनिज तत्वों की उपयोगिता स्त्री एवं पुरुषों में समान रूप से आवश्यक है। लेकिन कुछ खास तत्व ऐसे हैं जो कि विशेष रूप से महिलाओं के लिये आवश्यक हैं। महिलाओं के शरीर निर्माण में आयरन एवं कैल्शियम की बहुत उपयोगिता है। सामान्यतया सभी जीवित प्राणियों की वृद्धि के लिये आयरन की आवश्यकता होती है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। हीमोग्लोबिन जो कि शरीर के विभिन्न उतकों में प्रर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन प्रदान करता है, शरीर के लिये परम आवश्यक है। शरीर के बहुत से एन्जाइम को आयरन की आवश्यकता होती है ताकि वे अपना कार्य सुचारु रूप से चला सकें। एक महिला को पुरुष से लगभग 30 से 100 प्रतिशत अधिक आयरन की आवश्यकता होती है प्रतिदिन लगभग 15 मि०ग्रा० आयरन की आवश्यकता होती है, साधारणतया अधिकांश महिलाओं को आयरन की कमी के कारण एनीमिया होने का खतरा रहता है। एनीमिया में लाल रक्त कणों की कमी होने से रक्त में हीमोग्लोबिन की भारी कमी हो जाती है। अधिकतर बच्चे के जन्म के समय महिलाओं में लौह

तत्व नष्ट हो जाते हैं। यह कमी उचित आहार लेने से पूर्ण हो जाती है। कभी-कभी उचित आहार लेने के उपरान्त भी आयरन की कमी के कारण एनीमिया हो जाता है। इसका कारण, आयरन का शरीर में ठीक से अवशोषण नहीं हो पाता है। बहुत सी गर्भवती महिलाएँ कभी-कभी मिट्टी, चाक, बालू, स्टार्च, राख, अखबार आदि खाने के लिये बाध्य हो जाती हैं। यह विचित्र व्यावहार पिका कहलाता है। यह नाम एक लैटिन भाषा का शब्द है जो कि मैगपिक से जुड़ा है। यह एक ऐसी चिड़िया है जो कि सब कुछ पचा लेती है। कुछ लोग इस पिका को लौह तत्वों की कमी बताते हैं। इसकी कमी से आलस्य और कमजोरी हो जाती है लगातार थकान महसूस होती है, कभी कभी हृदय की धड़कने अचानक तेज़ हो जाती है, जिसके कारण हृदय का काम करना रुक सकता है।

स्वास्थ्यवर्धक भोजन पर्याप्त मात्रा में शरीर को लौह तत्व प्रदान करता है। दाल, मूली, सूखी खुमानी, सब्जियों की पत्तियाँ, पालक, फूलगोभी में आयरन भरपूर होता है। यकृत, गुर्दे, सिर, अंडे की जर्दी, माँस, मछली में भी आयरन पाया जाता है। जब भोजन को लौह के बर्तनों में पकाया जाता है तब उस बर्तन से कुछ आयरन भोजन में मिल जाता है। यदि स्टेनलेस स्टील या अन्य किसी बर्तन में भोजन बनाया जाय तो उससे आयरन नहीं मिल पायेगा।

कभी-कभी महिलाओं को संतुलित आहार लेने के उपरान्त भी आयरन की कमी हो जाया करती है। तब अतिरिक्त आयरन देना ही एक मात्र साधन है, भारत जैसे देश में नमक एक ऐसा साधन है जिसमें कि अतिरिक्त आयरन पर्याप्त मात्रा में होता है जो कि ऐनीमिया को रोकने में सहायक है।

इसके अतिरिक्त कैल्शियम, मैग्नेशियम और फॉस्फोरस हड्डियों और दाँतों के लिये बहुत आवश्यक हैं। रक्त को जमाने के लिए कैल्शियम बहुत आवश्यक होता है। बच्चे के जन्म के समय उसे 20 ग्राम कैल्शियम की आवश्यकता होती है जिसकी अधिक मात्रा बच्चे के शरीर में जन्म से तीन महीने पूर्व एकत्रित होती है। यदि ऐसे समय में माँ आवश्यकता से अधिक कैल्शियम नहीं लेती है तो इसकी पूर्ति भ्रूण माँ की हड्डियों से पूरी कर लेता है। एक माँ को प्रदिन 1.2 ग्राम कैल्शियम की आवश्यकता होती है। इसकी कमी होने से रुधिर संचार में गड़बड़ी व 'आस्टियो पोरोसिस' नामक बीमारी हो जाती है।

दूध तथा दूध से बने पदार्थ कैल्शियम के सबसे अच्छे स्रोत हैं। अन्यखाद्य पदार्थों से दूध में पाया जाने वाला कैल्शियम बहुत अच्छी तरह से अवशोषित हो जाता है क्योंकि दूध में प्रचुर मात्रा में लायसिन और लैक्टोज (दुग्ध शर्करा) होता है। 100 मिली० दूध में 20 से 30 मि० ग्रा० कैल्शियम होता है। इसके अतिरिक्त अधिक बसा वाले पदार्थों जैसे घी, क्रीम, मक्खन आदि में कैल्शियम की मात्रा बहुत ही कम पायी जाती है लेकिन इनमें विटामिन 'डी' होता है जो कैल्शियम के अवशोषण में सहायता करता है। इसलिये यदि प्रतिदिन एक प्याला दूध का रोज सेवन किया जाय तो उससे कैल्शियम की कमी पूरी हो जाती है। इसके अलावा मटर, बीन, दालें, आलू, फूलगोभी आदि में भी कैल्शियम पाया जाता है। जो लोग दूध पीने से कतराते हैं उनके शरीर में लैक्टोज (शर्करा) की कमी हो जाती है जिसके कारण कैल्शियम ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है। इस्ट्रोजन हारमोन की कमी, धूम्रपान, मदिरा का अधिक सेवन तथा अधिक मात्रा में फॉस्फोरस ग्रहण करने से आस्टियो-पोरोसिस नामक बीमारी हो जाती है जिससे हड्डियों के अन्दर छेद हो जाते हैं।

यदि आपके भोजन में माँस और पेय पदार्थों की अधिकता है तो आपको अधिक कैल्शियम की आवश्यकता होगी क्योंकि अधिक मांसहारी भोजन लेने से शरीर में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण कैल्शियम का अवशोषण कम हो जाता है। कुछ दवाइयाँ जैसे एन्टीबायोटिक्स और एन्टीइनफ्लामेट्री कैल्शियम की आवश्यकता को बढ़ाते हैं। यदि आप इस प्रकार की दवाइयों का सेवन लम्बे समय से करते आ रहे हों तो आपको अतिरिक्त कैल्शियम लेना आवश्यक होगा। लेकिन आवश्यकता से अधिक मात्रा में कैल्शियम का सेवन करने से गुर्दे में पथरी होने का खतरा बढ़ सकता है या अन्य समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।

आयरन और कैल्शियम के अतिरिक्त मैग्नीशियम,

मैग्नीज, आयोडीन, क्रोमियम तथा ज़िंक भी हमारे लिये बहुत आवश्यक हैं। इनकी कमी होने से शरीर में कई प्रकार की बीमारी होने का खतरा रहता है। शुद्ध तथा पूर्ण रूप से संतुलित आहार लेने से इन खनिज लवणों की कमी पूरी हो जाती है। केले मैग्नीशियम का प्रयाप्त श्रोत हैं, दिन में 2 से 3 केले खाने से मैग्नीशियम की कमी पूरी हो जाती है।

आयोडीन शरीर की क्रियाओं को चलाने के लिये बहुत आवश्यक तत्व है। यदि आयोडीन की कमी माँ में बच्चे के जन्म से पहले हो जायेगी तो उन बच्चों में आयोडीन की कमी से विक्षिप्तता आ जायेगी। इसके लिये आयोडीनयुक्त नमक सबसे सरल व उत्तम उपाय है। समुद्री भोजन में आयोडीन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

ज़िंक सबसे प्रमुख सूक्ष्म तत्व (ट्रेस एलीमेन्ट) है। जिंक के अवयव स्टिरोइड प्रोटीन के नियंत्रण में सहायता करते हैं जो कि मादा हारमोन एस्ट्रोजन और प्रोरजैस्टिरोन को नियंत्रित करता है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार क्रोमियम तत्व को लेने से शरीर की वसा को कम करने में सहायता मिलती है।

शरीर के लिये आवश्यक सभी जरूरी पोषक तत्व शाकाहारी भोजन में मिलते हैं। इसलिये संतुलित भोजन सेहतमंद रहने की कुंजी है। हमें तरह-तरह के खाने को आहार में शामिल करना चाहिये जिससे सभी आवश्यक खाद्यान्न अवयव मिल सकें। स्फूर्तिदायक जीवन के लिये प्रकृति के जितने ही करीब हों, उतना ही बेहतर है।

[पृष्ठ 23 का शेष भाग]

हैं विषयानुकूल हैं और पाठकों को विषय समझने में सहायक हैं। रसायन विज्ञान एक नहीं हज़ारों हज़ार घटनाओं से भरा पड़ा है। इनमें से दैनिक उपयोग की बातों की रसायन विज्ञान की दृष्टि से जानकारी दिलाने में यह पुस्तक पाठकों के लिये रुचिकर एवं उपयोगी है। इसके लिये पुस्तक के लेखक डॉ० ओझा, प्रकाशक, प्रतिभा प्रतिष्ठान के संचालक, और मुद्रक राधा प्रेस सहित सभी सहयोगी एवं कर्मी बधाई के पात्र हैं। लेखक ने इस पुस्तक की रचना में डॉ० शिवगोपाल मिश्र की प्रेरणा का उल्लेख कर अच्छा कार्य किया है। प्रेरणास्रोतों की चर्चा होती रहे तो समाज को अच्छे साहित्य की रचना की प्रेरणा उपलब्ध होती रहती है जिससे समाज आगे बढ़ता है अतः प्रेरणा देते रहने के लिये डॉ० शिव गोपाल मिश्र जी भी बधाई के पात्र हैं । आशा है, आम आदमी एवं बुद्धिजीवी सभी तरह के पाठकों के लिये यह पुस्तक उपयोगी होगी।

विज्ञान के बढ़ते कदम

प्रदीप शर्मा

वैज्ञानिक, राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान, नई दिल्ली

मानव-निर्मित जीन द्वारा पेशी दुर्विकास का उपचार

युनाइटेड मैडीकल एण्ड डैन्टल स्कूल (यू० एम० डी० एस०), लन्दन के प्रो० फ्रैन्क वाल्श का विश्वास है कि दोषपूर्ण जीन को प्रयोगशाला में तैयार किये गये कृत्रिम जीन से बदलकर डक्ने पेशी दुर्विकास (डक्ने मस्कुलर डिस्ट्रॉफी डी० एम० डी०) का उपचार करना संभव है। इस ओर यू० एम० डी० एस०, लन्दन के रॉयल वेटिरिनरी कॉलेज और जॉन रैडक्लिफ हस्पताल, ऑक्सफोर्ड के अनुसंधानकर्त्ताओं की टीम ने एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया है।

डी० एम० डी० के लिए उत्तरदायी दोषपूर्ण जीन को बदलने में प्राप्त हुई सफलता से इस घातक रोग के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए नई आशाएँ बँध गई हैं।

वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त होने वाला डक्ने पेशी दुर्विकास आज 3,500 में से एक लड़के को प्रभावित कर रहा है। इस रोग से दुख उठाने वालों की पेशियाँ तीन और पाँच वर्ष की आयु के बीच अशक्त हो जाती हैं और उनमें से अधिकतर की 25-26 वर्ष की आयु में मृत्यु हो जाती है।

आरंभ में यह पाया गया कि इस रोग के लिए उत्तरदायी जीन सामान्यरूप से 'डिस्ट्रॉफिन' नामक प्रोटीन अधिक मात्रा में उत्पन्न करने लगता है। स्वस्थ पेशी में यह प्रोटीन पेशी तन्तुओं को घेरने वाली झिल्ली की अंदरुनी सतह पर टिक जाती है। यह अन्य अणुओं से जुड़ी होती है, जो झिल्ली से पार हो जाते हैं और पेशी कोशिका की भीतरी सतह को इसके परिवेश से जोड़ते हैं। पर किसी प्रकार प्रोटीन की हानि होने से पेशी का विनाश होने लगता है, जो अभी भी समझ से बाहर है।

हाल ही में रोग से पीड़ित चूहों के एक विभेद के उपचार के लिए कृत्रिम जीन स्थानांतरित करने में सफलता प्राप्त की गई है। डिस्ट्रॉफिन कॉपी जीन को सुई से सीधे पेशी में लगा दिया गया, और आश्चर्य की बात यह है कि चूहों ने डिस्ट्रॉफि नामक प्रोटीन का निर्माण करना प्रारंभ कर दिया।

विकसित की जा रही इस युक्ति को यदि मा५। जा सके और मनुष्यों में अपनाया जाए तो यह एक जीवनक्षम रोगोपचार बन सकती है। यह कार्य बहुत चुनौती पूर्ण है क्योंकि दोषपूर्ण जीन अभी तक खोजे गये जीनों में सबसे बड़ा है। अनुसंधानकर्ता प्रौद्योगिकी की वर्तमान कगार पर कार्यरत हैं।

स्तन कैंसर पर नई रोशनी

कैमीकल इण्डस्ट्री इंस्टीट्यूट ऑव टॉक्सिकोलॉजी रिसर्च, नार्थ कैरोलाइना, तथा यूनिवर्सिटी ऑव विसकॉन्सिन, यू० एस० ए० के अनुसंधानकर्ताओं, क्रमशः **ब्रिओन बटरवर्थ** व **माइकल गौल्ड** ने वातावरण में पाये जानेवाले रासायनिक पदार्थों से स्तन ऊतक की संभावित कैन्सर जननशीलता (Carcinogenicity) को निर्धारित करने के लिये एक नई तकनीक का विकास किया है। मानव स्तन की उपकला कोशिकाओं के संवर्ध के साथ परीक्षण वाले रासायनिक पदार्थों का उद्भवन करने पर कोशिकाओं में अव्यवस्थित डी एन ए संश्लेषण को निर्धारित करना संभव हो गया।

सामान्य रूप से मिलने वाले अनेक कर्मकों से सुस्पष्ट परिणाम प्राप्त हुए। इनमें सम्मिलित हैं: एफ्लेटॉक्सिन-बी (प्राकृतिक रूप से उपलब्ध कवकीय उपापचय-Fungal metabolite) जिसे मानव स्तन दुग्ध से विलगित किया गया है), तम्बाकू का सघन धुआं और 1, 6 -डाइनाइट्रो पाइरीन (डीज़ल ईंजनों, कोयला जलाकर चलने वाले बिजली घरों, तथा सिगरेट के धुएं से उत्सर्जित होने वाला रासायनिक पदार्थ) इत्यादि।

स्तन कैंसर के खतरे के निर्धारण के लिए आवश्यक सर्वाधिक संबद्ध क्रियाविधिक ज्ञान (Mechanistic information) ऐसी परीक्षण प्रणालियों से प्राप्त हो सकता है जिनमें खतरे से संबंधित मानव ऊतक को ही प्रयोग में लाया जाता है। इन कोशिकाओं की संभावित जीन विषाक्तता संबंधी प्रक्रिया के बारे में यह खोज गुणात्मक संकेत उपलब्ध कराता है।

पुस्तक- **ब्रज-निधि : वनश्री**

लेखिका- डॉ० (श्रीमती) हर्ष नन्दिनी भाटिया, निदेशक, मदन मोहन ब्रज लोक समिति, वृन्दावन

प्रकाशक- श्री मदन मोहन ब्रजलोक समिति, टकसाल गली, वृन्दावन-281121

प्रथम संस्करण- 1992, मूल्य 75 रुपये, पृष्ठ संख्या-12+80

विदुषी डॉ० हर्षनन्दिनी भाटिया ने 'प्राक्कथन' में इस पुस्ततक की रचना का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। वे कहती हैं- "ब्रज मण्डल की समग्र वनश्री को एक पुस्तक के रूप में नियोजित करना, पर्यावरण बनाना, एवं समाधान भी प्रस्तुत करना इस पुस्तक का लक्ष्य है।" लेखिका का यह प्रयास प्रशंसनीय है, क्योंकि वे अपने उद्देश्य में सफल रहीं हैं।

कदम्ब, करील, वट, पीपल, छोंकर, तमाल, पलाश, जामुन, सेमर, अशोक, आम, बेल, बाँस, नीम, आँवला जैसे वृक्षों के विषय में उपयोगी जानकारियाँ इस पुस्तक की मुख्य विशेषता है। वन और वृक्षों का पर्यावरण-संतुलन में महत्वपूर्ण योगदान पर विशेष बल दिया गया है और अंत में इनके संरक्षण के उपाय भी सुझाये गए हैं। इस दृष्टि से पुस्तक पर्यावरण विज्ञानियों के लिये भी उपयोगी है।

डॉ० भाटिया ने वैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों ही पक्षों पर प्रकाश डाला है। जगह-जगह कविताओं के उद्धरण से पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। पुस्तक की भाषा साहित्यिक और शैली रोचक है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी भी पुस्तक को पसंद करेंगे।

पुस्तक के अंतिम भाग में अनेक शोभाकर और फल वृक्षों का उल्लेख है यथा, बेर, केला, नारियल, पपीता, शहतूत, बहेड़ा, हरड़, तुलसी, करौंदा, बथुआ, सरसों, मेंहदी, कचनार, गुँजा, दूष, पापरी, नींबू, गुलमोहर, यूक्लिप्टस, बेगनबेलिया, साबूदाना, मांसाहारी पौधे, मानवभक्षी वृक्ष आदि।

मानवभक्षी वृक्ष का उल्लेख करते हुए लेखिका को सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। वनस्पति विज्ञानियों को आज तक कहीं भी कोई मानव भक्षी पौधा या वृक्ष नहीं मिला है। हाँ वर्षों पूर्व अमेरिका में किसी पत्रिका में एक 'कार्टून' अवश्य प्रकाशित हुआ था जिसमें एक नारी शरीर को वृक्ष की टहनियों ने जकड़ रखा था।

यत्र-तत्र मुद्रण की त्रुटियाँ रह गई हैं, किन्तु कम हैं।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के तत्कालीन उपाध्यक्ष डॉ० शरण बिहारी गोस्वामी इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं- "प्रकृति और पुरुष दोनों एक ही हैं, दोनों का अस्तित्व एक दूसरे के लिए अनिवार्य है। भारत की यह मान्यता भी पूर्णता और समग्रता की मान्यता है।" डॉ० गोस्वामी के इन विचारों से लेखिका सहमत जान पड़ती हैं।

पुस्तक का मुख पृष्ठ आकर्षक है। आजकल की आसमान छूती मंहगाई को देखते हुए मूल्य उचित जान पड़ता है।

लेखिका और प्रकाशक दोनों को साधुवाद।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

पुस्तक समीक्षा/ साहित्य परिचय

पुस्तक- **ब्रज-पर्यावरण : पुष्प श्री**

लेखिका- डॉ० (श्रीमती) हर्षनन्दिनी भाटिया

नन्दन, भारती नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़

प्रकाशक- श्री मदन मोहन, ब्रज लोक समिति
टकसाल गली, वृन्दावन-281121

मुद्रक- रतन प्रेस, अठखम्भा, वृन्दावन-281121 (मथुरा)

प्रथम संस्करण -1993, मूल्य 120 रुपये

पृष्ठ संख्या-24+180

पुस्तक के पहले अध्याय 'अपना पुष्प' के अंतर्गत विदुषी लेखिका पृष्ठ 23 पर कहती हैं- "ब्रज की वीथियों में विचरण करती हुई 'वनश्री' गत वर्ष प्रकाशित हुई थी। इस वर्ष 'ब्रज-पर्यावरण : पुष्प श्री' पाठकों की सेवा में समर्पित है। इसकी सुगंध आपके वातावरण में बिखर कर आपको सुवासित कर सके यही उद्देशय है।" अपने उद्देश्य में डॉ० भाटिया सफल दृष्टिगोचर होती हैं।

पुस्तक के प्रारंभ में ब्रज की संस्कृति और पर्यावरण,यमुना और पर्यावरण, ब्रज के पोखर, कूप, सरोत्र और कुण्ड, ब्रज की संस्कृति में वन का महत्व और पर्यावरण के माध्यम से लेखिका ने पुस्तक की सशक्त नींव तैयार की है। बाद में अनेकानेक पुष्पों का वर्णन विस्तार से दिया गया है। यथा कदम्ब, बेला, गुलाब, कमल, मौलश्री, सूरजमुखी, हारसिंगार। इनके अतिरिक्त चम्पा, गेंदा, चमेली, जूही, रजनीगंधा, गुलदाउदी, गुड़हल, गुलदुपहरिया, डेहलिया, कुन्द, कंदीय पुष्प, कनेर आदि के साथ ही साथ चित्ताकर्षक पत्तियाँ, पुष्पों से श्रृंगार, गृहसज्जा, जीवन में वृक्षों का अवदान, पशु-पक्षी, गाय, मोर, काग, पिक, बंदर, पपीहा, तितली आदि का भी उल्लेख है।

पर्यावरण के अध्ययन को ध्यान में रखते हुए अनेक अन्य विषय भी पुस्तक में सम्मिलित कर लिए गए लगते हैं। उदाहरण के लिए वृक्ष की पीड़ानुभूति, सुशोभित फर्न, जलकुम्भी, विषैले पौधे भी उपयोगी, उपेक्षित कैक्टस, प्रदूषण से प्रभावित वनस्पति आदि। इस प्रकार ब्रजभूमि के प्राकृतिक पर्यावरण के विषय में विस्तार से लिखा गया है।

कुल मिलाकर साहित्यिक पक्ष अधिक उजागर हुआ है। विज्ञान में जो क्रमबद्धता होती है, उस पर ध्यान कम दिया गया है। भाषा साहित्यिक और शैली रोचक है। मुख पृष्ठ और कवर का चतुर्थ पृष्ठ आकर्षक है। लिखेका ने यत्र-तत्र बिखरी सामग्री को बड़े ही कौशल से एकत्र किया है। इसके लिए वे प्रशंसा की पात्र हैं। ब्रज साहित्य, हिन्दी साहित्य और पर्यावरण प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। हाँ, यदि पुस्तक का मूल्य कुछ कम होता तो अच्छा होता।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक, 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

रसायन की रोचक बातें

तुरशन पाल पाठक

वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं संपादक भारत की सम्पदा, वैज्ञानिक विश्वकोश सी० एस० आई० आर० नई दिल्ली -58
निवासी, सी- 4 एच/56, जनकपुरी, नई दिल्ली - 58

पुस्तक : रसायन की रोचक बातें ; लेखक : डॉ० डी० डी० ओझा

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, 165 दखिनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2
पृष्ठ संख्या : 104, प्रथम संस्करण : 1996, मुद्रक : राधा प्रेस, दिल्ली, मूल्य : नब्बे रुपये,
ISNB : 81-85827-56.7

पहली नज़र में देखें तो रसायन का रोचक बातों से कोई रिश्ता दिखाई नहीं देता लेकिन जरा-सा भी ध्यान दें और रसायन विज्ञान को अंदर से झांकने का प्रयास करें तो हर चीज़ अजूबों से भरी दिखाई देने लगती है हालांकि हम जिन्हें मूल तत्व कहते हैं उन्हें भी रसायनविदों ने अपनी कठिन खोजों से ज्ञात किया था। तभी आज हम कह पाते हैं कि मूल तत्वों में साधारणतः कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वैसे सुबह से सायं और सायं से पुनः सुबह तक प्रतिदिन मानव जीवन के अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जो देखने मे तो कुछ लगती हैं और अंदर से कुछ और ही होती हैं। यह रसायन विज्ञान ही है जो उन्हें रासायनिक क्रिया से अंदर के भिन्न अणुओं को जोड़ कर वस्तुओं को वर्तमान उपयोगी रूप में बनाये रहता है। अतः इस दृष्टि से देखने पर यह कहना ही पड़ता है कि रसायन विज्ञान के बिना जीवन हर क्षण अधूरा है। हम वस्तुओं की रचना और उनके उपयोग से परस्पर वस्तुओं के मिलने से हो रहे परिवर्तनों को जाने या न जाने पर ये परिवर्तन होते ही रहते हैं जो रसायन की देन हैं और भविष्य की अनेकानेक वस्तुओं की सम्भावित रचना के नये द्वार खोलते हैं। यहाँ और ऐसी ही परिस्थितियों में रसायन की अनेक रोचक बातें सामने आती हैं।

डॉ० डी० डी० ओझा ने 'रसायन की रोचक बातें' पुस्तक को लिखते समय आम आदमी की जानकारी के लिये रसायन की लगभग 144 बातों को चुना है और बड़े सरल तरीके से यह समझाने का प्रयास किया है कि यह रोचक बातें होने में रसायन विज्ञान के माध्यम से कैसे होती हैं।

दैनिक जीवन का उदाहरण लें तो भोजन में उपयोग होने वाला साधारण नमक सोडियम और क्लोरीन की रसायन क्रिया का परिणाम है। इसी तरह चूने का स्रोत कैल्शियम है तो लाल दवा पोटेशियम व मैग्नीशियम की देन है। हमारी हड्डियों और पौधों के उर्वरकों की तह में फॉस्फोरस है तो आतिशबाज़ी के पीछे मैग्नीशियम और चर्मरोगों के निवारण में गंधक का योगदान है, जो अपनी रसायनिक क्रियाओं से हमें लाभ पहुँचाते रहते हैं।

वैसे तो प्रकृति ने हज़ारों-लाखों प्राकृतिक वस्तुयें हमें दी हैं जो अपने आप में रसायन विज्ञान की प्राकृतिक प्रयोगशालाओं की देन कही जा सकती हैं। लेकिन मनुष्य ने भी प्रकृति की तरह ही रसायन विज्ञान की सहायता से संश्लेषित वस्तुओं अथवा रचना सुलभ कर रखी है- यह सब रसायन की रोचक बातों का ही तो परिणाम है।

पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं और पृथ्वी के गर्भ में समाये अनेक खनिजों के अंदर छिपी अनेक मानव उपयोगी रचनाओं को हम सबके लिये उजागर करने में रसायन विज्ञान की अहम भूमिका रही है। कलम-काग़ज से लेकर भोजन, कपड़ा, मकान, दवाइयाँ, रंग-रोगन, पेट्रोलियम, प्लास्टिक सहित हमारे इर्द-गिर्द दिखाई देने वाली वस्तुओं में से हज़ारों रसायन विज्ञान की देन हैं।

इन और ऐसी वस्तुओं, घटनाओं के रोचक रासायनिक पहलुओं पर डॉ० ओझा ने प्रकाश डालकर इस पुस्तक में उन्हें उल्लिखित करने का अच्छा प्रयास किया है। पुस्तक में जिन 144 बातों का उल्लेख है उनमें से बानगी के तौर पर मेहदी के रंग में भी रसायन, मानव मूत्र से फॉस्फोरस, चाय प्याला भर जहर, जल अमृत या विष, खाइए एवं पहनिये भी कूड़ा-करकट, ब्लड प्रेशर रोकने का अनोखा नमक, मेंढ़क से ओषधियाँ, अब वनस्पति दूध भी, पानी भी उत्पन्न करेगा पेट्रोल, बालों से भोजन व ओषधि, जहाज़ जो बिना पानी के चलता है, पानी में आग लगाने वाली धातु, खून से दूध, गरिष्ठ भोजन के बाद नींद, फूलों में सुगंध का रहस्य आदि बातें उल्लेखनीय हैं।

ब्याह-शादी एवं कार्मिक उत्सवों एवं किसी पारिवारिक खुशी के अवसर पर अक्सर महिलायें हाथों पर मेंहदी रचाती हैं। भाँति-भाँति की चित्रकारी मेंहदी की पत्तियों को पीस कर बनाये गये पेस्ट के माध्यम से हाथों पर की जाती हैं। हरी मेंहदी लगने से हाथ लाल रंग के हो जाते हैं जो देखने में सुंदर और लुभावने लगते हैं। वैसे तो यह एक साधारण बात है हरी मेंहदी पीसकर या बाज़ार से मेंहदी का पाउडर लेकर पानी में गाढ़ा लेप बनाकर हाथों पर लगाते हैं तो कुछ समय के बाद हाथ लाल हो जाते हैं। इसीलिये समाज में मेंहदी लगाने का रिवाज लोकप्रिय है- लेकिन ऐसा होना रसायन का अजूबा है जो अपने आप में रोचक है।

होता यह है कि मेंहदी की पत्तियों में एक विशेष प्रकार का रंजक रसायन (डाई) होता है जिसे 'लॉसोन' कहते हैं। यह नेफ्थाक्विनोन वर्ग का एक रसायन होता है। इसी रसायन के कारण ही मेंहदी लगने पर हाथ लाल हो जाते हैं। जब हाथों पर मेंहदी लगाई जाती है तो मेंहदी में पाये जाने वाला 'लासोन' रसायन हाथों की त्वचा में पाये जाने वाले अमीनोअम्लों से बने प्रोटीन के धागों जैसे जाल के साथ अभिक्रिया करता है। रंजक रसायन लासोन और हाथों की प्रोटीन के बीच रासायनिक क्रिया एक जटिल यौगिक बनाती है, जिससे मेंहदी लगे हाथ लाल रंग के हो जाते हैं जो कई दिनों तक लालाभ बने रहते हैं। अतः कहा जा सकता है कि मेंहदी से हाथों का लालाभ रंग में रच जाना एक रासायनिक क्रिया है जो अपने आप में एक रोचक प्रसंग है, जो इस पुस्तक में उल्लिखित किया गया है।

पुस्तक का एक उदाहरण 'मानव-मूत्र से फॉस्फोरस' लें तो उससे पता चलता है कि विज्ञान छिपे रहस्यों को कभी-कभी अनायास ही, करना चाहते थे कुछ और मिल गया कुछ, को उजागर कर बैठता है जो बड़े उपयोगी होते हैं। इसी पुस्तक में उल्लेख करते समय ऐसी ही बात फॉस्फोरस के बारे में कही गई है। हुआ यूँ कि हैंगिंग ब्रांड नाम के जर्मन कीमियागार सस्ती चीजों से सोना बनाना चाहते थे अतः वर्ष 1669 में उन्होंने मानव के मूत्र और रेत को मिलाकर भट्टी में गर्म करने के लिए डाला। जब इस मिश्रण को उन्होंने ठण्डी भट्टी से निकाला तो चमक रहा था। यह पदार्थ सोना न होकर मुलायम, सफेद तथा मोम जैसा लग रहा था। ब्रांड साहब ने अपनी यूनानी भाषा में इसका नाम फॉस्फोरस' रख दिया, क्यों कि इसका मतलब यूनानी भाषा में 'मैं प्रकाश का वाहक हूँ' होता है। रसायन विज्ञान की इस रोचक घटना से प्राप्त हुआ यह पदार्थ दियासलाई बनाने से लेकर अन्य कई क्षेत्रों में उपयोगी है। इस तरह इस पुस्तक में संक्षेप में रसायन की विविध रोचक बातों को उल्लिखित किया गया है जो रोचकता के साथ ज्ञानवर्धक भी हैं।

इस पुस्तक की छपाई और साज-सज्ज़ा आकर्षक है। हाँ सभी प्रसंगों के साथ चित्र नहीं दिये गये हैं। जहाँ भी चित्र

[शेष पृष्ठ 18 पर देखें]

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय सुहृद !

'विज्ञान' का अक्टूबर 1997 अंक जैसा भी बन पड़ा आपके सामने है। मैं यह कुछेक लाइनें भारी हृदय से लिख रहा हूँ। पिछले दिनों राष्ट्र को कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के निधन से अपूर्णीय क्षति उठानी पड़ी है। पहले तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के अवकाशप्राप्त आचार्य एवं विभागाध्यक्ष प्रोफेसर कृष्ण जी के निधन का समाचार मिला। प्रो० कृष्ण जी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक तो थे ही, वे विज्ञान के लोकप्रियकरण एवं उच्च स्तरीय शोध के क्षेत्र में प्राणपण से जुटी दो विज्ञान संस्थाओं-"नेशनल एकेडेमी ऑव साइंसेज" एवं "विज्ञान परिषद् प्रयाग" से गहरे जुड़े हुए थे। उन्हें हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के कार्यों से विशेष लगाव था। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के वे 1972 से 1977 तक प्रधानमंत्री एवं 1977 से 1979 तक सभापति रहे। कृतज्ञ परिषद् उनकी सेवाओं को सदैव याद रखेगा। 1994 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने 'विज्ञान भूषण' पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया था।

बेसहारा, अनाथ, निर्धन एवं रोगियों, दुखियों, पीड़ितों की सेवा-सुश्रूषा के लिए सारे संसार में जानी-मानी जाने वाली मदर टेरेसा के स्वर्गवास से सारा संसार दुःखी हुआ है। करोड़ों-करोड़ लोगों को अपनी करुणा से नया जीवन देने वाली मदर टेरेसा ने मलिन बस्तियों में रहने वालों के कल्याण के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। इसी बीच लंदन की राजकुमारी डायना की एक दुर्घटना में मृत्यु के समाचार ने भी सारी दुनिया को झकझोर कर रख दिया। अपनी भारतीय यात्रा के दौरान भारत की मलिन बस्तियों में रहने वाले बच्चों के प्रति जिस करुणा, जिस स्नेह के भाव का उन्होंने प्रदर्शन किया था, चिरस्मरणीय रहेगा। 19 सितम्बर को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राणि विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव जी की पूज्य माता जी का भी स्वर्गवास हो गया। इन सभी दिवंगत आत्माओं के प्रति मैं विज्ञान परिषद् परिवार एवं अपनी ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

आगे कुछ लिखने का मन तो नहीं होता किन्तु अपने दायित्व के निर्वहन हेतु कुछेक पंक्तियाँ और लिख रहा हूँ-

स्थानीय सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज के रसायन विज्ञान विभाग के रीडर डॉ० अशोक रंजन सक्सेना के सद् प्रयासों द्वारा संस्थापित एवं संचालित संस्था क्योर (CURE) द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'क्योर' का तीसरा अंक बड़े ही सुन्दर ढंग से छपा है। सभी लेख सामयिक एवं ज्ञानवर्धक हैं।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र को 'विज्ञान मार्तण्ड' एवं संयुक्त मंत्री डॉ० दिनेश मणि को 'विज्ञान व्यास' की उपाधियाँ फैज़ाबाद की एक विज्ञान संस्था 'भारतीय विज्ञान कथा लेखन समिति' द्वारा प्रदान कर इन्हें सम्मानित किया गया है। इन्हें परिषद् परिवार की बधाई।

'विज्ञान' का नवम्बर 1997 अंक 'आचार्य नन्दलाल सिंह स्मृति अंक' छपकर लगभग तैयार हो रहा है। 'विज्ञान' का दिसम्बर 1997 अंक 'स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति अंक भी प्रेस में भेजे जाने की स्थिति में आ चुका है। अतएव स्वामी जी के निकट सानिध्य में रहने वालों और उनके सम्पर्क में आने वालों से निवेदन है कि 1 से 2 पृष्ठों के छोटे संस्मरण लिखकर हमें शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें।

-प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वावधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बालज्ञान-विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें		Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेताः	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जैव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया		Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें		Rs.
क्या क्यों कैसे (सामान्य विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (शरीर रोग विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (पृथ्वी एवं खनिज) :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धिवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारी पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध		Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

सिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिस
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

ISSN : 0373 - 1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशि

हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिक

नवम्बर 1997

डॉ० नन्दलाल सिंह स्मृति अंक

यह अंक : 5 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 8

नवम्बर 1997

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत, 500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक : 25 रु०, एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

◆

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

◆

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

◆

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

◆

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

◆

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

◆ ◆

अपनी बात

बात जनवरी 1981 की है । 'भारतीय विज्ञान कांग्रेस' के अवसर पर विज्ञान परिषद् का एक दल वाराणसी गया था. । उद्घाटन के एक दिन पूर्व परिषद् के अंतरंगियों और सभ्यों के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में रखा गया था । इलाहाबाद से स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्त, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० अशोक कुमार गुप्त के साथ मैं भी वाराणसी गया था । हम लोग प्रो० नन्द लाल सिंह जी के निवास पर उनसे मिलने गये और मुझे पहली बार प्रो० सिंह के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । जिस आत्मीयता, जिस स्नेह से वे मिले उससे मैं अभिभूत हुए बिना न रह सका । उनकी सादगी, मृदुवाणी, गर्मजोशी मुझे आज भी याद है । बाद में विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित कई संगोष्ठियों में वे विज्ञान परिषद् भी आये । पत्रों के माध्यम से भी उनसे सम्पर्क बना रहा । उन्होंने परिषद् द्वारा प्रदत्त 'डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार' के लिए कई वर्ष निर्णायक की भूमिका भी निभाई । निर्णायक के रूप में उनके जिस गुण से मैं विशेष रूप से प्रभावित हुआ वह यह कि वे जिन लेखों की पुरस्कार की संस्तुति करते थे उनके विषय में यह भी बताते थे कि उन्होंने उन लेखको को क्यों चुना है ।

विज्ञान परिषद् की गतिविधियों में उनकी गहरी रुचि थी । परिषद् की सहायता के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे । वे उन थोड़े से व्यक्तियों में थे जो पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने के बाद अपनी धवल कीर्ति में सदैव जीवित रहते हैं । वे एक व्यक्ति नहीं, वरन् एक संस्था थे।उन्होंने हिन्दी विज्ञान लेखकों की कई पीढ़ियों को अनुप्राणित किया ।

अतएव जब प्रो० शिवगोपाल मिश्र जी ने मेरे सामने ''विज्ञान'' का 'आचार्य नन्द लाल सिंह स्मृति अंक' प्रकाशित करने का सुझाव रखा तो मैं झट तैयार हो गया । मुझे विश्वास है कि ''विज्ञान'' का यह अंक युवा पाठकों और लेखकों के लिए अवश्य ही प्रेरणा-स्रोत होगा ।

इस अंक को तैयार करने में जिसका भी सहयोग मिला है, मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ, विशेष रूप से वाराणसी के डॉ० श्रवण कुमार तिवारी का, जिन्होंने इस अंक के लिए स्वयं तो लेख भेजा ही, अपने प्रभाव से अन्य कई लोगों से भी लिखवा कर लेख भेजे हैं ।

परिषद् के मेरे सहयोगियों में प्रो० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय के अतिरिक्त कार्यालय प्रभारी श्री चन्द्रभानसिंह और मुद्रक श्री अरुण कुमार राय के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

इस अंक में विज्ञापन देने के लिए मैं हिन्दी संस्थान, लखनऊ के निदेशक श्री विनोद चन्द्र पाण्डेय के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ ।

अन्त में मैं स्वर्गीय आचार्य नन्दलाल सिंह की स्मृति को प्रणाम करते हुए, यह आशा करता हूँ कि यह अंक उनके प्रति एक सार्थक श्रद्धांजलि सिद्ध हो सकेगा ।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

काशी के वासी मृदुभाषी

पौहारीशरण शर्मा
'पदम', साहित्य श्री, लखनऊ-उत्तर-प्रदेश

सृजन श्रृंखलाओं का साधक महान जो
कालक्रूर हाथों से आज है छला गया।
ज्ञानी विज्ञानी महादानी वरदानी रहा,
अचानक धरा से वह भूसुर चला गया।
परिवार इष्ट मित्र सब देखते ही रह गये,
स्तब्ध हुये स्थिति को वे समझते रहे।
परवश, विवश, अक्षम सिर धुनते रहे,
केवल हो दीन हीन आँसू ही झरते रहे।।
शिष्टता विशिष्टिता चरण चूमती रही,
धरा से उठे अरु गगन तक थे पहुँचे।
विज्ञान के शिखर को निःस्वार्थ ही संवारा,
थे विधना अनन्त गति देने में न सकुचे ।।
काशी के वासी मृदुभाषी रहे जीवनभर,
सौभाग्य था कि वे जौनपुर निवासी रहे।
विश्वविद्यालय में काशी की शान,
रह ईश्वर प्रदत्तबुद्धि सुखराशी रहे।।

विज्ञान पुस्तकों के हिन्दी रूपान्तर,
के निदेशक के पद को सुशोभित रहे करते।
मानवता सहजता सरलता से,
भगवत कृपा से नित भक्तिलीन रहते।।
नन्दलाल नामक राम कृष्ण के प्रसाद रूप
रामायण व गीता के परम उपासक रहे।
भौतिकी विश्लेषण की मान्यता बहुत रही,
इसीलिये देश व विदेश में प्रसारक रहे।।
अनेकानेक लोगों का जीवन संवारा,
फिर भी कुछेक के तो उपहासी रहे।
चिन्ता न किंचित कर्तव्य मान अपना,
कथा व कथानक विज्ञ परिभाषी रहे।
श्रद्धांजलि है अर्पित महान आत्मा को,
शान्ति के वितान का मूर्त रूप सजता रहे।
नमन-नमन शतवार नमन उन्हें,
पदम चाहता कि प्रशस्त पथ गहता रहे।।

डॉ० नन्दलाल सिंह : संक्षिप्त परिचय तथा हिन्दी सेवा

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबद-211002

जन्म स्थान : ग्राम खजुरहवाँ, तहसील मड़ियाहू, जनपद जौनपुर

जन्मतिथि : अगस्त 1, 1908; निधन तिथि : 26 नवम्बर 1996

प्रारम्भिक शिक्षा : ग्रामीण पाठशालाओं में और राजकीय हाई स्कूल, जौनपुर

माध्यमिक तथा उच्चस्तरीय शिक्षा : सन् 1925 ई० में हाईस्कूल परीक्षा पास कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नाम लिखाया और इण्टरमीडियेट साइन्स परीक्षा 1927, बी० एस-सी० परीक्षा 1929, तथा एम० एस-सी० परीक्षा 1931 में उत्तीर्ण।

अध्यापन

सन् 1931 ई० में एम० एस-सी० परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होते ही भौतिकी विभाग में डिमांसट्रेटर नियुक्त हुए। सन् 1931 से 1953 तक उसी विभाग में प्रवक्ता, सीनियर प्रवक्ता एवं सहायक अध्यापक के पदों पर अध्यापन तथा अनुसंधान करते रहे। अध्यापन के बीच छुट्टियों में प्रायः कलकत्ता जाया करते और प्रो० के० एस० कृष्णन के निर्देशन में मणिभ-संरचना पर अनुसंधान करते। सन् 1939 ई० में प्रो० आर० के० असुंडी की नियुक्ति भौतिकी विभाग में हुई। वे भौतिकी की प्रशाखा स्पेक्ट्रोस्कोपी के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके निर्देशन में स्पेक्ट्रोस्कोपी क्षेत्र में अनुसंधान हुये। भौतिकी स्पेक्ट्रोस्कोपी में उन्हें डी० एस-सी० की उपाधि सन् 1944-45 में प्राप्त हुई। शोध प्रबन्ध (थीसिस) के परीक्षक प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो० सर० सी० वी० रामन और प्रोफेसर के ० एस० कृष्णन थे। सन् 1949-50 ई० में अनुसंधान की सुगमता हेतु स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रविभाग की भौतिकी विभाग से पृथक परिकल्पना हुई जो सन् 1953 ई० में पूर्ण स्वतंत्र विभाग बना। विभागाध्यक्ष प्रो० असुंडी थे। उनकी देखरेख में स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग का सम्पूर्ण निर्माण डॉ० नन्दलाल सिंह ने किया। सन् 1954-56 दो वर्ष की अवधि में उन्हें अमेरिका और कनाडा के विशेष्ट केन्द्रों में पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च फेलो तथा विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में अनुसंधान करने का अवसर मिला। उच्चतर विभेदन क्षमता के स्पेक्ट्रोग्राफी तथा सुग्राही उपकरणों का न केवल उपयोग किये वरन् कई परमाण्विक अणुओं की रचना तथा द्विपरमाण्विक अणु जैसे PO की अति सूक्ष्म संरचना का अन्वेषण किये। उन प्रयोगसालाओं की सुसज्जता एवं कार्यदक्षता से अनुप्राणित तथा अपने अनुभव के आधार पर डॉ० नन्दलाल सिंह ने स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग में अवरक्त (Intrared) स्पेक्ट्रोस्कोपी, अल्ट्रावायलेट एवं आप्टिकल स्पेक्ट्रोस्कोपी के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास किये। अच्छे-अच्छे उपयोगी स्पेक्ट्रोग्राफी तथा अन्य मापक उपकरणों से विभाग को सुसज्जित किया और उच्चतर विभेदन क्षमता के ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोग्राफों का निर्माण कराकर स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग का नाम उजागर किया। अपने परिचित अमेरिकन वैज्ञानिकों में से एक कर्मठ वैज्ञानिक प्रो० वाइनांस

को आमन्त्रित कर लेसर स्पेक्ट्रोस्कोपी की नींव डाली। लेसर उपकरणों से सुसज्जित आज स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग लेसर-स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग के नाम से प्रतिष्ठित है।

विदेश यात्रा से वापिस आने पर सन् 1956 में डॉ० सिंह रीडर हुए और सन् 1960 में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष नियुक्त किये गये। सन् 1960 से 1969 तक भौतिकी एवं स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग की सेवा करते बीच में दो वर्ष विज्ञान संकाय प्रमुख (डीन) रहे और सन् 1969 में अवकाश प्राप्त किये। उनके समय में विभाग में पठन-पाठन एवं रिसर्च का वातावरण इतना स्वच्छ एवं सौहार्दपूर्ण था कि अपने सहयोगियों के साथ हिलमिलकर 40 से अधिक शोध छात्रों को पी० एच-डी की उपाधि उपलब्ध कराये। चौदह वर्ष की अवधि के लिये यह एक रेकार्ड है।

भौतिकी एवं स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग में निष्ठापूर्वक काम करते हुए डॉ० सिंह भारत सरकार द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्थापित हिन्दी के अनुवाद केन्द्र तथा भौतिकी कक्ष के निदेशक रहे। हिन्दी के प्रति समर्पित सन् 1969 में अवकाश प्राप्त करने पर भी हिन्दी की इन दो संस्थाओं के निदेशक सन् 1978 तक रहे। हिन्दी सेवा का भाव उनमें विद्यार्थी जीवन से रहा जो अध्यापन के समय अवाध जागृत रहा।

सदस्यता तथा सम्पादन

1. केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की प्रवर समिति के सदस्य 1953-1978.
2. उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति के सदस्य एवं भौतिकी विषयक समिति के अध्यक्ष।
3. भारत सरकार की तकनीकी शब्दावली समिति के सदस्य।
4. उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति की विज्ञान की पुस्तकों पर पुरस्कार समिति के सदस्य।
5. काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हिन्दी विश्वकोष समिति के सदस्य।
6. हिन्दी विश्वकोष में कई लेखों का सम्पादन किये और स्वतंत्र रूप से लिखते रहे।
7. "प्रज्ञा", काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका के सम्पादक।
8. उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति की भौतिकशास्त्र विषयक पत्रिका "भौतिकी" के सम्पादक (इस पत्रिका का मात्र एक अंक प्रकाशित हो सका)।

पुरस्कार

1. विज्ञान वैचारिकी अकादमी इलाहाबाद द्वारा प्रशस्ति-पत्र एवं पदक, 1981।
2. विज्ञान परिषद् इलाहाबाद द्वारा प्रशस्ति-पत्र 1982।

हिन्दी की सेवा

विद्यार्थी जीवन में ही उनमें हिन्दी के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। विज्ञान के विभिन्न विषयों की पढ़ाई अँग्रेजी ही में अँग्रेजी पुस्तकों के अधार पर होती थी। दूरद्रष्टा स्वनामधन्य महामना मालवीय जी ने सन् 1930 में विश्वविद्यालय में हिन्दी समिति की स्थापना की थी। समिति को विज्ञान के तकनीकी शब्दों का हिन्दी में समतुल्य शब्दों का निर्माण करना और हिन्दी में पुस्तकों के लेखन का कार्य सौंपा गया था उसमें भूगर्भ शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान प्रो० कृष्ण कुमार माथुर, रसायनशास्त्र के प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, भौतिकी के प्रो० निहाल करण सेठी और आयुर्वेद के प्रो० मुकुन्द स्वरूप वर्मा आदि प्रतिष्ठित विद्वान थे। प्रो० माथुर ने इन्हें 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के एक बहुत प्राचीन शब्दकोष से विज्ञान के तकनीकी शब्दों की अनुक्रमणिका बनाने का काम सौंपा था जिससे इन्हें हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की प्रेरणा मिली। अपने व्याख्यानों की टिप्पणियों और अँग्रेजी की पुस्तकों के आधार पर 1700 पृष्ठों की इण्टरमीडिएट कोर्स के लिये भौतिक विज्ञान प्रवशिका दो खंडों में तैयार कर लिया साथ ही उसी कोर्स की प्रायोगिक भौतिकी 400 पृष्ठों की लिखी। इण्टर कोर्स के लिये हिन्दी में ये प्रथम पुस्तकें थीं। इनका प्रकाशन सन् 1951 में 'स्टूडेंट्स फ्रेंड' प्रयाग-बनारस ने किया था। पुस्तकों की माँग उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान में इतनी अदिक हुई कि सन् 1953 में इनका दूसरा संस्करण और तीसरा सन् 1954 ई० में निकालना पड़ा। हाई स्कूल कोर्स की 'प्रचारक हाई स्कूल भौतिकी' नाम की पुस्तक दो खंडों में तैयार किये प्रथम खंड में 260 पृष्ठ और दूसरे खंड में 230 पृष्ठ थे। इस

पुस्तक का प्रचलन प्रदेश के स्कूलों में संतोषजनक रहा।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ भारत सरकार ने राष्ट्र भाषा हिन्दी के उन्नयन का संकल्प लिया। राष्ट्र भाषा का पठन पाठन तथा सरकारी एवं गैर सरकारी कार्यों में हिन्दी प्रतिस्थापित करने की अवधि 1965 तक बाँध दी गई, किन्तु हिन्दी में पुस्तकें तथा समतुल्य तकनीकी शब्द नहीं थे। इनकी पूर्ति एवं प्रसार के लिये भारत सरकार ने दिल्ली में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना किया और 1957-58 में विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों की बैठक दिल्ली में आहूत की गई। उस बैठक में डॉ० नन्दलाल सिंह, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में भेजे गये। विभिन्न विषयों की अँग्रेजी, में लिखी पुस्तकों का अनुवाद कराने की योजना बनाई गई। भारत सरकार ने प्रत्येक प्रदेश को एक-एक करोड़ रुपया प्रादेशिक भाषाओं के उत्थान के लिये मंजूर किया- प्रत्येक प्रान्त में ग्रन्थ निर्माण अकादमी की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश में हिन्दी अकादमी स्थापित हुई। डॉ० नन्दलाल सिंह केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और उत्तर प्रदेश हिन्दी अकादमी दोनों के सदस्य मनोनीत हुए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी एक अनुवाद केन्द्र केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने इन्हीं के निर्देशन में स्थापित किया, जिसमें कई विषयों की पुस्तकें अनुदित हुई। कई विश्वविद्यालयों में विभिन्नन विषयों के ग्रन्थ निर्माण कक्ष (Cells) खोले गये। विषयों का आवंटन उपलब्ध विद्वानों को दृष्टि में रखकर किया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारत सरकार ने सन् 1963 में भौतिकी कक्ष (Physics cell) की स्थापना की। डॉ० सिंह इस कक्ष के निदेशक (Honorary Director) नियुक्त किये गये- कक्ष में कई भौतिकविद् नियुक्त किये गये और भौतिकी की विभिन्न कोर्स की मौलिक पुस्तकें स्नातक स्तर की लिखायी गयी। उनकी पाण्डुलिपियों का सम्पादन संशोधन तथा प्रकाशन इन्होंने किया। अनुवाद केन्द्र तथा भौतिकी कक्ष में 50 पुस्तकें मौलिक तथा अनुदित तैयार हुई। उनमें 21 पुस्तकें भौतिकी की हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की समस्त संकायों के सहयोग से 'प्रज्ञा' नामक पत्रिका प्रकाशित हो रही थी। इसमें विशेष लेख हिन्दी और संस्कृत तथा कुछ थोड़े अँग्रेजी में लिखे होते थे। इन्हें सम्पादक मंडल का सदस्य मनोनीत कर दिया गया। 'प्रज्ञा' तथा विज्ञान जर्नल (Journal of Scientific Research) दोनों का सम्पादन सन् 1969 अपने अवकाश प्राप्त समय तक करते रहे। यद्यपि इन दोनों पत्रिकाओं के भार से मुक्त हुए किन्तु भौतिकी कक्ष का कार्य सन् 1978 तक करते रहे।

1. **मौलिक लेखन (पुस्तकें)**

- भौतिक विज्ञान प्रवेशिका, खण्ड-एक (1951) : प्रकाशक-स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स, प्रयाग
- भौतिक विज्ञान प्रवेशिका, खण्ड-दो (1954) : प्रकाशक स्टूडेन्ट्स फ्रेण्डस, प्रयाग
- प्रायोगिक भौतिक विज्ञान (1951) : प्रकाशक-स्टूडेन्ट्स फ्रेण्ड्स, प्रयाग
- प्रचारक हाई स्कूल भौतिकी खण्ड-एक (1952) हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी
- प्रचारक हाई स्कूल भौतिकी, खण्ड-दो।

2. **मौलिक पुस्तकों का संशोधन एवं सम्पादन**

- द्रव्य के सामान्य गुण : लेखक श्री ललित किशोर सिंह, आदि (1965) प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- विद्युत और चुम्बकत्व भाग-एक : लेखक - डॉ० श्रवण कुमार तिवारी प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि० वि० वि०, वाराणसी (1965)
- विद्युत और चुम्बकत्व-भाग दो, ले० श्रवण कुमार तिवारी आदि प्रकाशक, हिन्दी प्रकाशन समिति का० हि० वि० वि०, वाराणसी (1965)
- ध्वनि विज्ञान : श्री ललित किशोर सिंह : प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि० वि० वि०, वाराणसी (1966)
- प्रकाशिकी : डॉ० जयनारायण राय आदि प्रकाशक: हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि० वि० वि०, वाराणसी (1966)
- उष्मा और उष्मागतिकी : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी आदि प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि०

वि० वि०, वाराणसी (1966)

- प्रायोगिक भौतिकी : डॉ० महेन्द्र प्रताप वर्मा आदि। प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि० वि० वि० , वाराणसी (1996)

3. अनुदित पुस्तकों का संशोधन तथा सम्पादन

- प्रकाशिकी : अनुवादक- डॉ० धनवन्त किशोर गुप्त (1970) मूल लेखक- एफ० सीयर्स, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, का० हि० वि० वि०, वाराणसी
- प्रकाशिकी : अनुवादक- डॉ० श्रवण कुमार तिवारी (1975) मूल लेखक - बूनो रोसी, प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- उष्मा और उष्मा गतिकी : मू० लेखक : एम० डब्ल्यू० जेमान्स्की अनुवादक : डॉ० रमाकान्त पाण्डेय, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- क्लासिकीय विद्युत चुम्बकत्व : मूल लेखक- पैनाफ्स्की एवं फिलिप्स, अनुवादक डॉ० महेन्द्र प्रताप वर्मा (1973) प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- परमाणुओं और अणुओं की संरचना : मूल लेखक-कोन्द्रात्येव अनुवादक डॉ० श्रवण कुमार तिवारी आदि। प्रकाशक : हिन्दी प्राकशन समिति, का० हि० वि० वि०, वाराणसी
- एटामिक न्यूक्लियस, मू० ले० एम० कोर्सुन्स्की (1971) अनुवादक श्री ललित किशोर सिंह, प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- नाभिकीय आघूर्ण : ले० एम० एफ० रेम्जे (1975) अनुवादक डॉ० धनवंत किशोर गुप्त, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- 8. इलेक्ट्रेट : ले० ए० एन० गुब्कीन (1970) अेनुवादक : डॉ० धनवंत किशोर गुप्त- प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- भौतिकी- खण्ड एक एवं दो : मूल लेखक : फिजिकल साइंस स्टडी कमेटी अमेरिका (1970-71)अनुवादक-डॉ० श्रवण कुमार तिवारी आदि प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- भौतिकी खण्ड तीन एवं चार : मूल ले० फिजिकल साइंस स्टडी कमेटी अमेरिका : प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- न्यूक्लीय शक्ति : मू० ले० वास्कोवायनिक (1968) अनुवादक श्री अविनाश माथुर-प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- अक्रिय गैये : मू० ले० फिकेल्स्टाइन (1977) अनुवादक : डॉ० धनवंत किशोर गुप्त-प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- क्वाण्टम यांत्रिकी प्रवेशिका : ले० रिढ्निक (1970) अनुवादक : डॉ० महेन्द्र प्रताप वर्मा, प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी
- भौतिकी का रोचक अध्ययन, ले० आर० जे० स्टीफेन्सन, अनुवादक : श्री आत्मा राम भट्ट, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- खगोलीय पिण्डों के परिक्रमण : ले० निकोलस कोपर्निकस, अनुवादक : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी आदि (1972) प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

- सांख्यिकीय भौतिक : लेखक-लैन्दाऊ एवं लिफसित्ज अनुवादक : डॉ० श्रवण कुमार तिवारी, प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (1978)
- तरल यांत्रिकी-लेखक लेन्दाऊ एवं लिफसित्ज, अनुवादक : डॉ० रमाकान्त पाण्डेय प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (1978)
- ग्रह-उपग्रह : लेखक पैट्रिक मूर, अनुवादक : पवन कुमार जैन, प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (1968)
- प्रायोगिक भौतिकीरसायन : ले० डैनियल आदि अनुवादक-डॉ० बैजनाथ प्रसाद, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (1976)
- भेषजिक रसायन - लेखक : महादेव लाल श्राफ (1976), अनुवादक : डॉ० गोरख प्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक- हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- भेषजिक रसायन भाग-2 ले० महादेव लाल श्राफ (1978), अनुवादक : डॉ० गोरख प्रसाद श्रीवास्तव,प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- रूपान्तर कलन : लेखक डॉ० ब्रजमोहन प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (1967)
- निर्देशांक ज्यामिति : ले० डॉ० ब्रजमोहन, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (1972)
- पशु आर्युर्विज्ञान - लेखक डी० एच० उडाल (1970), अनुवादक- डॉ० देवनारायण पाण्डेय, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- प्राचीन हिन्दू राजनीति के कुछ पहलू : लेखक प्रो० भण्डारकर, अनुवादक-डॉ० आनन्द कृष्ण, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- गुप्त युग : लेखक - डॉ० राखाल दास बन्धोपाध्याय (1970), अनुवादक-डॉ० आनंद कृष्ण, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- पशु चिकित्सा : जीवाणु एवं विषाणु विज्ञान (पूर्वार्द्ध) लेखक-मर्चेन्ट तथा पैकर, अनुवादक : डॉ० देवनारायण पाण्डेय स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर (1978) प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- पशु चिकित्सा : जीवाणु एवं विषाणु विज्ञान (उत्तरार्द्ध) लेखक मर्चेट तथा पैकर, अनुवादक : डॉ० देवनारायण पाण्डेय स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर (1979) प्रकाशक- हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
- नेत्र रोग परिचय : लेखक डॉ० हरिबल्लभ नेगा, लोकोपयोगी (1969), प्रकाशक : हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हिन्दी में विज्ञान-लेखन के पुरोधा प्रो० नन्दलाल सिंह

(1.8.1908—26.11.96)

डॉ० श्रवण कुमार तिवारी

बी 2/228, भदैनी, वाराणसी-221001

सदियों की पराधीनता के बाद जब हमारे देश में नवजागरण आरंभ हुआ, और देश के समाज-सुधारकों, शिक्षाविदों और राजनीतिज्ञों ने स्वाधीनता का शंखनाद गुंजित किया तब उनका ध्यान राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर भी सहज ही आकृष्ट हुआ। महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर महात्मा गाँधी और महामना मालवीय जी तक सभी विचारकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने और विकसित करने का आग्रह किया। यही कारण था कि शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा। हमारे देश में आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा का सूत्रपात अँग्रेजों द्वारा किया गया था, इसलिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी ही था। परन्तु गाँधी जी और मालवीय जी जैसे विचारकों का मानना था कि शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा या मातृभषा ही होना चाहिये, चाहे वह वैज्ञानिक शिक्षा का क्षेत्र हो, तकनीकी शिक्षा का क्षेत्र हो, या कला-संस्कृति आदि का। इसी कारण गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में विज्ञान के विभिन्न विषयों को सन् 1860 से 1900 के बीच, हिन्दी में पढ़ाने तथा पाठ्यपुस्तकें लिखने का भी काम आरंभ हो गया था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, जिसकी स्थापना सन् 1893 ई० में हुई थी, द्वारा भी वैज्ञानिक शब्दकोश प्रकाशित करने का कार्य आरंभ हुआ। काशी में तो इस दिशा में पहले ही जागृति आ चुकी थी और प्रसिद्ध स्वतंत्रता-संघर्ष सेनानी बाबू शिव प्रसाद सितारे-हिन्द ने सन् 1862 ई० में एक वाद विवाद क्लब की स्थापना की जहाँ विज्ञान के विभिन्न विषयों पर व्याख्यान आयोजित किए जाते थे। विज्ञान की शिक्षा को सरल बनाने तथा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में समृद्ध बनाने की दिशा में यह एक उल्लेखनीय प्रयास था।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना (सन् 1961) के साथ हिन्दी के विकास की ओर अधिक बल मिला। महामना मालवीय जी स्वदेशी और स्वभाषा दोनों के समर्थक थे। परन्तु उस ज़माने की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के चलते काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी ही रखना अपरिहार्य था। फिर भी, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर तो हिन्दी और अँग्रेजी, दोनों की सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास आरंभ हुआ। स्वाधीनता प्राप्ति के समय (1947) तक इस दिशा में काफी प्रगति हुई। उच्च-सुविधाभोगी वर्ग तो अँग्रेजी का मोह नहीं त्याग सका, परन्तु हिन्दी-भाषी प्रदेशों में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान की शिक्षा हिन्दी माध्यम से होने लगी थी। हाईस्कूल स्तर पर विज्ञान के विभिन्न विषयों की पाठ्यपुस्तकें लिखी जाने लगी थीं। यद्यपि इन प्रयासों में एकरूपता और मौलिकता का अभाव था, शब्दावली की विविधता थी और प्राय:ये पुस्तकें पुरानी अँग्रेजी माध्यम वाली पुस्तकों के आधार पर लिखी जा रही थीं। फिर भी एक नए युग का आरंभ तो होने ही लगा था। नए-नए विद्यालय भी खुलने लगे थे और शिक्षा जगत् में

विज्ञान और इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा। राजनीतिक परिवेश बदल जाने कारण भी हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये सामाजिक एवं राजनीतिक दबाव भी बढ़ने लगा। फलतः उच्चतर माध्यमिक स्तर तक वैज्ञानिक साहित्य तैयार करने तथा इस क्षेत्र में शब्दों की एक-रूपता स्थापित करने के लिये सरकारी एवं गैरसरकारी, दोनों ही क्षेत्रों में प्रयास आरंभ हो चुके थे।

प्रो० नन्दलाल सिंह का जन्म इसी संक्रांति काल में 1 अगस्त सन् 1908 ई० में, उत्तर प्रदेश के जौनपुर जनपद की मड़ियाहूँ तहसील के खजुरहवाँ नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने हाई स्कूल तक की शिक्षा राजकीय हाई स्कूल, जौनपुर से प्राप्त की और सन् 1925 में हाई स्कूल परीक्षा पास की, स्पष्टतः उन्होंने वैज्ञानिक शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी की उपयोगिता और इस दिशा में छात्रों की कठिनाइयों का स्वयं अनुभव किया। इसके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आकर उन्हें इस दिशा में और भी अधिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला, क्योंकि यहां पर शिक्षा का माध्यम सर्वथा अँग्रेजी था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से नन्दलाल सिंह जी ने सन् 1931 में भौतिकी में एम० एस-सी० की उपाधिअर्जित की।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना मालवीय जी के सपनों का मूर्त रूप था, जो सर्वथा भारतीय मूल्यों के संवर्धन का लक्ष्य लेकर ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में ऐतिहासिक भूमिका निभाने का सफल प्रयास कर रहा था। मालवीय जी युग की आहट पहचानते थे। इसीलिए, शिक्षा के माध्यम की समस्या को भली-भाँति समझते थे। वे हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के पोषक थे। हिन्दी के उन्नयन के लिये सन् 1930-31 में उन्होंने इस विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्रकाशन समिति का गठन किया जिसे हिन्दी में विज्ञान साहित्य लिखाने तथा वैज्ञानिक शब्दकोश तैयार कराने का कार्यभार भी सौंपा गया था। प्रो० कृष्ण कुमार माथुर (भू-विज्ञान विभाग), प्रो० फूल देव सहाय वर्मा (रसायनशास्त्र विभाग), प्रो० निहाल करण सेठी (भौतिकी विभाग) और प्रो० मुकुन्द स्वरूप वर्मा को इस समिति का सदस्य बनाया गया था। इस समिति ने सबसे पहले एक विज्ञान शब्दावली प्रकाशित करने का काम हाथ में लिया। ज्ञातव्य है कि सन् 1929 में नागरी प्रचारिणी सभा ने भी एक भौतिक विज्ञान शब्दकोश प्रकाशित किया था, जिसका संपादन प्रो० निहाल करण सेठी ने किया था।

प्रो० नन्दलाल सिंह, हिन्दी-विज्ञान-लेखन के क्षेत्र से, इन्हीं दिनों जुड़े। एम० एस-सी० पास करते ही उनकी नियुक्ति भौतिकी विभाग में, डिमान्स्ट्रेटर के पद पर हुई, जहाँ वे कालान्तर में प्रवक्ता बने। हिन्दी प्रकाशन समिति से उनका संबंध इन्हीं दिनों बना। वे प्रो० कृष्ण कुमार माथुर के आग्रह पर समिति के कार्यों में हाथ बँटाने लगे। प्रो० माथुर के सुझाव पर वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में जाकर एक अत्यन्त प्राचीन शब्दकोश के आधार पर वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों की एक विस्तृत सूची तैयार करने में लग गए। उन्होंने इस कार्य को अत्यंत रुचि और परिश्रम के साथ किया। समिति द्वारा प्रकाशित यह शब्दकोश कहीं उपलब्ध तो नहीं, है, परन्तु प्रसिद्ध भाषाविद् एवं कोशकार श्री भोला नाथ तिवारी के एक लेख से (भाषा, शब्दावली आयोग, भारत सरकार, मॉडल टाउन, नई दिल्ली) पता लगता है के हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा यह शब्दकोश कभी प्रकाशित किया गया था। तब से निरंतर, डॉ० नन्दलाल सिंह हिन्दी की सेवा में लगे रहे।

वैज्ञानिक शोध में नन्दलाल सिंह को गहरी रुचि थी। एम० एस-सी० कर लेने के बाद वे शोध कार्यों में भी जुट गए। इस दिशा में उनको इतनी गहरी रुचि थी कि वे प्रतिवर्ष गर्मी की छटि्टयों में शोध-कार्य के लिये इंडियन एसोशियेशन फॉर कल्टीवेशन ऑव साइन्सेस, यादवपुर, कलकत्ता जाया करते थे। यह शोध संस्थान हमारे देश का वह प्रथम शोध-संस्थान है जहाँ आचार्य जगदीश चन्द्र बोस और नोबुल पुरस्कार विजेता आचार्य चंद्रशेखर वेंकट रामन जैसे विश्वविख्यात भौतिकीविदों ने शोध-कार्य किया था। प्रो० रामन इस संस्थान के निदेशक भी रहे। बाद में वे भारतीय विज्ञान एसोशियेशन बंगलोर के निदेशक होकर चले गये और उनके सहयोगी प्रो० के० एस० कृष्णन, इंडियन एसोशियेशन के निदेशक हो गए थे। नन्दलाल सिंह, प्रो० कृष्णन के संरक्षण में ही अपना शोध-कार्य कर रहे थे। बाद में प्रो० कृष्णन कलकत्ते से इलाहाबाद चले गए। आने-जाने की

असुविधाओं के कारण नन्दलाल सिंह का यह शोध कार्य संतोषप्रद ढंग से नहीं चल सका।

नन्दलाल सिंह को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही, शोध के क्षेत्र में एक नया अध्याय आरंभ करने का सुअवसर उस समय प्राप्त हुआ जब सन् 1939 में यहाँ भौतिकी विभाग में एक लब्धप्रतिष्ठ भौतिकीविद् प्रो० रंगा कृष्ण असुंडी की नियुक्ति हुई। डॉ० नन्दलाल सिंह ने एम० एस-सी० में विशिष्ठ विषय एक्स-रे लिया था और उसी क्षेत्र में प्रो० कृष्णन के साथ शोधकार्य भी किया था। पर प्रो० असुण्डी स्पेक्ट्रॉस्कोपी विषय के अधिकृत विद्वान थे। अतः उनके संरक्षण में नन्दलाल सिंह ने अथक परिश्रम करके नए शोध-क्षेत्र में प्रवेश किया और सन् 1945 में स्पेक्ट्रॉस्कोपी में डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। साथ ही इस दौरान वे अध्यापन कार्य भी करते रहे। सन् 1942-44 के दौरान वे भौतिकी विभाग के मुख्य भवन में विज्ञान की इन्टरमीडिएट कक्षाओं में हिन्दी माध्यम से भौतिक विज्ञान पढ़ाते थे। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि नन्दलाल सिंह की कक्षा में छात्रों की संख्या, अँग्रेजी सेक्शन के छात्रों की संख्या से कहीं बहुत अधिक हुआ करती थी। यह नन्दलाल सिंह की अध्यापन-क्षमता तथा हिन्दी के प्रति छात्रों की रुचि दोनों का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रो० नन्दलाल सिंह को जानने का अवसर मुझे उस समय मिला जब सन् 1951 ई० में मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, इन्टर में पढ़ने आया। उन दिनों इन्टरमीडिएट कक्षाएँ सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल (कमच्छा) में चलने लगी थीं। मैं गाँव के स्कूल से आया था अतः स्वभावतः अँग्रेजी भाषा का भय मेरे सामने था। यहाँ कॉलेज में हिन्दी अँग्रेज़ी माध्यम की कक्षाएँ (इण्टर विज्ञान की कक्षाएँ) अलग-अलग थीं। मैंने हिन्दी सेक्शन में प्रवेश लिया। श्री रामकिशोर सिंह जी हिन्दी माध्यम से भौतिक विज्ञान पढ़ाते थे। भौतिकी की कोई अच्छी पुस्तक हिन्दी में उपलब्ध नहीं थी। गुरु जी स्वयं नोट लिखाते थे। परन्तु उसी साल (1951) डॉ० नन्दलाल सिंह की पुस्तक भौतिक विज्ञान प्रवेशिका प्रकाशित हुई जिसे पाकर छात्रों को बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ ही समय बाद उनकी लिखी हुई प्रायोगिक भौतिकी भी प्रकाशित हुई। ये पुस्तकें स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थीं। यहीं पहला अवसर था जब मुझे इन पुस्तकों के लेखक के रूप में डॉ० नन्दलाल सिंह का नाम ज्ञात हुआ यद्यपि उनसे साक्षात्कार का अवसर नहीं मिला क्योंकि उन दिनों वे भौतिकी विभाग में बी० एस-सी० कक्षाओं में पढ़ाते थे। भौतिक विज्ञान प्रवेशिका, वास्तव में अत्यन्त सरल एवं सुओध भाषा में, मौलिक ढंग से लिखी गई पुस्तक थी। इसमें, पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकरणों को समझाने के लिए स्थानीय स्वदेशी उदाहरणों का उपयोग किया गया था। पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई थी। प्रायोगिक भौतिकी तो सर्वथा, पाठ्यक्रम के अनुसार प्रयोगशाला में निर्धारित प्रयोगों और उपकरणों के आधार पर लिखी गई मार्गदर्शिका या गाइड थी। ये पुस्तकें हिन्दी-माध्यम के छात्रों के लिए बड़ी सहायक थीं।

कुछ ऐसा संयोग था कि बी० एस-सी० में भी मुझे डॉ० नन्दलाल सिंह से पढ़ने का अवसर नहीं मिला क्योंकि 1954 ई० में जब मैंने बी० एस-सी० में प्रवेश लिया उस वर्ष डॉ० सिंह विशेष अध्ययन के लिये विदेश चले गए थे। मैंने सन् 1956 में बी० एस-सी० पास किया और बिहार के एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में भौतिकी का अध्यापक हो गया। उन दिनों उत्तर प्रदेश बिहार में गणित और भौतिकी के अध्यापकों की बड़ी आवश्यकता थी। वहाँ मुझे भौतिक-विज्ञान पढ़ाने में डॉ० नन्दलाल सिंह की भौतिक विज्ञान प्रवेशिका से बहुत मदद मिली। वहाँ शिक्षा का माध्यम पूर्णतः हिन्दी था। उन दिनों भौतिकी की अनेक पुस्तकें बाज़ार में उपलब्ध थीं, पर प्रायः सभी, पूर्व-प्रचलित अँग्रेजी माध्यम की पुस्तकों को उलट-पुलट कर अनुवाद या अनुकलन के आधार पर लिखी गई थीं, अतः उनमें वह बोध-गम्यता नहीं थी जो भौतिक विज्ञान प्रवेशिका में थी।

तीन वर्षों बाद, सन् 1959 में मैं पुनः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० (स्पेक्ट्रॉस्कोपी) के प्रथम वर्ष के छात्र के रूप में वापस लौटा तब तक प्रो० नन्दलाल सिंह विदेश अध्ययन से लौटकर, स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत थे। इसी वर्ष से मुझे प्रो० सिंह से शिक्षा ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। एम० एस-सी० में शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी था।

अतः प्रो० सिंह हमें अँग्रेजी माध्यम से ही भौतिक विज्ञान पढ़ाते थे। उनका व्याख्यान बड़ा ही सरल, और रोचक होता था। मुझे अब भी स्मरण है, उन्होंने स्पेक्ट्रॉस्कोपी के उदभव और विकास का जो इतिहास हमें पढ़ाया था वह वस्तुतः भौतिक विज्ञान के विकास की ही कथा थी।

प्रो० नन्दलाल सिंह के विज्ञान और हिन्दी के क्षेत्र के क्रिया-कलापों की चर्चा के साथ उनके व्यक्तिगत स्वभाव की चर्चा न करना उनके गुरुत्व का अधूरा चित्रण होगा। भौतिक विज्ञान के छात्र, शोधकर्ता और सफल अध्यापक होने के साथ-साथ वे पूर्णतः धार्मिक आस्था के व्यक्ति थे। यह गुण उन्हें अपने शिक्षा-गुरु प्रो० असुण्डी से मिला था जो लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक होने के साथ-साथ भारतीय सभ्यता, संस्कृति और धर्म के आदर्श रूप थे। वे प्रतिदिन गंगा स्नान करने जाते थे। किन्तु धार्मिक आडम्बरों से निर्लिप्त भी थे। प्रो० सिंह अपने छात्रों के साथ प्राचीन भारतीय गुरु-शिष्य परंरानुसार व्यवहार करते थे और उन्हें पुत्रवत् स्नेह प्रदान करते थे। एम० एस-सी० के दौरान मुझे प्रो० सिंह से जो स्नेह, सौहार्द मिला, शैक्षणिक एवं आर्थिक कठिनाइयों के समाधान में उनसे जो सहायता मिली और उनके व्यक्तित्व से जो कुछ सीखने को मिला, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

सन् 1961 में जब मैंने एम० एस-सी० पास किया, तब तक गुरुजी से मेरी निकटता बहुत बढ़ चुकी थी। उन दिनों भौतिकी के परास्नातकों (एम० एस-सी) की शोध-संस्थानों, महाविद्यालयों एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बड़ी माँग थी। मेरे लगभग सभी सहपाठी कहीं न कहीं कार्यरत हो गए। मैं कहीं दूर न जाकर यहीं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शोधकार्य करना चाहता था। परन्तु मेरी आयु, सी० एस० आई आर०, छात्रवृत्ति के लिये निर्धारित अधिकतम आयु से भी कुछ अधिक थी। अतः मैं गुरुजी के पास गया और उनसे बोला, "आयु के कारण मुझे शोध-छात्रवृत्ति नहीं मिल सकती है, फिर मैं क्या करूँ?" उन्होंने कहा, "आयु तो घटाई नहीं जा सकती, आप भी कहीं अध्यापन कार्य कर लीजिए।" अतः मैं डी० ए० वी० कॉलेज, मऊनाथ भंजन, जनपद मऊ में अध्यापक हो गया। सितम्बर 1961 में प्रो० नन्दलाल सिंह का एक पत्र मिला, जिसके अनुसार मैं स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में उनका शोध-छात्र हो गया और मुझे विभागीय शोध-प्रोजेक्ट के अन्तर्गत् छात्रवृत्ति भी मिल गई। मुझे ही नहीं, बहुधा अपने प्रत्येक छात्र को वे स्वयं ध्यान रखकर उचित अवसर पर उचित सहायता प्रदान करने का प्रयास करते थे। विभाग में प्रतिदिन वे स्वयं अपने प्रत्येक शोध-छात्र को उचित परामर्श देते और उसकीप्रगति की जानकारी प्राप्त करते थे। उन दिनों स्पेकट्रॉस्कोपी विभाग में अहर्निश प्रयोगात्मक कार्य चलते रहते।

उन्हीं दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एक अर्धवार्षिक पत्रिका 'प्रज्ञा' प्रकाशित होती थी। इसके माध्यम से भी प्रो० नन्दलाल सिंह ने हिन्दी में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान किया। वे कई वर्षों से इसके सम्पादक-मण्डल के सदस्य रहे तथा कई वर्षों तक इसके प्रधान सम्पादक भी रहे। सन् 1960 के दशक में प्रायः प्रज्ञा के प्रत्येक अंक में उनका एक वैज्ञानिक लेख अवश्य प्रकाशित होता था। ये लेख अत्यंत सरल और सुबोध भाषा में लिखे गए हैं। सन् 1963 में उन्हीं की प्रेरणा से मेरी एक कविता मालवीय नगर इसमें प्रकाशित हुई और मुझे हिन्दी में लिखने की प्रेरणा मिली। उसी दौरान काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा एक हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित हो रहा था, जिसके विज्ञान खण्ड का सम्पादन प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा कर रहे थे। प्रो० नन्दलाल सिंह ने इस विश्वकोश के लिए कुछ लेख स्वयं लिखे और विश्वविद्यालय के अनेक लोगों को भी लेख लिखने को प्रेरित किया उनकी ही प्रेरणा से मेरे 6 लेख उस विश्वकोश में प्रकाशित हुए।

सन् 1955 में ही भारत सरकार ने राजभाषा आयोग की स्थापना की जिसकी संस्तुतियों के आधार पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय और वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन हुआ। इन संगठनों की ओर से वैज्ञानिक शब्दकोषों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के लिए हिन्दी में विज्ञान की मौलिक एवं अनुदित पाठ्यपुस्तकें तथा लोकोपयोगी विज्ञान साहित्य निर्माण करने की दिशा में अनेक योजनाएँ आरंभ की गईं। प्रो० नन्दलाल सिंह पहले से ही इस

क्षेत्र में ख्याति अर्जित कर चुके थे, अतः सन् 1962 में विश्वविद्यालय स्तर की भौतिकी की मौलिक एवं अनुदित पुस्तकें लिखवाने और प्रकाशित करने की एक योजना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को मिली जिसको संचालित करने का दायित्व प्रो० नन्दलाल सिहं को दिया गया। सन् 1962 में इसी योजना के अंतर्गत्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पुरानी हिन्दी प्रकाशन समिति का पुनर्गठन किया गया और इसी के अंतर्गत् भौतिकी कक्ष की स्थापना हुई। प्रो० नन्दलाल सिंह को इसका निदेशक बनाया गया। जुलाई 1963 से इस विभाग ने कार्य आरंभ कर दिया और प्रो० सिंह ने स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग के अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए भौतिकी कक्ष के कार्यक्रमों का भी सफलतापूर्वक संचालन आरंभ किया।

भौतिकी कक्ष में प्रो० नन्दलाल सिंह ने दर्जनों मौलिक एवं अनूदित पुस्तकों का संपादन किया। वे विभागीय उत्तरदायित्वों को निभाते हुए, प्रतिदिन लगभग 4 घंटे का समय भौतिकी कक्ष में बिताते थे। आरंभ में भौतिकी की स्नातक स्तर की, अनेक मौलिक पुस्तकें लिखी गई। कक्ष में चार पूर्णकालिक लेखक कार्यरत थे। प्रो० सिंह सभी लेखकों द्वारा तैयार की गई पाण्डुलिपियों का पुनरेक्षण करते थे, तदन्तर वे पाण्डुलिपियाँ टाइप करा कर प्रकाशनार्थ भेजी जाती थीं। सन् 63 से 68 तक निम्नलिखित मौलिक पुस्तकें, जिनका प्रो० सिंह ने सम्पादन किया था, प्रकाशित हुई। 1. द्रव्य के सामान्य गुण 2. विद्युत और चुम्बकत्व (दो भागों में), 3. प्रकाशिकी, 4. ऊष्मा और ऊष्मागतिकी 5. ध्वनि विज्ञान, 6. प्रयोगिक भौतिकी। इन मौलिक पुस्तकों के अतिरिक्त अनेक मानक पुस्तकों के अनुवाद भी प्रकाशित किए गए।

इस दौरान प्रो० सिंह ने प्रज्ञा में अनेक रोचक वैज्ञानिक लेख लिखे जनमें 1. स्पेक्ट्रॉस्कोपी का इतिहास (1963), 2. परमाणु रचना की खोज (1964), 3. अणु और पमाणु (1964), 4. परमाणु की विशिष्ट रचना (1965), 5. परमाणु-संरचना (1965), 6. परमाणु ऊर्जा-उद्घाटन (1966), 7. स्पेक्ट्रम, उनके भेद और उपादान (1966), 8. परमाणुओं के स्पेक्ट्रम (1967), 9. अणु-स्पेक्ट्रम और उसकी रचना (1967), 10. भाषा-संगम आदि उल्लेखनीय हैं। अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी उनके कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं। इसी दौरान उन्होंने हाई स्कूल कक्षाओं के लिये दो खण्डों में प्रचारक हाई स्कूल भौतिकी लिखा जो हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी से प्रकाशित हुई। प्रो० सिंह ने स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग से सन् 1969 में अवकाश ग्रहण किया, परन्तु भौतिकी कक्ष के मानक निदेशक के पद पर अगले 10 वर्षों तक बने रह कर हिन्दी की उल्लेखनीय सेवा की। उनके कार्यकाल में लगभग 60 मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें भौतिकी कक्ष से प्रकाशित हुई जिनमें कुछ विश्वविख्यात पुस्तकें भी हैं, जैसे महान खगोलविद् निकोलस कोपर्निकस की ऐतिहासिक पुस्तक 'रेवोल्यूशन्स ऑव हेवेनली स्फियर्स' (खगोलीय पिण्डों के परिक्रमण) और लैण्डाऊ लिफ़शित्ज सीरीज़ की पांच सुप्रसिद्ध पुस्तकें।

विज्ञान परिषद् प्रयाग से भी प्रो० सिंह का घनिष्ठ संबंध था। परिषद् के एक तरह प्राण प्रो० सत्यप्रकाश जी से डॉ० नन्दलाल जी का बड़ा ही सौहार्दपूर्ण संबंध था। वे जब भी वाराणसी आते प्रो० सिंह से अवश्य मिलते थे। प्रो० सिंह ने विज्ञान के एक अंक में एक लेख प्रकाशित किया है, 'प्रतिभा सम्पन्न वैज्ञानिक परिव्राजक डॉ० सत्यप्रकाश' जिसमें प्रो० सत्यप्रकाश के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। प्रो० सिंह विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में सदैव रुचि लेते थे। सन् 1981 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भारतीय विज्ञान काँग्रेस का 68 वां अधिवेशन हुआ था। डॉ० सत्यप्रकाश के प्रयास से विज्ञान-काँग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर एक दिन विज्ञान परिषद् का भी अधिवेशन होता था। सन् 1981 के अधिवेशन में प्रो० नन्दलाल सिंह ने सक्रिय भूमिका निभाई थी और विज्ञान परिषद की संगोष्ठी में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के तत्कालीन निदेशक डॉ० आत्माराम, डॉ० सत्यप्रकश, प्रो० नन्दलाल सिंह और प्रो० देवेन्द्र शर्मा आदि लब्धप्रतिष्ठ भौतिकीविदों ने भाग लिया था।

सन् 1970 के दशक में, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की योजनाओं के अन्तर्गत् लगभग सभी हिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी ग्रंथ अकादमी का गठन हुआ था। तदनुसार उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और हिमांचल

प्रदेश में हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ बनी थीं। उत्तर प्रदेश और बिहार की हिन्दी ग्रंथ अकादमियों के अनेक कार्यक्रमों में प्रो० सिंह ने उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया था। उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने प्रो० सिंह से परामर्श करके काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक शिक्षकों का सहयोग लेकर, भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, गणित और कृषिविज्ञान की अनेक मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें प्रकाशित कीं। जनवरी 1974 में उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने एक वार्षिक पत्रिका 'भौतिकी' नाम से प्रकाशित करना आरंभ किया था जिसका संपादन प्रो० नन्दलाल सिंह ने किया था। इसमें उनका एक लेख, 'प्रकृति दर्शन, वैज्ञानिक चेतना' रोचक, तथ्यपरक तथा पठनीय था। प्रदेश सरकार की नीतियों के चलते इस पत्रिका के अगले अंक प्रकाशित नहीं हो सके। बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी को भी प्रो० सिंह ने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। भागलपुर विश्वविद्यालय में, हिन्दी में विज्ञान लेखन पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी, जिसमें प्रो० नन्दलाल सिंह अपने भौतिकी कक्ष के कई लेखकों के साथ गए थे और आधुनिक भौतिकी की पाठ्यपुस्तक तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान किया था।

प्रो० नन्दलाल सिंह हिन्दी से संबंधित अनेक समितियों और आयोगों के सदस्य रहे, जैसे केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की प्रवर-समिति (1954-1973), शब्दावली आयोग की परामर्श-समिति, उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति, हिन्दी विश्वकोश समिति और काशी नागरी प्रचारिणी सभा आदि । विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में आपका योगदान अप्रतिम रहा। आपने अनेक युवा वैज्ञानिकों और शोधछात्रों को हिन्दी में विज्ञान-लेखन की प्रेरणा प्रदान की। सन् 1991 में हिन्दी की उल्लेखनीय सेवाओं के लिये बिहार राजभाषा विभाग ने आपको विशिष्ट हिन्दी-सेवी सम्मान प्रदान किया। सन् 1992 में केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से आपको अखिल भारतीय हिन्दी सेवी सम्मान योजना के अन्तर्गत् वर्ष 1992 का डॉ० आत्माराम पुरस्कार, प्राप्त हुआ। प्रो० सिंह केवल वैज्ञानिक या लेखक ही नहीं वरन् मानवता के सच्चे पुजारी तथा भारतीय सभ्यता-संस्कृति के मूर्त उदाहरण थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में तो वे अपनी सज्जनता, मृदुवाणी और सरलता के लिये विख्यात थे। हिन्दी में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में, उनका ऐतिहासिक योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

पृष्ठ 25 का शेष भाग

नन्दलाल बाबू को हिन्दी में वैज्ञानिक -लेखन के क्षेत्र में भी बहुत रुचि थी। उन्होंने माध्यमिक स्तर की विज्ञान की (भौतिकी की) पुस्तक भी लिखा है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनके प्रयास से भौतकी कक्ष की स्थापना (1963) हुई थी जिसमें भौतिकी के विद्वान अध्यापकों द्वारा भौतिकी की, स्नातक स्तर की पुस्तकें हिन्दी में लिखवाई जाती थीं तथा बहुतों को अँग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित किया जाता था। यह कार्य नन्दलाल बाबू की देख-रेख में होता था। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार की हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ भी वैज्ञानिक साहित्य लिखवाने या अनूदित कराने में नन्दलाल बाबू से भरपूर सहयोग प्राप्त करती थीं। विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी-साहित्य-संवर्धन के लिए उन्हें बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की ओर से भी पुरस्कृत किया गया था।

उनके जीवन के अंतिम भाग में भी वे जब कभी बनारस में होते उनसे मिलने का अवसर प्राप्त होता था। स्वास्थ्य के चलते जब वे बनारस से बाहर अपने बड़े पुत्र श्री के० पी० एन० सिंह के साथ रहने लगे थे तब भी पत्राचार द्वारा मेरा उनसे सम्पर्क बना रहता था। उनके जैसे सौहार्दपूर्ण विद्वान बहुत कम देखने को मिलते हैं। उनकी स्मृतियाँ सुखद और प्रेरणादायक हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि नन्दलाल बाबू जैसे व्यक्ति हमारे देश में सदैव जन्म लेते रहें।

◆ ◆ ◆

प्रोफेसर नन्दलाल सिंह के वैज्ञानिक शोधकार्य

प्रो० देवेन्द्र कुमार राय

भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी -221005

प्रोफेसर नन्दलाल सिंह (1.8.1908-26.11.1996) ने 1931 में काशी हिन्दू विश्वविद्यलय से एम० एस-सी० (भौतिक शास्त्र) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। शोध कार्य करने की सुविधायें तथा शोध के प्रति जागरूकता हमारे विश्वविद्यालयों में आज भी बहुत अधिक नहीं है फिर आज से लगभग 70 वर्ष पहले की स्थिति की तो केवल कल्पना ही की जा सकती है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय चूंकि एक राष्ट्रीय संस्था° था और ब्रिटिश शासन से इसके सम्बन्ध मधुर नहीं थे अतः यहाँ पर वित्त आधारित तकनीकी सुविधाओं का अभाव अन्य स्थानों की अपेक्षा कुछ अधिक ही था। फिर भी मालवीय जी के प्रयास से अनेक अच्छे विद्वानों ने इस विश्वविद्यालय को अपनी कार्यस्थली के रूप में चुना था। इनमें से एक थे भौतिकी के प्रोफेसर डॉ० सी० एम० सोगानी। डॉ० सोगानी ने स्वयं शोध किया था और वे उच्च शिक्षा में उसकी आवश्यकता एवं उसके आकर्षण से प्रभावित थे अतः उन्होंने शोध की सुविधायें संग्रह करने और अपने विद्यार्थियों को इस कार्य में लगाने का प्रयास किया। नवयुवक नंदलाल सिंह ने विभाग में डिमान्स्ट्रेटर का पद-भार ग्रहण करते हुए डॉ० सोगानी के साथ शोधकार्य प्रारम्भ किया। शोध के प्रति उनका लगाव उस समय से लेकर उनके सेवा निवृत्त होने तक अर्थात् लगभग 38 वर्षों तक उसी प्रकार अक्षुण्ण बना रहा। चूँकि वे स्वयं संसाधनों की कमी से कठिनाइयाँ झेल चुके थे अतः जब वे स्वयं विभागाध्यक्ष हुये तो उन्होंने शोध की अद्यतन आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास किया जिससे कि उनके छात्रों एवं सहयोगियों को उस प्रकार की कठिनाइयाँ न झेलनी पड़ें।

प्रोफेसर सिंह की शोधयात्रा को समय के अनुसार चार भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम भाग था सन् 1931 से प्रोफेसर असुण्डी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा में 1939 में आने तक । द्वितीय भाग हैं 1939 से 1954 तक, जब उन्होंने प्रोफेसर असुण्डी एवं अनेक छात्रों के साथ मिलकर स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला की नींव डाली एवं उसको राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की। तृतीय खंड में हम उस काल को ले सकते हैं जो अल्प, केवल लगभग दो वर्षों का था (1954-56) जब उन्होंने कनाडा एवं संयुक्त राज्य अमेरिका की कुछ प्रयोगशालाओं में कार्य किया। इस काल का महत्व इस कारण अत्यधिक है क्योंकि इस काल के दौरान जो सम्बन्ध विकसित हुये उसका परवर्ती काल में बहुत प्रभाव पड़ा । चतुर्थ एवं अंतिम भाग है 1956-1969 तक अर्थात् उनके सेवानिवृत्त होने तक, जिस काल में विभागाध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने प्रयोगशाला का विकास एवं दिग्दर्शन कराया। इस काल के अंतिम दिनों में प्रोफेसर सिंह का ध्यान हिन्दी में विज्ञान लेखन की ओर अधिकाधिक होता गया। हिन्दी में विज्ञान लेखन में उनके योगदान पर हम इस लेख में विचार नहीं करेंगे।

डॉ० सी० एम० सोगानी ने एक X-किरण जनित्र निर्माण कराया था और उससे अक्रिस्टलीय ठोसों और द्रवों के विवर्तन देखने का प्रयास किया था। याद रखना चाहिए कि उस समय में यह अद्यतन शोध विषय था। काम में कुछ उपलब्धियाँ हुई पर उनके विवेचन में ये लोग सफल नहीं हो सके। उसी समय यूरोप में इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई जिससे

डॉ० सोगानी कुछ निरुत्साहित से हो गये और उन्होंने डॉ० नंदलाल सिंह जी को इंडियन एसोशियेशन फॉर साइंस, जादवपुर (कलकत्ता) में प्रोफेसर के० एस० कृष्णन से सम्पर्क करने को कहा। प्रोफेसर कृष्णन सर चन्द्रशेखर वेंकटरामन के सहकर्मी थे और प्रोफेसर रामन के बंगलोर चले जाने के बाद ही प्रयोगशाला के अध्यक्ष की हैसियत से काम देख रहे थे। यह समय एसोशियेशन के लिए कुछ उथल-पुथल का था क्योंकि वहाँ प्रोफेसर रामन के उत्तराधिकारी के चुनाव को लेकर कुछ खींचतान चल रही थी। रामन साहब चाहते थे कि कृष्णन वहाँ के निदेशक बने रहें पर एसोशियेशन की साधारण सभा में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में अनेक लोगों ने इसका विरोध किया। अंत में प्रोफेसर कृष्णन को यहाँ से हटना पड़ा और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चले आये। कुछ इस उथल-पुथल के कारण और कुछ जादवपुर जाकर रहने की दिक्कत, वर्ष में केवल दो बार ग्रीष्मावकाश एवं दुर्गापूजा की ही छुट्टियाँ इतनी लम्बी होती थीं कि कोई वहाँ जा सके, के कारण यहाँ भी प्रोफेसर नंदलाल सिंह जी को शोध में अपेक्षित सफलता नहीं मिली। इस बीच पढ़ाई का काम सुचारु रूप से चलता रहा। 'मास्टर साहब' प्रोफेसर नंदलाल सिंह जी को उनसे सम्बन्धित अधिकतर छात्र एवं सहयोगी इसी नाम से पुकारते थे, अपने व्याख्यान की गहराई से तैयारी करते थे। लगभग पूरा व्याख्यान चित्रों और अंकगणितीय समाधानों के सहित लिपिबद्ध करते थे। इस लेखन में भी अनेकोबार सुधार होते थे जब तक कि वे विषय की स्पष्टता एवं लेखन की सहजता दोनों से सन्तुष्ट न हो जायें। मास्टर साहब की यह आदत अंत तक बनी रही। इसका विशेष प्रभाव छात्रों के शोध प्रबन्धों के संशोधन के समय दिखाई पड़ता था। जब प्रत्येक पृष्ठ के अनेकानेक संस्करण बनाने पड़ते थे और लगभग आधे दर्जन बार संसोधन के बाद ही प्रबन्ध टाइपिस्ट के पास पहुँचता था। उस समय शोधछात्र को यह बात कष्टसाध्य और कुछ हद तक अर्थहीन लगती थी परन्तु शोध प्रबन्ध परीक्षकों द्वारा प्रबन्ध के लेखन की शुद्धता एवं सहजता की प्रशस्ति पाने पर यह कष्ट भूल जाता था।

शोध का प्रारम्भिक काल (1939-1954)

प्रोफेसर नंदलाल सिंह की डी० एस-सी० की थीसिस 1944 में लिखी गई थी। 1939 में प्रोफेसर असुण्डी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भोतिकी के प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुये और डॉ० नंदलाल सिंह उनके प्रथम शोध छात्र बने। उस समय विभाग में स्पेक्ट्रोस्कोपी के लिये कोई सुविधा नहीं थी। स्थिर विचलन स्पेक्ट्रोमीटर, जो कक्षाओं में प्रयोग किया जाता था, को छोड़कर कोई अन्य स्पेक्ट्रोग्राफ उपलब्ध नहीं था। प्रोफेसर दसन्नाचार्य जो भौतिकी के विभागाध्यक्ष थे, वे धन किरणों पर शोध करते थे और उनके द्वारा उत्सर्जित स्पेक्ट्रॉमी रेखाओं के डॉप्लर विस्थापन को मापने के लिये उन्होंने एक 3 त्रिपाशर्वों वाला स्टाइनहाइल स्पेक्ट्रोग्राफ रखा था जो कभी-कभी प्रोफेसर असुण्डी एवं उनके विद्यार्थियों को उपलब्ध हो पाता था। उत्सर्जन स्पेक्ट्रम उत्पन्न करने के लिये भी कोई सुविधा नहीं थी। उच्च विभव उत्पन्न करने के लिये उत्प्रेरक कुंडली थी। डॉ० नंदलाल सिंह और प्रोफेसर असुण्डी के समक्ष इन कमियों को दूर करने के साथ ही कुछ नया काम करने की समस्या थी, क्योंकि थीसिस तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर की होनी ही चाहिए। डॉ० नंदलाल सिंह जी की थीसिस में कई प्रयोग वर्णित हैं और उनसे प्राप्त परिणामों का विवेचन दिया गया है। स्थान-स्थान पर उपकरणों के उपयोग के लिये रसायन विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एस० एस० जोशी, भौतिकी विभागाध्यक्ष प्रोफेसर बी० दसन्नाचार्य एवं अन्य लोगों को कृतज्ञता ज्ञापित की गई है।

काँच के दो टुकड़ों के बीच उच्च विभव का उपयोग करने पर जो स्पार्क उत्पन्न होती है उसके स्पेक्ट्रम की जाँच करने पर यह देखा गया था कि तरंगदैर्ध्य के साथ इसकी तीव्रता में उतार-चढ़ाव परिलक्षित होते हैं। इन तीव्रता उच्चावचनों को उच्चावचन बैण्ड (Fluctuation Bands) का नाम दिया गया था। अनेक विद्वानों ने इनका वर्णन किया था परन्तु इनकी उत्पत्ति का स्रोत किसी अणु में निहित है यह ज्ञात नहीं था। स्पेक्ट्रम का तरंगदैर्ध्य क्षेत्र ऐसा था कि जिसको काँच के प्रिज्म वाले स्पेक्ट्रोग्राम द्वारा अंकित करना सम्भव था। अतः इसको अध्ययन करना उपलब्ध उपकरणों की सहायता से सरल था। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा सका कि इन बैण्डों की उत्पत्ति बोरॉन ऑक्साइड (BO) के कारण होती है, यद्यपि प्रथम दृष्टया इन्हें सिलिकॉन ऑक्साइड (SiO/SiO_2) से सम्बद्ध किया जाता था।

दूसरा प्रयोग ताँबे के लवणों को किसी बर्नर की लौ में तप्त करने पर जो संतप्त स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है उसके अध्ययन से सम्बन्धित था। इस संतप्त स्पेक्ट्रम के भीतर ही कुछ पतले शीर्ष रहित बैंड दिखाई पड़ते थे और डॉ० नंदलाल सिंह ने पहले इन विविक्त बैंडों को समझने का प्रयास किया। उन्होंने दिखाया कि ये बैंड ताँबे के द्विपरमाणविक अणु Cu_2 द्वारा उत्वर्जित होते हैं। बाद में उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि संतप्त स्पेक्ट्रम भी इसी अणु से सम्बन्धित हैं। इस प्रयोग ने उस समय प्रचलित धारणा को निर्मूल सिद्ध करने में सहायता की। ताँबे के लवणों के लौ-स्पेक्ट्रम में अनेक रेखायें दिखाई पड़ती थीं जिन्हें लोगों ने आयनित ताँबे के ऊर्जा स्तरों के बीच संक्रमण से उत्पन्न माना था। डॉ० नंदलाल सिंह ने यह सिद्ध किया कि ये रेखायें परमाण्विक स्पेक्ट्रम न होकर CuH अणु के इलेट्रॉनिक स्पेक्ट्रम में प्राप्त तीव्र बैंड की घूर्णन रेखायें हैं! इस अणु में हाइड्रोजन की उपस्थिति के कारण इसका जड़त्व आघूर्ण अत्यल्प होता है और इस कारण इसके घूर्णन ऊर्जा स्तरों के बीच ऊर्जा अंतराल इतना अधिक होता है कि घूर्णन संरचना को सरलता से देखा जा सकता है।

पारदवाष्प को उचत्व आवृत्ति वाली रेडियोतरंगों से उत्तेजित करने पर जो स्पेक्ट्रम प्राप्त होता है उसकी प्रकृति वाष्प के दाब तथा रेडियोतरंग की आवृत्ति दोनों ही के साथ परिवर्तित होती है। अनेक प्रयोगों में इस निर्भरता का अध्ययन किया गया। ध्यान रखने की बात है कि पारद वाष्प को रखने के लिये आवश्यक क्वार्टज की नलिका, उच्च आवृत्ति रेडियो तरंगों को उत्पन्न करने के लिये आवश्यक संयंत्र इत्यादि सभी प्रयोगशाला में उपलब्ध या खरीदे गये अवयवों से बनाये गये थे। इस प्रकार के उच्च आवृत्ति उत्तेजन की प्रक्रिया और आणविक स्पेक्ट्रम (जिसमें परमाणविक स्पेक्ट्रमी रेखाओं का मिश्रण अत्यल्प हो) को उत्पन्न करने के लिये आवश्यक भौतिक दशाओं का निर्धारण इन प्रोयोगों द्वारा किया गया। पारे की एकक एवं त्रिक परमाणविक स्पेक्ट्रमी रेखाओं पर भी आवृत्ति एवं वाष्प दाब का प्रभाव देखा गया।

क्लोरोफार्म वाष्प को उच्च आवृत्ति वाली रेडियो तरंगों द्वारा उत्तेजित करने से प्राप्त उत्सर्जन स्पेक्ट्रम के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन अणुओं का प्रकाशीय वियोजन हो जा रहा है। यह निष्कर्ष कुछ अन्य कार्बनिक वाष्पों के अध्ययन से भी निकला था। वास्तव में कार्बनिक यौगिकों का उत्सर्तजन स्पेक्ट्रम प्राप्त करना एक चुनौती भरा कार्य था और उच्च विभव पर लघु दाब वाले वाष्प में विद्युत्-विसर्जन द्वारा यह स्पेक्ट्रम प्राप्त करना सर्वप्रथम इसी प्रयोगशाला में सम्भव हुआ था।

उच्च दाब पर कार्बन वाष्प में जो बैंड प्राप्त होते हैं उनके बारे में यह दुविधा बनी थी कि ये किसी नये इलेक्ट्रॉनिक संक्रमण से सम्बद्ध हैं या कि अणु के चिरपरिचित स्वान सिस्टम के ही भाग हैं? इस बारे में निर्णय लेने के लिये उस समय तक उपलब्ध जानकारी का एक गहन विवेचन भी प्रो० सिंह की थीसिस में प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचना के आधार पर निष्कर्ष यह निकला कि ये बैंड किसी नये संक्रमण से सम्बन्धित हैं। बाद के शोध ने इस निष्कर्ष को असत्य सिद्ध कर दिया है और इस तरह एक नई प्रक्रिया जिसे व्युत्क्रम पूर्व वियोजन (Inverse predissociation) कहते हैं, ज्ञात हुई है।

अपने स्वयं के शोध के साथ ही साथ डॉ० नंदलाल सिंह अन्य विद्यार्थियों के कार्य में भी उचित सहायता एवं मार्गदर्शन करते थे। इसी कारण उस समय के शोध छात्र डॉ० एम० आर० पाथे, डॉ० पी० वेंक्टेश्वरलू, डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य, डॉ० एन० अपालानरसिंहम आदि उन्हें सम्मानयुक्त स्नेह से मास्टर साहब कहते थे। बाद के दिनों में तो यह संयोजन उनका पर्याय ही बन गया। अनेक प्रकार के कार्यों में अपनी इस रुचि एवं लगन के कारण ही जब वे अपने विदेश प्रवास के बाद प्रयोगशाला के प्रमुख बने तो उन्होंने शोध को केवल एक दिशा में सीमित न करके इसे बहुमुखी बनाने में सफलता पाई।

विदेश प्रवास

1954 में डॉ० नंदलाल सिंह जी को भारत सरकार की ओर से एक शोध छात्रवृत्ति प्रदान की गई जिसकी सहायता से वे विदेश की कुछ गणमान्य प्रयोगशालाओं में शोध करने में समर्थ हो सके। सर्वप्रथम वे नार्थ केरोलिना प्रान्त के सरकारी विश्वविद्यालय की चेपेलहिल शाखा में गये। वहाँ

उन्होंने प्रोफेसर जोसेफ डब्ल्यू स्ट्राले (J. W. Strauley) की प्रयोगशाला में अवरक्त बैंडों की तीव्रताओं काअध्ययन किया। उनके पिछले अनुभव की दृष्टि से यह सर्वथा नये प्रकार का कार्य था। बनारस में विशेषकर के, तथा पूरे भारत में भी, उस समय अवरक्त स्पेक्ट्रोस्कोपी पर शोधकार्य न के बराबर था। क्योंकि इस क्षेत्र के लिये उपयुक्त स्पेक्ट्रोमीटर मंहगें तथा समायोजन में जटिल थे। डॉ० नंदलाल सिंह जी ने न केवल प्रयोगात्मक कार्य किया परन्तु इन तीव्रताओं के समाकलन के लिये उन्होंने क्वाण्टम यांत्रिकी एवं आणविक कंपन घूर्णनों के सैद्धान्तिक विवेचन के लिए आवश्यक गणितीय विषयों का भी समुचित अध्ययन किया। इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी में इस प्रकार महारत हासिक करने के बाद डॉ० नंदलाल सिंह जी ने अपनी प्रयोगशाला में विस्थापित बेन्जीन अणुओं के स्पेक्ट्रम पर हो रहे शोध कार्यों में गहनता एवं विकास की दृष्टि से इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोफोटोमीटर यंत्र मंगाने का मन बनाया। भारत लौटने के कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने प्रिज्म पर आधारित दो स्पेक्ट्रोफोटोमीटर प्राप्त किये। डॉ० साहब ने चेपेलहिल के अपने छोटे प्रवास में अणुओं के कंपनों की प्रकृति एवं उनके सांख्यकीय मानों को प्राप्त करने की गणितीय विधि का कितना गहरा अध्ययन किया था, यह बात मुझे अपने शोधकाल 1961-65 के दौरान ही ज्ञात हो पाई जब मैंने इस दिशा में कुछ कार्य करना चाहा। बाद में तो अनेक शोधछात्रों ने इस प्रकार का कार्य किया और कुछ दिनों तक नार्मल कोआरडीनेट एनालिसिस हमारी प्रयोगशाला में अध्ययन का एक मुख्य विषय रहा।

चेपेलहिल से डॉक्टर साहब कैम्ब्रिज (मैसाचुसेट्स) में स्थित मैसाचुसेट्स तकनीकी संस्थान) गये जहाँ कि स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला विश्व की मशहूर प्रयोगशालाओं में से एक हैं। वहाँ वे प्रोफेसर आर० सी० लार्ड एवं प्रोफेसर जार्ज हैरिसन के सम्पर्क में आये। एम० आई० टी० में उच्च विभेददन क्षमता युक्त ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोग्रमाफ थे और डॉ० नंदलाल सिंह, जिनको 21 नतोदर ग्रैटिंग स्पेक्ट्रोग्राम के निर्माण का अनुभव था, ने उसका उपयोग करने की ठानी। जिस विषय को उन्होंने अपने शोध के लिये चुना वह बड़ा ही जटिल परन्तु महत्वपूर्ण था। परमाणु की स्पेक्ट्रमी रेखाओं में जीमन प्रभाव के अध्ययन से परमाणविक ऊर्जा स्तरों के लाक्षणिक क्वांटम संख्याओं एवं क्वांटम संवेगों के आपसी विन्यास के बारे में सूचना प्राप्त होती है। इस कारण अनेक परमाणुओं के स्पेक्ट्रमों को चुम्बकीय क्षेत्रों की उपस्थिति में अध्ययन किया गया है। सिद्धान्ततः किसी द्विक परमाणविक अणु के ऊर्जा स्तरों को भी अभिलाक्षणिक क्वाटम संवेगों से सम्बन्द्ध किया जा सकता है। साथ ही इलेक्ट्रॉनों के क्वांटम आघूर्ण एवं कक्षीय कोणीय आघूर्मों की उपस्थिति के कारण इन ऊर्जा स्तरों पर भी चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है और ऊर्जा स्तरों में विस्थापन एवं विभाजन हो सकता है। सन् 1930-35 में क्राफोर्ड ने OH रेडिकल के पराबैंगनी स्पेक्ट्रम के (0.0) बैंड में जीमन प्रभाव का अध्ययन किया था। हाइड्रोजन के समस्थानिक ड्यूटिरियम की खोज के बाद स्वाभाविक ही यह धारणा बनी की यह देखना चाहिये कि रेडिकल OD में जीमन प्रभाव के कारण घूर्णन रेखाओं का विस्थापन एवं विभाजन किस प्रकार का होता है। OH तथा OD दोनों ही के लिये पराबैगनी क्षेत्र में पाये जाने वाले बैंडों के लिये इलेक्ट्रॉनिक संक्रमण $2\sum^{1} \leftarrow {}^{2}\pi$ होता है। $\sum$ स्थितियों में कक्षीय आघूर्ण का अन्तर नाभिकीय अक्ष की ओर लिया गया भाग शून्य के बराबर होता है जब कि निचले स्तर में इसका मान 1 हो सकता है। स्थित आघूर्ण का मान दोनों ही स्थितियों में एक समान होता है परन्तु 2π के दोनों ही खंडों $2\pi_{1/2}$, $2\pi_{3/2}$ के लिये चुम्बकीय आघूर्ण का मान एक समान नहीं होगा /ODका एक स्थायी स्रोत पाना, जिसके बाहर एक समान चुम्बकीय क्षेत्र लगाया जा सके, एक कठिन कार्य है। डॉ० नंदलाल सिंह ने अपने अथक परिश्रम एवं प्रायोगिक कार्यों में दक्षता के द्वारा इस कार्य में सफलता प्राप्त की और चुम्बकीय क्षेत्रों के दो मान 21,000 गॉस एवं 30,000 गॉस पर OD के स्पेक्ट्रम को अभिलेखित किया। समयाभाव के कारण वे इसका विश्लेषण अपने विदेश प्रवास में नहीं कर पाये और ये फोटो फिल्में उसी प्रकार रखी रह गईं। लगभग दस वर्षों बाद 1966-67 में सूर्यनारायण ठाकुर (संप्रति प्रोफेसर) ने अपने शोधकार्य के समय इन फोटो प्लेटों का पुनः मापन किया और रेखाओं के विपाटन का विवेचन किया। इस कार्य में डॉ० नंदलाल सिंह द्वारा किये गये मापन और प्रयोगों के दौरान उनकी टिप्पणियों के अतिरिक्त उनका मार्गदर्शन अत्यन्त ही सहायक रहा। अपने विदेश प्रवास के

अंतिम कुछ माह डॉ० नंदलाल सिंह कनाडा की कराष्ट्रीय शोध कौंसिल के मौलिक भौतिकी विभाग में बिताये। वहाँ पर वे स्पेक्ट्रोस्कोपी के विभिन्न क्षेत्रों के मूर्धन्य विद्वान प्रोफेसर हर्जबर्ग, डॉ० ए० ई० डगलस, डॉ० डी० ए० रैमजे, डॉ० सी० सी० कास्टेन आदि वैज्ञानिकों के सम्पर्क में आये। उन्हीं दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला के एक पूर्व छात्र डॉ० अपला नरसिंहम (जो भाभा परमाणु शोध केन्द्र के स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग के निदेशक पद से कुछ वर्ष पूर्व सेवा निवृत्त हुये । वहाँ शोधकार्य में लगे थे। व डॉ० नंदलाल सिंह जी को " मास्टर साहब" के पूर्व परिचित संबोधन से पुकारते ते। कनाडा में नाम के आगे डॉ० शब्द लगाकर बुलाने की प्रथा थी अतछ अनेक नवयुवक कनाडियन शोधार्थी डॉ० नंदलाल सिंह जी को डॉ० मास्टर साहब के नाम से पुकारने लगे। वर्षों बाद डॉ० डी० ए० रैमजे के एक पत्र से हम लोगों को इस विचित्र मानकरण का रहस्योदघाटन हुआ । ओटावा में डॉ० नंदलाल सिंह ने PO अणु के पराबैंगनी स्पेक्ट्रम को अतिउच्च विभेदक क्षमता वाले 35 ग्रेटिग स्पेक्ट्रोग्राफ पर रिकार्ड किया। और इनमें से कुछ बैंडों की घूर्णन रेखाओं की क्वांटम संख्याओं को ज्ञात किया। इस प्रकार उन्होंने PO की B-उत्तेजित अवस्था का सर्वप्रथम घूर्णन स्थिरांक प्रस्तुत किया। अनेक वर्षों के अध्ययन के बाद पता चला कि डॉ० सिंह द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण में कुछ खमियाँ रह गई थी। परन्तु उनके द्वारा ली गई फोटो प्लेटें इतनी अच्छी थी कि एक बार गलती का पता ल जाने के बाद उनके पुनः मापन के साथ विश्लेषण करने से न केवल उस गलती का परिमार्जन हो गया वरन अनेक नये तथ्य भी उजागर हुये। PO अणु पर इन प्लेटों की सहायता से कई सोध छात्रों ने उत्कृष्ट कार्य किया और लगभग 20 वर्षों बाद नाइट्रोजन ग्रुप के द्विपरमाणविक ऑक्साइडों के स्पेक्ट्रम पर एक विस्तृत आलोचनात्मक पत्र डॉ० श्याम बहादुर राय की सहायता से तैयार किया जा सका।

जून 1956 में डॉ० नंदलाल सिंह जी अपनी विदेश यात्रा से वापस भारत आये और उसी समय प्रोफेस आसुण्डि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होकर बम्बई चले गये। डॉ० नंदलाल सिंह जो कि उस समय तक लेक्चरर ही थे को अस्तायी रीडर का पद लाभ देकर विबागाध्यक्ष बना दिया गया। इस गुरुतर जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुये भी उन्होने अपना शोधकार्य शिथिल नहीं होने दिया। यह अवश्य था कि प्रशासनिक कार्यों में व्यस्त होने के कारण अब वे स्वयं देर तक प्रयोगों के साथ नहीं रह सकते थे। 1959 में वे प्रोफेसर बनाये गये, जिस पद पर वे अपने सेवानिवृत्त होने अर्थात् नवम्बर 1969 तक रहे। इस काल में जो शोध कार्य उनके निर्देशन में हुये उनका संक्षिप्त विवरण अगले अनुच्छेद में दिया गया है।

1956-1969 का काल

डॉ० नंदलाल सिंह जी के विदेश प्रवास के लौटने के साथ ही भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभागीय प्रयोगशालाओं को सुदृढ़ और विकसित करने के लिये अनुदान की प्रक्रिया आरम्भ हो रही थी। इस कार्यक्रम में डॉ० सिंह के प्रभाव एवं प्रयत्न से स्पेक्ट्रोकोपी प्रयोगशाला को भ समुचित धनराशि आवंटित की गई। इसकी सहायता से 35 अर्धव्यास की नतोदर ग्रेटिंग (जिसकी विभेदन एवं विक्षेपण क्षमता उस समय भारत में उपलब्ध किसी भी ग्रेटिंग से अधिक थी, अमेरिका से तथा दो किरण पुंजों वाला अवरक्तस्पेक्ट्रोफोटोमीटर इंगलैंड से तथा क्वार्टज् के दो प्रिज्मों वाला स्पेक्ट्रोग्राम जर्मनी से तथा अनेकानेक अन्य उपकरण खरीदे गये। उन्हीं दिनों में व्हीटलोन अनुबंध के अंतर्गत अमेरिका से कुछ अन्य उपकरण भी आये। इन सब की सहायता से आणविक स्पेक्ट्रोस्कोपी की अनेक विधाओं में शोध कार्य प्रारम्भ हुआ। डॉ० सिंह उन दिनों काउन्सिल फॉर साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च की भौतिकी समिति के सदस्य नामित हुये और वहाँ से शोध में सहायता के लिये अनेक छात्रवृत्तियों का सृजन हुआ जिनके सहयोग से अनेक विद्यार्थियों ने शोधकार्य किया।

असुण्डी साहब के समय में स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला में बेन्जीन अणुओं में विभिन्न प्रतिस्थापित अणुओं के इलेक्ट्रॉनिक स्पेक्ट्रम का अध्ययन होता आ रहा था। अणु की जटिलता (जो अणु में उपस्थित परमाणुओं की संख्या के साथ बढ़ती जाती है।) बढ़ाने के साथ वाष्प रूप में उसका स्थायित्व कम होता जाता है और यदि इस वाष्प में विद्युतधारा

प्रवाहित की जाय तो जो उत्सर्जन स्पेक्ट्रम मिलता है वह बहुधा उस अणु का न होकर उसके खण्डों से सम्बद्ध होता है। इस कारण इस प्रकार के अणुओं के स्पेक्ट्रम का अधिकतर अवशोषण स्पेक्ट्रम के रूप में अध्ययन होता है। वाष्पीय अवस्था में अवशोषण स्पेक्ट्रम में बैंडो की स्थिति से उत्तेजित इलेक्ट्रॉनिक अवस्था में कंपनीय ऊर्जा अवस्थाओं की स्थिति का पता लगता है। परन्तु निम्नतम अवस्था में कंचन ऊर्जा स्तरों की स्थिति अवशोषण स्पेक्ट्रम द्वारा ज्ञात नहीं की जा सकती। इसके लिये उत्सर्जन स्पेक्ट्रम रिकार्ड करने की आवश्यकता पड़ती है। यों तो निम्नतम इलेक्ट्रॉनिक अवस्था की कंचन ऊर्जा अवस्थाओं की ऊर्जा का मान रामन या अवरक्त स्पेक्ट्रम के अध्ययन से ज्ञात किया जा सकता है परन्तु 1930-40 के काल में इन दोनों ही प्रकार के स्पेक्ट्रमों का अध्ययन कठिन था। अतः जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला में बहु परमाणविक अणुओं के उत्सर्जन स्पेक्ट्रम को रेकॉर्ड करने में सफलता प्राप्त की गई तो इसे महत्वपूर्ण माना गया।

प्रोफेसर असुण्डी के अवकाश ग्रहण करने तथा डॉ० नंदलाल सिंह जी के विदेश प्रवास से लौटने के बाद अनेक वर्षों तक बहुपरमाणविक अणुओं के अवशोषण क्रमशः अणुओं की जटिलता बढ़ती गई और साथ ही साथ प्रायोगिक संमंजनों की दुरूहता और प्राप्त स्पेक्ट्रम की विवेचनात्मक कठिनाईयाँ भी बढ़ी इस कार्य में अवरक्त स्पेक्ट्रोफोटोमीटर जो इन्हीं दिनों खरीदे गये थे की उपलब्धता से पर्याप्त सहायता मिली। इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण योगदान इस प्रयोगशाला के शोध छात्रों और अध्यापकों ने किया। इसका प्रमाण इस तथ्य में निहित है कि हंगरी के वैज्ञानिक जी० वरसनाई ने जब बेन्जीन अणुओं के इलेक्ट्रानिक स्पेक्ट्रम पर पुस्तक लिखी तो उसने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक शोध प्रबन्धों का संदर्भ दिया गया। प्रयोगिक दृष्टि से जो दो उल्लेखनीयबातें जो 1960-1969 के बीच हुई, वह थी बहुपरमाणविक अणुओं के प्रतिदिन स्पेक्ट्रम का सफल अध्ययन तथा इन अणुओं के अवशोषण स्पेक्ट्रम को उच्च विभेदनक्षमता पर रिकॉर्ड करके k-संरचना का विश्लेषण । ये दोनों ही प्रकार के प्रयोग भारत के लिये उन दिनों नये थे। k-संरचना के विश्लेषण से अणु के आकार में इंलेक्ट्रॉनिक उत्तेजन के कारण होने वाले प्रभाव का ज्ञान होता है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी क्योंकि निम्नतम इलेक्ट्रॉनिक अवस्था से अणुओं के आकार का मापन तो x-किरणों के विवर्तन, इलेक्ट्रॉनों के विवर्तन अथवा माइक्रोवेव स्पेक्ट्रम के अध्ययन से ज्ञात किया जा सकता था परन्तु उत्तेजित इलेक्ट्रॉनिक अवस्थाये अनेक जैविक तथा रसायनिक क्रियाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं अतः इनके आकार-प्रकार का ज्ञान आवश्यक है।

इस प्रकार के अणुओं की इलेक्ट्रॉनिक संरचना को क्वांटम सिद्धान्तों के आधार पर समझने का कार्य भी डॉ० नंदलाल सिंह जी की प्रेरणा से 1966-67 में प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम तो केवल इलेक्ट्रॉनों का ही समावेश परिकलनों में किया जाता रहा परन्तु बाद में सभी संयोजकता इलेक्ट्रॉनों का समावेश सम्भव हुआ। इस दिशा में कार्य अब काफी आगे बढ़ गया है पर उसकी चर्चा यहाँ करना समीचीन नहीं होगा।

डॉ० नंदलाल सिंह जी ने अपने शोध प्रबन्ध के कार्य के दौरान द्विक परमाणविक अणुओं के इलेक्ट्रॉनिक स्पेक्ट्रमों का भी अध्ययन किया था। साथ ही अपने विदेश प्रवास के समय भी उन्होंने ओटावा में PO के स्पेक्ट्रम का विधिवत अध्ययन किया। अतः स्वाभाविक था कि जब उन्होंने प्रयोगशाला की बागडोर अपने हाथ में ली तो उनका ध्यान इस प्रकार के अध्ययनों में तेजी से विकास लाने की ओर गया। इसके लिये उन्होंने 35 अर्धव्यास वाली तथा प्रतिमिलिमीटर 1200 रेखाओं वाली नतोदर ग्रेटिंग क्रय की और उसको ईगल समायोजन में व्यवस्थिति कराने की व्यवस्था की। कठिनाइयों के बाद 1963 में यह काम सम्पन्न हुआ। इसके बाद तो द्विक परमाणविक अणुओं के इलेक्ट्रॉनिक स्पेक्ट्रम में घूर्णन ऊर्जा से सम्बद्ध रेखाओं का जो विश्लेषण प्रारम्भ हुआ वह अब भी चल रहा है। दर्जनों अणुओं की ज्ञात और अनेक अज्ञात इलेक्ट्रॉनिक अवस्थाओं के संगत कंपन एवं घूर्णन स्थिरांकों का मापन इस प्रयोगशाला में हुआ है। कई ऐसे द्विक परमाणविक अणुओं के अस्तित्व का पता लगा है जो पहले ज्ञात नहीं थे। प्रयोगशाला में किये गये मापन अतिशुद्ध एवं मानक माने गए हैं। इस प्रकार के

स्थिरांकों के जो मानक प्रकाशित है उन सबमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित शोध प्रबन्धों के परिणामों का समावेश किया गया है। इस प्रकार के अणुओं के लिये ऊर्जा तथा अंतर परमाणविक दूरी के बीच के आरेख की प्रकृति इन अणुओं के वियोजन ऊर्जा तथा अंतर परमाणविक बंधनों की प्रकृति को निर्देशित करती हैं। अतः इन आरेखों को अत्यन्त शुद्धता से प्राप्त करना आवश्यक होता है। इन आरेकों की सहायता से इलेक्ट्रॉनिक स्पेक्ट्रम में प्राप्त बैंडों की आपेक्षिक तीव्रतायें भी ज्ञात की जाती हैं। इनमें दोनों ही प्रकार के अध्ययन किये गये हैं।

डॉ० नंदलाल सिंह जी ने अपने छात्रों और सहयोगियों, सभी को, प्रयोगशाला में हो रहे शोधकार्यों से हटकर नये प्रकार के शोध में लगने की बराबर प्रेरणा दी। अतः क्रिस्टल स्पेक्ट्रमों के अध्ययन इलेक्ट्रॉन परमाणु (अणु) संघटन प्रक्रियायें, क्वांटम रसायन का सैद्धान्तिक अध्ययन, इन सभी विधाओं के विकास में इन्होंने पर्याप्त रुचि ली और प्रोत्साहन दिया। इसी कारण जब 1969 के नवम्बर माह में वे अवकाश ग्रहण करने वाले थे उससे पूर्व ही उनकी 60 वीं जन्मतिथि पर प्रयोगशाला के उनके सहकर्मियों द्वारा शोध प्रबन्धों का जो संकलन उन्हें भेंट किया गया उसके प्राक्कथन में यह लिखा गया-

> "It would be no exaggeration if one states that the greatest contributor to this collection is Professor Singh, himself, even though his name does not appear in the by lines of most of the papers ."

डॉ० नंदलाल सिंह से जो प्रेरणा मिलती थी, उसी का यह परिणाम था कि 1960-69 के काल में बनारस की स्पेक्ट्रोस्कोपी प्रयोगशाला प्रकाशित शोध प्रबन्धों की संख्या, गुणवत्ता और वैविध्य तीनों ही दृष्टियों से केवल भारत ही नहीं परन्तु विश्व की प्रमुख प्रयोगशालाओं में अपना स्थान रखती थी। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि तो इस परम्परा को विकसित तथा बनाये रखकर के ही समर्पित की जा सकती है।

◆ ◆ ◆

पृष्ठ 26 का शेष भाग

संपूर्ण वैज्ञानिक शैक्षणिक और सामाजिक वरिष्ठताओं से ऊपर थी उनकी विनम्रता, परदुःख कातरता, दूसरों के प्रति सहानुभूति तथा सहायता की प्रवृत्ति थी। कभी भी मुँह से किसी को कष्ट पहुँचाने वाला अरुतुद बचन न कहना, मुख से कभी भी अपशब्द या अश्लील वचन न कहना, किसी की कभी निन्दा न करना, किसी के रहस्य का भेदन न करना और पद की गरिमा तथा गोपनीयता की रक्षा करना उनका स्वभाव था। जो कहीं कोई उनसे मिलता उससे प्रेम और विमम्रता से मिलते। जो कोई लोकव्यवहार में उनसे जो कुछ कहता उसे शान्त और सहानुभूति से सुनते तथा अपनी ओर से सत्परामर्श के अतिरिक्त उसके कथन पर कोई टीका-टिप्पणी नहीं करते थे। प्रायः प्रतिदिन उनके यहाँ उनके अंतिम समय तक 10-20 व्यक्ति उनसे मिलने आते थे और कुछ न कुछ बातचीत भी होती रहती थी परन्तु वे किसी के भी विषय में कुछ टिप्पणी नहीं करते थे और हृदय से विरक्त भाव से सब सुनते रहते थे। उनका प्रेम और सद्भाव सभी के प्रति ऐसा रहता था कि सभी उससे प्रभावित तथा स्नेहसिक्त रहते थे। उन्होंने अपने जीवन में किसी का अनिष्ट तो कदाचित ही सोचा हो, करना तो दूर की बात है।

जीवन में सादगी, विनम्रता, कर्मनिष्ठा और सभी के प्रति स्नेह, यह प्रो० नन्दलाल सिंह का जीवन आदर्श था। दूसरों का सत्कार और उनकी सहायता उनके जीवन के अंग थे। उनकी कर्मनिष्ठा और विनम्रता का अनुसरण ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धान्जलि है। उन्हीं जैसे लोगों की जीवनचर्या के बारे में महाकवि रसखान ने कहा है-

सुनिये सबही कहिये न कछु, विधि या रहिये यहि बागर में।
मिलिये सबसे दुर्भाव नहीं, बसिये सत्संग उजागर में।
करिये व्रत नेम महातप से, जेहि ते तरिबे भवसागर में।
रसखान गोविन्दहि यो भजिये, जैसे नागरि को चित गागर में।

◆ ◆ ◆

प्रो० नन्दलाल सिंह : कुछ यादें

प्रो० देवीदत्त पन्त

एमरिटस प्रोफेसर, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उ० प्र०

मैं प्रो० नन्दलाल सिंह के सम्बन्ध में अपने कुछ संस्मरण प्रो० देवेन्द्र कुमार राय के आग्रह पर लिख रहा हूँ। यह सत्य है कि मैं उन्हें सन् 1938 से, जब मैंने काशी विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था, जानता हूँ। परन्तु मेरा साक्षात्कार उनसे प्रथम बार सन् 1940 में हुआ। स्व० डॉ० जगदेव सिंह, जो मेरे सहपाठी थे, मुझे बुलाकर उनके पास ले गये और उन्होंने मुझे राय दी कि एम० एस-सी० उत्तरार्थ में हम दोनों स्पेक्ट्रोस्कोपी विषय लें। प्रो० आर० के० असुण्डी कुछ समय पूर्व विश्वविद्यालय में आ चुके थे और यह आशा की जाती थी कि शीघ्र ही स्पेक्ट्रोस्कोपी में अच्छा काम होने लगेगा। उन दिनों डॉ० सिंह "मास्टर साहब" ही कहे जाते थे, और अपनी डॉक्टरेट की डिग्री के लिए प्रो० असुण्डी के निर्देशन में कार्य कर रहे थे। स्पेक्ट्रोस्कोपी की प्रयोगशाला में एक हिलगर का मीडियम क्वार्ट्ज स्पेक्ट्रोग्राफ था, और एक कॉन्सटैन्ट डेविएशन स्पेक्ट्रोमीटर। यह स्पेक्ट्रोमीटर लगभग 8 महीने ज़ीमन प्रभाव के प्रयोग के लिये एम० एस-सी० के छात्रों के काम आता था। अप्रैल में उसका टेलिस्कोप हटाकर उसमें कैमरा चढाया जाता है और फिर वह स्पेक्ट्रोस्कोपी की प्रयोगशाला में आ जाता था। स्पेक्ट्रोस्कोपी के स्पेशल पेपर में हमें प्रयोगात्मक कार्य करके एक थीसिस जमा करनी होती थी। इस कार्य में प्रो० सिंह से बहुत सहायता मिलती थी और कभी-कभी हम तीनों लोग बैठकर हर्ज बर्ग (Herz Berg) की पुस्तक साथ-साथ पढ़ते थे। डॉ० जगदेव सिंह मुझसे ज्यादा स्पेक्ट्रोस्कोपी जानते थे, परन्तु एक बार डॉ० सिंह ने हमारी परीक्षा ली और कुछ बैंडों की आवृत्तियाँ देकर डिलैन्डर्स टेबुल बनाने को कहा। मैंने यह काम जगदेव सिंह से पहले कर दिया। प्रो० सिंह बड़े खुश हुए। तब से आखरी दम तक मुझे अच्छा मानते रहे और मेरी सहायता करते रहे।

प्रो० नन्दलाल सिंह बड़े सरल तथा मधुर स्वभाव के भले व्यक्ति थे। मुझे याद नहीं है कि उनसे कभी किसी मामले में मतभेद हुआ हो, अथवा उन्होंने कभी नाराजगी दिखाई हो। एक दो बातें जो मुझे याद आती हैं उनमें एक 1941-42 की है। दिन में क्वार्टज आर्क लैम्प के इक्सपोजर से रात को 12-1 बजे आँख में भयंकर दर्द हुआ। होस्टल के डॉक्टर को बुलाया गया, और उसकी राय के अनुसार प्रो० असुण्डी और नन्दलाल सिंह जी मुझे देखने आए। जिस स्नेह के साथ डॉ० सिंह ने मेरी आँख को गरम पानी से सेंका वह मुझे आज भी यांद है। मैं कई बार उनके घर पर ठहरा और उनके लंका वाले घर (नन्द-निवास) पर तो शाम के वक्त 2-3 साल पहले तक हम स्पेक्ट्रोस्कोपी के सभी लोग उनके पास जाकर गपशप लगाते थे। उनके यहाँ कई तरह के लोग बैठते थे। उनमें पुराण वेत्ता पंडित जी बहुत सुन्दर उपाख्यान सुनाते थे। जो आनन्द मैंने अपने अवकाश प्राप्त करने के बाद यदा-कदा बनारस रहने में प्रो० नन्दलाल सिहं के सत्संग में प्राप्त किया, वह अविस्मरणीय है।

एक बार आगरा विश्वविद्यालय की एम० एस-सी० फाइनल की परीक्षा में एक प्रश्न गलत छप गया और उसका उत्तर दुविधा पूर्ण हो गया। मेरे मित्र डॉ० डी० पी० खण्डेलवाल तब आगरा कॉलेज में थे। उन्होंने विश्वविद्यालय को लिखा कि सवाल गलत है। पेपर डॉ० नन्दलाल सिंह का

बनाया था। विश्वविद्यालय ने जब डॉ० नन्दलाल सिंह से पूछा तब उन्होंने विश्वविद्यालय को लिखा कि वे मुझसे (लेखक से) पूछ लें। यह उनका बड़प्पन था और जहाँ अवसर मिलता वह मुझे सम्मान देने में कोताही नहीं करते। मुझे याद है कि एक बार ओ हायो के प्रो० नील्सन को लेकर डॉ० सिंह, मैं और डॉ० असुण्डी सारनाथ गये और हाइजनबर्ग के सदिग्धता के नियम पर बहस होने लगी। पाश्चात्य देशों में इस शताब्दी के तीसरे दशक में इस सिद्धान्त ने बड़ा तहलका मचाया था और प्रो० नील्सन उसके बावत हमको जानकारी दे रहे थे। मैंने उनकी बात काटते हुए कहा कि मुझे यह सिद्धान्त बहुत अद्भुत लगा था। जब पहले मैंने इसे पढ़ा, मुझे संतोष मिला था। विज्ञान का इस प्रकार से सीमित होना हमारी भारतीय मान्यताओं के अनुकूल है, और हम हिन्दुस्तानियों को इसमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। प्रो० सिंह ने मेरी सहायता की और कहा कि जापान में भी वैज्ञानिक लोग उस नियम से आश्चर्यचकित नहीं हुए थे।

प्रो० असुण्डी के अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद नन्दलाल जी स्पेक्ट्रोस्कोपी के प्रोफेसर हो गये। स्पेक्ट्रोस्कोपी यद्यपि पुराना विषय हो गया तथापि द्वितीय महायुद्ध के बाद भी Micro wave, EPR, ESR आदि नये आयाम् स्पेक्ट्रोस्कोपी में आते रहे। परन्तु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पोलीऐटोमिक, मोलीक्यूलर स्पेक्ट्रोस्कोपी में अधिकतर काम होता रहा। उ० प्र० में इलाहाबाद, अलीगढ़, गोरखपुर, कानपुर और नैनीताल में अपने-अपने ढंग से काम होता था। प्रो० सिंह महसूस करते थे कि कभी-कभी सभी रिसर्च केन्द्रों के लोग बैठकर विचार विमर्श करें कि रिसर्च की गुणवत्ता कैसे बढ़ाई जाय। परन्तु यह विचार आगे बढ़ ही नहीं पाया, और आज भी जब डॉ० राय और ठाकुर के प्रयत्नों से LASSI नामक संस्था बन चुकी है और स्पेक्ट्रोस्कोपी में लेजर (Laser) का आयाम जुड़े बहुत समय हो गया है, फिर भी गुणवत्ता की दृष्टि से हम लोग बहुत कुछ नहीं कर पाये हैं। पर्चों का छपना तथा संगठन द्वारा सेमिनार सिम्पोजिया करना ही रिसर्च की इति श्री नहीं है। LASSI के द्वारा यह तो होता रहता है। परन्तु एक अन्य औपचारिक तरीके से बैठकर एक दूसरे की सहायता कैसे हो सकती है, इस पर गम्भीर प्रयत्न कभी नहीं हुआ। सन् 60 के दशक में प्रो० देवेन्द्र शर्मा ने गोरखपुर में इसका प्रयास किया, पर वह प्रयास स्थायी रूप ग्रहण नहीं कर पाया।

प्रो० सिंह हिन्दी के लेखन में प्रमुख भूमिका निभाते थे। एक बार उनके नेतृत्व में देवेन्द्र शर्मा तथा मैंने एक पुस्तक लिखने का कुछ दिन प्रयास किया, परन्तु वह असफल रहा। हिन्दी ग्रन्थ एकादमी की दुर्घटना को देखने का मैं साक्षी रहा हूँ। हजारों पुस्तकें हिन्दी में छपीं पर खरीददार नहीं मिले और पुस्तकें कूड़ेदान में डाल दी गईं। प्रो० सिंह का हिन्दी प्रेम स्तुत्य था परन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से उनसे पूर्णतया सहमत नहीं हो पाता हूँ। आज हमारा विद्यार्थी राष्ट्रीय सेमिनारों में बोल नहीं पाता और दक्षिण के वैज्ञानिकों की तुलना में अपने को अभिव्यक्त करने में अपने को हीन पाता है। वास्तव में अगर इन दोनों दिशाओं में प्रगति करनी है तो हमें परम्परागत विधाओं को परिवर्तित करना होगा। मेरे विचार से लोकगम्य विज्ञान और दर्शन पर हिन्दी में पुस्तकें लिखी जानी चाहिए।

आठवें दशक में लखनऊ में जब LASSI की स्थापना हुई तो प्रो० सिंह उस सभा में मौजूद थे। वे प्रोफेसर के पद से रिटायर हो चुके थे तथापि स्पेक्ट्रोस्कोपी के कार्य कलापों में दिलचस्पी रखते थे। मुझे याद है कि जब पदाधिकारियों के चयन की बात आई तो प्रो० सिंह सबसे पहले बोल उठते हैं कि वे अध्यक्ष पद के लिये डॉ० पन्त का नाम रखते हैं और कार्य कारिणी के सदस्य रूप में डॉ० डी० पी० खण्डेलवाल थे। उनकी छोटी-छोटी कृपादृष्टियाँ मुझे बार-बार याद आती हैं। सन् 1971 में, मैं उत्तर प्रदेश के शिक्षा-निदेशक के पद पर था और बनारस किसी कॉलेज के महोत्सव में भाषण दे रहा था। नजर घुमाई तो प्रो० सिंह को भी बैठे पाया। मैं उत्सवों में फिजूलखर्ची का विरोधी था, और मैंने माल्यार्पण करने या सड़क खोदकर गेट बनाने के विरोध में एक भाषण दे डाला। बाद में डॉ० सिंह मेरे पास आए और बोले आप अब ऊँचे सरकारी नौकर हैं और ऐसे भाषण आपको नहीं देने चाहिए। मेरे विचार से यही उनकी सबसे स्पष्ट राय थी, जो उन्होंने मुझे दी। उनका सम्मान हमेशा करता रहूँगा। मुझे दुःख है कि उनके आखिरी तीन वर्षों में उनसे नहीं मिल पाया क्योंकि वे अपने पुत्र के साथ लखनऊ में रहने लग गये थे।

♦ ♦ ♦

प्रो० नन्दलाल सिंह : कुछ संस्मरण

डॉ० रमाशंकर सिंह

अवकाशप्राप्त प्राध्यापक, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी -221005

प्रोफेसर नन्दलाल सिंह (1.8.1908-26.11.1996) के साथ मेरा लम्बे समय तक सम्पर्क रहा है। उनके विचारों तथा क्रिया-कलापों को निकट से देखने का अवसर मिलता रहा है। विज्ञान, विशेषतः स्पेक्ट्रॉस्कोपी, के क्षेत्र में उनकी सेवायें सदैव याद की जाएँगी। विज्ञान को अपनी देश भाषा हिन्दी में प्रस्तुत करने की दिशा में भी डॉ० नंदलाल सिंह ने सराहनीय कार्य किया। इसके साथ ही मानवीय गुणों के भी वे धनी थे। मृदुभाषी, व्यवहार कुशल और अपने शिष्यों एवं सहकर्मियों के प्रति सदैव उदारता बरतना उनका स्वभाव ही था। उनके कुछ गुणों को याद करना प्रासंगिक होगा।

प्रो० नंदलाल सिंह योजनाबद्ध ढंग से कार्य करने वाले कर्मठ और सूझ-बूझ के धनी व्यक्ति थे, जो कार्य समझ बूझ कर हाथ में लेते उसमें अवश्य सफल होते थे। मेरा उनसे पहला परिचय सन् 1950 ई० में उस समय हुआ था जब मैंने भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अस्थायी नियुक्त पाकर सेवा आरम्भ की। डॉ० नन्दलाल सिंह तब भौतिकी विभाग में स्थायी प्रवक्ता के पद पर कार्यरत थे। उन दिनों स्पेक्ट्रॉस्कोपी, भौतिकी विभाग का ही एक अंग था और प्रो० रंगा कृष्ण असुण्डी स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग के प्रोफेसर थे। वे अपने विषय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान थे। उन्होंने अपने शोधकार्यों से विदेशों में भी ख्याति अर्जित की थी। परन्तु यहाँ, भौतिकी विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष से उनके संबंध मधुर नहीं थे। अतः वे यहाँ से छोड़कर अन्यत्र चले जाना चाहते थे, उन्हें संभवतः किसी अन्य विश्वविद्यालय में नियुक्ति मिलने की प्रबल संभावना भी थी। डॉ० नन्दलाल सिंह तथा प्रो० असुण्डी के शिष्यों को भला यह कैसे पसंद आता कि उनके जैसा विद्वान प्रोफेसर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को छोड़ कर चला जाय। अतः डॉ० नन्दलाल सिंह ने सूझ-बूझ के साथ इस समस्या को तत्कालीन कुलपति आचार्य नरेन्द्र देव जी के समक्ष प्रस्तुत किया। आचार्य जी ने भी विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा और ख्याति को ध्यान में रखकर, स्पेक्ट्रॉस्कोपी सेक्शन को एक स्वतंत्र विभाग बना दिया और प्रो० असुण्डी को उस विभाग का अध्यक्ष बना कर उन्हें रोक लिया। यह सफलता एक प्रकार से डॉ० नन्दलाल सिंह की ही सफलता थी जिसमें उनके सहयोगी तथा हम सब भी शामिल थे। प्रो० असुण्डी के निर्देशन में अनेक शोधछात्रों ने डी० एस-सी० और पी० एच-डी० की उपाधि पाई और देश-विदेश में उल्लेखनीय पदों पर रहकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का नाम उज्ज्वल किया।

प्रो० असुण्डी के बाद प्रो० नन्दलाल सिंह स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग के अध्यक्ष हुए। उन्होंने इस विभाग को तीव्रतर गति प्रदान की। इसको साधन सम्पन्न बनाने के लिए डॉ० सिंह ने अहम भूमिका निभाई। विभाग की ख्याति बढ़ने लगी। यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का शोध कार्य होने लगा। स्पेक्ट्रॉस्कोपी विषय के विश्वविख्यात विद्वान और वेदव्यास प्रो० हर्ज बर्ग (कनाडा से) यहाँ आए और विभाग के कार्यों को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उन्हें वेदव्यास की पदवी इसलिए दे रहा हूँ कि स्पेक्ट्रॉस्कोपी के विभिन्न विषयों पर प्रो० हर्ज बर्ग ने जितना विस्तृत और प्रमाणिक साहित्य लिखा है वह विज्ञान जगत् में चारों वेद और अट्ठारह पुराणों से तनिक भी कम

नहीं कहा जा सकता है। मैंने भी प्रो० असुंडी के निर्देशन में ही बेन्जोक्वीनोन नामक अणु पर शोध कार्य किया था। प्रो० हर्ज बर्ग ने इस शोधकार्य की प्रशंसा की और बाद में अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "पॉली एटामिक मालीक्यूल्स" में इसे उद्धृत भी किया। प्रो० नन्दलाल सिंह जी ने भी बेन्जोक्वीनोन के स्पेक्ट्रम और सम्बद्ध आँकड़ों की एक प्रति प्रयोगशाला में प्रदर्शनार्थ लगवा दिया। ऐसा था उनका मेरे प्रति स्नेह सम्मान। वे अपने सहयोगियों का आदर करना जानते थे।

जब स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग अलग हुआ, उसे एक गहरे, संकट के दौर से गुजरना पड़ा। विभाग में उपकरणों तथा संसाधनों का अभाव था। प्रो० असुण्डी शीघ्र ही अवकाश प्राप्त करने वाले थे, और प्रो० नन्दलाल सिंह उच्च अध्ययन के लिये अमेरिका चले गए थे। विभाग में अणु-परमाणुओं के स्पेक्ट्रमों का अध्ययन करने के लिए मात्र एक 'स्टाइन टाईल' नाम का स्पेक्ट्रोग्राफ था जो छः महीने भौतिकी विभाग में और छः महीने स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में रहता था और जब प्रो० नन्दलाल सिंह विदेश गए तब वह स्पेक्ट्रोग्राफ भौतिकी विभाग में था। असुण्डी साहब को यह अशुभ लगा और तब उस स्पेक्ट्रोग्राफ को भौतकी विभाग के अध्यक्ष को समझा-बुझा कर स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में लाने की योजना बनी। किन्तु प्रो० नन्दलाल सिंह थे अमेरिका में, वे ही इस काम को अपनी सूझबूझ से कर सकते थे। अतः इस काम के लिए मुझे कुलपति महोदय के पास भेजा गया। मुझे लगा मैं व्याघ्र के मुँह में भेजा जा रहा हूँ। तत्कालीन कुलपति सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर सरीखे भारी-भरकम, डीप-डाप वाले वाइस चान्सलर के पास। रास्ते भर हनुमान-चालीसा का पाठ करते, मेरे तो पाँव तले की ज़मीन ही निकली जा रही थी। इलाहाबाद छोड़ने के बाद, प्रो० मेघनाद साहा के मेघगर्जन के बाद, किसी ऐसे तूफान का सामना यहीं करना पड़ा। गनीमत थी कि मुझे भ्रमवश विरोधी कैम्प का आदमी समझ लिया गया। हनुमान-चालीसा के पाठ का फल मिल गया। प्रो० नन्दलाल सिंह ने संभवतः अमेरिका से ही मेरी रक्षा में कोई मंत्र मारा था, मुझे तो ऐसा ही लगा।

प्रो० असुण्डी के जाने के बाद प्रो० नन्दलाल सिंह ने अध्यक्ष के रूप में वर्षों तक स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग का संचालन किया, इसे सजाया-सँवारा। कई नए उपकरण आए। शोधकार्यों में प्रगति भी हुई। तब तक मेरी भी नियुक्ति भौतिकी विभाग में हो गई, किन्तु मेरा शोधकार्य तो स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में ही चलता था। इस विरोधाभास के बावजूद प्रो० सिंह द्वारा मुझे शोध-संबंधी सारी सुविधाएँ उपलब्ध होती रहीं जो सामान्यतः स्पेक्ट्रास्कोपी विभाग के किसी सदस्य को उपलब्ध थीं। इस कारण मैं अपने सहयोगियों के साथ बेन्जोक्वीनोन अणु पर अपना शोधकार्य पूरा करा सका जो कि एक उच्चस्तर का शोधकार्य माना जाता है। इसके लिए मैं प्रो० सिंह का सदैव आभारी रहूँगा।

विभागीय कार्यों के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन में भी मुझे जब कभी कोई आवश्यकता पड़ी, प्रो० सिंह सुगम थे। एक बार मेरे परिवार में एक सदस्य की दुर्घटना हो गई, उस समय उन्होंने हमारी जो सहायता की उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है। जीवन में और क्या चाहिए? मैं प्रो० नन्दलाल सिंह की पुण्य-स्मृति को विनम्रता के साथ नमन करता हूँ।

◆ ◆ ◆

स्वर्गीय नन्दलाल बाबू : एक संस्मरण

डॉ० सुदर्शन प्रसाद सिंह

पूर्व कुलपति, पटना विश्वविद्यालय, चीनी कोठी, विद्यापति मार्ग, पटना-1

मुझे ठीक-से स्मरण नहीं है कि पहले पहल मुझे नन्दलाल बाबू (प्रो० नन्दलाल सिंह) के दर्शन का अवसर कब प्राप्त हुआ था। शायद सन् 1943-44 के ग्रीष्मावकाश में मैं अपने एक शोध-कार्य के सिलसिले में भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध स्पेक्ट्रॉस्कोपिस्ट डॉ० आर० के० असुण्डी से मिलने बनारस आया था। उन्हीं के यहाँ, मेरी नन्दलाल बाबू से मुलाकात हुई। प्रो० असुण्डी ने मेरे ठहरने की व्यवस्था नन्दलाल बाबू के जिम्मे ही सौंप दिया। उसी समय से सन् 1980 के दशक तक जब भी कभी मुझे बनारस आने का अवसर मिलता था, मुझे सदा नन्दलाल बाबू का आतिथ्य प्राप्त होता रहा। शायद, आतिथ्य का कहना उतना उचित नहीं होगा जितना भातृस्नेह कहना, छोटे भाई को बड़े भाई के घर में सुखपूर्वक रहने का सौभाग्य पाना। उनके साथ रहने पर जैसे ही मैं सोकर उठता, उनसे संकटमोचन का प्रसाद मिल जाता। उनका व्यवहार इतना सौहार्दपूर्ण था कि बाद में चलकर मैं जब कभी भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में या काशी नगर में जाता तो उनसे मिले बिना संतोष नहीं होता और वे भी अपने घर पर स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग के सदस्यों को बुलाकर मेरे सम्मान में भोजन पर आमंत्रित करते और इस तरह एक परिवार की भाँति सबसे भेंट हो जाती।

प्रोफेसर असुण्डी के कारण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग पहले से ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका था, किन्तु उन दिनों साधनों की कमी बनी रहती थी। प्रो० असुण्डी के बाद इस विभाग का कार्य-भार नन्दलाल बाबू ने संभाला, और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से प्रयोगशाला को साधन-सम्पन्न बनाने के लिए, पर्याप्त अनुदान प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। अन्य स्रोतों से भी उन्होने सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। उनके कार्य-काल में इस विभाग ने तेजी के साथ प्रगति की। उनके अनेक छात्र देश-विदेश में अपने शोधकार्यों के लिए सम्मानित किए गए जिनमें से डॉ० देवेन्द्र कुमार राय और डॉ० सूर्यनारायण ठाकुर वर्तमान समय में भौतिकी विभाग में ही कार्यरत हैं।

नन्दलाल बाबू के कार्यकाल में अनेक उल्लेखनीय अवसरों पर मुझे भी स्पेक्ट्रॉस्कोपी विभाग में उपस्थित रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सभी अवसरों का वर्णन करना तो संभव नहीं है, किन्तु कुछ अवसर अवश्य उल्लेखनीय हैं। सन् 1981 में भारतीय विज्ञान काँग्रेस का 68 वां अधिवेशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही सम्पन्न हुआ था और मैं वहाँ उपस्थित रहा। उस समय नन्दलाल बाबू की सक्रियता और कर्मठता देख कर मैं विशेष रूप से प्रभावित रहा। उसी अवसर पर नन्दलाल बाबू के प्रयास से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में "भारतीय लेसर एवं स्पेक्ट्रॉस्कोपी सोसाइटी" की स्थापना की गई जो आज भी सक्रियतापूर्वक कार्य कर रही है।

[शेष पृष्ठ 13 पर देखें]

डॉ० नन्दलाल सिंह : एक आदर्श कर्मयोगी

डॉ० गंगा सागर राय
सर्व भारतीय काशिराज न्यास दुर्ग रामनगर, वाराणसी

जिनके शील, सदाचार, ज्ञान और सत्तकर्मनिष्ठा से प्राणिमात्र को सुख और शान्ति प्राप्त हो ऐसे व्यक्ति कम ही होते हैं। विनय, विवेक और व्यवहार के मंजुल समन्वय से समन्वित व्यक्तितत्व वाला व्यक्ति उच्चकोटि का तपस्वी होता है। प्रोफेसर नन्दलाल सिंह शील, सदाचार, ज्ञान और सत्कर्मनिष्ठा से संपन्न होने के साथ ही विनम्रता और विवेकपूर्ण व्यवहार के प्रतीक थे। ठिगने कद का गौरवपूर्ण, सिर पर गाँधी टोपी, धोती कुर्ते का परिधान और हाथ में सहारे के लिये छड़ी, मुख पर प्रेमपूर्ण हास और सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार, यह उनका परिचय था। उनका अन्तःकरण सदाचार और उच्चकोटि के वैष्णव का था जो अपने को सबसे छोटा मानकर संसार की विषम परिस्थितियों को शान्तभाव से सहन करते हुये भगवत चिन्तन में संलग्न रहता था।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुता ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयो सदा हरिः । ।

इस वैष्णव जीवनचर्या के वे मूर्तमान रूप थे । वे अमानी और मानद होने के कारम मान्य थे। चैतन्य महाप्रभु के चित्र के साथ यह उपरोक्त वाक्य उनके बैठके में लगा हुआ था। प्रो० नन्दलाल सिंह देश के शीर्षस्थ वैज्ञानिक थे जिनके शोधकार्यों ने समकालीन देश-काल में उन्हें प्रभूत प्रतिष्ठा प्रदान किया। वे उच्चकोटि के सफल अध्यापक थे जिनके समर्थ शिष्यों की श्रृंखला देश-विदेश में प्रसूत है। वे हिन्दी भाषा के अनन्य हितैषी थे और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की रचना के लिये जीवन के आरम्भ से अन्त तक समर्पित रहे तथा उनके निर्देशन में हिन्दी में बहुत बड़े परिमाण में वैज्ञानिक साहित्य की रचना हुई। इसके लिये उन्हें विशिष्ट सम्मान तथा पुरस्कार भी प्राप्त हुये । वे स्वतन्त्रता आन्दोलन के मौन सेनानी थे, जिनके यहाँ स्वातन्त्रय सेनानियों को आश्रय और संरक्षण मिलता था। वे दीन दुखियों के प्रति आर्द्र थे और समाजवादी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाते थे। इसके लिये उन्हें आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ० लोहिया, प्रो० असरानी, प्रो० भुकुट बिहारी लाल आदि से प्रशंसा प्राप्त हुई। वे शिक्षा के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत थे तथा हिन्दू विश्वविद्यालय को प्रौढ़ शिक्षा के प्रारम्भिक अध्यापकों में थे। वे सफल संपादक थे तथा हिन्दू विश्वविद्यालय की पत्रिका 'प्रज्ञा' एवं 'जर्नल ऑव साइंटिफिक रिसर्च' और 'उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' की पत्रिका 'भौतिकी' के प्रधान संपादक थे। विश्वविद्यालय में क्रीड़ा के उन्नायक थे तथा बहुत वर्षों तक 'स्पोर्ट्स बोर्ड' के सचिव थे। वे विश्वविद्यालय के छात्रों की सुख-सुविधा के प्रति समर्पित थे और अनेक वर्षों छात्रावासों के संरक्षक थे। वे शिक्षा के प्रचार के लिये विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना और व्यवस्था में अग्रणी थे और कई विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की प्रबंध समितियों में प्रमुख थे। वे एक आदर्श हिन्दू थे तथा सुदीर्घ काल तक ब्राह्म मुहूर्त में गंगास्नान, देवदर्शन, सन्ध्यापूजन, पाठ आदि संपादित किये। वे उच्चकोटि के गृहपति थे तथा कुटुम्ब-पालन और उसके निर्वाह का प्रबंध किया एवं परिवार के व्यक्तियों की शिक्षा-दीक्षा, शादी-विवाह आदि का निर्वाह किया। वे उच्चकोटि के सामाजिक कार्यकर्ता थे तथा कई संस्थाओं की स्थापना और संवर्द्धन में योगदान किया। उन्होंने इन वैविध्यपूर्ण दायित्वों का निर्वाह अश्रान्त भाव से निर्विकार रहकर हँसते हुये प्रायः 90 वर्ष की अवस्था तक किया। ऐसी पिता-पितामह की मर्यादा का हँसते हुए अश्रान्त भाव से निर्वाह करने वाले ब्राह्मणों की प्रशंसा महाभारत में भीष्मपितामह ने की है।

येषां बालाश्च वृद्धाश्च पितृपैतामहीं धुरीरम।

बहन्ति नावसीदन्ति तेभ्यो वै स्पृहयामहे।

वस्तुतः वे रागद्वेष विहीन कर्मयोगी। प्रो० सिंह का जन्म जौनपुर ज़िले के खुजराहो ग्राम में 1 अगस्त 1904 ई० में हुआ था और शरीरपात 26 नवम्बर 1996 ई० को हुआ। उनके संपूर्ण जीवन में कार्यक्षेत्र काशी ही था।

[शेष पृष्ठ 20पर देखें]

स्पेक्ट्रोस्कोपी का इतिहास

स्व० डॉ० नन्दलाल सिंह

भूतपूर्व अध्यक्ष, स्पेक्ट्रोस्कोपी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

प्रो० सिंह की सरल भाषा-शैली की बानगी के रूप में उनका 35 वर्ष पूर्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पत्रिका 'प्रज्ञा' में प्रकाशित लेख का आरंभिक भाग, यहाँ साभार उद्धृत किया जा रहा है।

— सम्पादक

रंग और प्रकाश- प्रकृति का प्रत्येक दृश्य मनुष्य के मन में कुतूहल उत्पन्न करता है। विभिन्न प्रकार के फूलों को, रंग-बिरंगे पशु-पक्षियों को तथा आकाश के नीले पर्दे पर सतरंगी 'इन्द्रधनुष' को देखकर आदिकाल से ही मनुष्य के हृदय में इन रंगों का रहस्य जानने की उत्कण्ठा स्वाभाविक रूप से जाग्रत होती रही। इन रहस्यों को जानने के लिए जिज्ञासु प्रयत्नशील भी थे, किन्तु उनके लेखों के अध्ययन से ऐसा पता लगता है कि उन्हें रंग और प्रकाश के रहस्यों की वास्तविक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। इसका कारण यह था कि उन्हें प्रकाश के परावर्तन (Reflection), वर्तन (Refraction), विवर्तन (Diffraction), और व्यतिकरण (Interference) आदि गुणों की जानकारी नहीं थी। इतना ही नहीं, उन्हें यह भी नहीं ज्ञात था कि 'प्रकाश' क्या है? हम जानते हैं कि वस्तुएँ 'प्रकाश' की उपस्थिति में ही दिखाई पड़ती हैं। अतः स्पष्ट है कि रंग का अस्तित्व भी 'प्रकाश' पर ही निर्भर है। रंगीन फूल-पत्ते रात्रि के अंधकार में समान रूप से काले दिखाई पड़ते हैं, उनके रंगों का पता तो दिन में ही लगता है। सूर्य की उपस्थिति में ही 'इन्द्रधनुष' दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर्य, अग्नि तथा बत्ती आदि से कोई ऐसी ऊर्जा (Energy), निकलती है जिसके कारण वे स्वयं दिखाई पड़ते हैं और उनकी उपस्थिति में ही हमें अन्य वस्तुएँ भी दिखाई पड़ती हैं। इसी ऊर्जा को हम 'प्रकाश' (Light) कहते हैं। जिन पिण्डों से प्रकाश निकलता है उन्हें प्रकाश मान पिण्ड (Luminous bodies) कहते हैं। ऐसे ही पिण्डों के प्रकाश से अन्य प्रकाश-हीन वस्तुएँ भी दिखाई पड़ती है। चन्द्रमा प्रकाशमान पिण्ड नहीं है, अपितु सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान मालूम पड़ता है। रंग और प्रकाश के संबंध में प्राचीन दार्शनिकों की धारणा स्पष्ट नहीं थी।

प्राचीन दार्शनिकों के मत-प्रकाश के संबंध में प्राचीन दार्शनिकों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं। पाइथेगोरस (Pythagora, छठी शताब्दी ई० पू०) ने बताया कि पदार्थों से अत्यंत सूक्ष्म कणिकाएँ निकलकर आँखों पर पड़ती हैं और इन्हीं के आघात से हमें प्रकाश की अनुभूति होती है। सूर्य से अत्यधिक मात्रा में चन्द्रमा से कम मात्रा में और ईट, पत्थर आदि वस्तुओं से बहुत कम मात्रा में ऐसी कणिकाएँ निकलती हैं। इसके विपरीत एम्पीडोक्लीज (Empedocles) 440 ई० पू० का कहना था कि हमारी आँखों से ही सूक्ष्म कणिकाएँ निकलती हैं जो जाकर वस्तु से टकराती हैं और इनके टकराने से ही हमें वस्तु के रूप का ज्ञान होता है। प्लेटो (Plato 430 ई० पू०) की धारणा थी कि हमारी आँखों से दैवी किरणें निकलकर सूर्य की किरणों (Divine Rays) से मिलती हैं, फिर दोनों मिलकर वस्तु से टकराती हैं, और तीसरे रूप में

आकर हमें वस्तु के रूप का ज्ञान कराती हैं।

प्राचीन दार्शनिकों की जानकारी

प्लेटो के अनुयायिओं को प्रकाश के परावर्तन और रेखीय गमन का पता था। अरस्तू (Aristotle) का अनुमान था कि आकाश में इन्द्र धनुष और सूर्य तथा चन्द्रमा पर प्रभा-मण्डल (Haloes) की रचना पानी की बूँदों में सूर्य की किरणों के परावर्तन से होती है। आर्किमिडीज ने (287 ई० पू०) नतोदर दर्पण द्वारा सर्य की किरणों को केन्द्रित करके रोम के आक्रमणकारी बेड़े को जला दिया था। इस ऐतिहासिक घटना से यह ज्ञात होता है कि आर्किमिडीज को परावर्तन की जानकारी थी।

इटली के ज्योतिषी टॉलमी (Ptolemy सन् 2 ई०) को प्रकाश के वर्तन का ज्ञान था। उन्होंने लिखा है कि क्षितिज के समीप सूर्य और चन्द्रमा के बिम्ब, वायुमण्डल में प्रकाश की किरणों के मुड़ने के कारण, बड़े दिखाई पड़ते हैं। क्लियमिडीस ने (Cleomedes सन् 50 ई०) भी बताया कि किरणें एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रविष्ट होते ही मुड़ जाती हैं, परन्तु इन दार्शनिकों को वर्तन के नियम नहीं मालूम थे। इन नियमों की खोज लगभग 1000 वर्ष बाद अरब निवासी अलहाजेन (Alhagen) ने ग्यारहवीं सदी में किया। उन्हें आँख की रचना तथा उसके विभिन्न भागों की क्रिया-विधि समझने की बड़ी इच्छा थी। उन्हेंने यह समझने की बड़ी चेष्टा किया कि मनुष्य एक ही वस्तु को दो आँखों से किस प्रकार देखता है। सन् 1611 ई० में एण्टोनियो-दि-डामिनीस (Antonio de-dominis) ने पहले-पहल इन्द्र धनुष की शुद्ध व्याख्या वर्तन के नियमों के आधार पर किया और सन् 1621 ई० में स्नेलियस (W. Snelius) ने वर्तन के नियमों का ठीक-ठीक प्रतिपादन किया जिससे 2000 वर्ष की बहुत सी उलझनें दूर हुई। वर्तन के नियम जो स्नेल के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं, निम्नलिखित हैं-

जब प्रकाश की किरणें एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती हैं तो-

1. आपतित किरण, वर्तित किरण और अभिलम्ब एक ही समतल में होते हैं और
2. आयतन कोण की ज्या तथा वर्तनकोण की ज्या (Sine) का अनुपात एक स्थिरांक होता है।

यह स्थिरांक पहले माध्यम की तुलना में दूसरे माध्यम का वर्तनांक (म्यू/μ) कहलाता है।

इसी के साथ-साथ खगोलविद्या (Astronomy) की ओर भी लोगों की रुचि बढ़ रही थी। ब्रिटेन के वैज्ञानिक रोजर बेकन (Roger Bacon) ने सन् 1214 ई० में वस्तुओं के अभिवर्द्धित प्रतिबिम्ब बनाकर उनका निरीक्षण करने के लिए लेंस और दर्पणों का उपयोग किया। उन्होंने यह भी सुझाया कि इनका उपयोग सुदूरवर्ती आकाशीय पिंडों के निरीक्षण में भी किया जा सकता है। विटीलियो (Vitileo 1270 ई०), कॉपर्निकस (Copernicus 1473) ई० और केप्लर (Keplar 1611 ई०) आदि वैज्ञानिक इसी विधि से ग्रह तथा तारों के निरीक्षण में संलग्न हुए और ग्रह-उपग्रहों की गति का पता लगाया।

चश्मा बनाने तथा एक से अधिक लेंसों का दूरबीन बनाने में लगातार उपयोग होने लगा। दूरबीन का निर्माण सर्वप्रथम मिडिलबुर्ग निवासी हांसलीपर्सी (Hans lipperey) ने किया हांसली पर्सी चश्में के व्यवसायी थे। सन् 1610 ई० में गैलीलियो ने वृहस्पति के उपग्रहों को देखने के लिये अपने बनाये हुए दूरबीन का प्रयोग किया।

प्रकाश का मिश्रित रूप

सत्रहवीं सदी के वैज्ञानिकों को प्रकाश के मिश्रित रूप की जानकारी नहीं थी। उनका अनुमान था कि 'प्रकाश' और 'अन्धकार' दो पृथक-पृथक सत्ताएँ हैं। न्यूटन के समय में भी वैज्ञानिकों की धारणा थी कि श्वेत प्रकाश में विभिन्न मात्रा में अंधकार के मिलने से भिन्न-भिन्न रंग के प्रकाश उत्पन्न होते हैं। आइजक न्यूटन के प्राध्यापक डॉ० आइज़क बैरो (Issac Barrow) ने, जो उनसे पहले कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित केल्यूकेशियन प्रोफेसर थे, प्रकाश-विज्ञान पर 'लेक्सिआन आप्टिसी' नाम की एक पुस्तक लिखा। इस पुस्तक में रंगीन प्रकाश के संबंध में उन्होंने अपने विचार निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया है-

'श्वेत' प्रकाश वह है जो प्रत्येक दिशा में समान रूप से अत्यधिक मात्रा में प्रसरित होता है। 'काला' वह है जिससे कोई प्रकाश नहीं निकलता है, अथवा यदा-कदा थोड़ी मात्रा में निकलता है। 'नीला' वह है जिसमें हल्का प्रकाश पाया जाता है। 'लाल' वह है जो सामान्य से अधिक मात्रा में और विशेषतः शुद्ध पाया जाता है। 'हरा' लगभग 'नीले' के समान होता है। 'पीले' में 'श्वेत' प्रकाश अधिक और 'लाल' कुछ हल्के अंश में मिला रहता है। 'नारंगी' में 'नीले' प्रकाश की मात्रा अधिक और 'लाल' की मात्रा कम पाई जाती है। समुद्र का नीला रंग शुद्ध जल के काले रंग में श्वेत नमक के घुलने से उत्पन्न होता है। जब हम किसी बत्ती के सामने एक छड़ी रख कर कागज पर उसकी छाया देख हैं तो छाया का नीलापन कागज़ की सफेदी से सांध्य प्रकाश (Twilight) के मिलने से उत्पन्न होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन दार्शनिकों की रंग और प्रकाश के संबंध में कितनी भ्रांतिपूर्ण धारणा थी।

रश्मि या स्पेक्ट्रम (Spectrum)

न्यूटन के प्रयोग

प्रकाश और रंग के संबंध में प्राचीन दार्शनिकों की धारणायें मुख्यतः अनुमान पर आधारित थीं। पदार्थ की रचना तथा प्रकाश और पदार्थ के सम्बन्ध की जानकारी उन्हें थी ही नहीं। अतः प्रकाश और रंग के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए सम्भव नहीं था। आज इनके संबंध में हमारी जानकारी प्राचीन धारणाओं से बहुत भिन्न है। प्रकाश और रंग के रहस्यों की खोज, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, न्यूटन ने आरम्भ किया। न्यूटन पर प्रो० बैरो के व्याख्यानों का प्रभाव था। साथ ही उन्हें केप्लर की पुस्तक डाइआप्ट्रे (Dioptre) पढ़ने को मिली। केप्लर का यह अनुमान है कि किसी माध्यम में प्रकाश की किरण का वर्तन-कोण उसके आयतन कोण का समानुपाती होता है- न्यूटन को असंगत जान पड़ा। इसी समय आर्कविशप एण्टानियों दि डामिनीस द्वारा की गई इन्द्रधनुष की व्याख्या भी न्यूटन को पढ़ने को मिली। उन्होंने सनेल के नियमों पर भी मनन किया। वर्तन के नियम न्यूटन को सम्भवतः डकार्ते से ज्ञात हुए थे। प्रकाश और रंग के संबंध में डकार्ते (Descartes) का अनुमान आधुनिक मत से कुछ सामन्जस्य रखता है। उनकी धारणा थी कि प्रज्ज्वलित पिण्डों द्वारा विकीर्ण प्रकाश के रंग उनके भीतरी कणों की गति पर निर्भर करते हैं। वस्तु के कण स्थिर नहीं होते, अपितु उनमें गति पाई जाती है जो ताप देने पर बढ़ती जाती है। जिन कणों की गति बहुत अधिक होती है उनसे 'लाल' रंग का प्रकाश निकलता है। कम गति वाले कणों से 'पीला' तथा उनसे भी धीमी गति वाले कणों से 'हरा' और 'नीला' प्रकाश निकलता है। यद्यपि रंगीन प्रकाश के सम्बन्ध में हमारा आधुनिक ज्ञान उक्त धारणा के विपरीत है किन्तु डकार्ते का यह अनुमान कि प्रकाश के विभिन्न वर्णों का भेद प्रज्ज्वलित पिण के कणों की गति पर आश्रित है, उस समय की जानकारी के अनुसार अवश्य ही अनोखा और सराहनीय रहा।

विद्वनों की संगति और पुस्तकों के अध्ययन से न्यूटन की जिज्ञासा बढ़ती गई। उन्होंने विभिन्न प्रकार के लेंस और दूरबीन बनान का प्रयास किया। रंगीन प्रकाश का रहस्य जानने के लिए तेइस वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने त्रिपार्श्व (Prism) द्वारा प्रयोग करना आरम्भ किया। सन् 1666 ई० से 1672 ई० तक के प्रयोगों का विवरण उन्होंने रायल सोसायटी (Transdactions of Royal Society) की पत्रिका में प्रकाशित किया। इन प्रयोगों का विवरण उन्होंने अपनी पुस्तक 'आप्टिक्स' में संगृहीत किया है। यहाँ उनके कुछ प्रयोगों का संक्षिप्त विवरण देना अनुचित नहीं होगा।

न्यूटन के कागज़ की दो पटिटयाँ एक लाल और दूसरी नीली-लिया। इन्हें अगल-बगल रखकर एक त्रिपार्श्व के भीतर से उनका निरीक्षण किया। उन्होंने देखा कि दोनों पटिटयाँ अपने स्थान से भिन्न-भिन्न मात्रा में स्थानान्तरित हो जाती हैं।

एक दूसरे प्रयोग में उन्होंने खिड़की के गोल छिद्र से आती हुई सूर्य की किरणों को त्रिपार्श्व पर डाला और पारगत (Transmitted) प्रकाश को एक पर्दे पर पड़ने दिया। पर्दे पर गोल छिद्र के समीपवर्ती कई प्रतिबिम्ब भिन्न-भिन्न रंग के दिखाई पड़े। इस रंगमाला का नाम उन्होंने स्पेक्ट्रम (Spectrum) राक्खा। हम इसे रश्मिग्राम कहेंगे। इसी प्रयोग

में उन्होंने त्रिपार्श्व से निकली हुई किरणों के मार्ग में एक दूसरा त्रिपार्श्व भी रक्खा। पर्दे पर बने हुए प्रतिबिम्बों की संख्या उतनी ही रही परन्तु उन्होंने देखा कि ये प्रतिबिम्ब अधिक फैल जाते हैं और उनका पारस्परिक अन्तर भी बढ़ जाता है।

उक्त प्रयोगों में दोनों त्रिपार्श्वों के वर्तक - कोर एक ही ओर रक्खे गये थे। अतः दूसरी बार उन्होंने दूसरे त्रिपार्श्व को इस प्रकार उलट कर रक्खा कि उसका वर्तक-कोर (Refracting Edge) पहले त्रिपार्श्व के वर्तक-कोर के विपरीत पड़े। अब की बार छिद्र का केवल एक ही बिम्ब बना और वह श्वेत था।

इन प्रयोगों से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि श्वेत प्रकाश विभिन्न रश्मियों का विषम (Heterogeneous) मिश्रण होता है। रंगीन प्रतिबिम्बों की रचना विभिन्न प्रकार की किरणों के पृथक हो जाने के कारण होती हैं। ये रश्मियाँ त्रिपार्श्व द्वारा भिन्न-भिन्न मात्रा में वर्तित होती है क्योंकि इनकी वर्तनीयता भी भिन्न होती है। इस प्रकार एक रंग का प्रतिबिम्ब केवल एक प्रकार के रश्मियों द्वारा बनता है। श्वेत प्रकाश-पुंज में जितने प्रकार की रश्मियाँ होती हैं, पर्दे पर उतने ही प्रतिबिम्ब बनते हैं। दूसरा त्रिपार्श्व पहले त्रिपार्श्व से निकली हुई किरणों को विपरीत दिशा में मोड़ देता है जिससे सभी प्रकार की किरणों द्वारा बने हुए प्रतिबिम्ब संपाती हो जाते हैं और पुनः अकेला श्वेत बिम्ब बन जाता है।

न्यूटन ने उपर्युक्त रीति से जो रश्मिग्राम प्राप्त किया उसके रंग एक दूसरे से विलग नहीं थे। अतः शुद्ध रश्मिग्राम प्राप्त करने के लिए उन्होंने लेंस का उपयोग किया। गोल छिद्र के सामने उन्होंने एक लेंस को इस प्रकार रक्खा कि छिद्र का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पर्दे पर बन जाय। इसके बाद लेंस और पर्दे के बीच त्रिपार्श्व को लेंस के निकट रक्खा । इस आयोजन से रश्मिग्राम की शुद्धता अवश्य बढ़ी परन्तु छिद्र के समीपवर्ती प्रतिबिम्ब एक दूसरे को कुछ न कुछ ढके ही रहे। इस प्रकार न्यूटन ने सन् 1666 ई० में स्पेक्ट्रोस्कोप का निर्माण किया जो आजकल के स्पेक्ट्रोस्कोप के समान ही था। उन्होंने 10 इंच लम्बा सौर रश्मिग्राम (Solar Spectrum) भी प्राप्त किया परन्तु गोल छिद्र के कारण उसकी शुद्धता नहीं बढ़ सकी और सौर रश्मिग्राम में उन्हें कोई विशेषता नहीं ज्ञात हुई। यदि गोलछिद्र के स्थान पर न्यूटन ने दीर्घछिद्र (Slit) का उपयोग किया होता तो रश्मिग्राम की वे विशेषताएँ जो लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद मालूम हुई, उन्हें ही ज्ञात हो जातीं।

इस प्रकार रंगीन किरणों का विश्लेषण करके न्यूटन ने स्पेक्ट्रोस्कोपी (Spectroscopy) की नींव डाला, किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि इस नवीन विज्ञानकी प्रगति में उनका व्यक्तित्व बाधक भी सिद्ध हुआ। प्रकाश-विज्ञान के सम्बन्ध में उनकी जो धारणाएँ थीं। उनके विपरीत सोचने का साहस किसी भी समकालीन वैज्ञानिक को नहीं हुआ। उनके बाद भी लगभग 100 वर्षों तक स्पेक्ट्रोस्कोपी की प्रगति रुकी ही रही। उन्होंने कहा कि हर प्रकार के कांच समान विस्तरण-क्षमता (Dispersive power) के होते हैं। उन्हें यह विश्वास था कि लेंसों का रश्मि विपथन (Chromatic aberration) तथा रंग संबंधी दोष दूर नहीं किया जा सकता, यद्यपि उन्होंने स्वयं लेंसों के संयोग से ऐसे दूरबीनों का निर्माण किया जिनमें रश्मि विपथन न्यूनतम था। न्यूटन के इन भ्रान्त विचारों के कारण वैज्ञानिक लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक अच्छे लेंस नहीं बना सके।

प्रत्यक्ष रूप से देखने पर विभिन्न अल्कली (Alkali) ज्वालाओं का प्रकाश एक दूसरे से भिन्न मालूम पड़ता है किन्तु न्यूटन को सभी ज्वालाओं के रश्मिग्राम समान दिखाई पड़े क्योंकि अपने साधारण स्पेक्ट्रोस्कोप में उन्होंने गोल छिद्र का ही उपयोग किया। ज्वालाओं द्वारा प्राप्त अविच्छिनन (Continuous) रश्मिग्राम में केवल एक प्रखर पीला प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था जो सभी ज्वालाओं के रश्मिग्राम में बनता था। अतः उन्होंने लिखा है कि सभी ज्वालाएँ समान होती हैं तथा उनका प्रकाश प्रज्ज्वलित वस्तुओं की कणिकाओं के आवृत्ति से उत्पन्न होता है। उनकी धारणा थी कि इन ज्वालाओं में विभिन्नन रंग उसी कारण दिखाई पड़ते हैं जिस कारण साबुन के बुलबुले अथवा पानी पर फैली तेल की पर्तों (Films) में भिन्न रंग दिखाई पड़ते हैं। न्यूटन ने इन रंगों की व्याख-या कणिका सिद्धान्त पर किया गया था। उनका अनुमान था कि प्रकाश सूक्ष्म कणिकाओं से बनता है। प्रकाश की इन कणिकाओं में दौरे (Fits) आते हैं जिनके फलस्वरूप तेल की पर्तों तथा साबुन के बुलबुलों में विभिन्न प्रकार के रंगों का आभास होता है। न्यूटन को अपने कणिका-सिद्धान्त

(Corpuscular Theory) पर इतनी आस्था थी कि मनमानी कल्पनाओं द्वारा प्रत्येक प्रोगात्मक घटना की व्याख्या देकर वे संतुष्ट हो जाते थे। उनकी बातों पर लोगों को इतना विश्वास था कि सन् 1802 ई० में टामस यंग (Thomas Young) ने भी बत्ती के प्रकाश के रशमिग्राम की पीली रेखा की उत्पत्ति कणिका -सिद्दान्त द्वारा ही समझाया।

इसी प्रकार ब्रूस्टर (Brewster) और ग्लैइस्टन (Gladstone) ने फ्रानहोफर रेखाओं की व्याख्या इस सिद्धान्त पर किया इससे विदित होता है कि न्यूटन तथा उनके अनुयायी इस तथ्य तक नहीं पहुँच सके कि प्रज्ञवलित पदार्थों से निकलने वाली किरणों अणु तथा परमाणु की रचना का रहस्य बता सकती हैं। न्यूटन के बाद भी लगभग सौ वर्ष तक स्पेक्ट्रोस्कोपी के इतिहास में प्रगति के चिन्ह नहीं दिखलाई पड़ते हैं। अठारहवीं शताब्दी में टामस मेलविल (Thomas Melvill) ने सोडियम ज्वालक का रश्मि ग्राम प्रिज्म-स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा देखा और सन् 1752 ई० में उन्होने उत्सर्जन रश्मिग्राम की चर्चा किया। इसके बाद स्पेक्ट्रोस्कोपी की प्रगति का नया अध्याय उन्नीसवीं सदी में आरम्भ हुआ।

स्पेक्ट्रोस्कोपी के अदृश्य क्षेत्रों की खोज

सन् 1800 ई० में ब्रिटिश ज्योतिषी हर्शेल (W. Herschel) सौर उष्मा (Solar Heat) का अध्ययन कर रहे थे। सौर रश्मिग्राम के प्रत्येक खण्ड में उष्मा की मात्रा का पता लगाने के लिए उन्होंने एक सुग्राही तापमापक की घुण्डी को रश्मिग्राम के विभिन्न रंगवाले खंडों में रखकर तापक्रम का निरीक्षण किया। ज्यों ही तापमापक बढ़ता हुआ दिखाई पड़ा, हर्शेल ने प्रकाश से भिन्न किसी अपरोक्ष ऊर्जा का अनुमान लगाया। वास्तव में इन्फ्रारेड (Infra-red) किरणों की यह सर्वप्रथम घोषणा थी। दूसरे ही वर्ष सन् 1801 ई० में प्रो० रिटर (W.Ritter) सिल्वर क्लोराइड के लेप पर रश्मिग्राम के विभिन्न भागों का रासायनिक प्रभाव देख रहे थे। उन्हें बैंगनी रंग से आगे कुछ अदृश्य किरणों का पता लगा जो लेप पर अधिक प्रभाव डालती हैं। इन किरणों को अल्ट्रावायलेट (Ulraviolet) नाम दिया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में स्पेक्ट्रोस्कोपी की प्रगति

सन् 1802 ई० में वोलास्टन (Wollaston) ने स्पेक्ट्रोस्कोप में दीर्घछिद्र (Slit) का सर्वप्रथम उपयोग किया। गोलछिद्र के स्थान पर दीर्घछिद्र से प्राप्त सौर रश्मिग्राम अधिक शुद्ध मिला। सौर रश्मिग्राम में वोलास्टन ने कुछ काली रेखाओं को देखा, किन्तु इन पर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। उन रेखाओं को उन्होंने दो समीपवर्ती रंगीन पट्टियों की विभाजक रेखा समझा। सन् 1814 ई० में फ्रानहोफर ने प्रिज्म और पर्दे के बीच एक और लेंस लगाकर विशुद्ध रश्मिग्राम प्राप्त किया जिसमें काली रेखाएं और भी स्पष्ट मिलीं इन रेखाओं का अध्ययन फ्रानहोफर ने किया और वे फ्रानहोफर रेखाओं के नाम से प्रसिद्ध हुई। वोलास्टन ने ज्वालाओं तथा विद्युत स्पार्क के भी रश्मिग्राम लिये और उनका अध्ययन किया, किन्तु उनके सूक्ष्म भेंदों पर ध्यान नहीं दिया। इस कारण विभिन्न तत्वों के रश्मिग्राम में जो उन्हें कोई अन्तर नहीं मिला। उन्होंने लिखा है "विभिन्न तत्वों के रश्मिग्राम में जो अन्तर दिखाई पड़ता है वह विकीर्ण प्रकाश की प्रखरता पर निर्भर करता है। इनके सामान्य भेदों का विवरण देना मैं निर्थक समझता हूँ।" इस प्रकार वोलास्टन ने रश्मिग्राम के सामान्य भेदों का महत्व नहीं समझा। हम आगे चलकर यह देखेंगे कि ऐसे सूक्ष्म भेद कितने महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। इन्हीं भेदों का अध्ययन करके वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि तत्वों और यौगिकों के रश्मिग्राम परमाणुओं और अणुओं की आन्तरिक रचना के द्योतक होते हैं। रश्मिग्राम के सूक्ष्म भेंदों की ओर वोलास्टन जैसे वैज्ञानिक का ध्यान नहीं गया, इसका कारण यह था कि उन्नीसवीं सदी में उनके सम्मुख अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ थीं। उन्हें न तो अच्छे स्पेक्ट्रोस्कोप उपलब्ध थे और न रश्मिग्राम मापन के सुगम यंत्र ही।

अब तक तरंग सिद्धान्त की नींव पड़ चुकी थी। प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका था कि प्रकाश तरंगों के रूप में चलता है। इसी सिद्धान्त का आधार पर यह समझा गया कि एक वर्ण की रश्मियों में एक ही प्रकार की प्रकाश-तरंगें होती हैं, अथवा एक वर्ण की रश्मियों का एक निश्चित तरंग-दैर्ध्य (Wave Length) होता है। इसी सिद्दान्त से प्रकाश तरंगों के व्यतिकरण और प्रबलीकरण (Reinforcement) की व्याख्या की गई। इसी सिद्धान्त पर साबुन के बुलबुलों और तेल की पर्तों में दिखाई देने वाले रंगों की व्याख्या तथा न्यूटन-वलय

(Newton's Ring) की रचना समझी जा सकी। ऐसे ही सिद्धान्तों तथा प्रयोगों द्वारा टामस यंग, ग्रिमाल्डी (Grimaldi), फ्रेस्नेल (Fresnel) तथा फ्रानहोफर आदि वैज्ञानिकों ने रश्मिग्राम की विभिन्न रश्मियों का तरंग दैर्ध्य नापने की चेष्टा किया, किन्तु कठिनाई यह थी कि न तो तरंगदैर्ध्य नापने के अच्छे यंत्र उपब्ध थे और न यह निर्णय हो सका था कि किस तरंग-दैर्ध्य को प्रमाण तरंगदैर्ध्य माना जाय। इनके अतिरिक्त किसी तत्व या यौगिक का शुद्ध रश्मिग्राम प्राप्त करना भी सहज नहीं था। स्पेक्ट्रोस्कोपी की इन्हीं मूल बातों के सम्बन्ध में फ्रानहोफर के कार्य विशेष प्रशंसनीय हैं। अतः यहाँ उनका संक्षिप्त विवरण देना अनुपयुक्त न होगा।

फ्रानहोफर के अनुसंधान

फ्रानहोफर को किसी संस्था में शिक्षा नहीं मिली थी, 20 वर्ष की आयु में अपनी कार्यदक्षता के कारण वे कांच के एक कारखाने में डाइरेक्टर नियुक्त हुए। उन्होंने नई मशीनें और शुद्ध काँच के लेंस तथा त्रिपार्श्व बनवाये जिनके द्वारा वे अपनी सूझ के अनुसार नये-नये प्रयोग करने लगे। इन प्रयोगों से उन्हें नई बातों का पता लगा और उनकी अभिरुचि वैज्ञानिक अनुसंधानों की ओर बढ़ने लगी। कारखाने में कई प्रकार के कांच बनाए जाते थे। उनका यथार्थ वर्तनांक ज्ञात करने के लिए एकवर्णी रश्मियों (Monochromatic Rays) की आवश्यकता पड़ती थी, अतः उन्होंने शुद्ध सौर-रश्मिग्राम प्राप्त करने की योजना बनाया। उन्होंने दीर्घछिद्र का उपयोग किया और त्रिपार्श्व के दोनों ओर एक-एक लेंस रक्खा। पहला लेंस इस प्रकार रक्खा कि दीर्घछिद्र उसकी नाभि (Focus) पर पड़े ताकि त्रिपार्श्व पर पड़ने वाली किरणें सामान्तर किरणों को पर्दे पर अलग-अलग केन्द्रित कर दें। इस प्रकार दीर्घछिद्र के प्रतिबिम्ब प्रत्येक वर्ग की किरणों द्वारा अलग-अलग बनते हैं और शुद्ध रश्मिग्राम प्राप्त होता है।

सौर रश्मिग्राम के निरीक्षण के लिए वास्तव में फ्रानहोफर ने दूसरे लेंस के स्थान पर दूरबीन का प्रयोग किया था। इस दूरबीन को उन्होंने दीर्घछिद्र के प्रतिबिम्ब देखने के लिए फोकस कर रक्खा था। इस प्रकार बड़ा किन्तु प्रतीयमान (Virtual) अविछिन्न सौर -रश्मिग्राम मिला जिसमें अनेक काली रेखाएँ स्पष्ट दिखाई पड़ीं। पहले प्रयोग में उन्होंने 60^0 कोण वाले कांच के त्रिपार्श्व को दीर्घछिद्र से 24 फीट की दूरी रखा था। बाद में उन्होंने कई त्रिपार्श्व को दीर्घछिद्र से 24 फीट की दूरी पर रक्खा था। बाद में उन्होंने कई त्रिपार्श्व बदले और प्रायोगिक आयोजन में भी परिवर्तन किया, किन्तु रश्मिग्राम का रूप नहीं बदाल। इतना ही नहीं, उन्हें काली रेखाओं की स्थिति में भी कोई परिवर्तन नहीं मिला। अतः यह निश्चय हो गया कि इन काली रेखाओं का सम्बन्ध सूर्य के प्रकाश से ही है। फ्रानहोफर ने लगभग 700 काली रेखाओं की गणना किया और उनमें से आठ प्रमुख रेखाओं का नाम क्रमशः ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी तथा एच (A B C D E F G H) रक्खा। इन्हीं रेखाओं के तरंगदैर्ध्य को प्रमाण मानकर अन्य रेखाओं का मापन आरम्भ हुआ। इस प्रकार स्पेक्ट्रोस्कोपी का कार्य यथार्थ ज्ञान के रूप में आगे बढ़ने लगा। इसके बाद फ्रानहोफर ग्रह और तारों के रश्मिग्राम उतारने और उनका अध्ययन करने में संलग्न हुए। उन्होंने देखा कि सीरियस (Sirius) नामक तारे का रश्मिग्राम पट्टदार होता है। ऐसे रश्मिग्राम (Band Spectrum) को बैंड रश्मिग्राम कहा जाता है। अन्य कई तारों के रश्मिग्राम में रेखाएँ दिखाई पड़ी। ग्रहों के रश्मिग्राम सौर-रश्मिग्राम के समान किन्तु मन्द प्रखरता (Intense) के तथा तारों के रश्मिग्राम से भिन्न पाये गये। इस प्रकार फ्रानहोफर ने ज्योति विज्ञान (Astrophysics) की नींव डाला। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रकाश-विज्ञान के अध्ययन के लिये कई बड़े और सूक्ष्मग्राही उपकरणों का निर्माण किया, जिससे अन्य वैज्ञानिक भी स्पेक्ट्रोस्कोपी के अनुसंधानों की ओर आकृष्ट हुए। ◆ ◆ ◆

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वावधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जिन्हें [illegible] आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बालज्ञान-विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	[illegible], शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
जीवों की उत्पत्ति :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
प्रदूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत संसार :	आशुतोष मिश्र	50
[illegible] प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईंधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
[illegible] :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, [illegible] चौधरी	35
[illegible] :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया

पुस्तक	लेखक	Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	[illegible]
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	[illegible]
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	Rs.
क्या क्यों कैसे (सामान्य विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	[illegible]
क्या क्यों कैसे (शरीर रोग विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (पृथ्वी एवं खनिज) :	हरिदत्त शर्मा	[illegible]
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धिवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	[illegible]
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारी पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध

पुस्तक	लेखक	Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395

ISSN : 0373-1200

विज्ञान

दिसम्बर 1997

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती स्मृति अंक

यह अंक : 5 रु०

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 83 अंक 9

दिसम्बर 1997

मूल्य : आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत,
500 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 60 रु०, वार्षिक : 25 रु०,
एक प्रति : 3 रु० 50 पैसे

◆

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

◆

सम्पादक

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

◆

सहायक संपादक

डॉ० दिनेश मणि

◆

मुद्रक

अरुण राय

कम्प्यूटर कम्पोजर, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

◆

सम्पर्क

विज्ञान परिषद्

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

विज्ञान विस्तार

◆ ◆

अपनी बात

प्रिय सुहृद!

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के विषय में विश्वविख्यात भारतीय कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने लिखा था-

> "One needs golden pen dipped in honey to write Prasad's unique character."

किन्तु मेरे पास अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये न तो कवि-हृदय है और न ही भाषा। स्वामी जी का व्यक्तित्व हिमालय की तरह विशाल है। वे सांसारिकता से परे संत थे। अतएव मैं जो कुछ भी लिखने जा रहा हूँ, वह स्वामी जी के श्री चरणों में समर्पित मात्र श्रद्धासुमन हैं जो स्वामी जी की याद को अर्पित हैं। स्वामी जी जैसे महामानव और संत शरीर के पंचतत्व में विलीन हो जाने के बाद भी अपनी धवल कीर्ति में अमर हो जाते हैं।

> " हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पैरोती है,
> कहीं तब जाके होता है चमन में दीदावर पैदा।"

ऐसे संत, ऐसे महामानव को मेरा शत-शत वंदन ।

यूँ तो स्वामी जी द्वारा लिखी केमिस्ट्री पुस्तकों का अध्ययन मैंने बी०-एस-सी० में किया था, किन्तु उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे गोरखपुर में अपने घर पर ही हो गया। बात 1960 की है। मैं कुछ हर्बेरिम शीट्स को घर पर ही बाहर धूप में सुखा रहा था। उसी समय डॉ० सतीश चन्द्र त्रिपाठी जी के साथ खद्दर के कुर्ते, धोती और गाँधी टोपी में प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी एक सज्जन को आता देखकर स्वागत के लिये उठ खड़ा हुआ।

मेरे कुछ कहने के पहले ही वे बोल पड़े —"मुझे सत्यप्रकाश कहते हैं। कुँवर बहादुर जी हैं क्या ?" मेरे यह बताने पर कि पिताजी इस समय घर पर नहीं है, बोले- "कह देना, इलाहाबाद से सत्यप्रकाश आये थे।" किन्तु तभी डॉ० त्रिपाठी (जो मेरे परिवार को जानते थे) ने बताया कि डॉ० सत्यप्रकाश जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष हैं। मैं प्रोफेसर साहब की सादगी से प्रभावित हुए बिना न रह सका। यह अजीब इत्तेफाक है कि अब मेरे पिताजी, स्वामी जी और प्रोफेसर त्रिपाठी तीनों ही स्वर्गवासी हो चुके हैं।

बाद में 1963 में प्रवक्ता के रूप में सी० एम०-पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद में मेरी नियुक्ति हो गई तो अनेक अवसरों पर स्वामी जी को देखने-सुनने का सौभाग्य मिला। किन्तु उनके निकट सम्पर्क में मैं तब आया जब स्वामी जी कटरा आर्य समाज मंदिर छोड़कर विज्ञान परिषद् भवन में ही स्थाई रूप से रहने के लिए आ गए। 1981 में मुझ 'भारतीय विज्ञान काँग्रेस' के अवसर पर वाराणसी जाते समय रेल यात्रा में साथ रहने का भी मौका हाथ लग गया। वैसे वास्तविकता यह है कि इस समय तक मैं स्वामी जी की बहुमुखी प्रतिभा की झलक पा चुका था। इस यात्रा के दौरान उनका विनोदी पक्ष भी उजागर हुआ।

यहाँ दूसरे अवसरों पर स्वयं स्वामी जी द्वारा सुनाई गई तीन घटनाओं का उल्लेख करना चाहूँगा जिससे स्वामी जी के विनोदी स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है।

घटना दक्षिण अफ्रीका की है। स्वामी जी को एक रात्रिभोज में निमंत्रित किया गया था। गृह स्वामी के विशेष आग्रह पर स्वामी जी ने फल खाना स्वीकार किया। किन्तु

तभी किसी व्यक्ति ने कहा - ''स्वामी जी ! रात को फल नहीं खाना चाहिए।'' स्वामी जी बोले-''फल को क्या मालूम कि दिन है अथवा रात। और यदि मालूम भी हो तो पेट में तो हमेशा रात रहती है।''

बातचीत के दौरान स्वामी जी ने बताया- ''आम खाने के बाद मैं सोने चला जाता हूँ ताकि आम का प्रभाव समाप्त हो जाये।'' हँसते हुए उन्होंने आगे कहा-''किसी साधु-संन्यासी से कहो कि आप शराब पीते हैं तो वह नाराज़ हो जायेगा, किन्तु आम पेट में जाने के बाद एल्कोहॉल बनाता है।'' इतना सुनते ही सारा वातावरण ठहाकों से गूँज उठा।

एक बार विज्ञान परिषद् में स्वामी जी के साथ काफी पीते-पीते मैंने पूछ दिया-''स्वामी जी क्या आपने कभी मछली खायी है?'' स्वामी जी ने सहज भाव से बताया -''कभी नहीं। मेरा परिवार तो मेरे जन्म के पूर्व से ही आर्य समाजी रहा है।'' मैं ने कहा-''स्वामी जी फिर तो गड़ बड़ हैं'।

जो नर मछली खात हैं, मूड़ा पूछ सहित,
वे बैकुण्ठै जात हैं, नाती-पूत सहित
जातै प्रभु जी पूछिहैं, मीन भक्ष तुम कीन्ह?

''स्वामी जी फिर आप क्या जवाब देंगे? मैंने तो 10 साल की उम्र तक मछली खाई है। मैं तो तुरन्त कहूँगा- ''हाँ हाँ प्रभु जी मीन भक्ष मैं कीन्ह।''

प्रभु जी बोलेंगे - ''जा बैठो बैकुण्ठ में उचित रहा सो कीन्ह।''

यह सुनते ही स्वामी जी इतनी जोर से हँसे कि काफी उनकी नाक में चली गई।

स्वामीजी अपनी बात को इतने स्वाभाविक, इतने सहज रूप में कहते थे कि वह सीधे दिल में उतर जाती थी। उनमें लोगों से लेख लिखवा लेने की विलक्षण कला थी। वे ऐसा कैसे कर लेते थे, यह आज भी मेरी समझ के बाहर है। संभवतः यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का प्रभाव रहा हो। स्वामीजी में अपना बना लेने की अद्‌भुत् क्षमता थी। उनका व्यवहार सभी के प्रति प्रेपूर्ण रहता था। उनमें सभी के प्रति करुणा थी।

एक बार ज्वर से पीड़ित होने के कारण मैं 4-5 दिन विज्ञान परिषद् नहीं गया। एक शाम सुखद आश्चर्य हुआ जब स्वामी जी एक सेवक राजाराम के साथ मुझे देखने मेरे निवास पर आ गए । ऐसा था उनका स्नेह अपने प्रियजनों के लिये।

अपने अंतिम दिनों में स्वामी जी काफी अस्वस्थ रहने लगे थे। आँखों से दिखाई नहीं पड़ता था। कानों से कम सुनाई पड़ता था। स्मरण शक्ति निरंतर क्षीण होती जा रही थी। फिर भी लोगों को आवाज़ से पहचान लेते थे।

पहले तो स्वामी जी 4.00 बजे अपरान्ह के आस-पास स्वयं हम लोगों के पास काफी पीने आ जाते थे। किन्तु बाद में जब स्वामी जी आने में अक्षम हो गए तब मैं उनकी कुटिया 'ऋतम्भरा' (परिषद् भवन के बगल में ही उनके शिष्यों द्वारा बनवाई गई कुटिया) में उनसे मिलने प्रतिदिन उनके पास जाता था। यदि किसी दिन किसी कारणवश उनसे मिलने में विलम्ब हो जाता तो किसी सेवक को बुलाकर कहते - ''सम्पादक जी से कह दो स्वामी जी बुला रहे हैं।'' मेरे लिए 'सम्पादक जी' नाम स्वामी जी का ही दिया हुआ है। बाद में स्वामी जी के इसी नाम से पुकारने के कारण और लोग भी मुझे सम्पादक जी कहने लग गए । इसे मैं स्वामी जी द्वारा दिया गया ''प्रसाद'' मानता हूँ। वैसे स्वामी जी के सम्पर्क में जो भी आया उसे 'सत्य' और 'प्रकाश' ''प्रसाद'' रूप में अवश्य मिले। इस दृष्टि से मैं अपने आपको अत्यंत सौभाग्यशाली मानता हूँ। मुझे स्वामी जी की कृपा और स्नेह भरपूर मिला है।

किन्तु अपने जीवन के अंतिम दिनों में स्वामी जी, विज्ञान परिषद् की गतिविधियों को गति न दे सकने के कारण कभी-कभी दुःखी हो जाया करते थे। अपने स्वास्थ्य को लेकर भी किंचित चिंतित थे। मुझसे प्रायः कहते थे, '' क्या कुछेक आर्य समाजी संन्यासियों की भाँति मुझे भी अपने घर वापस जाना पड़ेगा?'' स्वामी जी की छोटी पुत्र वधू रंजना जी उन्हें अपने साथ सेवा-सुश्रूषा के लिये घर ले जाना चाहती थीं। घर जाना तो दूर, स्वामी जी ने रंजना जी द्वारा दी गई रुपये आठ आने की दवा भी कभी स्वीकार नहीं की।

5-6 महीनों का ऐसा समय था जब स्वामी जी का भोजन (वे केवल दिन में ही भोजन करते थे) डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी अथवा मेरे घर से आता था। एक दिन स्वामी जी बोले-"यदि मात्र दो लोगों के घर से ही मेरा भोजन आ रहा है तो मैं सन्यासी कैसा?" बाद में उन्होंने आर्य समाज कटरा के प्रमुख जैसवाल जी के माध्यम कोई दो दर्जन आर्य समाजी घरों से भोजन मंगाने की व्यवस्था की।

स्वामी जी को विज्ञान परिषद् से अत्यधिक स्नेह था। उनकी इच्छा भी कि देहावसान के बाद उनका अंतिम संस्कार विज्ञान परिषद् प्रांगण में ही किया जाये। इसी प्रांगण में 1971 में उन्होंने सन्यास ग्रहण किया था। किन्तु उनका स्वर्गवास उनके प्रिय शिष्य श्री दीना नाथ जी के निवास पर 18 जनवरी 1995 को अमेठी में हुआ।

स्वामी जी ने अपने अंतिम संस्कार के लिए मुझे 5000 रुपये दिए थे। साथ में यह आदेश भी दिया था- "ये रुपये मेरी बीमारी अथवा मुझे अस्पताल में भर्ती कराने में खर्च नहीं होने चाहिए।" मुझे संतोष है कि यह राशि स्वामी जी के अंतिम संस्कार से पूर्व प्रो० पी० सी० गुप्ता और प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी के माध्यम से अमेठी पहुँच गई थी।

स्वामी जी से संबंधित एक और विचित्र किन्तु सत्य घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। स्वामी जी ने एक दिन मुझे अपनी कुटिया में बुलवाया और कहा- "अभी-अभी एक बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिक की पत्नी मुझसे मिलने आई थीं। किन्तु मैं न तो उनका नाम याद कर पा रहा हूँ और न ही उनके वैज्ञानिक पति का।" मेरे लिए स्वामी जी की यह बात बड़ी विचित्र और अनहोनी लगी क्योंकि मुझे इस बात की पूरी जानकारी थी कि स्वामी जी से कोई भी महिला मिलने नहीं आई थीं।

लगभग 20-25 मिनट तक मैं अनेक बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के नाम लेता रहा और स्वामी जी नकारते रहे, किन्तु जैसे ही स्वर्गीय डॉ० आत्माराम का नाम मैंने लिया, स्वामी जी बोल पड़े- " बस ! बस! इन्हीं की पत्नी सीता देवी जी आई थीं। "

उस समय स्वामी जी की यह बात मुझे बड़ी अटपटी लगी, किन्तु बाद में पता चला कि इस घटना के पूर्व श्रीमती सीता देवी जी का निधन हो चका था। उनके निधन की जानकारी न तो स्वामी जी को थी और न ही हम लोगों को। संभवतः स्वामी जी दैवी गुणों से सम्पृक्त थे।

इन पंक्तियों के साथ मैं स्वामी जी की स्मृति को प्रणाम करते हुए अपनी बात समाप्त करना चाहता हूँ, पर मेरी बात अधूरी रह जायेगी यदि मैं इस अंक में प्रकाशित लेखों के लेखकों के प्रति आभार प्रदर्शित न करूँ।

अंत में लेखकों के साथ ही मैं परिषद् के सहयोगियों, विशेष रूप से डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० दिनेश मणि, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, श्री चन्द्रभान सिंह और मुद्रक श्री अरुण राय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। यदि इस अंक में कुछ अच्छा बन पड़ा है तो उसका श्रेय उपरोक्त सभी को है।

यह अंक स्वर्गीय स्वामी जी के व्यक्तित्व के अनुरूप तो नहीं बन सका है, मेरे लिए ऐसा कर पाना संभव भी नहीं है। स्वामी जी की याद को चिरस्थाई बनाने की दिशा में उठाया गया यह मात्र एक क़दम है। मुझे अपने प्रयास में किस सीमा तक सफलता मिली है, इसका आकलन मैं पाठकों पर छोड़ता हूँ।

आपका
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

स्वर्गीय स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

(1905-1995)

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रीडर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग,
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
5 ई/ 4. स्टाफ क्वार्टर्स, लिडिल रोड, जार्ज टाउन, इलहाबाद- 211002

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती का व्यक्तितत्व विज्ञान, धर्म एवं पांडित्य का अद्भुत संगम रहा है। उन्होंने आर्य परिव्राजक के रूप में जिस निष्ठा के साथ वैदिक सत्यों के प्रचारार्थ देश-विदेश घूम कर कार्य किया, उसी निष्ठा से उन्होंने धार्मिक और वैज्ञानिक ग्रंथों की रचना भी की। सरलता और सादगी की प्रतिमा स्वामी सत्यप्रकाश आजीवन अविराम गति से पुस्तकों के लेखन, विज्ञान के प्रचार-प्रसार और आर्य सत्यों के प्रचार को समर्पित रहे। वेदों के अनुवाद की दिशा में किया गया उनका कार्य अविस्मरणीय है।

ऐसे विचारक-चिंतक महामानव का जन्म सन् 1905 में 24 अगस्त को हुआ था । स्वामी जी के पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्य समाज के प्रख्यात नेता थे और स्वामी जी के जन्मस्थल में पर्याप्त सम्मान था। आर्य समाज से प्रभावित पिता ने बालक का नाम सत्यप्रकाश रखा। माता कला देवी भी पिता की ही भाँति आर्य सिद्धान्तों के रंग में पूर्णतः रंगी हुई थीं। क्रांतिकारी विचारों वाले पिता ने जब उस युग में पत्नी कला देवी का यज्ञोपवीत संस्कार करवाया था तो समाज मे बड़ी हलचल मची थी। इस प्रकार बालक सत्यप्रकाश को आर्य समाज के प्रति आस्था पैतृक विरासत में प्राप्त हुई। पिता ने उन्हें विज्ञान का विद्यार्थी बनाया। आगे की शिक्षा के लिये 1981 में प्रयाग आगमन हुआ और उच्चतम शोध डिग्री तक अध्ययन से लेकर प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के विभागाध्यक्ष तक आपका कार्य क्षेत्र मुख्य रूप से इलाहाबाद ही रहा। 1927 में एम० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1932 में आपने विश्वविख्यात रसायन विज्ञानी डॉ० नीलरत्न धर के निर्देशन में डी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त की थी और इससे दो वर्ष पूर्व 1930 से ही वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में डिमांस्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हो गए थे। बाद में इसी विभाग में प्रवक्ता, उपाचार्य और आचार्य के रूप में कार्यरत रह कर 1962 में उन्होंने विभागाध्यक्ष का पद संभाला और 1967 में अवकाश प्राप्त कर 1972 तक रिसर्च प्रोफेसर के रूप में विभाग से संलग्न रहे। डॉक्टर साहब के सार्थक कार्यकाल में 22 शोधार्थियों ने शोध-उपाधियाँ प्राप्त कीं। इस दौरान लगभग 150 उच्चस्तरीय शोधपत्र प्रकाशित हुये। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान स्वामी जी ने जेल यात्रा भी की और वहीं श्री लाल बहादुर शास्त्री और पं० कमलापति त्रिपाठी जैसे काँग्रेस के नेताओं के सम्पर्क में आये। यह आध्यात्मिकता की ओर झुके व्यक्तित्व का एक अनूठा पक्ष था।

1935 में आपका विवाह रत्नकुमारी जी के साथ सम्पन्न हुआ और स्वामी जी के जीवंत व्यक्तित्व के सहयोग से उनकी प्रतिभा के निखरने को पूर्ण अवसर मिले। सन् 1964 में

अपनी आकस्मिक मृत्यु तक आपकी धर्मपत्नी डॉ० रत्नकुमारी आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, प्रयाग की प्रधानाध्यापिका पद पर आसीन रहीं। स्वामी जी अपने वैवाहिक जीवन में दो पुत्रों के पिता बने किन्तु दुर्भाग्य से 1976 में काल ने उनके होनहार छोटे पुत्र को छीन लिया। पत्नी और पुत्र के इस असामयिक निधन ने स्वामी जी को बहुत दुःख पहुँचाया, किन्तु उनके मूलतः वीतरागी मन ने इन आघातों को हँसकर झेल लिया।

पुत्र की मृत्यु के पूर्व ही 10 मई 1971 को वैज्ञानिक डॉ० सत्यप्रकाश संन्यास ग्रहण कर और घर तथा समस्त संपदा का त्याग कर स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती बन चुके थे। उन्होंने घर से बाहर भिक्षा वृत्ति पर जीवन बिताने का निर्णय ले लिया था। इससे एक लाभ और हुआ कि वे अपना सारा समय भारतीय विज्ञान और आर्य समाज की उन्नति, वेद-प्रचार, व्याख्यान और पुस्तक-प्रणयन में बिताने लगे। धर्म प्रचार हेतु आपने अनेक बार अफ्रीकी देशों की और अन्यान्य स्थानों की यात्रायें की हैं। आपने आर्य समाज के धर्म पुरोहित का कार्य भी किया है। अनेक अंतर्जातीय एवं दहेज रहित आदर्श विवाहों को सम्पन्न कराने का श्रेय स्वामी जी को है। सी० एस० आई० आर० के महानिदेशक स्वर्गीय डॉ० आत्माराम का विवाह उन्होंने पुरोहित बनकर मात्र 100 रुपये में ही सम्पन्न कराया था। अत्यन्त कर्मठ, अत्यन्त शिष्ट एवं मिष्ठ भाषी, परमविनोदी और सबसे समानता का व्यवहार करने वाले स्वामी जी में प्रगतिशीलता और भारतीयता एक साथ कूट-कूट कर भरी हुई थी। हिन्दी और अँग्रेजी के मर्मज्ञ होने के साथ-साथ संस्कृत पर भी आपको पूर्ण अधिकार था। हिन्दी के वे प्रबलतम पक्षधर थे और हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य के उन्नयन में उनके महान योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है।

स्वामी जी द्वारा लिखी पुस्तकों में भारत की वैज्ञानिक परम्परा, भारत मे रसायन का विकास, फाउन्डर्स ऑव साइन्स इन इण्डिया, क्वायनेज इन एन्शिएन्ट इण्डिया, पातंजलि राजयोग, दयानन्दस् आउटलाइन ऑव वैदिक फिलासफी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रसायन विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों द्वारा आपने विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियों को सुगम बनाकर असंख्य छात्रों तक पुहँचाने का सराहनीय कार्य किया। डॉ० सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित कृतियों में 'वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली', 'पारिभाषिक शब्दावली' 'मानक अँग्रेजी-हिन्दी कोश', 'भारत की सम्पदा' (4 भाग) का सर्वत्र अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। उनकी शैली और भाषा की सरलता ने अनेक उभरते लेखकों को प्रेरणा दी है। स्वामी जी की विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत भी हुई थीं। अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के कार्यकलापों में डॉक्टर साहब का सदैव सहयोग रहा। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग', 'केमिकल सोसाइटी', 'इण्डियन एकेडेमी ऑव साइन्सेज' के आजीवन सदस्य तथा 'राष्ट्रीय अकादमी' के फेलो भी थे। इसके अतिरिक्त आप 'हिन्दी संस्थान' (लखनऊ), 'हिन्दी ग्रन्थ अकादमी' और 'नेशनल बुक ट्रस्ट' जैसी संस्थाओं के सलाहकार भी रहे। 'विज्ञान परिषद् प्रयाग ' के तो वे कर्णधार ही थे। हिन्दी में 'विज्ञान परिषद्' से विज्ञान की 'अनुसन्धान पत्रिका' के प्रकाशन का सूत्रपात आपने ही किया और सन् 1958 से मृत्युपर्यन्त इसका संपादन करते रहे। परिषद् द्वारा 1915 से प्रकाशित मासिक 'विज्ञान' में 1923 से लेखन के साथ-साथ 1927-33 तथा 1939-41 तक सम्पादन भी स्वामी जी ने किया। बीच के वर्षों में 'विज्ञान' पत्रिका के विशेष सम्पादक रहे। विज्ञान के प्रसार के लिये उनके द्वारा 5 दर्जन से अधिक रेडियोवार्तायें भी दी गई हैं। किन्तु पहली रेडियोवर्ता 1949 में प्रसारित हुई।

दिल्ली के 'पुस्तकायन प्रकाशन' के सहयोग से 'बाल विज्ञान सीरीज ' के अन्तर्गत् लगभग 3 दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनके प्रधान सम्पादक स्वामी जी ही थे।

विज्ञान और अध्यात्म को एक दूसरे के पूरक सिद्ध करने में उन्होंने अपनी क्षमताओं का भरपूर उपयोग किया। स्वामी जी का कहना था- "मैं आर्य समाजी हूँ इसलिए मुझे विज्ञान प्रिय है और चूँकि मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ इसलिये मुझे आर्य समाज से विशेष लगाव है।" उनका मानना था कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। दोनों का उद्देश्य सत्य की खोज है।

महिलाओं के प्रति विशेष सम्मान के कारण स्वामी जी

ने अपनी पत्नी की स्मृति में डॉ० रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान नामी एक संस्था का भी गठन किया। इस संस्था द्वारा समय-समय पर विदुषी महिलाओं के व्याख्यान और परिचर्चाओं का भी आयोजन होता रहा है और साथ ही सत् साहित्य के प्रकाशन की भी व्यवस्था थी। उन्होंने सरकारी और गैर सरकारी स्रोतों से परिषद् के लिये धन तो जुटाया ही, अपने पास से भी लाखों रुपये परिषद् को दिए।

स्वामी जी ने अपने लेखन और भाषणों से समाज, सत् साहित्य और विज्ञान को जो अमूल्य सेवायें प्रदान की हैं वे अविस्मरणीय हैं। यह देश का सौभाग्य था कि लगभग 90 वर्ष की वय हो जाने के बावजूद भी स्वामी जी एक युवा की भाँति सक्रिय थे। 18 जनवरी 1995 को अमेठी में श्री दीनानाथ शास्त्री के निवास पर स्वामी जी का निधन हो गया।

पूज्य स्वामी जी पर हम लोग कितना निर्भर करते थे, यह तो वे लोग ही जानते हैं जो उनके निकट सम्पर्क में रह रहे थे। उनकी छत्रछाया में हमने अपने आपको सदैव सुरक्षित महसूस किया। स्वामी जी विज्ञान परिषद् के प्राण थे। मुझ पर स्वामी जी की विशेष कृपा रही है। विज्ञान परिषद् में जो लोग प्रायः आते हैं वे मुझे 'सम्पादक जी' कहकर बुलाते हैं। यह नाम श्रद्धेय स्वामी जी का ही दिया हुआ है। स्वामी जी जब परिषद् परिसर में अपने शिष्यों द्वारा बनवाई कुटिया 'ऋतम्भरा' में रहने लगे तो उनसे प्रायः प्रतिदिन भेंट होती रहती थी। यह सच है कि स्वामी जी का पार्थिव शरीर नहीं रहा, किन्तु उनकी याद बार-बार आती है।

अनेक घटनायें हैं, अनेक स्मृतियाँ हैं, जो रह-रहकर चलचित्र की भाँति आँखों के सामने घूमती रहती हैं। मन यह मानने को तैयार नहीं होता कि स्वामी जी नहीं रहे। स्वामी जी पहले ही मान-सम्मान, पुरस्कार-पारितोषिक, श्रद्धांजलि-स्तुति से बहुत ऊपर उठ चुके थे। हानि-लाभ, यश-अपयश, जीवन-मरण को बड़े ही सहज रूप से स्वीकार करते थे। स्वामी जी के वीतरागी मन ने अपनी पत्नी और छोटे पुत्र के निधन को भी हंसकर झेला। बातचीत के दौरान स्वामी जी कभी इस बात का आभास भी नहीं होने देते थे कि आप किसी विद्वान से बात कर रहे हैं। किन्तु बातें सदैव प्रेरणाप्रद होती थीं। स्वामी जी विनोदप्रिय थे और उनकी हँसी बच्चों जैसी थी। उनके सम्पर्क में जो भी आया, उसे 'सत्य' और 'प्रकाश' प्रसाद रूप में मिले।

स्वामी जी के स्वर्गवास से जहाँ देश ने एक माहन सपूत खो दिया, वहीं, विज्ञान परिषद् के इतिहास का स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती युग समाप्त हो गया। स्वामी जी आज हमारे बीच सशरीर उपस्थित नहीं हैं, किन्तु अपने कार्यों में वे अमर हो गए हैं।

इन शब्दों के साथ मैं स्वामी जी की स्मृति को प्रणाम करता हूँ और श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

पृष्ठ 35 का शेष भाग

तनिक भी गर्व की लकीर नहीं थी, मैं उनके दर्शन से स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहा था। पिलानी में उनके प्रवास के अन्तिम दिनों में उनकी पुस्तकों की प्रदर्शनी आयोजित की गयी। स्वामी जी द्वारा किये गये शेक्शपियर नाटकों के अनुवाद व अनेक पुस्तकें देखकर मैं अवाक् रह गया। इतना बड़ मनीषी, महात्मा और मर्मज्ञ किन्तु गर्व लेशमात्र भी नहीं। ऐसे थे स्वामी सत्यप्रकाश।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

डॉ० रमेश दत्त शर्मा

प्रधान संपादक (हिन्दी), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली -110 001

सन् 1995 ने आते ही 18 जनवरी को हिन्दी विज्ञान साहित्य के पुरोधा डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती को हमसे छीन लिया। एक-दो वर्ष से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वे कहा भी करते थे कि मैं 90 साल तक ही जिऊँगा। आने वाले अगस्त में वे 90 साल के हो जाते। 24 अगस्त 1905 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर नगर में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्य समाज के विद्वान थे। घर के आर्यसमाजी वातावरण ने ही स्वामी सत्यप्रकाश को विज्ञान की शिक्षा-दीक्षा के बावजूद 10 मई 1971 को सन्यास ग्रहण करने के लिये प्रेरित किया। वेदों का अँग्रेजी में अनुवाद उनकी अंतिम देन थी, पर उनकी सबसे बड़ी देन हिन्दी के विज्ञान साहित्य की श्री वृद्धि है।

इलाहाबाद में दयानंद मार्ग पर विश्वविद्यालय के प्रांगण में ही रसायन विभाग की बगल में विज्ञान परिषद् के भवन की ईट-ईट स्वामी सत्यप्रकाश की कर्मनिष्ठा का जीता-जागता प्रमाण है। मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में 1923 में इन्होंने रसायन विज्ञानके विविध पक्षों पर रोचक लेख लिखने शुरू कर दिये थे। अपने शोधकार्य के दौरान ही कार्बनिक रसायन, साधारण रसायन, बीज ज्यामितीय तथा वैज्ञानिक परिमाण ये चार पुस्तकें प्रकाशित कीं। यह अँग्रेजों का जमाना था, लेकिन उस समय भी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विज्ञान की इम्प्रेस विक्टोरिया शोधवृति इस शर्त पर मिलती थी कि हिन्दी में कुछ वैज्ञानिक सामग्री अवश्य प्रकाशित की जाए।

1927 से 1933 तथा 1932 से 1941 तक स्वामी सत्यप्रकाश ने 'विज्ञान' मासिक का संपादन किया। उनके संपादन काल में विज्ञान खूब चमका और पूरे भारत में प्रचारित हुआ। इसकी देखादेखी अन्य भारतीय भाषाओं में भी विज्ञान-पत्रकारिता पनपी। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में कूद पड़े और जेल में लाल बहादुर शास्त्री तथा पंडित कमलापति त्रिपाठी के संपर्क में आए।

1944 में जयपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सत्यप्रकाश जी ने अपने तेजस्वी व्याख्यान में हिन्दी में अनुसंधान पत्रिका प्रकाशित किए जाने पर बल दिया था सन् 1952 में योजना बनी, लेकिन जनवरी, 1958 में ही फलीभूत हो पाई, तब उत्तर प्रदेश की वैज्ञानिक अनुसंधान परिषद् की 2500 रुपये की आर्थिक सहायता से हिन्दी में अनुसंधान पत्रिका शुरू हुई, जो आज भी विश्व हिन्दी सम्मेलनों और संसद में हिन्दी की लाज रखने के लिये उद्धृत की जाती है। यह किसी भी भारतीय भाषा की पहली अनुसंधान पत्रिका है, जिसे सत्यप्रकाश जी और उनके परम सहयोगी डॉ० शिवगोपाल मिश्र हर तरह के संकट में चलाते रहे और वह अब भी छाप रहे हैं।

सत्यपप्रकाश जी ने दो दर्जन से अधिक किताबें लिखी। इनमें आधा वैज्ञानिक साहित्य होगा और आधा वैदिक साहित्य। संपादित ग्रंथों में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली (1930), परिभाषिक शब्दावली (1945), मानक

अँग्रेजी-हिन्दी कोश (1971) और भारत की संपदा उल्लेखनीय हैं।

भारत की संपदा हिन्दी का अनूठा विश्वकोश है जो वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने 11 खंडों में प्रकाशित किया है। इस परियोजना का श्री गणेश डॉ० आत्माराम के महानिदेशक काल में सत्यप्रकाश जी की प्रेरणा से हुआ था। उन दिनों मैं पतनगर के कृषि विश्वविद्याय में प्रकाशन तथा अनुवाद निदेशालय में सह-निदेशक था। एक दिन सत्यप्रश जी का पत्र पहुँचा कि भारत की संपदा के अनुवाद के लिये 30-40 विज्ञान लेखकों के नाम भेजो। मैंने कोई 30 नाम भिजवाए और उन सबको वैल्थ ऑफ इंडिया के अनुवाद का काम सौंपा गया। प्रयाग के रसायन विभाग के प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र और विज्ञान लेखक तुरशन पाल पाठक को संपादन-विभाग में नियुक्त किया गया। यही कारण था कि पहले चार खंड बड़ी तेजी से प्रकाशित हुए। मुझे याद है कि जब पहला खंड श्रीमती इंदिरा गाँधी को समर्पित किया गया तो उन्होंने डॉ० सत्यप्रकाश के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

उन्हीं दिनों सत्यप्रकाश जी की प्रेरणा से ही सी० एस० आई० आर० ने भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति का गठन किया, जिसमें भारतीय भाषाओं के संपादक सदस्य हुआ करते थे। यह समिति विज्ञान पत्रिकाओं को घाटा पूरा करने के लिए वित्तीय सहायता दिया करती थीं और केरल की शास्त्र साहित्य परिषद् ने इसी की सहायता से मलयालम में विज्ञान की तीन पत्रिकाएँ चलाई थीं, जो अब अत्यंत लोकप्रिय हो गई हैं। तमिल, तेलगु, मराठी, गुजराती और बांग्ला की भी अनेक 'विज्ञान', 'विज्ञान लोक', 'विज्ञान जगत', 'लोक, विज्ञान' तथा 'अनुसंधान पत्रिका, को सहायता मिलती थी। अब वह समिति तो समाप्त हो गई है। उसकी जगह सी० एस० आई० आर० में एक लोक विज्ञान संवर्धन सलाहाकार समिति काम कर रही है, जो आज भी भारतीय भाषाओं में विज्ञान पत्रकारिता का पोषण कर रही है।

हिन्दी में विज्ञान लेखकों की एक पूरी पीढ़ी को सत्यप्रकाश जी का संरक्षण प्राप्त था। वेदों से लेकर सापेक्षवाद तक किसी भी विषय पर सत्यप्रकाश जी से चर्चा करके आनंद आ जाता था। विज्ञान और अध्यात्म का अनूठा संगम था। उनके व्यक्तित्व में उनका साहित्य सृजन् कविता से शुरू हुआ था और उनके विज्ञान लेखन में उनका कवि मन प्रकट होता रहता था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन और विज्ञान-काँग्रेस के वार्षिक परिषद् की बैठकें किया करते थे और किसी लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिक से हिन्दी में भाषण भी करवाते थे।

1941 में पूना में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से सत्यप्रकाश जी ने बड़ा ओजस्वी और स्वप्रदर्शी व्याख्यान दिया था। इस देशभक्त वैज्ञानिक ने जब चिंता प्रकट की थी कि एक ओर तो यूरोप के वे देश हैं, जहाँ आजकल युद्ध सामग्री तैयार करने के लिये वैज्ञानिक शिक्षाप्राप्त युवक कठिनता से मिल रहे हैं, और एक हमारा देश है जहाँ हमारे युवा वैज्ञानिकों को छोटी-मोटी नौकरियाँ भी नहीं मिल रही हैं।

विज्ञान की परिभाषिक शब्दावली के बारे में उनके विचार बड़े स्पष्ट थे। उदाहरण के लिये जिन परिभाषिक शब्दों का प्रयोग हिन्दी में हो, उन्हीं का प्रयोग सब प्रांतों में हो। कहाँ तक संस्कृत शब्द लेने चाहिए और कहाँ प्राकृत, अँग्रेजी, जर्मन या फारसी, इसके लिये कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। यह बात विशेषज्ञों और जनता दोनों के अधीन हैं। हिन्दी में विज्ञान लेखन पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था, "मुझे सबसे अधिक खेद इस बात का रहता है कि हिन्दी में विज्ञान संबंधी लेखकों का अभाव तो है ही इससे भी अधिक अभाव विज्ञान विषयों के पाठकों का है। यही नहीं विज्ञान विषय पर लिखने वाला नवगत युवक कभी पूर्ववर्ती लेखकों के लेखों को पढ़ने का ने तो कष्ट उठाना चाहता है और न ऐसा करना आवश्यक समझता है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक लेखक नई शब्दावली बनाने लगात है। यदि इस प्रकार की प्रथा बंद न की गई तो अच्छे से अच्छा शब्द भी कभी प्रचलित न हो पाएगा।"

खेद की बात तो यह है कि स्वतंत्रता के बाद जब नेहरू जी ने वैज्ञनिक शब्दावली आयोग बनाया तो उसका काम डॉ० सत्यप्रकाश जैसे मनस्वी विज्ञान लेखक को नहीं सौंपा गया। भाषा-विज्ञान और हिन्दी-साहित्य के प्राध्यापक ही आयोग प

हावी रहे और हिन्दी को विज्ञान शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न इन्हीं महानुभावों की कृपा से आज तक उलझा हुआ है। जब श्रीमत गाँधी ने भारतीय भाषाओं में विज्ञान साहित्य की अभवृद्धि के लिये 18 करोड़ की धनराशि बाँटी, तो हिन्दी के हिस्से में छह करोड़ आए। सभी राज्यों में ग्रंथ अकादमियाँ खुलीं और इन सबमें धन का दुरुपयोग करके विज्ञान में कम और अन्यान्य विषयों में अधिक किताबें छापी गई। उस समय सत्यप्रकाश जी मिले थे तो उन्होंने कहा था कि अगर कोई मुझे दो करोड़ रुपये दे देता तो उसके ब्याज से ही हिन्दी में हर विषय के वैज्ञानिक ग्रंथों का अंबार लगा देता।

अब तो उच्च स्तर पर शिक्षा का माध्यम बदलने की बात तो कोई नहीं उठाता। यह सब देखकर सत्यप्रकाश जी बड़े दुखी हो जाते थे। अंत में उन्होंने बच्चों के लिये उपयोगी और रोचक विज्ञान साहित्य जुटाने पर ध्यान दिया और लोकोपयोगी विज्ञान पर एक बाल विज्ञान सीरिज शुरू की। विज्ञान परिषद् प्रयाग को पाडुलिपियाँ जुटाने और पुस्तकायन प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली को जिम्मेवारी सौंपी। अब तक इस सीरीज में तीन दर्जन किताबें छप चुकी हैं।

आर्य समाज का संन्यासी बनने के बाद वे स्वामी सत्यप्रकाशनंद सरस्वती हो गये थे, लेकिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विनोदी स्वभाव कभी नहीं छोड़ा। दिल्ली में आते तो हनुमान मंदिर के पीछे की गली में या मंदिर मार्ग पर आर्य समाज में ठहरते थे। जिन दिनों वेदों का अँग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे, तो वेदों में विज्ञान की चर्चा चली। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा कि सब कुछ आस्था पर निर्भर है। वैज्ञानिक दृष्टि से परखने पर कुछ विशेष नहीं मिलेगा। इसी चर्चा में उन्होंने बताया था कि मैक्समूलर ने बड़ा भ्रष्ट और भ्रामक अनुवाद किया है। एक बार अफ्रीका-यात्रा में मैंने अपने पैर साफ नहीं किए। मैंने पूछा, क्यों? क्या पानी नहीं मिला? नहीं भाई।' चरण स्पर्ण करने वाले जरा भी धूल नहीं छोड़ते थे। कहकर सत्यप्रकाश जी ने बाल-सुलभ निश्छल हँसी बिखेर दी।

उत्तर प्रदेश सरकार इस मनस्वी वैज्ञानिक चिंतक और विज्ञान साहित्यकार की स्मृति में उनके व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा के अनुरूप हिन्दी में विज्ञान-लेखन और विज्ञान पत्रकारिता पर कोई पुरस्कार शुरू करे और प्रयाग की विज्ञान परिषद् को हर तरह से संवर्धित करे, तो अच्छा होगा।

वैज्ञानिक संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

पं० दीनानाथ शास्त्री

ए-63, एच० ए० एल० कोरवा, अमेठी (उ० प्र०)

पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश का जन्म 24 अगस्त 1905 ई० (कृष्ण जन्माष्टमी) को आर्य समाज मन्दिर बिजनौर में महान् दार्शनिक विद्वान पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय के घर में हुआ। मैट्रीकुलेशन से लेकर डी० एस-सी० तक सम्पूर्ण शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। सन् 1927 में एम० एस-सी० और 1932 में डी० एस-सी० की उपाधि ली। 1930 से ही प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। 1967 ई० में रसायन विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर पद से सेवा निवृत्त हुए। उसके अनन्तर 8 वर्ष तक प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में शोध कार्य के

लिये प्रयुक्त हुए।

उन्होंने रसायन और विज्ञान के क्षेत्र में 150 से अधिक भारतीय तथा विदेशी शोध पत्रिकाओं में निबंध प्रकाशित किये। लगभग 22 छात्रों ने उनके पथ प्रदर्शन में शोध कार्य करके डी-फिल और डी० एस-सी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। 'प्रितिबिम्ब' नाम से आपकी कविताओं का संकलन प्रकाशित हुआ। उपनिषद् और अध्यात्म साहित्य के अध्ययन में रुचि थी और आपने 'ईश' तथा 'श्वेताश्वरतर' उपनिषद् का छन्दोबद्ध अनुवाद भी किया। आपकी हिन्दी कविताएँ छायावाद और रहस्यवाद की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं।

शोधकार्य के अतिरिक्त आपका ध्यान हिन्दी भाषा को वैज्ञानिक साहित्य से सम्पन्न करने की ओर प्रवृत्त हुआ। वर्षों तक आपने विज्ञान परिषद् प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'विज्ञान' मासिक पत्रिका का संपादन किया और अनेक तरुण वैज्ञानिकों को साहित्य के निर्माण के लिये प्रेरित किया।

हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के जन्मदाता

रसायनशास्त्र का उच्च स्तर का ग्रन्थ 'सामान्य विज्ञान' भारत सरकार से पुरस्कृत हुआ और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पुरस्कार तथा ताम्र पत्र भेंट किया। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् की स्थापना होने पर आपको पटना में 'प्राचीन-भारतीय वैज्ञानिक साहित्य' पर व्याख्यान देने के निमित आमन्त्रित किया गया। ये व्याख्यान बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की ओर से 'वैज्ञानिक भारतीय परम्परा' नाम से प्रकाशित हुए। इस ग्रन्थ पर भी उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से पुरस्कृत किया गया।

आप प्रारम्भ से ही उ० प्र० के हिन्दी समिति, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी और हिन्दी संस्थान के सदस्य रहे। हिन्दी समिति की ओर से 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास' नामक एक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। यह ग्रन्थ अपनी प्रामाणिकता के लिये इस समय तक अपने विषय का एकमात्र सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, जिसकी सामग्री का उपयोग अन्य भाषा-भाषी भी करते हैं। इस ग्रन्थ पर 'नागरी प्रचारिणी सभा'ने पुरस्कृत किया और विज्ञान परिषद् प्रयाग से स्वामी जी को 'स्वामी हरिशरणानन्द' पुरस्कार प्राप्त हुआ।

दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने स्वामी जी को हिन्दी में वैज्ञानिक सेवाओं के उपलक्ष में समादृत किया। उत्तर प्रदेशीय शासन ने अपना उस समय का सर्वोच्च पुरस्कार पन्द्रह हजार रु० भेंट किया जिसे पूज्य स्वामी जी ने उदारतापूर्वक विज्ञान परिषद् को उसके भवन के लिये दान दे दिया। स्वामी जी विज्ञान परिषद् से लगभग 70 वर्षों से सम्बन्धित रहे और उसी भवन में ही स्वामी जी ने 10 मई 1971 ई० को सन्यास की दीक्षा ली। बाद में भी वे उसके परिसर में देश-विदेश के आर्यजनों के सहयोग से निर्मित 'ऋतम्भरा कुटी' में रहने लगे।

अनुसंधान पत्रिका

1958 से स्वामी जी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' के प्रधान संपादक का भार अपने ऊपर ले रखा था। इस पत्रिका के वे जन्मदाता हैं। भारतीय भाषाओं में एक मात्र शोध पत्रिका है, जिसका विनिमय विदेशी शोधपत्रिकाओं द्वारा होता है। इसमें प्रकाशित लेखों को वही सम्मान प्राप्त होता है, जो अन्य विदेशी भाषाओं की पत्रिकाओं को। स्वामी जी की प्रेरणा से लगभग 25 वर्षों से यह प्रथा रही कि भारतीय साइन्स काँग्रेस के साथ-साथ एक हिन्दी वैज्ञानिक गोष्ठी को भी स्थान मिलता रहा है। 1947 ई० में जब देश स्वतंत्र हुआ तो अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहन देने के लिये डॉ० सम्पूर्णानन्द जी ने उ० प्र में एक 'सान्टिफिक रिसर्च कमेटी' की स्थापना की और स्वामी जी आरम्भ से ही इस समिति के अवैतनिक मंत्री रहे। बाद को यह अर्द्ध सरकारी संस्था सरकार ने अपने हाथ में ले ली।

स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी

1942 ई० के आन्दोलन में स्वामी जी को 'नैनी जेल' में रखा गया। उस समय वहाँ श्री लाल बहादुर शास्त्री, पं० कमला पति त्रिपाठी, श्री फिरोज गाँधी, डॉ० कैलाशनाथ काटजू, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन और श्री आर० एस० पण्डित तथा विद्यार्थियों में हेमवती नन्दन बहुगुणा एवं

नारायण दत्त तिवारी भी थे।

दिल्ली सी० एस० आई० आर० की ओर से 'भारत की सम्पदा' नामक जो ग्रन्थमाला निकल रही है, उसके प्रधान संपादक स्वामी जी ही थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सबसे बड़ा जो 'अँग्रेजी हिन्दी मानक कोष ' छपा है, उसके प्रधान संपादक स्वामी जी थे।

वेदों का अँग्रेज़ी अनुवाद

'वेद प्रतिष्ठान' दिल्ली ने वेद के अँग्रेजी अनुवाद का जो आयोजन हाथ में लिया है उसके अन्तर्गत् अनुवाद और सम्पादन का भार स्वामी जी को सौपा गया। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का कार्य समाप्त हो गया तथा छप भी गये हैं। अर्थवेद का अनुवाद भी पूरा हो चुका है। इसके तीन खण्ड छप चुके हैं, शेष सामग्री शीघ्र ही छप रही है। इस प्रकार स्वामी जी विश्व में पहले महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने चारों वेदों का सर्वप्रथम अँग्रेजी अनुवाद किया है।

पिछले लगभग 30 वर्षों से स्वामी जी का यह प्रयत्न रहा है कि प्राचीन भारतीय विज्ञान के इतिहास पर जनता को अँग्रेजी में प्रामाणिक ग्रन्थ भेंट किये जाएं। इस श्रृंखला के अन्तर्गत् स्वामी जी के निम्न ग्रन्थों का विशेष महत्व है-

1. फाउन्डर्स ऑफ साइन्सेज इन एनसिएण्ट इण्डिया। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी मानक ग्रन्थों की सूची में प्रकाशित किया गया है।
2. क्वायनेज इन एन्सिएण्ट इण्डिया।
3. बोधायन शुल्व सूत्र।
4. आपस्तम्ब शुल्क सूत्र (संस्कृत, अँग्रेज़ी अनुवाद सहित)।
5. ब्रह्मगुप्त : इण्डियन मैथमेटिशियन एण्ड एस्ट्रानामर।
6. बख्शाली मैन्युस्क्रिप्ट (अंकगणित की प्राचीनतम पुस्तक)।
7. द शुल्व सूत्राज (बोधायन, आपस्तम्ब, कत्यायन और मानव शुल्व सूत्रों का संग्रह अँग्रेज़ी भूमिका सहित)।
8. पातञ्जल राजयोग (अँग्रेज़ी व्याख्या)।
9. शतपथ ब्राह्मण ।
10. पैरेबल्स एण्ड डायलाग्स फ्राम द उपनिषद्।
11. विन्सिट वेरीटास।
12. आर्य समाज रेनेसां।
13. क्रिटिकल स्टडी ऑफ द फिलासफी ऑफ दयानन्द।

इनके अतिरिक्त स्वामी जी के अनेक सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और सामाजिक ग्रन्थ भी हैं, जो विद्वानों द्वारा समादृत हैं।

प्रकाशन कार्य

उच्चकोटि के ग्रन्थों के सृजन एवं प्रकाशन हेतु एक संस्था 'स्वामी सत्यप्रकाश प्रतिष्ठान' आर्य समाज रायबरेली, में स्थापित है जिसका भवन भी निर्मित है। यहीं पर स्वामी जी के समस्त साहित्य तथा पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय के साहित्य सस्ते मूल्य पर उपलब्ध हैं। इस प्रतिष्ठान ने स्वामी जी के कुछ ग्रंथों (1) अध्यात्म और आस्तिकता (2) ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ द फिलासफी ऑफ दयानन्द (3) अग्निहोत्र (रसायन विज्ञान की कसौटी पर पूर्ण प्रमाणित अँग्रेज़ी विवेचन) (4) आर्य समाज के सिद्धान्त और प्रगति का प्रकाशन किया है। इनके अतिरिक्त डॉ० भवानी लाल भारतीय कृत 'महर्षि दयानन्द के भक्त प्रशंसक और सत्संगी' नामक ग्रन्थ तथा 'आर्य जगत्' सम्पादक पं० क्षितीश वेदालंकार की दो कृतियाँ (1) हिन्द की चादर पर दाग (2) राष्ट्रीय एकता की बुनियादें, एवं पं० दीनानाथ शास्त्री कृत 'रामचरितमानस जीवन के संग' और डॉ० ज्वलंत कुमार शास्त्री कृत एक पुस्तक का प्रकाशन (महर्षि दयानन्द की प्रमाणिक जीवनी) किया है। सम्प्रति स्वामी जी की कृति 'योग और उसकी अनुभूमिका' का द्वितीय संस्करण शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय की

कृति 'हम क्या खायें-घास या माँस' का प्राप्ति स्थान भी प्रतिष्ठान है। स्वामी जी के नाम पर उ० प्र० की राजधानी लखनऊ में 1500 वर्ग मीटर भूमि पर 'स्वामी सत्यप्रकाश वैदिक पुस्तकालय एवं शोध संस्थान' की स्थापना की गयी है। स्वामी जी की संग्रहीत तथा निजी पुस्तकें, हस्तलिपियाँ आदि भी संग्रहीत की जीयेंगी। इसकी 10 मई 1990 को डॉ० संजय सिंह ने आधारशिला रखी थी। इस अवसर पर स्वामी जी ने कहा था- "तुम लोगों ने संस्थान में मेरे नाम का तो प्रयोग कर लिया है। अब मेरी प्रबल इच्छा है कि मेरी मृत्यु के बाद पार्थिव शरीर मेडिकल कॉलेज के अनुसंधान कार्यों में काम आवे। दीपावली 1983 ई० के अवसर पर महर्षि दयानन्द निर्वाण शती अजमेर में स्वामी जी के प्रमुख संयोजकत्व में मनायी गयी। स्वामी जी ने इस अवसर पर एक 'निर्वाण शती स्मृति ग्रन्थ' का हिन्दी तथा अँग्रेजी में संपादन किया जिसका विमोचन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया था।

विदेश यात्राएँ

स्वामी जी लगभग 120 बार संसार के विभिन्न देशों की अनेक प्रयोजनों से यात्रा कर चुके थे। इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी आदि यूरोपीय देशों के अतिरिक्त कई बार दक्षिण अफ्रीका, केनिया, युगाण्डा, तंजानिया, जैम्बिया, मारीशस, कनाडा, अमेरिका, गायना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, जमैका, बर्मा तथा थाईलैण्ड जा चुके थे। देश-विदेश के आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्दों से कई बार विभिन्न विषयों पर उनकी वार्तायें प्रसारित हुई।

स्वामी जी ने 1945 में डरबन में अन्तर्राष्ट्रीय वेद सम्मेलन की अध्यक्षता की। मई 1948 ई० में स्वामी जी ने न्यूयार्क में नवनिर्मित आर्यसमाज मन्दिर का उद्घाटन किया। 30 जुलाई 89 को अफ्रीका में वेद प्रचारार्थ गये। 26 जुलाई 1990 में मरीशस आदि देशों में प्रचारार्थ दो मास रहे।

स्वामी जी की आस्था वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति और विशुद्ध राष्ट्रीयता में थी। आप प्रयत्नशील थे कि देश-विदेशों में रुढ़िवादिता समाप्त हो और वैज्ञानिकता के आधार पर नैतिकता और अध्यात्म संस्थापित हों। 18 जनवरी 1995 को स्वामी जी ने देह त्याग दिया। मन्त्र दृष्टा गुरुवर की पुण्य स्मृति को कोटिशः नमन ।

अगणित प्रकाशपुंज ज्योतित करने वाले

चन्द्रभान सिंह

कार्यालय प्रभारी, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद -211002

विज्ञान परिषद् प्रयाग के अभिनव प्रखर दीप
लुप्त हो गए आज परिषद् के प्रांगण से
सतत कर्म निरत, अथक पौरुष के स्वामी वह
आज समाविष्ट हुए धरती के कण-कण में
अगणित प्रकाशपुंज ज्योतित करने वाले
सार्थक कर गए नाम स्वामी सत्यप्रकाश

कर कृतार्थ पावन हम सबको निज किरणों से
मुक्त हुए यशः काय लौकिक समरांगण से
शिष्यगण, प्रशंसक, विद्वज्जन सब आकुल हैं
अश्रुपूर्ण नयन कष्ठविगलित बोझिल मन है
अमर रहे कीर्ति, रहे नाम सृष्टि जब तक है
स्वामी ! अर्पित तुमको श्रद्धांजलि सुमन हैं।

स्वामी सत्यप्रकाशजी सरस्वती

गजानन्द आर्य

पूर्व सभापति, विज्ञान परिषद् प्रयाग
19, बालीगंज, सर्कुलर रोड, कलकत्ता- 1

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती अब हमारे बीच में नहीं रहे। सन् 1905 में जन्में बालक सत्यप्रकाश ने सन् 1995 में सन्यासी के गौरवपूर्ण आश्रम में अपनी यात्रा समाप्त की। आर्य समाज ने जहाँ एक वीतराग सन्यासी को खो दिया वहीं वैज्ञानिक जगत् ने प्रतिभावान विद्वान को खोया। कितना विचित्र था यह स्वामी! जीवन की विविध अवस्थाओं का सुन्दर समन्वय इनमें परिलक्षित होता रहा। बच्चों की सी मुस्कान और सरसता लिये हुए यह सन्यासी अपने आश्रम की मर्यादा की सभ्यता में बहुत ही गंभीर और अनुशासित भी था।

बात सन् 1983 में तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन की है, समापन के दिन प्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा विश्व के विद्वदजनों को सम्मानित कर रही थीं। सम्मान की श्रृंखला में जब प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र के भूतपूर्व अध्यक्ष का नाम पढ़ा गया तब कोई विद्वान सामने न आया देख विदुषी कवयित्री ने दूर बैठे सन्यासी स्वामी सत्यप्रकाश को पहचान लिया। वहीं जाना पड़ा श्रीमती वर्मा को। सन्यासी के धर्म में सम्मानित होने के लिये उठकर जाना स्वामीजी को अभीष्ट नहीं था। स्वामीजी का पद सम्राट से भी ऊँचा है यह हमने उस दिन देखा जब स्वामी दयानन्द निर्वाण शताब्दी के अवसर पर भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी अजमेर पधारी थीं। मंच पर उपस्थित होने के क्षणों में लाखों लोग प्रधानमंत्री के सम्मान में खड़े हो गये किन्तु आर्यसमाज के दो सन्यासी यथावत् बैठे रहे। इसमें अहंकार की बू नहीं थी, अपितु भारतीय संस्कृति की रक्षा का तकाज़ा था।

विज्ञान और आध्यात्मवाद को एक दूसरे के पूरक सिद्ध करने में उन्होंने अपनी विद्वत्ता, समय और शक्ति का भरपूर उपयोग किया। वे कहते थे-"मैं आर्यसमाजी हूँ इसीलिए मुझे विज्ञान प्रिय है और चूँकि मैं विज्ञान का छात्र रहा हूँ इसीलिये मुझे आर्यसमाज से विशेष लगाव है।,'" सामान्यतया यह दोनों क्षेत्र विपरीत दिशा देने वाले लगते रहे हैं। वे अपने उपयोग और प्रयोग द्वारा आर्यसमाज में घुसपैठ करती हुई गलत मान्यताओं का पुरजोर खंडन करते रहे, साथ ही आनीश्वरवादी वैज्ञानिकों को वेदों के आदिभूत ज्ञान को स्वीकार भी कराते रहे। पूरे विश्व का भ्रमण अनेक बार इसी संदेश के साथ किया। वैदिक संस्कृति और ज्ञान को विदेशी भाषाओं में प्रचारित और प्रसारित करने में अनेक ग्रन्थ जहाँ इन्होंने लिखे वहीं वेदों के भाष्य का अँग्रेज़ी अनुवाद भी इनका अद्भुत कार्य रहा।

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध लेखक और विद्वान पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने अपने इस पुत्र को साइंस का विद्यार्थी बनाकर आर्य समाज और वैदिक धर्म का दीवाना बना दिया। वस्तुतः यह बहुत बड़ा कमाल है। देश की आजादी के संघर्ष में इन्होंने अपनी जवानी के दिन प्यारी मातृभूमि को अर्पित किये। बहुत लम्बी कहानी है इनके 90 वर्षों की। इनको श्रद्धांजलि किस रूप में दें यह भी हमें गंभीरता से सोचना होगा। अपने यहाँ प्रचलित यादगार तरीकों पर उन्हें असंतोष होता था, बहुधा कहा करते थे कि मरने की यादगारें बनाकर अपने आर्यसमाज मन्दिर भी मकबरे बन गये हैं। किसी के अच्छे काम की यादगार में तो कुछ नहीं बना। आदमी मकबरों

से प्रेरणा लेना चाहता है। गाँधी के उपदेश तो बेकार, नेहरूजी के मस्तिष्क की सृजनता तो बेकार, अब गाँधीघाट और शांतिवन ही मानों सब कुछ हैं। ऐसे मकबरों की प्रेरणा हमारे देश में महात्मा बुद्ध के समय से आरंभ हुई है अन्यथा हमारी प्रेरणा के स्रोत गौतम-कपिल-कणाद और व्यास की रचनायें होती रहीं हैं। ऋषियों की उपनिषदों से हमें प्रेरणा मिलती रही है। मरे हुए के नाम पर बने मकबरे-शिलालेख और बहुत बड़े खर्चे तथा चित्रों पर मालायें केवल आत्म-संतुष्टि है। इनसे जीवन नहीं बनता।

स्वामी जी के दिल में एक कसक बराबर बनी रहती थी "मैं संसार में घूमता रहा हूँ, सभी जगह जो आर्य समाजी मिले वह सभी भारतीय वंशज थे। मैं चाहता हूँ कि मेरा आर्य समाज कालों में, गोरों में और पीलों में पहुँचे तभी यह विश्व धर्म बन सकेगा।" कालों से उनका तात्पर्य अफ्रीका आदि देश, गोरों से यूरोप आदि देश तथा पीलों से जापान, चीन आदि देशों के मूल निवासियों से था। उनके इस स्वप्न को हम कहाँ तक, कब तक साकार कर सकेंगे, इसकी चिंता में नहीं पड़कर अपना एक उद्देश्य स्वीकार कर सकें तो भी एक श्रद्धांजलि होगी उनके प्रति ।

अन्त में अपने कवि हृदय स्वामी जी की एक कविता से अपने श्रद्धा पुष्प अर्पित करता हूँ-

निकली सांस निकल तुम भागे,
अब की तो तुम ऐसा सोये जिससे कभी न जागे।
चार दिनों का ठाट-बाट था चार दिवस की खेती,
चार दिनों का ताना बाना अब तो मिट्टी रेती।
चला गया वह रहने वाला रोने वालों रो लो,
जाना तुमको भी ऐसे ही बोना जो सो बो लो।
देना हो सो देलो तुम भी चलाचली की माया,
छोड़ चले ज्ञानी अभिमानी वही चला जो आया।
शूरवीर तो वही भक्त है हंसता हंसता जावे,
हलका फुलका रहे जगत् में जाने में मुसकाये।

सचमुच में स्वामीजी ने अपनी मुस्कान संसार से जाते समय फोटो कैमरे में बन्द कराकर विदा ली। अन्तिम क्षणों में उन्होंने अपना फोटो लेने की इच्छा प्रगट की। चिर परिचित मुस्कान से फोटो खिंचवा कर कुछ ही देर में अगले लोक में चले गये। आर्यसमाज मन्दिर बिजनौर में जिनका जन्म हुआ, उनकी अन्तयेष्टि भी आर्य समाज मन्दिर के प्रांगण में की गई।

स्वामी सत्यप्रकाश-कुछ संस्मरण

डॉ० चंद्रिका प्रसाद

अवकाशप्राप्त प्रोफेसर, 7 ए बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-211002

स्वामी सत्यप्रकाश जी को मैं बहुत छोटेपन से जानता था। जिस सड़क के एक सिरे पर मेरा घर था, उसी सड़क के दूसरे सिरे पर उनका घर था। फिर मेरे पिता जी डॉ० गोरख प्रसाद की तरह ही वे भी इलाहाबाद युनिवर्सिटी में पढ़ाते थे, तथा उन्हें भी 'विज्ञान परिषद्' में रुचि थी। इसलिये मेरी उनसे अच्छी जान-पहचान थी। उस समय मैं उन्हें 'चाचाजी' कहा करता था, बाद में स्वयं युनिवर्सिटी जब जाने लगा तो उन्हें 'डॉक्टर साहब' कहता था, और अंत में स्वामी जी।

अपने परिवार से घनिष्ठ संबंध के दृष्टांत स्वरूप मुझे याद है कि जब मेरी छोटी बहन का विवाह हो रहा था, तो

बारात के ठहरने के लिये उन्होंने सहर्ष अपने मकान का बड़ा हॉल कमरा और एक-दो अन्य कमरे खाली कर दिये और स्वयं एक कमरे से काम चला लिया। मुझे यह भी याद है कि मेरे विवाह के पश्चात् उन्होंने मुझे और मेरी पत्नी को अपने घर खाने पर आमंत्रित किया- केवल हम दोनों को, अन्य सदस्यों को नहीं। पिताजी ने तो इसे ठीक ही माना, पर मेरी माँ को यह पसंद न आया होगा। पर डॉक्टर साहब को इन सब बातों की परवाह नहीं थी।

जब मैंने युनिवर्सिटी में पदार्पण किया तो मेरे तीन विषयों में एक रसायनशास्त्र भी था। इत्तफाक से रसायन प्रयोगशाला में मेरे शिक्षक डॉ० सत्यप्रकाश जी ही थे। इनके नीचे काम करने में हम लोगों को बड़ी स्वतंत्रता मिली हुई थी। अपनी बुद्धि के अनुसार हम विभिन्न प्रयोग करते थे, और अड़चनें आने पर उनसे परामर्श लेते थे। मुझे या मेरे सहपाठियों में से किसी को भी कभी निराश होकर लौटना नहीं पड़ता था- जैसा कभी-कभी भौतिकी प्रयोगशाला में होता था। डॉ० सत्यप्रकाश जी हमेशा बड़े प्रेम से हम लोगों को समझाते थे और हमारी गुत्थियों को हल कर देते थे।

एम० एस-सी० पास करने के कुछ ही समय बाद मैं भी इलाहाबाद युनिवर्सिटी में गणित का लेक्चरर नियुक्त हो गया और इस प्रकार डॉ० सत्यप्रकाश जी का सहकर्मी बन गया। उस समय मेरा प्रारम्भिक मासिक वेतन 150/- था, और जहाँ तक मुझे याद है, डॉक्टर साहब को भी यही मिलता था।

कारण यह था कि इसके पहले लेक्चरर की ग्रेड 125-195 थी और मेरी नियुक्ति के कुछ ही दिन पहले यह बदल कर 150-200 हो गयी थी, जिसके कारण डॉक्टर साहब भी 150 रुपये ही पाते थे। कुछ दिन बाद ग्रेड बदल कर 200 से आरंभ हुई और तब भी यह बराबरी बनी रही। केवल जब तीसरी बार ग्रेड बदली और युनिवर्सिटी में कार्य -काल का लाभ दिया गया, तभी डॉक्टर सत्यप्रकाश जी को हम नव-नियुक्त लोगों से कुछ अधिक मिलना संभव हुआ।

कुछ समय काम करने के बाद युनिवर्सिटी से अवकाश ले कर मैं विदेश चला गया। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी से डॉक्टरी का खिताब अर्जित करने। दो वर्ष बिताकर लौटा तो इलाहाबाद में डेढ़ वर्ष और लेकचरर के पद पर रहा, फिर रीडर के पद पर रुड़की युनिवर्सिटी चला गया। वहाँ से मैं केवल गर्मी की छुट्टियों में इलाहाबाद आता था और सत्य प्रकाश जी से कम भेंट हो पाती थी। इसी बीच में एक बार यह भी पता चला कि उनकी धर्मपत्नी का देहांत हो गया। पर मेरी भेंट उनसे उस समय न हो पायी।

संयोग से डॉ० सत्यप्रकाश जी सरकार द्वारा रुड़की युनिवर्सिटी की सिंडिकेट के सदस्य मनोनीत हो गये। सिंडीकेट की मीटिंग प्रायः हर दूसरे महीने हुआ करती थी। वे जब इन मीटिंगों में आते थे तो मेरे ही घर ठहरते थे। मैं भी अब तक प्रोफेसर बन गया था, और इस नाते सिंडिकेट का सदस्य था। अतः मैं स्वयं ही उन्हें मीटिंगों में ले जाता था। घर पर वे धोती पहने नंगे बदन ही रहते थे। बाहर जाने पर वे खद्दर का कुरता पहन लेते थे। भोजन वे सादा करते थे, पर खीर उन्हें पसंद थी और मेरी पत्नी को उन्हें खीर खिलाने का शौक भी था।

सत्यप्रकाश जी को हमेशा आर्य समाज से लगाव रहा है। जब वे रुड़की आते तो आर्य समाज के कार्यकर्ता मेरे घर पहुँच कर उनसे प्रवचन के लिये अनुरोध करते और वे सांयकाल समय आर्य समाज मंदिर जाकर वहाँ भाषण देते। कई बार मैं भी उनके साथ वहाँ गया हूँ। संन्यास लेने के पहले भी उनका वहाँ बड़ा सम्मान था। उनके संन्यास लेने की तारीख तो मुझे याद नहीं, पर उनके संन्यास लेने के बाद भी उनके व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। मेरे प्रति और मेरे परिवार के प्रति उनका वही सौहार्द्र और स्नेह बना रहा। संन्यास लेने के बाद भी वे सिडिकेट के सदस्य मनोनीत हुए और मेरे यहाँ आते रहे। मेरे बच्चे भी उनसे पूरी तरह घुल-मिल गये थे।

मनोनीत सदस्य का कार्यकाल समाप्त होने पर उनका रुड़की आना कम हो गया था, पर कभी-कभी आर्य समाज के निमंत्रण पर वे आ जाते थे। साथ ही हरिद्वार, हरियाना और पंजाब के भी उनके चक्कर लगते थे। उनके भक्तों की कमी नहीं थी। सन् 1982 में मैंने रुड़की युनिवर्सिटी से अवकाश प्राप्त किया और दो वर्ष 'एमेरिटस साइंटिस्ट' की

तरह रह कर इलाहाबाद चला आया। इसके बाद भी वे कभी-कभी रुड़की जाते थे और यहीं पर मिलने से मुझे इसकी सूचना मिलती थी।

इलाहाबाद आने पर मैं बीच-बीच में उनसे भेंट कर लेता था, कई बार तो विज्ञान परिषद् की मीटिंग में। वे इस समय परिषद् के परिसर में ही उनके लिये बनवाई, एक कुटिया में रहते थे। आँखों के कष्ट के बावजूद उनका वेदों पर कार्य जारी था। उन्होंने मुझे दिखलाया भी कि कितना काम हो चुका है। मेरी पत्नी के निमंत्रण पर वे दो-तीन बार मेरे घर पर भोजन के लिये आये भी। एक दो बार उनकी कठिनाई देख कर उनके स्थान पर ही भोजन पहुँचा दिया। उनके और भक्त भी उनके भोजन की व्यवस्था के लिये तत्पर रहते थे। उनके दाँतों में कुछ कष्ट रहता था, तो मैं दो-चार बार उनके दाँत उखड़वाने सिविल लाइन्स में डॉ० चड्ढा और डॉ० रस्तोगी के पास भी ले गया।

धीरे-धीरे उनका शरीर कमजोर होता जा रहा था। यह उमर का तकाज़ा था। जब-जब मैं जाता था पहले से उन्हें अधिक वृद्ध ही पाता था। मेरा लड़का भी जो ऑस्ट्रेलिया से आया था, उनसे मिलने गया। यह 4-5 वर्ष पहले की बात है। उसके बाद मैं उनसे सिर्फ एक बार मिल पाया। वे फिर अमेठी चले गये थे। विज्ञान परिषद् का चपरासी जब भी घर आता उससे स्वामी जी का हाल पूछता। हमेशा यही पता चलता कि वे अमेठी में है। तभी एक दिन पता चला कि स्वामी जी नहीं रहे। वे सृष्टिकर्ता के पास चले गये।

स्वामी जी जब भी मेरे यहाँ रुड़की आते थे, मेरी पत्नी उनसे कई बातें धर्म और अध्यात्म के बारे में पूछती रहती थीं। उसे इसमें रुचि थी। स्वामी जी भी बिना थके उसकी बातों का उत्तर देते, सरल भाषा में विवेचन करते थे। मैं भी अध्यात्म में थोड़ा रुचि रखता था। एक बार किसी प्रसंग पर उन्होंने मुझसे पूछा, ''क्यों, चन्द्रिका, तुमने तेरह वर्ष गणित पढ़ी है, क्या तुम्हे पूरी गणित आ गयी है?'' मैंने कहा, ''नहीं, स्वामी जी, अभी मुझे बहुत गणित पढ़ना बाकी है।'' उन्होंने कहा, ''तब कैसे लोग समझ लेते हैं, कि छः महीने के अभ्यास के बाद उन्हें अध्यात्म का पूरा ज्ञान हो जायेगा?''

स्वामी सत्यप्रकाश स्नेही और प्रेरणास्रोत थे

दर्शनानन्द

उपनिदेशक उद्यान, इलाहाबाद मण्डल (अ०प्रा०)
सी-67, गुरु तेग बहादुर नगर (करेली हाउसिंग स्कीम), इलाहाबाद -211016

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती से मेरा प्रथम परिचय वर्ष 1989 में हुआ। उस समय वे अपनी कुटिया 'ऋतम्भरा' में बुखार में पड़े हुए थे और मैं विज्ञान परिषद् के कुछ सदस्यों के साथ उन्हें देखने गया था। बुखार के कारण वे चादर ओढ़ कर लेटे हुए थे। केवल उनका चेहरा दिखाई दे रहा था। कुछ बातचीत भी कर रहे थे। अतः प्रणाम कर के उनको सूक्ष्म में मैंने अपना परिचय दिया और जाते समय उन्होंने कहा, "फिर आइएगा।"

पुनः विज्ञान परिषद् जाने पर जब मैं दूसरी बार स्वामी जी की कुटिया में गया तो गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए एक संन्यासी को लेखन कार्य में व्यस्त पाया। वह स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती ही थे। यद्यपि वे लेखन कार्य में लीन थे, फिर भी कार्य छोड़ कर मुझे बड़े स्नेह के साथ बैठाया।

इसके पश्चात् पुनः सूक्ष्म परिचय देते हुए मैंने अपना

विस्तृत परिचय दिया। फिर वे भी पढ़ाई, लिखाई और नौकरी चाकरी आदि के बारे में पूछते और बातचीत करते रहे। यह जान कर कि मैं उत्तर प्रदेश उद्यान विभाग के एक अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुआ हूँ, स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए। वे कहने लगे कि आप तो बड़े भाग्यशाली हैं। हर समय फल-फूल, पेड़-पौधों के बीच, प्रकृति के बिल्कुल समीप रहते हैं।

मैंने अपने प्रकाशित लेखों व शोधपत्रों के विषय में तथा आगे भी पुस्तकें व लेख आदि लिखने में अपनी रुचि स्वामी जी से बताई। इसी बीच स्वामी जी द्वारा विज्ञान परिषद् की सदस्यता के विषय में पूछे जाने पर मैंने बताया कि मैं तो आजीवन सदस्य बन चुका हूँ। सब बातें सुन कर स्वामी जी ने अपना संतोष व्यक्त करते हुए भविष्य में भी पुस्तकें व वैज्ञानिक लेख आदि लिखते रहने के लिए अपने प्रेरणाप्रद आशीर्वचन से मुझे और भी प्रोत्साहित किया।

सौभाग्यवश 'विज्ञान परिषद्' की वर्ष 1989 में 'अमृत जयंती' मनाई गई थी, जबकि स्वामी जी ने दिल्ली के एक प्रकाशक 'पुस्तकायन' और विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्त प्रयास से बच्चों के उपयोग के लिये पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ कराया था। इस कड़ी में मेरे द्वारा लिखी हुई भी एक पुस्तक 'रंग बिरंगे फल' प्रकाशित हुई। एक और पुस्तक 'फलों का राजा आम' प्रकाशन के लिये लगभग तैयार है, जो स्वामी जी की स्मृति में होगी।

स्वामी सत्यप्रकाश वैज्ञानिकों का बहुत आदर करते थे। उन्होंने कई विशिष्ट वैज्ञानिकों की स्मृति में व्याख्यान मालाएँ आरम्भ कराई। इनमें डॉ० गोरख प्रसाद के विषय में पहला व्याख्यान स्वामी जी ने 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के सभागार में दिनांक 8 दिसम्बर 1990 को दिया। डॉ० गोरख प्रसाद की ही स्मृति में 'डॉ० गोरख प्रसाद विज्ञान लेखन पुरस्कार' प्रदान करने की भी व्यवस्था है। इसी क्रम में वर्ष 1989 का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने का सुअवसर मुझको ही मिला।

स्वामी जी सभी से प्रेम व स्नेह के साथ बात करते थे। वे बड़े ही स्पष्टवादी भी थे। एक बार 'लोक कार्यक्रम एवं प्रौद्योगिक विकास परिषद्' (कपाट), नई दिल्ली, 'राष्ट्रीय पेयजल मिशन, रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर तथा विज्ञान परिषद् के सम्मिलित प्रयासों से विज्ञान परिषद् प्रयाग में 'जल गुणवत्ता जाँच' पर एक प्रशिक्षण शिविर आरम्भ हुआ। इसका उद्घाटन 4 दिसम्बर 1990 को हुआ। इस अवसर पर विज्ञान परिषद् सभागार में मैं भी पहुँचा। मेरे पहुँचने पर डॉ० शिवगोपाल और प्रेमचन्द्र जी ने मुझे स्वामी जी की ओर संकेत करते हुए बैठने को कहा। स्वामी जी ने बड़े स्नेह व आदर के साथ मुझे अपने पास बैठाया। इसके पश्चात् प्रस्तावित कार्यक्रमों पर स्वामी जी से बातचीत होने लगी।

इसी बीच रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर के संयुक्त निदेशक और शिविर संचालक डॉ० रामगोपाल स्वामी जी से मिलने आये। उसी समय मेरा परिचय भी डॉ० रामगोपाल से हो गया। फिर जोधपुर रक्षा प्रयोगशाला से ही आई वैज्ञानिक डॉ० सुशीला राय का भी परिचय पहले स्वामी जी से, तत्पश्चात् मुझसे भी हुआ। स्वामी जी ने डॉ० सुशीला राय को भी वहीं बैठा लिया और पाठ्यक्रम तथा प्रशिक्षण के उद्देश्य व पेय जल की स्वच्छता आदि पर आपस में चर्चा होने लगी। इसी सम्बन्ध में मैंने विषय से सम्बन्धित साहित्य की बात छेड़ी, जिस पर स्वामी जी ने डॉ सुशीला राय की ओर संकेत करते हुए अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया कि इनके साहित्य भी सबको बाँटे जाने चाहिए। इसी क्रम में स्वामी जी का ध्यान 'कपार्ट' (संक्षिप्त नाम) के पूर्ण नाम 'लोक कार्यक्रम एवं प्रौद्योगिकी विकास परिषद्' पर आकृष्ट हुआ, जिस पर स्वामी जी ने कहा कि इस प्रकार के संगठनों के नाम इतने लम्बे नहीं बल्कि छोटे और सरल होने चाहिए।

जल गुणवत्ता जाँच पर आयोजित उक्त प्रशिक्षण शिविर का कार्यक्रम 8 दिसम्बर 1990 तक था। इस अवधि में एक दिन भोजनावकाश के समय मैं स्वामी जी की कुटिया में बैठा था। वहाँ स्वामी जी के अतिरिक्त विज्ञान परिषद् के कुछ और सदस्य भी थे। स्वामी जी ने उस दिन अतिथियों के सम्मान में उनके दोपहर के भोजन की व्यवस्था अपने एक परिचित के यहाँ कराई थी। परन्तु स्वामी जी कुछ चिंतित दिखाई पड़ रहे थे! कह रहे थे कि अभी गाड़ी नही आई। कैसे जाएँगे। कौन उन लोगों को लिवा जाएगा आदि। स्वामी

जी की चिंता देखकर मेरी चिंता बढ़ी और मैं स्वामी जी से पूछ बैठा कि गाड़ी कहाँ से आनी है और कहाँ जाना है। स्वामी जी 'सेठ जी' कहकर फिर चिंता में डूबने लगे। पुनः स्थिति स्पष्ट होने पर मालूम हुआ कि सेठ जी से स्वामी जी का अर्थ श्री लोकमणि लाल जी से था। श्री लोकमणि लाल जी का नाम सुनते ही ऐसा लगा कि जैसे मेरा ही बोझ हल्का हो गया हो। मुझे स्वामी जी की चिंता दूर करने और सेवा का स्वर्ण अवसर मिल गया, क्योंकि लोकमणि लाल जी से मेरा घनिष्ठ परिचय था। मैंने स्वामी जी से कहा कि गाड़ी पार्क रोड से आ जाती तो अतिथियों को लेकर तेलियरगंज तो मैं ही चला जाता। इतने में गाड़ी आ गई। स्वामी जी जैसे उछल पड़े और मेहमानों को मेरे साथ सौंप कर तेलियरगंज के लिए रवाना करा दिया। अतिथियों के साथ 'फर्रूखाबाद कोल्ड स्टोरेज' तेलियरगंज के परिसर में बने अपने पुत्र श्री रवीन्द्र कुमार गुप्ता के निवास स्थान पर मुझे देख कर लोकमणि लाल जी कुछ देर के लिये आश्चर्य में पड़ गए, क्योंकि मुझे सेवानिवृत हुए उस समय लगभग $2\frac{1}{2}$ वर्ष हो रहे थे और इस बीच उनसे सम्भवतः एक बार विज्ञान परिषद् में किसी अवसर पर भेंट हुई थी। फिर लोकमणि लाल जी ने सब मेहमानों का आदर व बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वागइ-सत्कार किया और अतिथियों को प्रेम के साथ भोजन कराया। अतिथियों को विदा करते समय उन लोगों को लोकमणि लाल जी ने अपने लिये यह बाताया कि वह (लोकमणि लाल जी) मेरे अण्डर काफी समय तक रह चुके हैं, जो उनके बड़प्पन और सरल स्वभाव का जीता-जागता उदाहरण है। मैं अपने राजकीय पद पर रहते हुए आलू उत्पादकों के आलुओं के भण्डारण के सम्बन्ध में उनके तथा इलाहाबाद जनपद और मण्डल के अन्य शीतगृहों का केवल निरीक्षण करता था। विज्ञान परिषद् वापस पहुँचने पर स्वामी जी को मैंने प्रगति से अवगत करा दिया। स्वामी जी प्रसन्न मुद्रा में होकर बोले—"बहुत अच्छा किया।" मैं लोकमणि लाल जी के शीतगृहों का निरीक्षण अवश्य करता था, परन्तु वे इतने स्नेही और व्यवहार कुशल थे कि मैंने उन्हें हमेशा सम्मान की दृष्टि से देखा। वह वैज्ञानिक और मेकेनिक इन्जीनियर भी थे। अब लोकमणि लाल जी भी इस संसार में नहीं रहे।

स्वामी जी उदार हृदय के बड़े परिश्रमी व्यक्ति थे और हर समय विज्ञान का प्रतिनिधित्व हिन्दी में करने और विज्ञान परिषद् और आर्यसमाज के उत्थान के विषय में ही सोचते विचारते रहते थे। स्वामी जी के संरक्षण में विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान' के समय-समय पर विशेषांक भी प्रकाशित होते रहे। एक बार पर्यावरण सम्बन्धी 'विज्ञान' के जनवरी-मार्च 1990 के अंकों के बदले विभिन्न लेखों को एक विशेषांक के रूप में पुस्तकाकार किया जाना था। इनमें 'धूम्रपान और स्वास्थ्य' विषय पर एक लेख मेरा भी था। इसी सिलसिले में मैं एक दिन इलाहाबाद मण्डल के फल-फूल प्रदर्शनी के किसी कार्यक्रम में जाते समय थोड़ीदेर के लिये विज्ञान परिषद् चला गया। वहाँ जाने पर देखा कि स्वामी जी बाहर ही बैठे थे। वहीं बहुत सी पुस्तकें भी फैली हुई थीं, जो पैक की जा रही थीं। इसी के साथ ही स्वामी जी कुछ निर्देश भी देते जा रहे थे। जब मैं पहुँचा तो स्वामी जी ने तुरंत कुर्सी मंगवा कर मुझे बैठा लिया जबकि मैं बार-बार कहता ही रह गया कि इस समय मैं जरा देर के लिये प्रेमचन्द्र जी से मिलने आया था। स्वामी जी ने बड़े स्नेहपूर्वक कहा, 'आप दो मिनट ही बैठिये। अफसरों का आदर सम्मान होना चाहिए।' स्वामी जी ने बताया कि आप का लेख भी इस पुस्तक में प्रकाशित है। देखा तो मालूम हुआ कि ये पुस्तकें उस विशेषांक की ही प्रतियाँ हैं और 'बदलता पर्यावरण (2001)' के नाम से प्रकाशित है। इतने में प्रेमचन्द्र जी आ गए। उन्होंने मुझे इस पुस्तक की एक प्रति दी और मैं स्वामी जी का अभिवादन करते हुए वापस चल पड़ा।

स्वामी जी मुझे विज्ञान परिषद् के कुछ कार्यों का उत्तरदायित्व भी सौपना चाहते थे। एक बार विज्ञान परिषद् के पुस्तकालय में एक विचार गोष्ठी हुई। गोष्ठी समाप्त होने पर सब लोगों के कक्ष से बाहर निकल जाने के बाद अंत में स्वामी जी और डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी (विज्ञान परिषद् के तत्कालीन प्रधानमंत्री) रह गए। मैं चलने लगा, तो स्वामी जी ने रुकने के लिए मुझे संकेत किया। थोड़ी देर बाद वे बोले कि यदि आप घंटा-दो-घंटा अपना समय पुस्तकालय के लिये दे दिया करें तो कम से कम पुस्तकालय रोज खुला करेगा, जिससे लोग लाभ उठा सकेंगे। डॉ० तिवारी ने भी कहा कि अच्छा तो रहेगा, क्योंकि विज्ञान परिषद् केमिस्ट्री

तक ही सिमट कर रह जाता है। मैंने स्वामी जी से अपनी परिस्थितियाँ बताई और कहा कि मैं स्कूटर आदि चलाता नहीं। मेरा कहीं भी आना जाना रिक्शे द्वारा ही होता है। फिर भी स्वामी जी ने कहा कि रिक्शे का व्यय दिलवा दिया जाएगा। मैं संकोचवश कुछ उत्तर न दे सका। स्वामी जी ने कहा, ''अच्छा विचार कर लीजिएगा।''

डॉ० गोरख प्रसाद के विषय में 8 दिसम्बर 1990 को स्वामी जी द्वारा प्रथम व्याख्यान जो दिया गया था, वह पेय जल सवच्छता पर ''कपार्ट'' की ओर से आयोजित प्रशिक्षण शिविर के समापन के दिन था। चूँकि यह वक्तव्य स्वयं स्वामी जी द्वारा दिया जाना था, इसलिए विज्ञान परिषद् के सभागार में आगुन्तक इकट्ठे होते जा रहे थे। इसके लिये मैं भी पहुँचा। चूँकि स्वामी जी पहले से बैठे थे, इसलिए मैं स्वामी जी के पास ही चला गया। स्वामी जी नें तुरंत बड़े स्नेह के साथ अपने बगल में बैठा लिया। स्वामी जी इतने कमजोर हो गए थे कि न तो अपने से उठ सकते थे और न बैठ सकते थे। कुछ समय बाद व्याख्यान का समय हो जाने पर दो तीन लोग आए और स्वामी जी को उठाकर स्टेज पर ले जाने लगे। स्वामी जी मेर कंधे पर हाथ रख कर सहारा लेते हुए स्टेज पर पहुँच गए। इसके बाद स्वामी जी ने अपना ओजस्वी व्याख्यान दिया। स्वामी जी का यह व्याख्यान 8 मार्च 1990 को ही प्रकाशित हो गया था जो सबको बाँटा भी गया।

इधर $2\frac{1}{2}$ साल से स्वामी जी अमेठी में रह रहे थे। काफी अस्वस्थ भी चल रहे थे। उनका शरीर पहले से ही जर्जर हो चला था। फिर भी विज्ञान परिषद् और आर्य समाज के प्रति स्वामी जी की समर्पण की भावना पूर्ववत् बनी रही। स्वामी जी लगभग 90 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके थे। अंततः एक दिन ईश्वर का बुलावा आ गया और एक सरल व मृदुल स्वभाव के सादे रहन-सहन वाले, सब को सम्मान, स्नेह व प्रेरणा देने वाले, व्यवहारकुशल, विज्ञान परिषद् और आर्य समाज के प्रति साथ-साथ समर्पित, वेद-वेदान्तों के उद्‌भट विद्वान, ज्ञानी, वैज्ञानिक, आर्यसमाजी सैंन्यासी, त्यागी और तपस्वी- स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश सरस्वती ने दिनांक 18 जनवरी 1995 को निर्वाण प्राप्त कर लिया। यद्यपि स्वामी जी अब इस संसार में नहीं रहे, पर उनकी स्मृतियाँ बनी रहेंगी। स्वामी जी की कृतियाँ और विज्ञान परिषद् प्रयाग में उनके लिये बनी कुटिया 'ऋतम्भरा' सदैव स्वामी जी की याद दिलाती रहेगी। अब भी यह विश्वास नहीं हो पा रहा है कि स्वामी जी अपने बीच नहीं रहे। लगता है कि वे बाहर गए हैं और अपनी कुटिया में अवश्य ही वापस आएंगे। ईश्वर स्वामी जी की आत्मा को शान्ति प्रदान करें। इस महान आत्मा को शत्-शत् नमन्।

होनहार बीरवान के होत चीकने पात

स्वीमी जी ने एक अनौपचारिक बातचीत के दौरान एक रोचक संस्मरण सुनाया था। जब वे इण्टर के विद्यार्थी थे तो उन्होंने विज्ञान की एक पुस्तक की रचना की और उसकी पाण्डुलिपि को बनारस (वाराणसी) के एक प्रकाशक के पास भेज दिया। प्रकाशक ने उसे छापना स्वीकार कर लिया और 50 रू० पारिश्रमिक देना भी स्वीकार किया। उन दिनों 50 रुपये बहुत होते थे।

किन्तु बाद में प्रकाशक महोदय का इलाहाबाद आना हुआ और संयोगवश वे बालक सत्यप्रकाश के एक पड़ोसी के घर आये। प्रकाशक महोदय ने बातों ही बातों में उनसे चर्चा की कि श्री सत्यप्रकाश नाम के एक लेखक की विज्ञान विषयक पुस्तक की एक पाण्डुलिपि उन्होंने छापना स्वीकार कर लिया है। पड़ोसी महोदय बालक सत्यप्रकाश को जानते ही थे और यह भी जानते थे कि सत्यप्रकाश लिखते हैं। उन्होंने उत्साह में आकर सत्यप्रकाश को बुलवा लिया और प्रकाशक महोदय से परिचय करा दिया। बाद में उन्होंने (प्रकाशक ने) पुस्तक प्रकाशित करने का इरादा मात्र इस कारण बदल दिया, क्योंकि उस समय (सत्यप्रकाश) इण्टर के विद्यार्थी थे। इस प्रकार 'विज्ञान ' पत्रिका में लिखना प्रारम्भ करने से पहले ही बालक सत्यप्रकाश एक पुस्तक की रचना कर चुके थे।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

कुछ स्मृतियाँ

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

मुझे स्वामी जी के प्रथम दर्शन आज से 50 वर्ष पूर्व हुए थे जब मैं इण्टरमीडियेट का विद्यार्थी था। 1951 में मैंने एम० एस-सी० में उनसे भौतिक रसायन पढ़ा। 1956 में जब रसायन विभाग में अध्यापक नियुक्त हो गया तो उनका सहयोगी बन गया और 1958 में जब विज्ञान परिषद् से 'विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका' निकली तो स्वामी जी का सहायक बना। इस तरह 40 वर्ष पूर्व मैं उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आया। उसके बाद उनके साथ पुस्तकें भी लिखीं। 1988 में जब स्वामी जी की कुटी बनकर तैयार हो गई तो वे एक तरह से प्रयागवासी बन गये। 1971 ई० में संन्यास लेने के बाद वे देश-देशान्तर का भ्रमण करके ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार करने लगे थे। हमने 1977 में उन्हें "वैज्ञानिक परिव्राजक" नाम से एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेंट किया था।

किन्तु स्वामी जी का स्वभाव ऐसा था कि वे किसी प्रकार के हर्ष या विषाद से अधिक प्रभावित नहीं होते थे। जब उनकी पत्नी की मृत्यु हुई तब भी उनके मुखमण्डल पर विषाद की रेखाएँ नहीं दिखीं। उन्होंने हँसते-हँसते संन्यास लिया और अन्तिम कई वर्षों तक वे मृत्यु के स्वागतार्थ दोनों हाथ फैलाए रहे। उनकी अन्तिम इच्छा थी कि परिषद् में ही उनकी मृत्यु हो किन्तु काल बली होता है। वह उन्हें अमेठी ले गया और वहीं 18 जनवरी 1995 को उनकी मृत्यु हो गई। मैं स्वाजी के कृतित्व पर अलग विस्तार से लेख लिख चुका हूँ।

मैंने स्वामी जी के 1979 से 1989 तक के कुछ संस्मरण लिपिबद्ध कर रखे थे जिन्हें यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है इनसे स्वामी जी के जीवन के विषय में कुछ नया प्रकाश पड़ेगा और पाठकों की कुछ जिज्ञासा की पूर्ति हो सकेगी।

- 1 अप्रैल 1979 : स्वामी जी कटरा आर्य समाज में रह रहे थे। मिलने गया तो वे कोपीन धारण किये कुर्सी पर बैठे बाल बनवा रहे थे।

- 5 अप्रैल 1979 : स्वामी जी ने इच्छा व्यक्त की थी कि 'अनुसन्धान पत्रिका' का एक विशेषांक निकाला जाय जो Archaeology तथा Archichemistry पर हो, अतः मैं पते लेने गया था। स्वामी जी ने पतों की सूची ढूँढ़ी और लेखकों के पास भेजें जाने वाला पत्र ड्राफ्ट कराया। तभी यह तय हुआ कि यह अंक स्वामी जी की 75वीं वर्षगाँठ पर विशेषांक रहेगा, तदनुसार मैंने 71 पतों पर एयरोग्राम भेजे।

- 15 मई 1979 : स्वामी जी हरिद्वार से लौटे थे। मैं आर्य समाज कटरा में मिला तो उन्होंने बताया कि रुड़की से वे भवन-निर्माण के लिये 2000/- रु० लाये हैं।

- 24 मई 1979 : मैंने स्वामी जी से डॉ० रत्नकुमारी की जन्मतिथि पूछी थी तो उन्होंने लिखा था कि अरविन्द प्रेस वालों से पूछ लो। मुझे बतया गया कि उनके चित्र के नीचे यह तिथि 20.3.1912 लिखी है।

- 2 जुलाई 1979 : स्वाजी जी ने बताया- "मैं सत्यकाम विद्यालंकार के साथ पुणे तथा बम्बई के बीच एक स्थान पर रहकर वेदों का अनुवाद करने जा रहा हूँ। कुछ लोग कहते हैं कि 'स्काई लैब' उधर ही गिरनी है लेकिन मैं सोचता हूँ मृत्यु तो सर्वत्र है।"

- 25 अगस्त 1979 : डॉ० आत्माराम को पत्र लिखाया कि सितम्बर के अन्त में इलाहाबाद आवें क्योंकि अक्टूबर में मुझे विदेश जाना है।

- 16 अक्टूबर 1979 : रसायन विभाग में मुझे ढूढ़ते पहुँचे और बताया कि डॉ० आत्माराम को लेने कालका मेल पर स्टेशन पहुँचू।

- 18 अक्टूबर 1979 : हम लोग प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने कानपुर जा रहे थे। इलाहाबाद स्टेशन पर स्वामी जी 100 रुये का नोट थमाते हुए बोले—"इससे मेरा तथा डॉ० आत्माराम का प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदना ।

- 14 फरवरी 1980 : स्वामी जी बम्बई से लौटे थे अतः एक मीटिंग परिषद् में रखी गई। स्वामी जी ने बताया- 'बम्बई में चन्दा नहीं मिला, डॉक्टरों की हड़ताल थी। मेरे व्यर्थ ही 300 रुपये खर्च हो गये।

- 25 मई 1980 : स्वामी जी वर्मा तथा थाईलैंड की यात्रा से वापस आये। वे मार्च के अन्तिम सप्ताह में गये थे। जाने की कोई सूचना नहीं दी थी अतः रसायन विभाग में जब उनसे भेंट हुई तो सुखद आश्चर्य हुआ।

- 31 मई 1980 : स्वामी जी भोजनोपरान्त विज्ञान परिषद् में आये तो बोले आज यहीं सोऊँगा। खाने के बाद मुझे नशा चढ़ता है। सोना मेरे लिये अनिवार्य है।

- 13 अगस्त 1980 : स्वामी जी से मिलने गया तो पाँव में पट्टी बाँधे थे। बताया —"फाइलेरिया का अटैक हुआ था। देखो न, एक पाँव में स्वर्ग और एक में नर्क। इसी शरीर में दोनों का कैसा मेल है।"

- 28 सितम्बर 1980 : स्वामी जी ने फोन पर बताया, "मैं 10 अक्टूबर को उषा का विवाह कर देना चाहता हूँ, विज्ञान परिषद् से। तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं? यह शुभ कार्य है।"

- 13 दिसम्बर 1980 : स्वामी जी एक मास के लिए बाहर गये थे। आने पर बताया – "गंगा प्रसाद उपाध्याय शताब्दी के लिये 10-15 हजार रुपये लाया हूँ। मैं 75 का हो गया हूँ। 80 वर्ष की आयु तक सब्र कर लेना चाहता हूँ। 5 वर्ष कम नहीं।"

- 31 दिसम्बर 1980 : साइंस कॉंग्रेस बनारस में होनी थी। स्वामी जी हम लोगों के साथ रामबाग स्टेशन से रेलगाड़ी द्वारा यात्रा करने जा रहे थे। वहाँ पर सबों से एक-एक रुपये माँग कर कहा कि अब इससे मेरा भी टिकट खरीद लो।

- 2 जनवरी 1981 : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में 4 1/2 बजे एक गोष्ठी में स्वामी जी को अनुसन्धान पत्रिका का विशेषांक समर्पित किया गया।

उन्होंने विदेश का संस्मरण सुनाया। "एक बार वर्षा होने लगी तो मैं जिस संग्रहालय में गया था उसके द्वार बन्द किये जाने लगे। मैंने पूछा ऐसा क्यों? तो बताया गया कि वर्षा से वायुमण्डल में आर्द्रता बढ़ेगी और इससे संग्राहलय की वस्तुओं के विनष्ट होने का खतरा बढ़ेगा। कितनी सतर्कता बरती जाती है दुर्लभ वस्तुओं के संरक्षण में ।"

- 25 अक्टूबर 1981 : स्वामी जी ने एकान्त में बुलाकर कहा, "देखो, हो सकता है कि मुझे आर्य समाज कटरा का आश्रम छोड़ना पड़े। सोच रहा हूँ 10 वर्ष बाद पुनः सँन्यास लूँ। तुम मेरे पुस्तकालय को विज्ञान परिषद् में रखा लो। तुम्हीं उसकी सुरक्षा कर सकते हो।"

- 25 जून 1982 : स्वामी जी ने कहा, "मैं अपना सारा सामान विज्ञान परिषद् ला रहा हूँ" किन्तु अन्तिम रूप से अलमारियाँ आदि 5 अक्टूबर को ही आईं।

- 16 अक्टूबर 1982 : "मैं तुम्हारे मुहल्ले में आ रहा हूँ। चौहान से कहकर अपना फोन आर्य समाज से हटवाना चाहता हूँ, सरेंडर नहीं करना चाहता।" अगले दिन मेरे घर आये। बोले " अपनी किताबें तीन हिस्सों में बाँट रहा हूँ- आर्य समाज से सम्बन्धित, अपनी निजी सन्दर्भ पुस्तकें तथा हिन्दी अँग्रेजी की विज्ञान विषयक पुस्तकें। मेरी कुछ किताबें चोरी भी हो रही हैं।"

"आर्य समाज नामक इस एक संगठन ने बड़ा ही हित किया है और आज भी अस्तित्व में है। हमारे पास मरने पर तीन दिन में शान्ति पाने तथा विवाह कराने के लिये लोग आने लगे हैं, क्योंकि सामाजिक रीति से कार्य संपन्न करने पर इन दोनों में काफी धन व्यय होता है। मुझे 22 अक्टूबर को अजमेर जाना है। आर्य समाज की शताब्दी मानाई जा रही है, उसी में भाग लेने।"

- 20 अक्टूबर 1982: स्वामी जी ने अपना ताम्र पत्र तथा कुछ पदक एवं पुस्तकें विज्ञान परिषद् को दीं।

- 10 फरवरी 1982 : स्वामी जी ने डॉ० आत्माराम की मृत्यु की चर्चा चलाई । बताया कि उनके कोई पुत्र नहीं था। दो लड़कियाँ हैं। उनकी पत्नी का नाम सीता देवी है।

- 18 फरवरी 1983 : "स्वामी दयानन्द सरस्वती की जन्मशती पर स्त्रियों से दस छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखाना चाहता हूँ। ये पुस्तकें डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान की ओर से छपेंगी। तुम्हें इनकी छापाई देखनी होगी।"

- 15 मार्च 1983 : हिन्तुस्तानी एकेडमी में "जय जानकी जीवन यात्रा" की मीटिंग होनी थी। स्वामी जी तथा परिषद् से हम कई लोग वहाँ समय से पूर्व पुहँच गये। स्वामी जी बताने लगे, "1916-18 में मैंने साहित्य सम्मेलन की प्रथम परीक्षा दी थी। हम दो व्यक्ति थे। मैंने हिन्दी में विज्ञान की परीक्षा दी। उसी समय प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा के सम्पर्क में आया। तब वियोगी हरि भी यहीं थे। सेवा समिति में कक्षाएँ चलती थीं। टंडन जी के कहने पर मैंने प्रादेशिक सम्मेलन कि लिये हिन्दीं में रंसायन की पुस्तक लिखी। उसके बाद डॉ० रामचरण मेहरोत्रा ने लिखी।"

श्रीधर पाठक का चित्र देखकर बोले, "पाठक जी के सिर पर बतौरी थी जिसे छिपाने के लिये वे चित्रकारों से चित्र न बनाने को कहते। मुझे भी कविता का शौक था। मैंने अँग्रेजी में भूमिका लिखी अपनी पुस्तक 'प्रतिबिंब' की।"

- 16 मार्च 1983 : "मेरे पूर्व सात शोधार्थियों ने डॉक्टरेट ली थी- सारे के सारे बंगाली। मेरे बाद डॉ० धर को देश भर के छात्रों का अनुसन्धान में लेने का 'मिनिया' हो गया था। "

- 24 मई 1983 : स्वामी जी का तार आया कि वे 24 को आ रहे हैं। मैं भोजन लेकर परिषद् पहुँचा। उन्होंने बताया कि अजमेर तथा दिल्ली के आर्य समाजों की विशेष बैठकों के कारण रुक जाना पड़ा था।

- 10 जून 1983: अजमेर से कोठारी जी आये थे। स्वामी जी से चर्चा करते हुए उन्होंने संभोग-सुख के विषय में पूछा। स्वामी जी ने जिह्वा -सुख को सबसे तुच्छ बताया। रसगुल्ला खिलाते हुए 'धारणा' का उदाहरण बताने लगे। " इतना खावो कि कै होने लगे, फिर रसगुल्ला खाने का मन न करे।"

मैंने पूछा, "लोग दयानन्द की मूर्ति की पूजा करते हैं या नहीं ?" स्वामी जी, "वैसे दयानन्द जी ने तो कहा नहीं कि मेरी पूजा की जाय किन्तु यदि कोई मूर्तिकार उनकी मूर्ति बनाता है तो उसको मना नहीं किया जा सकता। हाँ, हम उसकी पूजा नहीं करेंगे।"

- 14 जुलाई 1983 : स्वामी जी दयानन्द सरस्वती के नाम के कुछ पत्थर इलाहाबाद में लगवाना चाहते थे। उनका विचार था। कि अलोपी बाग में ही सत्यार्थ प्रकाश लिखा गया। अतः वे मेरे श्वसुर डॉ० उदयनारायण तिवारी के पास गये और उनसे पूछकर उनके घर के कोने में पत्थर लगाने की बात तय कर आये।

- नवम्बर 1983 : मैं अपनी पुत्री का इलाज कराने मद्रास गया था। वहीं पर स्वामी जी का पत्र गया, "दयानन्द निर्वाश शती समारोह सफल रहा, स्मृति ग्रंथ निकल गया। तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में मुझे सम्मानित किया गया। एक सरस्वती प्रतिमा भी भेंट की गई जिसे मैं परिषद् को दे रहा हूँ।"

- 16 दिसम्बर 1983 : स्वामी जी ने एस० चाँद, दिल्ली के यहाँ से छपी अपनी दो पुस्तकों 'पातंजल राजयोग' तथा 'Parables in Vedas' की रायल्टी विज्ञान परिषद् के नाम करने का निश्चय सुनाया और कहा इससे स्थानीय निधि तैयार की जाय। अगले दिन विज्ञान परिषद् परिसर में दयानन्द निर्वाण शती का पत्थर लगा जो सड़क से दीखता रहे।

- 16 फरवरी 1984 : मेरे घर पर आये और भोजन किया। धूप में बैठे हुये बातें करते रहे। "अगला सभापति एम० जी० के० मेनन को बनाया जाय। पाँच हजार का एक पुरस्कार चालू हो और वैज्ञानिक निबन्ध छापे जायँ।" बाद में मेरे साथ रेडियो स्टेशन गये, जहाँ "स्मृति के झरोखे से" रेडियो टाक रिकार्ड कराई। इसका प्रसारण 22 फरवरी को दिल्ली से होना था।

- 19 फरवरी 1984 : डॉ० विमलेश जी के साथ शाहगंज जाकर दयानन्द निर्वाणशती का दूसरा पत्थर लगवाया।

- 27 फरवरी 1984: "आँख में कैटेरेक्ट होने से बड़ी असुविधा होती है। अप्रैल में रोहतक में ऑपरेशन कराऊँगा। यदि अंधा हो गया तो कविता करूँगा- सूरदास की तरह और अच्छा हो गया तो आर्य समाज का काम। मुझे सन्तोष है कि मैंने आज ऋग्वेद का कार्य समाप्त कर लिया है।" शाम को वे दिल्ली चले गये।

- 17 अप्रैल 1984 : मुझे कार्य वश दिल्ली जाना पड़ा तो आर्य समाज में स्वामी जी के पास रुका। उन्होंने अपने हाथ से ब्रेकफास्ट तैयार किया, काफी बनाई, शाम को मुझे लेकर डॉ० आत्माराम के निवास स्थान महारानी बाग गये।

- 2 मई 1984: नागबासुकी मन्दिर में दयानन्द निर्वाण शती का तीसरा प्रस्तर लगा। डॉ० जगदीश गुप्त ने वहाँ की सारी व्यवस्था की थी।

- 4 मई 1984: "मेरे तीन शिष्य हैं, दीनानाथ, ज्वलन्त तथा उषा। दीनानाथ लखीमपुर में स्वामी सत्यप्रकाश प्रतिष्ठान खोलना चाहता है। एक पुस्तक छापेगा। उसके लिये मैं 1001 रु० दिये जा रहा हूँ। पुस्तक की 2200 प्रतियाँ छपेंगी।"

- 22 जून 1984 : स्वामी जी ने विज्ञान परिषद् में आम की दावत दी जिसमें सारे अंतरंगी आये। स्वामी जी ने परिषद् के लिये 18000 रुपये की राशि एकत्र करके दी जिसके लिए सबों ने उन्हें धन्यवाद दिया।

- 10 सितम्बर 1984 : " तुमने मेरे आँसू नहीं देखे, मैं बड़ा भावुक हूँ। मैंने पद्माकर की कृतियों का सम्पादन 1924 में किया था किन्तु कोई प्रकाशक ही नहीं मिला।"

- 1 जनवरी 1985: स्वामी जी साइंस काँग्रेस में भाग लेने लखनऊ हमारे साथ गये और हिन्दी संस्थान भवन में रुके।

- 11 जून 1985 : स्वामी जी बली द्वीप की यात्रा से लौटे। कहने लगे, "जुलाई में आँख का ऑपरेशन कराकर तब कनाडा जाऊँगा।"

- 19 जून 1985 : स्वामी जी ने परिषद् में "इक्कीसवीं शती का स्वागत" पर भाषण दिया।

- 21 अक्टूबर 1985 : स्वामी जी लखीमपुर खीरी से परिषद् आये। इस बार वे लन्दन, डेनमार्क आदि की यात्रा करके लौटे थे। बताया, "15 दिसम्बर को पुनः डर्बन में वेद सम्मेलन में भाग लेने जाना है। फलतः फरवरी 1986 तक प्रयाग लौटूँगा।"
- 15 मार्च 1986 : एक पत्र में लिखा —"मैं 1 मार्च को दिल्ली पहुँचूगा।" मैंने उन्हें लिखा—"आई० आई० टी० कानपुर में 'तकनीकी हिन्दी का विकास' पर एक गोष्ठी होनी है अतः आप 14 मार्च को कानपुर पहुँचें।" मैं इधर से 15 मार्च को प्रातः कानपुर पहुँचा । मैं उन्हीं के कमरे में रुका। दो दिन तक अच्छा सत्संग हुआ। मेरे साथ कार से इलाहाबाद आये।
- 19 मार्च 1986 : स्वामी जी ने परिषद् में अपनी दक्षिण अफ्रीका यात्रा का वर्णन सुनाया। स्वामी जी ने इच्छा प्रगट की कि विज्ञान परिषद् में उनके लिये एक कमरा बनवाया जाय जिसके लिये रुपयों का प्रबन्ध वे अपने शिष्यों से धन माँगकर करेंगे। भाषण के दौरान कहा, " डर्बन में बूढ़ों की अच्छी परवरिश होती है। मन करता है वहीं मरूँ। उन्होंने यह भी इच्छा व्यक्त की कि जिस स्थल पर उन्होंने संन्यास लिया था, वहाँ पर पत्थर लगा दिया जाय।"
- 31 मार्च 1986 : स्वामी जी को बिहार सरकार से 15 हज़ार का पुरस्कार मिला था जिसे लाकर उन्होंने परिषद् को दान दे दिया।
- 21 अक्टूबर 1986 : स्वामी जी बहुत दिनों बाद प्रयाग आये। इस बार वे विज्ञान परिषद् के लिये 101 रुपये के 20 आजीवन सदस्य बना कर लाये थे।
- 23 अक्टूबर 1986 : स्वामी जी ने परिषद् में भाषण दिया। विषय था—"विज्ञान लेखन की भावी दिशाएँ।'
- 30 अक्टूबर 1986: "मुझे ब्लड प्रेशर रहने लगा है अतः मेरे पास कोई सोया करे। मैं 11 नवम्बर को करनाल जाकर मोतिय बिन्द का ऑपरेशन कराऊँगा और एक मास वहीं बिताऊँगा।"
- 31 मार्च 1987 : स्वामी जी साढ़े तीन मास बाद लौटे थे। वे आँख का ऑपरेशन कराने के बाद कलकत्ता, बंगलौर, साइंस काँग्रेस और फिर बम्बई गये। बोले, " इस बार will कर देना चाहता हूँ। अब मैं वह नहीं रहा। ऊपर सिर का भाग नीचे से समन्वय नहीं कर पाता। ऊपर चढ़ते समय भय लगता है। मैंने सोचा है परिषद् में ही एक कमरा नीचे बनवा लूँ। तीन हज़ार लाया हूँ। शेष का प्रबन्ध हो जावेगा।"
- 1 अप्रैल 1987 : मैं दिल्ली में आर्य समाज में स्वामी जी के पास रुका। स्वामी जी भाषण दे रहे थे- " तुम लोग यज्ञों को व्यावसायिक मत बनाओ, पुरोहितो को मत रखो। स्वयं यज्ञ करो। दयानन्द के मिशन को ध्यान में रखो। वेदों में ही सारा विज्ञान मत ढूँढ़ो। आज का आर्य समाज हिन्दू बन चुका है, वह कर्मकाण्ड में विश्वास करता है।"
- 13 जुलाई 1987 : मैने शीलाधर मृदा शोध संस्थान में डॉ० धर की स्मृति में एक पत्थर लगवाने के लिये कुलपति डॉ० मलिक को बुलाया था। स्वामी जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने वेद मंत्रों का उच्चारण किया।
- 28 फरवरी 1988 : स्वामी जी परिषद् आये। बताया कि 10 मार्च को दिल्ली में पहला डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान वे स्वयं देंगे।
- 2 मार्च 1988 : स्वामी जी के ज्येष्ठ पुत्र अरविन्द जी विज्ञान परिषद् आये। दोपहर का भोजन वहीं हुआ।
- 6 मार्च 1988 : विज्ञान परिषद् की एक बैठक में परिषद् की 75 वीं वर्षगाँठ मनाने के विषय में स्वामी जी के साथ मन्त्रणा हुई।
- 4 दिसम्बर 1988 : स्वामी जी की 'ऋतम्भरा ' कुटिया का उद्घाटन हुआ और विज्ञान परिषद् को समर्पण भी।

- 1 दिसम्बर 1988 : " भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन " पर राष्ट्रीय गोष्ठी का शुभारम्भ हुआ। स्वामी जी ने अन्तिम दिन ओजस्वी भाषण दिया।
- 20 दिसम्बर 1988 : स्वामी जी कुटिया में रहने लगे थे। बोले, " सी० एस० आई० आर० से एक भी जर्नल हिन्दी में नहीं छपा। इतना अँग्रेज़ी साहित्य भला हिन्दी में कैसे आ सकेगा? लगता है हिन्दी अनुवाद की ही भाषा बन कर रह जावेगी।"
- 22 सितम्बर 1989 : मैं दिल्ली गया था। एक दिन पूर्व डॉ० रमेश दत्त शर्मा के यहाँ फोन आया था कि स्वामी सत्यप्रकाश का नैरोबी में मूत्र बन्द हो गया अतः वे बम्बई के हिन्दुजा अस्पताल लाये गये हैं। उनके प्रोस्ट्रेट ग्लैंड का ऑपरेशन होना है।
- 30 जनवरी 1990 : स्वामी जी ने 30 जनवरी को पत्र लिखा जिसमें नये वर्ष की शुभकामनाओं के साथ सूचना थी कि वे 16 फरवरी को भुवनेश्वर से इलाहाबाद पहुँचेंगे।

फिर तो स्वामी जी स्थायी रूप से अपनी कुटिया में रहने लगे। उनके खान-पान की पूरी व्यवस्था थी। रात में उनके पास रहने के लिये नौकर भी था। आर्य समाज दिल्ली से सहगल जी स्वामी जी की व्यवस्था के लिये परिषद्, को कुछ धन भी देते रहे। यहीं से स्वामी जी ने अथर्ववेद के 4 खंड पूरे किये।

वे अपनी अन्तिम इच्छा, परिषद् में ही श्वास छोड़ने की, पूरी न कर पाये। हममें से बहुत से श्रद्धालु उनके अंतिम संस्कार में भी नहीं पहुँच पाये।

पृष्ठ 36 का शेष भाग

स्वामी जी को हिन्दी में विज्ञान का प्रचार-प्रसार करने हेतु पर्याप्त सम्मान मिला। हिन्दी संस्थाओं, प्रदेश सरकार, केन्द्र सरकार, वैज्ञानिक संस्थाओं तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हें समय-समय पर सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया। आर्य समाज में उनके योगदान को देखते हुए आर्य समाज, शांताक्रुज (बम्बई) द्वारा उन्हें वर्ष 1993 में वेद-वेदांग पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे विभिन वैज्ञानिक एवं सामाजिक संस्थाओं के आजीवन सदस्य तथा फेलो भी रहे। अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के कार्यकलापों में उपका सक्रिय योगदान रहा।

विज्ञान जगत् व आर्य समाज को उस समय गहरा आघात लगा, जब 18 जनवरी, 1995 को रात्रि 9 बजे वे चिर निद्रा में लीन हो गये। इस प्रकार उनके निधन से एक युग, स्वामी सत्यप्रकाश युग, का भी पटाक्षेप हो गया। और इसी के साथ राष्ट्र को स्वामी जी से जो और अपेक्षाएँ थीं उनका भी अंत हो गया।

सारा देश उनके निधन से मर्माहत हो उठा। स्वामी जी अब हमारे मध्य शरीर से तो नहीं हैं, लेकिन उनके द्वारा विज्ञान व आर्य समाज के क्षेत्र में किये योगदान की मधुर स्मृतियाँ अभी भी हमारे मन में जीवित हैं। उनके द्वारा दिये गये अमूल्य योगदान के लिये समस्त राष्ट्रवासी उनके चिर ऋणी रहेंगे।

अन्त में ऐसे मानव शिल्पी, 'यथा नामो तथा गुणः' को चरितार्थ करने वाले, राष्ट्रवादी, युग पुरुष व मनीषी स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती को मैं अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

पूज्य स्वामी जी

डॉ० रामकुमारी मिश्र

25, अशोक नगर, इलाहाबाद

बात सन् 1948-49 ई० की है। तब मैं 11 वीं कक्षा की छात्रा थी। छुट्टी का दिन, सम्भवतः रविवार, दोपहर का समय, अलोपीबाग का पैतृक निवास (डॉ० उदयनारायण तिवारी का निवास स्थान), तभी दरवाजा खटखटाने की आवाज आयी। बाहर आकर देखा तो भारतीय वेषभूषा में सुसज्जित खद्दर का कुर्ता, धोती, टोपी पहने एक सज्जन और उनके साथ एक महिला भी थीं। परिचय पूछने पर ज्ञात हुआ कि खद्दरधारी सज्जन इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के रसायन विभाग के प्रव्क्ता हैं और सीधे पल्ले की साड़ी और चश्मा धारण किये महिला उनकी पत्नी हैं। चूँकि बाबूजी उस समय घर पर नहीं थे अतएव मैंने उन्हें अन्दर बिठाया और आने का कारण पूछा। वे बोले, "हम लोग माघ मेले से आ रहे हैं। वहाँ खद्दर का प्रचार करने गए थे। लो इसे अपनी माँ को दे देना। अपने पिता जी से हमारा नमस्कार कहना और यह बताना न भूलना कि हम लोग आए थे।" और वे लोग चले गए।

मैंने उस खादी के सुन्दर वस्त्र (छींट) को माँ को दे दिया। उन्हें वह बहुत पसन्द आया। बाबूजी के घर लौटने पर और पूरा वृतान्त सुनाने पर पता चला कि खद्दरधारी महाशय स्वयं डॉ० सत्यप्रकाश जी हैं और विदुषी महिला श्रीमती प्रकाश आर्यकन्या पाठशाला की प्रिंसिपल हैं। कौतूहलवश जब मैंने बाबूजी के माघ की कठिन सर्दी में सज्जन के ऊनी वस्त्र न धारण करने का कारण पूछा तो वे बोले, "हाँ, डॉ० सत्यप्रकाश जी सर्दी-गर्मी, बरसात बारहों महीने बस खद्दर का सूती वस्त्र ही धारण करते हैं।" भारतीय संस्कृति के साक्षात् प्रतीक प्रकाश दम्पत्ति के प्रति मेरा मन श्रद्धा से भर उठा। मैंने सोचा अवश्य ही उन्होंने किसी विशेष उद्देश्य से ऐसा संकल्प लिया होगा। उसके बाद अनेक संदर्भों में डॉ० सत्यप्रकाश, उनके पिता जी के संस्कृत ज्ञान की चर्चा और उनकी पत्नी श्रीमती प्रकाश के मृदु व्यवहार सम्बन्धी बातें सुनने को मिलीं।

जून 1957 में जब मेरा विवाह इलाहाबद युनिवर्सिटी के रसायन विभाग के प्रवक्ता डॉ० शिवगोपाल मिश्र से हुआ और स्वामी जी ने विज्ञान परिषद् में सहयोगी रूप में कार्य भार सौंपा तभी अपनी ज्येष्ठ पुत्री की प्रथम वर्षगाँठ के अवसर पर विज्ञान परिषद् प्रांगण में रसायन विभाग के गुरुजनों से परिचय हुआ और सम्पर्क बढ़ा। हिन्दी को समुन्नत करने में स्वामी जी सभी को अपना सहयोगी बनाना चाहते थे और उनकी प्रेरणा से कई विद्वान इस दिशा में अग्रसर भी हुए। वे संस्कृत भाषा में तो पूर्ण निष्णात थे ही, रसायन विज्ञान को पूरी तरह से हिन्दी में पढ़ाने और पुस्तकें लिखने के पक्षधर भी थे। उन्होंने अँग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखीं और वे समय-समय पर विविध पुरस्कारों से सम्मानित हुए। उनका वैदिक ज्ञान तो अगाध था ही, उन्होंने वैदिक अंकगणित की प्राचीन पाडुलिपियों से बक्षाली म्युनिस्क्रिप्ट पुस्तक भी लिखी। वे कर्मकाण्ड विरोधी थे और खान-पान तथा आचार-विचार में आर्य समाज की पद्धति के समर्थक थे। वे योगशास्त्र के मर्मज्ञ थे और यौगिक क्रियाओं का प्रतिदिन के जीवन में उपयोग भी करते थे।

श्रीमती प्रकाश का हृदय उनके व्यक्तित्व के ही अनुरूप अत्यन्त उदार था। वे अत्यन्त मृदु स्वभाव की हंसमुख महिला थीं। उनके विशालकाय घर में पुस्तकों की व्यवस्थित लाइब्रेरी थी। बाहर विस्तृत लॉन, विविधि प्रकार के पुष्प और पीली नारंगियों से लदा बड़ा-सा संतरे का पेड़ था। इष्ट मित्रों को आमन्त्रित कर उन्हें विविध व्यंजन खिलाना इतना प्रिय था कि जो भी उनके यहाँ गया होगा उसके लिए उनके अतिथ्य सत्कार को सहसा भूल पाना कठिन होगा। एक आयोजन पर (जिसमें रसायन विभाग के अधिकांश अध्यापक पत्नी समेत आमन्त्रित थे) जाड़े की धूप में उन्होंने सारे पकवान लॉन में ही बनाए और वहीं सबने खाया। मुझे वह हर्षोल्लास से भरा हुआ अपूर्व दृश्य भुलाए नहीं भूलता। सभी स्त्रियाँ श्रीमती प्रकाश का हाथ बटाने में जुटी हुई थीं। बीच-बीच में हँसी के फौब्बारे छूट रहे थे। लॉन का बड़ा हिस्सा चूल्हे पर चढ़ी शाक- सब्ज़ियों, पूड़ी-कचौड़ी और दही-बड़े की खुशबू से सुगन्धित था। कचौड़ियाँ भी एक नहीं-पालक, बथुआ, मूली से निर्मित विविध प्रकार की।

ऐसा लग रहा था कि दूर से आए हुए लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर पिकनिक मना रहे हों। स्त्री, पुरुषों का ऐसा हर्षातिरेकपूर्ण दुर्लभ दृश्य मैंने पुनः कभी नहीं देखा।

वैसे तो डॉ० सत्यप्रकाश जी ने अनेक युवक-युवतियों का गठबन्धन कराया होगा किन्तु उनमें से कई ऐसे हैं जिसमें स्वामी जी ने लड़कियों का विवाह अपने निजी खर्च से पुत्रीवत् किया है, उन्हें वस्त्रालंकरण प्रदान कर पतिगृह विदा किया है और अपनी पूरी मित्र-मण्डली को विवाह में आमन्त्रित करके साक्षी भी बनाया है।

श्रीमती प्रकाश ने अपने दोनों बेटों को उच्च शिक्षा प्रदान करके उन्हीं की इच्छानुरूप विवाह करने की अनुमति भी दी। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र के पत्नी और पुत्री सहित (वेदेशी पत्नी) भारत आगमन पर जो स्वागत-सत्कार किया वह अविस्मरणीय है। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र के भारत वापस आने के पूर्व ही अपने भवन का भाग जहाँ उन्हें निवास करना था, विदेशी संस्कृति के अनुरूप निर्मित कराया ताकि विदेशी पुत्रवधू को किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न हो। उन्होंने यज्ञानुष्ठान कराकर विदेशी महिला का भारतीय नामकरण करते हुए उसे भारतीय बनाने का भी प्रयास किया। यह आयोजन अति भव्य था और श्रीमती प्रकाश की रुचि और उदारता का उदाहरण आज भी आमन्त्रित मित्रों के स्मृति पटल पर अंकित है।

उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र का विवाह भी उसकी इच्छा के अनुकूल ही किया और डॉ० सत्यप्रकाश जी वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने विवाह सम्पन्न होने के बाद तत्क्षण ही बिना किसी तर्क के वधू को अपने घर इसलिए ले आए क्योंकि इनकी दृष्टि में पर घर का मेहमान बनकर समय गँवाना सर्वथा अनुचित था। उन्होंने अपने छोटे पुत्र की पुत्रीरत्न का जन्मोत्सव भी बड़े धूम-धाम से मनाया जो अत्यन्त प्रशंसनीय और आदर्श था।

श्रीमती प्रकाश एक अत्यन्त ऊँचे विचारों वाली आदर्श विदुषी भारतीय महिला थीं। एक दिन जब मैंने उनके हाथ में ऊँन-सलाइयों से सफेद स्वेटर बुनते हुए बुनाई का जिक्र किया तो उन्होंने ढेर सारी बुनाइयों की मैगजीनें मेरे सामने रखते हुए कहा, "देखो कभी किसी से बुनाई मत पूछना।" मैंने उनकी सीख गाँठ बाँध ली। कुछ मैगजीनों के पते नोट किए और फिर मुझे किसी से पूछताछ की आवश्यकता नहीं पड़ी। कुछ दिन बाद वे अपने ज्येष्ठ पुत्र से मिलने के लिए डॉ० सत्यप्रकाश के साथ विदेश भी गई और वहाँ से वापस आने पर 'प्राची प्रतीची' नाम से एक पुस्तक भी लिखी।

डॉ० सत्यप्रकाश जी का दाम्पत्य जीवन सुचारु रूप से चल रहा था तभी 1964 में एक दिन श्रीमती प्रकाश के निधन का शोक समाचार सुनाई पड़ा। कानपुर में हृदय गति रुकने से अकस्मात् उनका देहान्त हो गया था। हम सबों को शोक-मग्न करके श्रीमती प्रकाश हमसे दूर हो चुकी थीं। डॉ० सत्यप्रकाश जी ने कानपुर जाकर ही उनका दाह-संस्कार कर दिया अतः हमारी आँखें उन्हें देखने से वंचित ही रहीं।

डॉ० सत्यप्रकाश जी का जीवन एकाकी हो चुका था और अध्ययन और लेखन उनका एकमात्र कार्य था। कुछ दिन बाद वे युनिवर्सिटी के रसायन विभाग के अध्यक्ष पद से सेवा-निवृत्त हुए और आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में जुट गए। देश-विदेश का भ्रमण करना तथा कभी रसायन

सम्बन्धी विषय को लेकर तो कभी आर्य समाज से सम्बन्धित विषय पर समय-समय पर भाषण देना और वेदों का सम्पादन करना उनका लक्ष्य बन गया। उनका छोटा बेटा परिवार सहित टाटा नगर में रह रहा था जहाँ वह इंजिनियर पद पर कार्यरत था और बड़ा लड़का परिवार सहित विदेश में । अतः स्वामी जी ने अपनी तथा श्रीमती प्रकाश की समस्त धनराशि, मय निवास स्थान के एक ट्रस्ट को सौंप दी और श्रीमती डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान के नाम से एक संस्था बना दी। यह संस्था विदुषी महिलाओं के साहित्यिक ज्ञान संवर्धन और पुस्तक प्रकाशन के निमित्त गठित हुई थी। तब डॉ० सत्य प्रकाश जी ने सन्यास लेने का संकल्प लिया।

डॉ० सत्यकाश जी के सन्यास ग्रहण का आयोजन 10 मई सन् 1971 ई० को आयोजित था। उस आयोजन पर उनके परिवार के सभी सदस्य कनिष्ठ पुत्र, पुत्रवधू प्रचुर संख्या में विज्ञान परिषद् के परिसर में उपस्थित थे। विज्ञान परिषद् प्रांगण में यज्ञवेदी निर्मित थी। सन्यास का कार्यक्रम आरम्भ हुआ और दीक्षा गुरु के आदेशानुसार सर्वप्रथम नाई द्वारा उनके शीश-केश अस्तुरा से साफ किये गये और तत्पश्चात् उन्हें श्वेत वस्त्र (धोती, कुर्ता, टोपी) के स्थान पर गेरुआ वस्त्र और कमण्डल प्रदान किया गया। यह कार्य डॉ० बाबूराम सक्सेना (गृहस्थ) ने सम्पन्न किया। तदुपरान्त उन्हें दीक्षा गुरु ने सन्यास के नियमों से परिचित कराते हुए जीवन की ऐषणाओं के परित्याग का आदेश देकर उन्हें 'स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती' उपाधि से विभूषित किया।

डॉ० सत्यप्रकाश जी काषाय वस्त्र और कमण्डल धारणा कर अब परिव्राजक बन चुके थे। उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में किन्हीं आदेशों का खंडन करते हुए निर्भीक शब्दों में कहा-

"जिन्होंने आज मुझे काषाय वस्त्र प्रदान किए उनका (डॉ० बाबूराम सक्सेना) विवाह कराकर मैंने ही एक दिन उन्हें गृहस्थ बनाया था और जिन ऐषणाओं के त्याग का मुझे आदेश मिला है उनमें से कुछ ऐषणाएँ ऐसी हैं जिनका त्याग असम्भव है। मेरे पिता के प्रति जो मेरा स्नेह है त्यागना सम्भव नहीं अतएव उसे मैं नहीं त्याग सकूँगा। "

उनकी निर्भीक वाणी में सच्चाई थी। मैं स्वयं विस्मित थी यह सोचकर कि क्या सन्यास ग्रहण करने मात्र से जीवन की समस्त ऐषणाओं का अन्त हो जाता है? क्या उसका लुप्तप्राय अंश भी अवशेष रूप में सन्यासी के मनोविकार में नहीं रहता? स्वामी जी का वह तर्कपूर्ण कटु सत्य प्रश्नचिन्ह बनकर रह गया। मुझे स्वामी जी का नाम और गुण तदनुरूप सार्थक जान पड़े।

स्वामी जी गृह त्याग कर यायावरी जीवन बिताते हुए देश-विदेश में भ्रमण करते हुए आर्य समाज का प्रचार करने लगे। तभी अचानक उनके छोठे पुत्र (जो की टाटा नगर में इंजीनियर थे) का निधन हो गया और पुत्रवधू तथा पौत्र-पौत्री की शिक्षा-दीक्षा का भार उन्हें वहन करना पड़ा। पुत्रवधू के निवास स्थान की समस्या को हल करने के लिए उन्हें स्वाध्याय संस्थान को प्रदत्त घर वापस लेकर पुत्रवधू को देना पड़ा। स्वामी जी अपने जीवन काल में ही गृहस्थ होकर योगी थे और सन्यासी और गृहस्थ का जो रूप उनके जीवन में पहले था वह अन्त तक बना रहा। दूसरों को ऐसा जीवन भले ही अटपटा जान पड़े किन्तु स्वामी जी के लिये वह कटु सत्य था। वे एक वैज्ञानिक थे और विज्ञान सत्य पर आधारित है अतः उनके समस्त विलक्षण कार्य विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

स्वामी जी जब भी अपने मित्रों के यहाँ आए मेरे यहाँ अवश्य आए। मेरा घर देखकर कहते, "तेरा घर छोटा है, अच्छा है, कम से कम सफाई की तंगत तो नहीं होती।" एक बार जब स्वामी जी मेरे घर पधारे और भोजन करते समय घी से चुपड़ी रोटी देखी तो हँसकर बोले, "रूखी-सूखी खाय के ठंडा पानी पी, देख परायी चूपड़ी मति ललचावे जी।" और सभी लोग जोर-जोर से हँसने लगे।

जब मुझे हिन्दी विभाग में श्रीमती डॉ० सावित्री श्रीवास्तव की रुग्णावस्था में उनके रिक्त स्थान पर क्लास लेने को कहा गया और तत्सम्बन्धी निर्देश प्राप्त करने के लिये मैं डॉ० शैलकुमारी जी से मिलने गई और स्वामी जी से बातें की तो बोले, "इसके लिये किसी से क्या मिलना। पढ़ाना तो एक कौशल है।"

इलाहाबाद युनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग में नियुक्ति के पूर्व ही उन्होंने 'श्रीमती रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान' में हिन्दी साहित्य के लेखन के लिए मुझे संयोजिका बनाया और साहित्य लेखन में रुचि रखने वाली महिलाओं से सम्पर्क स्थापित करने का आदेश दिया। लेखिकाओं ने जो शोधपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किए उन्हें संस्थान द्वारा प्रकाशित किया गया। स्वामी जी स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष लाना चाहते थे और उनका घर तक सीमित रहना उन्हें प्रिय नहीं था। उन्होंने दर्शनशास्त्र, इतिहास और रसायनशास्त्र सम्बन्धी शोध निबन्धों का वाचन संस्थान में सम्पन्न कराकर पुस्तककार प्रकाशित किया। उन्हें समय समय पर इष्ट मित्रों से मिलना, उनके साथ भोजन करना और ज्ञान चर्चा करना अधिक पसन्द था। वे जहाँ रहते ग्रन्थों से घिरे कार्यरत दिखाई पड़ते। वेदों के वे प्रकाण्ड विद्वान थे और वेदों की व्याख्या और प्रकाशन में वे अन्त तक लगे रहे।

जब स्वामी जी कटरा आर्यसमाज भवन को छोड़कर विज्ञान परिषद् के ऊपरी कक्ष में आकर रहने लगे किन्तु वृद्धावस्था के कारण वहाँ रहना कष्टसाध्य जान पड़ा तो उन्होंने अपने रहने के लिये विज्ञान परिषद् प्रांगण में एक कुटिया बनाने का निर्णय लिया। उनके शिष्यों से प्राप्त धन राशि से उस स्थान का निर्माण आरम्भ हो गया और ढाँचा तैयार होते-होते धनराशि समाप्त हो गई। एक दिन जब मैं विज्ञान परिषद् पहुँची तो वे रुष्ट दिखायी पड़े। मुझसे रोषपूर्ण शब्दों में बोले, "तुझे घर चाहिए? तुझे पता है कि वह घर बेली रोड स्थित मैंने किस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके बनवाया था?" मैं स्वामी जी के प्रश्नों को सुनकर स्तब्ध थी। मैंने कहा, "कैसा घर? किसका घर ? मेरे पास तो अपना घर है। मुझे घर क्यों चाहिए?" और मैं शान्त भाव से उनके चेहरे के भावों को पढ़ने लगी। फिर वे बोले- "मैंने उस लड़के (अशोक कुमार गुप्ता) से कहा था- 50 हजार रुपये मेरे पास हैं, उसी में कुटिया का निर्माण होगा। सब पैसा खर्च हो गया और घर नहीं बना। अब तुम लोग जाओ और कहीं से पैसा लाकर उसके बनने का प्रबन्ध करो।"

मैंने उनकी उद्विग्नता को पूरी तरह समझ लिया जो धोखे से मेरे सिर मढ़ी गयी थी। मैंने कहा- "स्वामी जी 50 हजार रुपये में आपका पूरा घर बनकर खड़ा हो गया, यह बड़ी बात है। शायद आपको यह नहीं मालूम कि आज कल घर बनवाना कितना मुश्किल है। हर चीज कितनी मँहगी है। रही हम लोगों के माँगने की बात तो वह सम्भव नहीं है क्योंकि हम लोगों ने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया, पाने की इच्छा नहीं की। अब इस उमर में यह होने से रहा। आप व्यर्थ परेशान हैं। आपके शिष्य और इष्ट मित्र अवशय ही इसे पूरा करने में सहयोग देंगे। आप निश्चिन्त रहें।" स्वामी जी बोले- "तूने मेरी कुटिया देखी है?" मैंने कहा, "नहीं"। वे बोले - "अच्छा, जा, मेरी कुटिया देखकर आ।" मैंने जाकर देखा वह कुटिया क्या थी अच्छा खासा मकान था जिसकी चर्चा मैंने आने पर उनसे की। इस पर वे बोले, "वही तो मैं नहीं चाहता था।" घर आकर मैंने सारी बातें कह सुनायी और गुप्ता जी को बुलाकर स्वामी जी की उद्विग्नता का हाल कह सुनाया। गुप्ता जी (एग्रिकल्चरल इंस्टीयूट में रसायन विज्ञान में रीडर, मेरे पति डॉ० शिवगोपाल मिश्र के शिष्य) हँसने लगे और बोले- "सम्भवतः इसकी आकार वृद्धि को अनावश्यक जानकर स्वामी जी रुष्ट हैं।" स्वामी जी के शिष्यों ने कुटिया बनने में पूरा सहयोग किया और वह जल्दी ही बनकर तैयार हो गई। शिष्यों ने जयपुर से संगमरमर भेजा और शीघ्र ही सुन्दर फर्श के साथ कुटिया चमक उठी। स्वामी जी उसमें निवास करने लगे। नौकरों की व्यवस्था से उनका जीवनक्रम सुचारु रूप से चलने लगा। समय-समय पर विज्ञान परिषद् में आयोजित वैज्ञानिक गोष्ठियों में स्वामी जी भाग लेते और मित्रों से मिलकर प्रसन्न होते।

सहसा स्वामी जी रुग्ण हो उठे और इतना अधिक कि इलाहाबाद में स्वस्थ रहना कठिन हो गया। तभी उनके एक शिष्य उन्हें अपने साथ बम्बई ले गये जहाँ से वे पूरी तरह स्वस्थ होकर प्रयाग वापस आए। स्वामी जी अपनी कुटिया "ऋतम्भरा" को विज्ञान परिषद् को दान स्वरूप दे चुके थे। उनकी बढ़ती हुई उम्र के साथ आँखों की रोशनी में कमी आने लगी और उनकी स्मरण शक्ति भी कम हो रही थी। वे कुछ-कुछ भूलने भी लगे थे। ऐसे समय का लाभ स्वामी जी के कुछ लोभी शिष्यों एवं मित्रों ने सुअवसर जानकर खूब उठाया। जहाँ कहीं से पुस्तकों की रायल्टी की धनराशी आती स्वामी जी को गुमराह करके चेक लिखाकर हस्ताक्षर करा लेना न भूलते। बेहिचक पैसा ऐंठना ऐसे शिष्यों के बाँए हाथ

का खेल था। कई शिष्य ऐसे थे जिन्हें स्वामी जी को शान्तिपूर्वक रहना असहय लगा। वे उन्हें बहला फुसलाकर अमेठी ले गए। विज्ञान परिषद् के फोन द्वारा उनका हाल चाल मालूम होता रहा। कभी-कभी पत्रों से भी समाचार मिल जाता। बारम्बार यही सुनाई पड़ता कि स्वामी जी अब पूर्ण स्वस्थ हैं और घूमने जाते हैं। एकाध बार उनके शिष्य उनसे मिलने अमेठी गए भी और उन्हें यही दिखाई पड़ा कि उनका स्वास्थ्य क्रमशः दिनोदिन गिर रहा है। स्वामी जी वहाँ कैसे रहे, यह ईश्वर ही जानता है क्योंकि अमेठी में जिस स्थान पर स्वामी जी निवास कर रहे थे, वहाँ आसानी से पहुँच पाना सामान्य व्यक्ति के लिये सम्भव न था। एक दिन वे इस लोभी संसार से मुक्त होकर सदैव के लिये विदा हो गए।

स्वामी जी का जीवन एक रहस्यमय पहेली बनकर रह गया जो गृहस्थ जीवन से मुक्त नहीं होना चाहता था और वैराग्य तो उसके मूल में था जिसकी प्राप्ति उन्हें जीवन के आरम्भ में ही हो चुकी थी।

ऐसे पूज्य स्वामी जी को मेरा शतशः प्रणाम।

मेरे गणपति मेरे आराध्य

डॉ० रामगोपाल

संयुक्त निदेशक, रक्षाप्रयोगशाला, जोधपुर-342011
उपसभापति, विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

डॉ० सत्यप्रकाश-स्वामी सत्यप्रकाश मेरे गणपति मेरे आराध्य ही थे। सभी मांगलिक एवं धार्मिक कार्यों में प्रथम आराधना हमारी संस्कृति में वक्रतुंड महाक्राय व लम्बोदर की होती है। मुझे भी ऐसा ही सुयोग रसायनसास्त्र के अनुसंधान और विकास के प्रथम सोपान पर मेरे आराध्य के दर्शन का मिला। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर (रसायन शास्त्र) में प्रवेश हेतु अपने जन्म स्थान बाँदा (उ० प्र०) के विख्यात वकील व स्वामी जी के संबंधी स्व० भूपेन्द्र निगम का पत्र जुलाई सन् 1960 में लेकर डॉ० साहब से मिला तो उनका व्यक्तित्व, स्नेहिल स्वभाव एवं मार्ग-दर्शन में सदैव तत्पर गणों (मनुष्यों) में श्रेष्ठ इस गणपति के प्रति मैं श्रद्धावत समर्पित हो गया। यह श्रद्धा स्वामी जी के सानिध्य से नित-प्रति पुष्ट होती गयी और भक्ति में साकार हो उठी। मुझे मेरे आराध्य गणपति बिना अनुसंधान के ही मिल गए थे। तत्पश्चात् मेरे जीवन-पथ को स्वामी जी ने अपनी कृपा से आलोकित रखा, वे संस्मरण मेरे लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद हैं। सफेद खादी की धोती, कुर्ता व टोपी और गोल चश्मा संन्यास ग्रहण करने तक पहने मैंने देखा। यह विज्ञान ऋषि, वेदज्ञ और परिव्राजक अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक एक महान प्रेरक, मार्गदर्शक और मेरे आराध्य बने रहे। जीवन पर्यन्त स्वामी जी के आदर्श और प्रतिपादित जीवन के सत्य-प्रकाश मेरा मार्ग सदैव प्रशस्त करता रहेगा ऐसी मेरी आस्था है।

स्वामी जी ने सन् 1960-61 में मुझे स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष (स्नातकोत्तर कक्षाओं के समय) भौतिकी रसायन पढ़ाया था। कक्षाएँ लेते समय बड़े सहज एवं वैज्ञानिक ढंग से गहन एवं गूढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्तों को वे एक के बाद एक इस तरह स्पष्ट करते जाते थे कि उनकी छाप मस्तिष्क पर सदैव के लिये अंकित हो जाती थी। अध्ययन के साथ-साथ नोट्स लिखाने में भी उनको कोई संकोच नहीं होता था। एक सहृदय आचार्य

की भाँति मुझे तो उस समय दुर्लभ ग्लासटन, ए० जी० मी , आई० आर० फिन्नार, तथा अन्य प्रतिष्ठित लेखकों की पुस्तकें भी मुझे अपने घर ले जाकर, अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय से उपलब्ध कराते थे। इस आचार्य का बेली रोड पर स्थिति आवास भी ऋषि परम्परागत आश्रम की भाँति था। वहाँ मुझे रसायनशास्त्र के अतिरिक्त धर्म, प्राकृतिक चिकित्सा, वेद, उपनिषद् तथा अन्य वैदिक साहित्य का अपार भंडार सहज ही प्राप्त हो गया था। एक प्रकार से इस आचार्य ने मुझे आर्य संस्कृति से दीक्षित कर आर्य संस्कृति के शाश्वत् स्रोत में आकंठ डुबो ही दिया। उस समय स्वामी जी के माता-पिता तथा पत्नी सभी का मुझे आशीर्वाद एवं भरपूर स्नेह मिला। स्वामी जी के पिता श्री पंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय, जिन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' का बहुत ही सरल एवं मार्मिक अनुवाद भी कियाथा, प्रायः किसी न किसी जिज्ञासु की शंका-समाधान करते मिलते थे। मुझे ऐसा स्मरण हैं कि पंडित गंगाप्रसाद जी हिन्दी, अँग्रेजी व संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, फारसी के भी प्रकांड विद्वान थे। उनकी पुस्तक 'मांस खाएँ या घास' में मौलवी व पंडित के मध्य पार्क में वार्तालाप द्वारा इतने सहज ढंग से मांसाहार छोड़ने का संदेश मिलता है कि पाठक बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता। अनेक मांसाहारी को शाकाहारी बनाने में इस वैचारिक पुस्तक ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी पत्नी डॉ० रत्नकुमारी, एम० ए० डी० लिट स्वामी जी की प्रेरणा-स्रोत ही नहीं बल्कि सच्ची सहधर्मिणी सिद्ध हुईं। घर में आयोजित होने वाले वैदिक कार्यों में उनका पूर्ण सहयोग था। मुझे स्वामी जी के घर में आयोजित होने वाले यज्ञ-अनुष्ठानों में भी भाग लेने का अवसर मिला। मुझे कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि वैदिक धर्म के प्रति मैंने प्रथम पाठ स्वामी जी के घर पर ही सीखा। मानवीय शाकाहार के प्रचार-प्रसार में मैं विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं से जुड़ा, ये संस्कार मेरे मूल में थे।

सन् 1962 में रसायनशास्त्र (कार्बनिक) में स्नातकोत्तर डिग्री लेने के उपरान्त मैंने पी०एच-डी० करने का निर्णय लिया तो उस समय स्वामी जी उत्तर प्रदेश सी० एस० आई० आर० के अन्तर्गत् शोधकार्यों के लिये परियोजनाएँ स्वीकृत करते थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उस समय प्लान्ट कमिस्ट्री पर अधिक जोर था, पर स्वामी जी ने मुझे उससे हटकर अकर्बनिक सिन्थिसिस पर शोधकार्य करने का सुझाव दिया और मुझे प्रो० पूर्णचन्द्र गुप्त के पास मार्गदर्शन हेतु भेजा व यू० पी० सी० एस० आई० आर० से छात्रवृत्ति के अंतर्गत् आर्थिक सहयोग का भी आश्वासन दिया। शोधकार्य सफल रहा और मेरे शोधपत्र अच्छे जर्नल्स से छपे भी। इस कार्य की सफलता से मुझे रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में व्याख्याता पद हेतु साक्षात्कार के लिये बुलाया गया पर सी० एस० आई० आर० की क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, जोरहट में मेरा चयन वैज्ञानि 'बी' (व्याख्याता समकक्ष पद) पर हुआ। मेरे पी० एच-डी० सुपरवाइजर प्रो० गुप्त, हास्टल वार्डन प्रो हीरालाल जी निगम और स्वामी जी के साथ ही साथ मेरे परम हितैषी व पूज्य प्रो० जे० डी० तिवारी जी के सुझाव के अनुसार मैं जोरहट चला गया। इलाहाबाद छोड़ना मेरे लिये लाभदायक सिद्ध हुआ। आज मैं रक्षा अनुसंधान विकास संगठन के वर्तमान निर्देशक पद पर अपनी उपलब्धियों के साथ संतुष्ट हूँ।

मई, 1966 में मेरा विवाह हुआ तो स्वामी जी का आशीर्वाद लेने मैं अपनी पत्नी के साथ उनके घर गया था। मेरी पत्नी डॉ० सुशीला राय उस समय एम० एस-सी० (रसायनशास्त्र) जबलपुर विश्वविद्यालय से कर रही थीं। स्वामी जी ने रसायनशास्त्र परिवार के दो सदस्यों को गृहस्थाश्रम में प्रवश करने के साथ अपने घर के आश्रम में भी प्रवेश ही नहीं दिया परन्तु एक सप्ताह हमें वहाँ रहने का आदेश दे कहीं यात्रा में विदेश चले गये थे। अपने अमूल्य ज्ञान के भंडार निजी पुस्तकालय का अवलोकन कराया और हमारा यह स्वामी जी के निवास पर बीता प्रथम सप्ताह सरस्वती मंदिर का अक्षुण्य प्रसाद स्वरूप धरोहर बना हुआ है।

स्वामी जी का ब्रह्ममुर्हूत में उठना, प्रातः काल ही पत्रों का उत्तर देना और पुस्तकें लिखने का नियमित अनुशासित जीवन था। दावात में स्याही, ताँबे का 'जी' निब लगा कलम (होल्डर) और लाल रंग का सोख्ता लगा अर्द्धचंद्राकार सोख्ता पैड मेरी स्मृति में अभी भी सजीव हैं। वह बरामदे का कोना जहाँ से गेट तक निहारती उनकी आँखें जैसे मुझे अभी भी आमंत्रण दे रही हैं। यही बैठकर वे सुबह नाश्ता करते। प्रायः

रसायन विभाग के बरामदे में अध्यक्ष के कक्ष के सामने भी स्वामी जी को मैंने अल्पाहार में सात्विक भोजन करते देखा है। कच्चा भोजन, फलों में अमरूद और म्योर कॉलेज की कैन्टीन के पांडुरंग का डोसा उनका प्रिय भोजन था। स्वामी जी खाने के शौकीन थे। मिष्ठान उन्हें अत्यन्त प्रिय था। मीठा बोलते भी थे पर असत्य वचन से रूष्ट भी हो जाते थे। संभाषण की कला में अत्यन्त प्रवीण, सभी आयु वर्ग का मन मोह लेते थे।

सन् 1972 में स्वामी जी से इलाहाबाद में वैवाहिक कार्यक्रम के माध्यम से एक अटूट संबंध स्थापित हो गया। यह विवाह था मेरे अनुज इंजीनियर रामेश्वर राय का जो कि आर्य कन्या महाविद्यालय, इलाहाबाद के पड़ोस में स्थित मुट्ठीगंज के प्रतिष्ठित उद्योगपति स्वर्गीय गंगा प्रसाद जी जायसवाल, उमाशंकर ऑयल मिल, काली बाड़ी में उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुश्री कुसुम लता जायसवाल के साथ सम्पन्न हुआ था। यह मांगलिक कार्य आर्य समाज की परम्परा के अनुसार तो किया ही गया किन्तु जो विशेष उल्लेखनीय बात है, वह यह कि स्वामी जी ने वर-वधू को आशीर्वाद् देते हुए बारातियों को 'सत्यार्थ प्रकाश' की एक-एक प्रति अपने कर कमलों से सप्रेम भेंट की थी। यह अमूल्य धरोहर मेरे पास, मेरे संबंधियों और बाँदा (उ० प्र०) नगर के लोगों के पास अभी भी सुरक्षित है। अनेक लोगों ने इसका पठन-पाठन कर अपने परिवार को लाभान्वित किया है।

'विज्ञान परिषद् प्रयाग' के कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु स्वामी जी ने अनेक वैज्ञानिकों को प्रेरित किया। इलाहाबाद छूटने के उपरान्त परिषद् से कट-सा गया था पर स्वामी जी की अनुकंपा और प्रारब्ध मुझे लगभग 10 वर्ष पूर्व पुनः परिषद् प्रांगण में ले आया। 'राजीव गाँधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन' के पश्चिमी अंचल के क्षेत्रीय केन्द्र के समन्वयक के रूप में सन् 1988 में मैं कलकत्ता में एक सप्ताह का 'जल गुणवत्ता जाँच शिविर' सम्पन्न कराकर वापिसी यात्रा में रुका और परिषद् द्वारा आयोजित 'भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन' पर विचार-विमर्श,11-12 दिसम्बर 1988 गोष्ठी में सम्मिलित हुआ एवं 'हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषाओं का विज्ञान के प्रचार-प्रसार और औद्योगिकीकरण में योगदान' विषय पर पत्रवाचन भी किया। स्वामी जी व डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी से विचार-विमर्श हुआ और 2-8 दिसम्बर 1990 में परिषद् भवन में वैज्ञानिकों, समाज-सेवी संस्थाओं, शोध छात्रों और अध्यापकों के लिये जल मिशन के अंतर्गत् एक शिविर, जलगुणवत्ता जाँच पर आयोजित करने का निर्णय लिया गया। पूर्णतया हिन्दी भाषा में आयोजित इस शिविर में व्याख्यान, प्रायौगिक कक्षाएँ और प्रदर्शन स्वामी जी के सानिध्य में ही हुए। स्वामी जी कक्षाओं में आकर बैठते और बड़े मनोयोग से एक जिज्ञासु की भाँति श्रवण करते । व्याख्यान के उपरान्त अक्सर पीठ ठोंकते तो कभी शब्द उच्चारण शुद्ध करते । वे भाषा-विज्ञान के प्रकांड पंडित थे और रसायनशास्त्र के पूर्ण मर्मज्ञ। लगभग 110 पेज की हिन्दी में टंकित व्याख्यान पुस्तिका व रक्षा प्रयोगशाला जोधपुर द्वारा विकसित रासायनिक व सूक्ष्मजीवीय जलगुणवत्ता परीक्षण किट का अवलोकन कर स्वामी जी ने मुझे प्रशस्ति दी, उससे मेरा आत्मबल बढ़ा । इसी प्रकार की तकनीक और लेखन की उन्होंने आज के समाज के लिये आवश्यकता बताई थी। कार्बनिक रसायन में उन्होंने स्नातकोत्तर, अकार्बनिक रसायन में पुस्तक लेखन और भौतिक रसायन में शोध के साथ विभिन्न विषयों में स्वामी जी का अधिकार था। वेदों पर उनके प्रमाणिक प्रवचनों और लेखन की मौलिकता पर विद्वान नतमस्तक हैं। हिन्दी में विज्ञान का प्रचार-प्रसार हो, घर-घर में आर्यवाणी-वेदवाणी गूँजे और परंपरागत भातीय संस्कृति फले-फूले इसके लिये स्वामी जी ने अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। मुझे और मेरी पत्नी को प्रेरित करते हुए परिषद् का मंच प्रदान किया और हमारे कार्यों को परिशोधित करते हुए अभिव्यक्ति के अवसर दिये, प्रशस्तियाँ दीं और वरिष्ठ विज्ञान सेवकों के साथ लगा दिया कि भटक न जाएँ। मैं कैसे भूल सकता हूँ वह चिरस्मरणीय दिन, 8 दिसम्बर 1990 जब मंच पर स्वामी जी के साथ प्रो० टी० पति (कुलपति), प्रो० चन्द्रिका प्रसाद, प्रो० रामदास तिवारी, प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्त, प्रो० शिवगोपाल मिश्र और प्रो० हनुमान प्रसाद तिवारी विराजमान थे। अवसर था डॉ० गोरखप्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला का प्रथम व्याख्यान, स्वामी सत्यप्रकाश द्वारा जिसकी अध्यक्षता का भार मुझ अकिंचन पर स्वामी जी व डॉ० मिश्र ने स्नेहवश सौंपा था। मंच का यह चित्र मेरी सबसे मूल्यवान धरोहर है। मैं व मेरी पत्नी परिषद् की सेवा में कृत संकल्प हैं। मेरे आराध्य को यही मेरी भेंट है और स्वामी जी को यही सच्ची श्रद्धांजलि है।

अविस्मरणीय यादें

कुमारी डॉ० विभा मिश्र

प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद- 2
25, अशोक नगर, इलाहाबाद- 1

विज्ञान परिषद् के परिसर में पहली बार जब मैंने प्रवेश किया, मेरी आयु 8-9 वर्ष की रही होगी। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते ही मेरी दृष्टि वीथिका में लगे अनेक चित्रों की ओर गई। मैं सहजही अपने पापा से पूछ बैठी, "ये चित्र किन व्यक्तियों के हैं, तथा इनमें से टोपीधारी व्यक्ति कौन महाशय हैं?" पापा ने बताया कि सभी चित्र विज्ञान परिषद् के सभापतियों के हैं औ तुम जिस चित्र के बारे में पूछ रहीं हो वह डॉ० सत्यप्रकाश जी का है। डॉ० सत्यप्रकाश नाम सुनते ही मैं प्रसन्नता से खिल उठी। "अरे! हमारी विज्ञान पुस्तक के लेखक का नाम भी तो यही है।" पापा जी मुझे आश्वस्त करते हुए बोले, "हाँ! यह उन्हीं का चित्र है।"

उसके बाद मैं कई बार विज्ञान परिषद् में आई किन्तु डॉ० सत्यप्रकाश जी से भेंट हुई हो ऐसा याद नहीं पड़ता। हाँ, वह घटना अवश्य याद है जब मेरी माँ उनके संन्यास ग्रहण समारोह में गई थीं। उन्होंने आकर बताया था कि डॉ० सत्यप्रकाश जी ने संन्यास ले लिया है और अब वे स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती हो गये हैं।"

संन्यास ग्रहण करने के बाद स्वामी जी ने वेदों का गहन अध्ययन किया, पुस्तकें लिखी तथा देश-विदेश की यात्राएँ कीं- यह सभी बातें मुझे अपने पापा से समय-समय पर मालूम होती रहीं। एक दिन अचानक ही स्वामी जी हमारे घर पधारे। कड़ाके की ठंडक के बावजूद भी उन्होंने कोई ऊनी कपड़ा नहीं पहना था। देखकर आशचर्य हुआ। भोजन के उपरान्त हम सबसे बातें की। स्वामी जी का यह पहला प्रत्यक्ष दर्शन था, जो बचपन में देखे हुए उस चित्र से नितान्त भिन्न था। टोपी के स्थान पर मुंडित शीश एवं गेरुवे वस्त्र।

इसके बाद तो विश्वविद्यालय से आते-जाते विज्ञान परिषद् में स्वामी जी से अक्सर ही भेंट हो जाती। अपने शोध कार्य के दौरान भी मैं स्वामी जी से मिली। उन्होंने मेरे शोधकार्य का विषय पूछा और मुझसे प्रश्न किया, "घोषिताराम क्या है? " मैंने उत्तर दिया, " यह कौशाम्बी का एक प्राचीन बौद्ध बिहार है।" मैंने उन्हें घोषिताराम अभिलेख, जो मुझे कण्ठस्थ था, सुनाया तथा घोषिताराम जैसे अन्य विहारों के नाम भी बताये। स्वामी जी बोले, " मैं तेरी परीक्षा ले रहा था। तू पास हो गई।" उसके पश्चात् वेदों में वर्णित सिनीवाली देवी से सम्बद्ध समस्त सन्दर्भ स्वयं ही ढूँढ़कर मुझे दिये। धन्य है ऐसा व्यक्ति।

स्वामी जी के अभिनन्दन ग्रन्थ में छपे एक चित्र को देखकर मेरी भी इच्छा हुई कि मैं भी उनका एक चित्र बनाऊँ और एक दिन उनका चित्र बना-कर स्वामी जी के पास ले गई। चित्र को देखकर उन्होंने प्रशंसा की और बोले "क्या मैं ऐसा ही दिखता हूँ? " चित्र पर उन्होंने हस्ताक्षर करके स्वस्ति वचन लिखे स्वस्ति पन्थामनुचरेम 15.9.84, एक अन्य चित्र भी उन्होंने दिखाया जिसे उनके किसी विदेशी भक्त ने बनाकर भेजा था। मेरे कहने पर कि यह आपके रूप से भिन्न है वे खूब हँसे थे।

स्वामी जी अतिथि को बिना कुछ खिलाये नहीं जाने देते थे। उनका बिस्कुट का वह डिब्बा जिसमें पचासों तरह के बिस्कुट थे, क्या कभी भूला जा सकता है? मैंने भी अपनी पसन्द के बिस्कुट खाये।

एक बार उन्होंने छूरी-चम्मच का बड़ा-सा डिब्बा दिखाया तो मैं दंग रह गई। बात यों हुई कि मैं अपनी माँ के साथ उनके लिये भोजन तो ले गई थी परन्तु चम्मच ले जाना भूल गई थी।

वे सदैव मुझे 'बेटी' कहकर बुलाते थे। मेरे दृष्टिहीन हो जाने पर उन्होंने मेरा नाम "प्रज्ञा चक्षु" रखा।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में स्वामी जी बीमार होकर अमेठी चले गये थे अतः उनसे पुनः भेंट नहीं हो पाई। उनकी मृत्यु का दुःखद समाचार मुझे जोधपुर में मिला। मैंने मन ही मन उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित किये।

स्वामी जी की यादें सदैव अविस्मरणीय रहेंगी।

स्वामी जी से जुड़ी कुछ भूली-बिसरी स्मृतियाँ

डॉ० दिनेश मणि

प्रवक्ता, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
संयुक्त मन्त्री एवं सहायक सम्पादक 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

काल के शाश्वत नियम को जानते हुये भी आत्मीय एवं प्रियजनों की स्वाभाविक मृत्यु भी एक अविश्वसनीय (किन्तु सत्य) तथा आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना बन जाती है। 18 जनवरी 1995 को एच० ए० एल० कोरवा (अमेठी) में दीनानाथ जी के निवास पर स्वामी जी के शरीर त्याग देने का दुखद समाचार प्राप्त होने पर ऐसा ही हुआ। यूँ तो स्वामी जी पिछले पाँच वर्षों से अस्वस्थ चल रहे थे। किन्तु मृत्यु के दो वर्ष पूर्व वह लगभग बिस्तर पर बेड-रिडेन (Bed-ridden) ही थे। वर्ष 1990 से स्वामी जी अक्सर परिषद् परिसर में स्थित 'ऋतम्भरा कुटीर' में ही रहा करते थे। इन्हीं दिनों स्वामी जी ने अचानक अपने सारे दाँत उखड़वाकर नये कृत्रिम दाँत लगवाने का निर्णय ले लिया और इसे वास्तविक रूप भी दे दिया। सिविल लाइन इलाहाबाद स्थित डॉ० चड्ढा क्लीनिक में स्वामी जी ने यह कार्य करवाया। अपने गुरु डॉ० शिव गोपाल मिश्र जी के कहने पर मैं स्वामी जी के साथ क्लीनिक जाया करता था और वापस आने पर उन्हें ठंडा दूध, जूस, दवाइयाँ दिया करता था।

1991 में कुछ महीने के लिये स्वामी जी को डॉ० प्रशस्यमित्र रायबरेली ले गये। अप्रैल माह में डॉ० शिवगोपाल मिश्र जी के साथ मैं भी स्वामी जी से मिलने रायबरेली गया। मुझे देखकर स्वामी जी ने डॉ० साहब से पूछा- "यह कौन है?" डॉ० साहब ने मज़ाक करते हुये कहा- "यह दिनेश मणि है जिसने आपके सारे दाँत उखड़वा दिये।" यह सुनकर स्वामी जी सहित हम सब लोग हँसने लगे।

वर्ष 1991 में ही स्वामी जी वापस रायबरेली से विज्ञान परिषद् प्रयाग आ गये और ऋतम्भरा कुटीर में रहने लगे। मैं सात-आठ महीने लखनऊ (उ० प्र० कृषि अनुसंधान परिषद्) में रहकर जब पुनः इलाहाबाद आ गया तो विज्ञान परिषद् में ही रहने के कारण सुबह-शाम (यहाँ तक कि देर रात तक) मैं स्वामी जी के पास बैठकर उनके अनुभवों से लाभ उठाया करता था। इन दिनों स्वामी जी की स्मरण-शक्ति में कमी आने लगी थी। दृष्टि भी कमजोर हो चली थी। मगर वाक्पटुता कुछ ज्यादा ही हो गयी थी। एक दिन स्वामी जी ने मुझसे कहा- "तुम यहाँ (विज्ञान परिषद् में) क्यों रहते हो।" मैंने कहा- "मैं यहाँ का संयुक्त मन्त्री हूँ इसलिये यहाँ रहता हूँ।" यह सुनकर स्वामी जी ने आवेश में आते हुए

कहा- "मैं किसी मन्त्री-वन्त्री को नहीं जानता। तुम परिषद् के लिये क्या करते हो?" जब मैंने स्वामी जी से कहा कि मैं विज्ञान परिषद् के लिये अवैतनिक रूप से लगभग सारे कार्यों (यथा-विज्ञान पत्रिका के लिये लेख लिखना, सम्पादन-प्रकाशन में सहयोग, पत्रों के उत्तर देना इत्यादि) में रुचि लिया करता हूँ तब वह प्रसन्न हुये और बोले, "मैंने भी परिषद् में विज्ञान के सम्पादन के साथ-साथ उसके पते चिपकाने, भेजने आदि का भी कार्य किया है।"

फरवरी 1993 में स्वामी जी को दीनानाथ जी अमेठी (सुल्तानपुर) ले गये तब स्वामी जी लगभग स्मृति क्षीण हो चुके थे। 27 मई को मेरे गुरू डॉ० शिवगोपाल मिश्र मुझे साथ लेकर स्वामी जी से मिलने अमेठी गये। वहाँ हम लोग एक रात रुके। डॉ ० साहब रात भर जाग कर स्वामी जी से उनकी कुशल क्षेम पूछते रहे।

ऐसी ही कई स्मृतियाँ हैं मेरी स्वामी जी के साथ, किन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण है स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर उनकी दिनचर्या, व्यवहार- शैली, कार्य करने की क्षमता, अदम्य साहस, निर्भीकता, भारतीयता देखकर एक सुखद आश्चर्य हुआ करता है कि विज्ञान पढ़ने-पढ़ाने वाला कोई व्यक्ति भारतीय संस्कृति का इतना बड़ा पोषक हो तो वह निः सन्देह प्रशंसा का पात्र है। यहाँ एक बात और स्मरण रहे कि स्वामी जी को विज्ञान के अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, दर्शन तथा पुरातत्व पर भी समान अधिकार था जो कि उनके कृतित्व से सुस्पष्ट है।

परिषद् के प्रति स्वामी जी के लगाव को उन्हीं के एक वाक्य से स्पष्ट करना चाहूँगा - "परिषद् मेरी पुत्री है, भला कौन नहीं चाहेगा कि उसकी पुत्री फले -फूले।"

स्वामी सत्यप्रकाश : एक अपरिचित गुरु

डॉ० अनिल वशिष्ठ

प्रधानाचार्य, डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल
रंगीत एच० ई० प्रोडक्ट, रंगीत नगर, दक्षिण सिक्किम- 731 111

वर्ष 1977 के पूर्वार्द्ध मे रसायन स्नातकोत्तर में प्रवेश के दौरान पुस्तकों की परिचर्चा स्वाभाविक रूप से चलती रही थी। मैं मुरादाबाद के के० जी० के० कॉलिज से विद्यार्जन कर रहा था। जब कभी दुर्लभ मृदा धातुओं के सम्बन्ध में कोई बात होती तो सभी सहपाठी उन्मुक्त कंठ से उनके द्वारा रसायन विज्ञान पर लिखी पुस्तक की प्रसंशा किये बिना न रहते थे। पैसे की तंगी के कारण तथा अध्ययन के सरल तौर-तरीके के कारण सरल परीक्षा उपयोगी पुस्तकों का लोभ संवरण रहता साथ ही एक अच्छी पुस्तक को पाने की ललक। जीत एक अच्छी संग्रहणीय व उपयोगी पुस्तक की हुई जो स्वामी सत्यप्रकाश द्वारा लिखी गई थी। पुस्तक को पढ़ने पर गम्भीर गहन ज्ञान प्राप्त हुआ। पुस्तक को पलट कर मुख पृष्ठ को देखा और सोचा कि कोई इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सामान्य से प्रवक्ता रहे होंगे जो निःसंदेह विद्वता से परिपूर्ण हैं। पुस्तक में छोटा सा नाम डॉ० सत्यप्रकाश लिखा था। इस तरह एक अपरिचित गुरु से अपरिचित-सा परिचय हुआ और बात आयी गयी हो गयी, किन्तु रसायन की पुस्तकों से सम्बन्धित परिचर्चा में उनका नाम आ जाता था।

वर्ष 1982 में पाँच वर्ष बाद एक स्वामी सत्यप्रकाश के पिलानी आने का समाचार ज्ञात हुआ। उस समय मैं पिलानी में रसायन प्रवक्ता के पद पर कार्य कर रहा था। सन्त मनीषी के वचनामृत पाने की जिज्ञासावश मैं पिलानी के 'शिवगंगा' नामक रमणीक स्थान पर प्रातःकाल पहुँचा। गेरुए वस्त्र में एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष ज्ञानामृत वर्षा कर रहे थे। उन्हें जुकाम का प्रकोप था किन्तु बिना किसी बाधा के प्रवाहमय रूप से ज्ञानामृत बाँटते रहे। उनके प्रवचन के उपरान्त बात-चीत में ज्ञात हुआ कि स्वामी सत्यप्रकाश और डॉ० सत्यप्रकाश एक ही हैं यह सुनकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ और मैंने स्वामी जी को बताया कि मैं आप को अपरिचित गुरु के रूप में जानता हूँ और आप से प्रभावित रहा हूँ। इस पर स्वामी जी ने हल्की सी मुस्कान दी किन्तु इनके चेहरे पर

शेष भाग 6 पृष्ठ पर

स्वामी जी की कुछ स्मृतियाँ

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

पूर्व शोधछात्र, शीलाधर शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पूज्य स्वामी जी के दर्शन का सौभाग्य सन् 1992 के शुरू में मुझे उस समय प्राप्त हुआ, जब मैं परम पूज्य डॉ० शिवगोपाल मिश्र से मिलने विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रांगण में आया। मेरे साथ डॉ० उमाशंकर मिश्र भी थे। परिषद् के प्रांगण में प्रविष्ट होते ही मेरी दृष्टि गेरुए वस्त्रधारी उस व्यक्ति की ओर गयी, जो कुर्सी पर बैठकर धीरे-धीरे अपने शरीर पर तेल की मालिश कर रहा था। उमाशंकर जी ने उनका चरण स्पर्श किया और तत्पश्चात् मैंने भी। यह सच है कि मैं पहली बार स्वामी जी से मिला, किन्तु उनके व्यक्तित्व में जो सहज आकर्षण था उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ।

मेरे मन में उस संन्यासी के बारे में जिज्ञासा हुई और मन के कौतूहल को विराम देने के लिये मैंने अपनी जिज्ञासा उमाशंकर जी से व्यक्त कर दी। तब मुझे ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति कोई और नहीं, हिन्दी में विज्ञान को नया आयाम देने वाले प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान और वैज्ञानिक स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती हैं।

इसके बाद तो स्वामी जी से यदा-कदा मिलना होता ही रहता था, किन्तु उनके विचारों को जानने का अवसर उस समय आया, जब विज्ञान परिषद् एवं इफको, फूलपुर के संयुक्त तत्वावदान, में आधुनिक कृषि के विविध आयाम, विषयक गोष्ठी हुई। गोष्ठी के समापन समारोह के मुख्य अतिथि थे- उत्तर प्रदेश सरकार के तत्कालीन उच्च शिक्षा राज्य मन्त्री, डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह गौर। स्वामी जी को अध्यक्षपदीय व्याख्यान देना था और स्वामी जी ने अपना व्याख्यान दिया भी। स्वामी जी अपने व्याख्यान में हिन्दी माध्यम से विज्ञान का प्रचार प्रसार करने वाली देश की प्राचीनतम संस्था 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' और 'हिन्दी' की उपेक्षा करने के लिये मुख्य अतिथि के प्रति भी अपना क्षोभ प्रकट करने से नहीं चूके। अपने अध्यक्षपदीय व्याख्यान में स्वामी जी की वाक्पटुता, सहजता, निर्भीकता, विनोदीपन और विद्वता का जो अद्भुत समन्वय था, उसे सुनकर तथा हिन्दी के प्रति उनके अनुराग को देखकर उपस्थित सभी विज्ञान-प्रेमी भाव-विभोर हो उठे। हलाँकि स्वामी जी उस समय अस्वस्थ चल रहे थे और डॉ० शिव गोपाल मिश्र के सहारे मंच तक आये थे। उस समय स्वामी जी की आयु 87 वर्ष की थी, लेकिन ओजपूर्ण वाणी को सुनकर ऐसा लग रहा था कि मानो युवा सत्यप्रकाश बोल रहे हों।

स्वामी जी का न केवल विज्ञान अपितु धर्म, साहित्य सभी पर समान अधिकार था। उनका शब्द प्रयोग, शब्द निर्माण सामर्थ्य अनूठा था। ज्ञान के तो मानो वे समुद्र ही थे। वे जन्मजात आर्य समाजी थे और शुरू से ही पुरोहिती का कार्य करते रहे थे। आर्य समाज का प्रचार-प्रसार करने हेतु उन्होंने न केवल सम्पूर्ण देश, अपितु विदेशों का भी भ्रमण किया तथा जगह-जगह अध्यक्षपदीय भाषण दिये। उन्होंने वैदिक साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे एवं अथर्ववेद, ऋग्वेद और उपनिषदों का अँग्रेज़ी में अनुवाद भी किया।

हिन्दी में विज्ञान को नया आयाम देने के लिये उन्होंने अनेक रेडियो वार्ताएँ दीं, व्याख्यान दिये और हिन्दी में विज्ञान परम्परापर आधारित पुस्तकों तथा पाठ्य पुस्तकों का प्रणयन किया। विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित हिन्दी मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में तो उन्होंने सन् 1923 से ही लिखना शुरू कर दिया था। बाद में न केवल सन् 1927-1933 तथा 1937-1941 तक पत्रिका के सम्पादन का भार अपितु संस्था के सभापति (1960-1967) का भी भार उठाया। यही नहीं, शोधार्थियो के हितों को ध्यान में रखते हुए 1958 में हिन्दी में प्रथम विज्ञान शोध पत्रिका, 'विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका' का प्रकाशन आपके प्रयास से ही शुरू हो पाया और आपने सम्पादन का भार भी जीवनपर्यन्त उठाया। यह शोधपत्रिका आज भी अनवरत रूप से प्रकाशित हो रही है। आप सम्पादन कला में भी अत्यन्त निपुण थे और विभिन्न पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का सम्पादन किया।

शेष भाग 25 पृष्ठ पर

स्वामी जी का विनोद और मेरा नामकरण

विजय जी

संम्पादक गाँव की आवाज, धूरपुर, इलाहाबाद

एक लेखक के रूप में स्वामी जी का नाम पहले पहल हमें छठवीं कक्षा में ही पता चल गया था । उस समय जूनियर कक्षाओं में विज्ञान की जो किताब पढ़ाई जाती थी उसे स्वामी जी ने ही लिखा था । किताबों पर ऊपर ही लेखक का नाम डॉ० सत्यप्रकाश लिखा होता था । इण्टरमीजिएट में जब मैं सी० ए० वी० इण्टर कॉलेज इलाहाबाद का छात्र था तभी किसी सभय अखबारों में पढ़ा कि प्रयाग विश्वविद्यालय में डॉ० सत्यप्रकाश ने संन्यास ले लिया है और अब वे स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती हो गये हैं ।

स्वामी जी को सुनने का पहला अवसर मुझे तब मिला जब कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद में बी० एस-सी० का छात्र था। स्वामी जी का रसायन विज्ञान के किसी विषय पर लेक्चर था। संन्यासी वेश में मैंने पहली बार स्वामी जी को तभी देखा और सुना । यह 1970 के आस-पास का समय था । बाद में 1980 के आस-पास जब मेरा संपर्क विज्ञान परिषद् से हुआ तब आना-जाना शुरू हुआ । इस तरह विज्ञान परिषद् के माध्यम से स्वामी जी को थोड़ा निकट से देखने और जानने का मौका मिला ।

स्वामी जी के साथ का एक संस्मरण भुलाए नहीं भूलता। सच पूछिये तो उस मुलाकात के बाद मैंने अपना नाम ही बदल दिया । 1986 की बात है । दिल्ली में लोकविज्ञान की एक कार्यशाला थी । मैं और विज्ञान लेखक शुकदेव प्रसाद जी कार्यशाला में भाग लेने साथ-साथ दिल्ली गये । वहां स्टेशन से निकल कर पहले हम लोग आर्य समाज मन्दिर गये । वहां स्वामी जी मौजूद थे । स्वामी जी से यद्यपि पूर्व में कई बार मिल चुका था लेकिन उस वक्त उन्हें मेरा नाम याद नहीं रह गया था । मैंने उन्हें अपना नाम विजय 'विजय देहाती' बताया । स्वामी जी ने हंसते हुए विनोद में कहा— "दिल्ली वालों की निगाह में तो वैसे भी हम सब देहाती हैं, फिर नाम में 'देहाती' जोड़ने की क्या जरूरत है ?" स्वामी जी ने यह बात यद्यपि विनोद में कहीं थी, लेकिन मुझे लगा कि 'देहाती' शब्द लगाने से कहीं मेरे अन्दर हीनभावना न आ जाय । अतः बाद में नाम के साथ 'देहाती' उपनाम हटा दिया । 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के अंकों में प्रकाशित मेरे शुरु के लेखों में मेरा नाम विजय 'देहाती' ही है ।

'दादा' मुझे जब सायकिल पर बिठा कर घर ले गए

1931 में एम० एस-सी० पास करने पर 'मुझे एम्प्रेस विक्टोरिया रिसर्च रीडरशिप' मिली। उन दिनों शोधछात्रों को गर्मियों में केवल एक महीने की छुट्टी मिला करती थी। 1932 की छुट्टियों में जब मैं आया तो होस्टल बन्द थे। मेरे सामने, जब तक जुलाई में होस्टल आबाद न हो, रहने का सवाल था। दादा डिपार्डमेंट में आये हुए थे। शाम को दादा ने मुझे होस्टल न खुलने तक अपने घर रहने के लिये कहा। मुझे और क्या चाहिए था। दादा मुझे अपनी बाइसकिल पर पीछे बिठा कर अपने घर ले गए। मैं तीन-चार सप्ताह उनके पास रहा। उन दिनों वह हठयोग (आसन नहीं) अर्थात् शरीर से हठ किया करते थे। गर्मियों में कम्बल, ओढ़ना, जाड़ों में बाहर सोना आदि।

--डॉ० आत्माराम

हिन्दी-समृद्धि का पर्याय

डॉ० सत्यप्रकाश

विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

'सरस्वती' की समृद्धि हिन्दी-समृद्धि का पर्याय है । 'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादकों के पथ-प्रदर्शन में हमारा वाङ्मय विकसित हुआ । इस विकास के विभिन्न चरण यदि देखने हों तो 'सरस्वती' पत्रिका के पृष्ठ उलटिये। जीता-जागता इतिहास सामने आ जायगा । मेरे लिए यह कहना कठिन है कि 'सरस्वती' से मेरा परिचय कब से हुआ। मेरे पिताजी का इण्डियम प्रेस से संबंध पुराना था । अँग्रेजी पद्धति पर उनकी लिखी 'हिन्दी व्याकरण' इण्डियन प्रेस ने उस समय छापी जब मैं एक-दो वर्ष का शिशु रहा हूँगा । फिर 6 भागों में पिताजी का लिखा 'हिन्दी शेक्सपियर' इंडियन प्रेस से छपा । आचार्य द्विवेदीजी के आग्रह पर पिताजी का एक लेख 'शेक्सपियर और देशभक्ति' अथवा इसी प्रकार के किसी शीर्षक से 'सरस्वती' में छपा, तब मैं आठ वर्ष का रहा हूँगा । 'बाल पुस्तकमाला' के अन्तर्गत् पिताजी की एक पुस्तिका 'बाल निबन्धमाला' भी इसी प्रेस से प्रकाशित हुई। परिवार के आर्थिक संकट के समय उन दिनों लेखक को दो पैसे मिल जायँ, तो बड़ी बात थी । प्रेस के अधिकारियों ने पिताजी से पशु-पक्षियों के संबंध में 20 के लगभग खण्डों में एक रचना और लिखायी, जो संभवतः अब भी पाण्डुलिपि के रूप में अप्रकाशित ग्रन्थों के भण्डार में प्रेस में सुरक्षित पड़ी होगी । मैंने अपने बचपन में 'सरस्वती' में लेख उस समय भेजे जब वे छपने योग्य थे ही नहीं—निज रचना केहि लागइ फीकी । मैं भेजता रहता था, और वे वापस लौट आया करती थीं । पर मैं कभी निराश न होता था । 'सरस्वती' की सम्पादकों से मेरा परिचय बचपन में हुआ—देवीदत्तजी, और बख्शीजी से । 'सरस्वती' की देखा-देखी न जाने कितनी पत्रिकायें निकलीं—ये यशस्वी भी हुईं, पर रहीं अल्पजीवी ही। पत्रिकाओं में 'सरस्वती' ही इतनी दीर्घजीवी रह सकी। इसका श्रेय इण्डियन प्रेस के मालिकों को, स्वर्गीय चिन्तामणिजी और उनके सहृदय परिवार को है।

'सरस्वती' ने समालोचकों का आदर्श प्रस्तुत किया, साहित्यिक समालोचनाओं का भी और हिन्दी संबंधी नीति का भी। 'सरस्वती' की समालोचनायें आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । वर्तमान सम्पादक के सम्पादकीय भी प्रांचल, स्वस्थ और हितकर विचारों के प्रतीक हैं । 'सरस्वती' की कठोर आलोचनाओं ने इतिहास में कभी-कभी कटुता भी उत्पन्न की थी, पर वह कटुता क्षणिक ही रही । मुझे स्मरण है कि एक समय द्विवेदीजी की किसी आलोचना पर आर्यसमाज उद्विग्न हो उठा था । किसी कर्मठ संस्था का उद्विग्न होना बवंडर के समान है, पर क्योंकि आर्यसमाज भी हिन्दी और हिन्दी साहित्य का परम हितैषी था और 'सरस्वती' परिवार भी, इसलिए ऐसी कटुतायें शीघ्र ही स्नेह और घनिष्ठता में परिणत होती रहीं । छायावाद और रहस्यवाद की कविताओं के युग में जहाँ एक ओर रूढ़िगत सम्पादक मण्डल ने कटु आलोचनाये कीं, वहाँ दूसरी ओर उसपर परोक्ष में कुछ वरदहस्त भी बना रहा । मैथिलीशरण, रामचरित उपाध्याय और गोपालशरण सिंह के समान कवियों की प्रतिभा का विकास 'सरस्वती' के द्वारा ही हुआ । पद्मसिंह वर्मा जैसे साहित्य मर्मज्ञ आलोचक भी 'सरस्वती' की ही देन हैं ।

बहुत दिनों की बात है, मैं भी कवि होने के स्वप्न देखता था। कविता अब भी करता हूँ ग्रस्वानाः सुखाय । 'प्रतिबिम्ब' नामक एक संग्रह मेरा प्रकाशित हुआ था । द्विवेदीजी उस समय सम्पादक तो न थे, पर 'द्विरेफ' नाम से सुन्दर समीक्षायें लिखा करते थे । मेरी कुछ पंक्तियों पर उद्विग्न अथवा खिन्न होकर उन्होंने मजेदार लेख लिख डाला जो 'सरस्वती' में मुख्य-लेख की तरह प्रकाशित हुआ । वर्ष भर के साहित्य की इस लेख में समीक्षा थी । मैं इसीलिए प्रसन्न था कि उस वर्ष की किसी कविता-रचना ने द्विवेदीजी का ध्यान आकर्षित नहीं किया, एकमात्र बौछार पड़ी मेरे 'प्रतिबिम्ब' पर । मैंने इसे 'प्रतिबिम्ब' की सफलता माना ।

'सरस्वती' में मैंने कम ही लेख लिखे हैं । अपने राजनैतिक जीवन के संस्मरण के सम्बन्ध में कई वर्ष हुए, मैंने एक लेखमाला लिखी थी, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। ''सरस्वती'' में प्रकाशित संस्मरण मुझे सदा पसन्द आते रहे हैं । अपने मित्र ब्रजमोहन व्यासजी के लिखे संस्सरण तो मैं आज भी चाव से पढ़ता हूँ ।

'सरस्वती' ने साठ वर्ष पूरे किये, प्रसन्नता की बात है.। शतशः बदाइयाँ ! कैसे कहूँ, कि साठ वर्ष में ''सरस्वती'' वृद्धा हो गयी और ''बालसखा'' इतने दिनों में युवा हो गया । मेरी तो यही कामना है कि ''सरस्वती'' में शतियों तक युवती माता का सहज सौजन्य और ''बालसखा'' में शतियों तक शैशव विद्यमान रहे ।

[सरस्वती से साभार]

स्वामीजी की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक कृतियाँ

1. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा : 1994 बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना
2. Advanced Chemistry of Rare Elements : 1956 एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
3. Founders of Science in Ancient India : 1965 : रिसर्च इंस्टीटियूट ऑफ एंसिएट साइंटिफिक स्टडीज, दिल्ली
4. साबुन और ग्लिसरीन 1966 : हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
5. A Critical Study of Brahmagupta and His Works : 1968, इंडियन इंस्टीटियूट आफ ऐस्ट्रानामिक एण्ड संस्कृत रिसर्च, नई दिल्ली
6. रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियायें : 1973 हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
7. Patanjali Rajyoga : एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
8. Physico-chemical Aspect of High Polymers: एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
9. भौतिक और रासायनिक नियतांक : 1978, हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
10. The Bakhsali Manuscript : 1979, रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
11. The Shulva Sutra : 1979, रत्न कुमारी स्वाध्याय संस्थान, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
12. Coinage in Ancient India : 1986, गोविन्द राम हासानन्द दिल्ली
13. प्राचीन भारत में रसायन का विकास : 1986, नया संस्करण, पुस्तकायन, दिल्ली

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती साहित्य (कुछ अन्य प्रकाशन)

1. आर्य समाज (अँग्रेजी)
2. सत्यमेव जयते
3. द सेल्फ लाइफ एण्ड कान्शसनेस (अँग्रेजी)
4. ह्यूमेनेटेरियन डाइट
5. प्रार्थना और चिंतन
6. प्रभु के मार्ग पर
7. मनुष्य और मानव धर्म
8. वैदिक संध्या (अँग्रेज़ी)
9. ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान
10. Man and His Religion
11. Dayanand. Hero of Spirit- A Poem
12. Dialogues & Parables from the Upnishads 12-15.

स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती द्वारा संपादित पम्पलेट

1. महर्षि दयानन्द और मूर्ति पूजा
2. महर्षि दयानन्द और भागवत धर्म
3. महर्षि दयानन्द : जीवन वृत्त और कृतित्व
4. महर्षि दयानन्द और प्राचीन परम्परायें
5. महर्षि दयानन्द और संस्कृत भाषा, शैली एवं साहित्य
6. महर्षि दयानन्द और भारतीय नारी
7. महर्षि दयानन्द और उनकी आस्तिक आख्या
8. महर्षि दयानन्द और लूथर एवं मार्क्स

स्वामी जी द्वारा सम्पादित साहित्य

1. विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित **मासिक पत्रिका** 'विज्ञान' का संपादन

1927-1933 डॉ० सत्यप्रकाश एवं प्रो० ब्रजराज

1937-1941 डॉ० सत्यप्रकाश

2. 1957 से विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका (त्रैमासिक) शोध पत्रिका
3. 1970-1971 भारत की सम्पदा
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती स्मृति ग्रन्थ
5. दिल्ली के प्रकाशक पुस्तकायन के सहयोग से बाल विज्ञान सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकों के प्रधान सम्पादक

ऊर्जा, वैज्ञानिक कृषि, जीवों की उत्पत्ति, कम्प्यूटर, हमारा पर्यावरण, मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया, अंटार्किटिका, भारतीय पुरातत्व-विज्ञान, जल कृषि, लोकोपयोगी रसायन विज्ञान, हमारा शरीर और संतुलित आहार, भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता रंग बिरंगे फल, पानी के रोचक तथ्य, रसायन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता, प्रदूषित मृदा, तारों का अद्भुत संसार, भारतीय पुरातत्व के साक्षी, ईधन ।

6. वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली, पारिभाषिक शब्दावली, मानक अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश

पुस्तकायन की पुस्तकें

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वामी (डॉ०) सत्यप्रकाश सरस्वती के तत्वावधान में विज्ञान परिषद् इलाहाबाद के सुयोग्य सम्पादक मंडल द्वारा विद्वान लेखकों की बच्चों और बड़ों के लिए सम्पादित व लिखित सचित्र पुस्तकों और एनसाइक्लोपीडिया के विभिन्न खंडों की (जन्हें एन सी आर टी द्वारा पुरस्कृत किया गया) सूची नीचे दी गई है। ये पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्धक हैं। ये पुस्तकें पुस्तकायन 2/4240 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से प्राप्त की जा सकती हैं।

बालज्ञान-विज्ञान साहित्य सचित्र पुस्तकें		Rs.
हमारा पर्यावरण :	अनिल कुमार शुक्ल	35
मधुमक्खियों की अनोखी दुनिया :	विजय	35
अंटार्कटिका :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव	35
भारतीय पुरातत्व विज्ञान	डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव	35
जल कृषि (हाईड्रोपोनिक्स) :	दिनेश मणि	35
लोकोपयोगी रसायन विज्ञान :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
हमारा शरीर और स्वास्थ्य :	डॉ० भानुशंकर मेहता	35
सन्तुलित आहार :	डॉ० विजयहिन्द पाण्डेय, शुभा पाण्डेय	35
भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता:	आशुतोष मिश्र	50
ऊर्जा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
वैज्ञानिक कृषि :	डॉ० अशोक कुमार	35
[illegible] :	विजय	25
कम्प्यूटर :	आशुतोष मिश्र	35
[illegible]यन विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र	35
दूषित मृदा :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	35
प्राकृतिक घटनाएँ : वैज्ञानिक दृष्टि :	विजय	35
रंग-बिरंगे फल :	दर्शानान्द	35
तारों का अद्भुत् संसार :	आशुतोष मिश्र	50
जैव प्रौद्योगिकी :	मनोज कुमार पटैरिया	35
ईधन :	डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं दिनेश मणि	40
भारतीय सभ्यता के साक्षी :	प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव, गौरेन्द्र नारायण राय चौधरी	35
पानी के रोचक तथ्य :	डॉ० डी० डी० ओझा	35

5.

ज्ञानकोश : बाल विज्ञान एनसाइक्लोपीडिया		Rs.
पक्षी जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
जल-थल जीव :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
कीट पतंगे, सूक्ष्मजीव जगत्:	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
संचार-परिवहन :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
खोज और खोजकर्ता :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
मानव जगत् :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150
पेड़-पौधे :	राजेन्द्र कुमार 'राजीव'	150

बाल ज्ञान विज्ञान सीरीज की पुस्तकें		Rs.
क्या क्यों कैसे (सामान्य विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (शरीर रोग विज्ञान) :	हरिदत्त शर्मा	60
क्या क्यों कैसे (पृथ्वी एवं खनिज) :	हरिदत्त शर्मा	60
ज्ञानवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
मनोरंजक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	50
बुद्धिवर्धक गणित विज्ञान :	हरिदत्त शर्मा	60
हमारा सूर्य :	शरण	35
हमारा चन्द्रमा :	शरण	35
हमारी पृथ्वी :	शरण	35
पर्यावरण : जीवों का आंगन :	प्रेमानन्द चन्दोला	10
अन्तरिक्ष से आने वाला :	सुरजीत	12
रोहित का सपना :	ब्रह्मदेव	10
विज्ञान के खेल :	सन्तराम वत्स्य	12
विज्ञान के पहिए :	सन्तराम वत्स्य	12

विविध		Rs.
प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	325
प्राचीन भारत में रसायन का विकास :	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	395